जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.
(हिंदी विभाग - पुष्प ६५)

ॐ

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती कृत

गोम्मटसार जीवकाण्ड

(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

GommatSar Jeevkand in Charts & Tables

लेखक

श्री प्रकाश एवं श्रीमती पूजा छाबड़ा

-प्रकाशक-

जैन संस्कृति संरक्षक संस्कृति संघ
(जीवराज जैन ग्रंथमाला)
टी. पी. प्लॉट नं. ५६/१०, बुधवार पेठ, जूना पुणे नाका, सोलापुर-२
फोन: ०२१७-२३२१००८, मो. ०९४२१०४००२२

प्रकाशक :-श्री अरविंद रावजी दोशी, अध्यक्ष,जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर -२.

प्रथम संस्करण : १२०० १५/११/२०१४
द्वितीय संस्करण : १२०० १/६/२०१६ वीरसंवत् - २५४२

अर्थ सहयोग :
* जैन सेन्टर ऑफ ग्रेटर बोस्टन, अमेरिका
हस्ते श्रीमती शशी खासगीवाला, इन्दौर ३१,०००/-
* श्रीमान प्रवीणकुमार जैन, दिल्ली २५,०००/-
* श्रीमती अनिता अजीत जैन, गोयलनगर, इन्दौर १५,०००/-

ISBN Number - ९७८-९३-५१९६-५०७-७ (सर्वाधिकार सुरक्षित)

प्राप्ति स्थान : * श्रीमान विमलचन्द छाबड़ा, ५३, मल्हारगंज, मेनरोड, इन्दौर
फोनः ०९९२६०-४०१३७, ०९४२४४-१४७९६
* जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर
www.jainbooksonline.com
* श्रीमान प्रवीणकुमार जैन,२२४- बैंक एन्क्लेव, लक्ष्मीनगर, दिल्ली- ९२

लागत मूल्य : १८० रुपए
न्यौछावर राशि : १०० रुपए

मुद्रण स्थल : श्री प्रेरणा एंटरप्राईजेस्, पुणे ४११ ०५१

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित है । प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना इसके रेखाचित्र एवं तालिकाओं को फोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशिनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुर्नप्रयोग की प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, अनुवाद, नकल पुनरुत्पादित अथवा संचारित-प्रसारित नहीं किया जा सकता ।

© 2014 All rights reserved to publisher

जीवराज जैन ग्रंथमाला का परिचय

सोलापुर निवासी श्रीमान् स्व.ब्र.जीवराज गौतमचंद दोशी कई वर्षों से संसार से उदासीन होकर धर्मकार्य में अपनी वृत्ति लगाते रहे । सन् १९४० में उनकी यह प्रबल इच्छा हो उठी कि अपनी न्यायोपार्जित संपत्ति का उपयोग विशेषरूप से धर्म और समाज की उन्नति के कार्य में करें । तदनुसार उन्होंने समस्त भारत का परिभ्रमण कर जैन विद्वानों से इस बात की साक्षात् और लिखित संमतियाँ संग्रह की कि कौन से कार्य में संपत्ति का उपयोग किया जाय । स्फुट मतसंचय कर लेने के पश्चात् सन् १९४१ के ग्रीष्मकाल में ब्रह्मचारीजी ने श्री सिद्धक्षेत्र गजपंथ की पवित्र भूमि पर विद्वानों की समाज एकत्रित की और ऊहापोहपूर्वक निर्णय के लिये उक्त विषय प्रस्तुत किया। विद्वत् संमेलन के फलस्वरूप ब्रह्मचारीजी ने जैन संस्कृति तथा साहित्य के समस्त अंगोंके संरक्षण, उद्धार और प्रचार हेतु '**जैन संस्कृति संरक्षक संघ**' की स्थापना की और उसके लिये तीस हजार रुपयों के दान की घोषणा कर दी । उनकी परिग्रह-निवृत्ति बढ़ती गई । सन् १९४४ में उन्होंने लगभग दो लाख रुपयों की अपनी संपूर्ण संपत्ति संघ को ट्रस्टरूप से अर्पित की। इसी संघ के अंतर्गत '**जीवराज जैन ग्रंथमाला**' का संचालन हो रहा है।

– रतनचंद सखाराम शहा

* - विश्वस्त मंडल - *

श्री. अरविंद रावजी दोशी, मुंबई.
श्री. रतनचंद सखाराम शहा, सोलापुर.
श्री. ब्र. विद्युल्लता हिराचंद शहा, सोलापुर.
डॉ. सौ. त्रिशलादेवी अप्पासाहेब नाडगौडा पाटील, रबकवी
श्री. हर्षवदन रतनचंद शहा, सोलापुर.
सौ. शोभना त्रिभुवन शहा, अकलूज.
सौ. प्रियदर्शनी सी. जदेरिया, हैद्राबाद.

प्रस्तावना

–बा.ब्र.पण्डित रतनलाल जैन
इन्द्रभवन, तुकोगंज, इन्दौर

श्री गोम्मटसारजी करणानुयोग का अद्वितीय ग्रंथ है। यह दो भागों में विभाजित है – जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड। प्रस्तुत ग्रंथ ''गोम्मटसार जीवकाण्ड'' को सामान्यजन कठिन समझकर अध्ययन ही नहीं करते अथवा करते भी हैं तो समझ न आने से बीच में ही छोड़ देते हैं। सभी लोग सरलता से इसे समझकर आत्मसात कर सकें इसी प्रशस्त भावना से प्रेरित होकर चारों अनुयोगों का गहन अध्ययन कर चुके, तत्त्वों के मर्मज्ञ, श्री प्रकाशजी जैन (छाबड़ा) तथा निरंतर पठन–पाठन, अध्ययन–अध्यापन में रत श्रीमती पूजाजी जैन (छाबड़ा) ने इस ग्रंथराज को भी तत्त्वार्थसूत्र ही की भाँति तालिकाओं (चार्टों) के द्वारा पुस्तक रूप में प्रस्तुत किया है। चार्ट के द्वारा विषयवस्तु सरलता से समझ में आ जाती है – जो इन्होंने अथक परिश्रम से सुन्दर से सुन्दर, सरस से सरस एवं सरल से सरल रचना के रूप में प्रस्तुत की है। जीवकाण्डजी में जितने कठिन प्रकरण हैं, उन सभी की सुन्दर तालिकाएँ बना दी हैं। जैसे – प्रमादों के भंग, तीन करण, अवगाहना के भेद, अन्तर्मुहूर्त के ६६३३६ जन्म–मरण, आयुबंधाबंध, षट्गुणी हानिवृद्धि, श्रुतज्ञान के भेद–प्रभेद, अवधिज्ञान का द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से वर्णन, लेश्याओं, पंचपरावर्तन, २३ वर्गणाओं, सम्यग्दृष्टियों की संख्या, अंतरभाव एवं आलापों की अर्थात् सभी विषयों की तालिकाएँ बना दी हैं। जिससे पाठक स्वयं पढ़कर भी विषयवस्तु को समझ सकते हैं।

श्री प्रकाश एवं श्रीमती पूजा छाबड़ा में ज्ञान एवं वैराग्य का अद्भुत संयोग है। श्री प्रकाश छाबड़ा ने अमेरिका में मास्टर्स ऑफ कम्प्यूटर साइंस की उपाधि प्राप्त कर विश्व की सर्वोच्च कम्पनी माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन, अमेरिका में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में कार्य किया। श्रीमती पूजा छाबड़ा ने भी अमेरिका में सी.पी.ए.(चार्टर्ड अकाउंटेण्ट के समकक्ष) की उपाधि प्राप्त कर अमेरिका में प्रोफेशनल अकाउंटेण्ट के पद पर कार्य किया। सात वर्षों के अमेरिका प्रवास में भी आपका धार्मिक अध्ययन व अध्यापन चलता रहा।

आत्मकल्याण की भावना से प्रेरित होकर दोनों, अमेरिका व लाखों की नौकरी छोड़कर, मात्र ३१ व २८ वर्ष की अवस्था में निवृत्त जीवन जीने का संकल्प कर भारत वापस आ गए। आप यहाँ अत्यन्त सादगीमय व भौतिक साधनों से विरत होकर एक आदर्श श्रावक का जीवन यापन कर रहे हैं एवं अनंत संसार के अभाव के लिए ही अपना समग्र पुरुषार्थ लगाकर आगे बढ़ रहे हैं। अध्ययन के साथ–साथ शास्त्र प्रवचन, धार्मिक कक्षाओं में अध्यापन, नई तकनीक (प्रोजेक्टर/कम्प्यूटर) के माध्यम से करणानुयोग के विषय को अत्यंत सरलता से प्रस्तुत कर रहे हैं। आप दोनों इसी प्रकार से अन्य ग्रंथराज लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि की तालिकाएँ भी स्व–पर कल्याण हेतु अवश्य ही बनावें।

दोनों प्रकाश एवं पूजा इसी प्रकार स्व–पर कल्याण में रत रहें एवं सभी भव्यात्माऐं अल्पकाल में अक्षय अतीन्द्रिय आनंद को प्राप्त करें, इसी मंगल भावना के साथ विराम लेता हूँ।

प्राक्कथन

श्री गोम्मटसार जैनदर्शन में करणानुयोग का मुख्य, सर्वमान्य एवं सारभूत ग्रन्थ है। इसकी रचना श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने की है। यह ग्रन्थराज दो भागों में विभक्त है (१) जीवकाण्ड (२) कर्मकाण्ड। जीवकाण्ड में जीव के गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि का तथा कर्मकाण्ड में आठों कर्मों की प्रकृतियों आदि का निरूपण किया गया है। इसमें पारिभाषिक शब्दों, गूढ़ सिद्धान्तों एवं गणित का प्रयोग होने से, विषय-वस्तु रुचिकर होने पर भी सामान्यजन को समझने में कठिन एवं दुरूह लगने से वे इसका समुचित अध्ययन कर लाभ नहीं उठा पा रहे थे। हमने अपनी नियमित कक्षाओं में ग्रन्थराज (जीवकाण्ड) की विषयवस्तु को कम्प्यूटर प्रेजेन्टेशन द्वारा चार्ट एवं तालिकाओं के माध्यम से सरलीकृत कर प्रस्तुत किया, जिससे विद्यार्थीयों को यह अत्यन्त सरलता से हृदयंगम होने लगा। इससे हमें अत्यंत हर्ष हुआ और जनमानस इस ग्रन्थराज के अध्ययन की ओर आकर्षित हो व इसे कठिन न समझते हुए इसका समुचित ज्ञान प्राप्त करे इसी भावना से मूल ग्रन्थराज की लगभग सभी गाथाओं को ही चार्ट एवं तालिकाओं के रूप से पुस्तकाकार तैयार कर प्रस्तुत किया गया है। अपनी ओर से विश्लेषण या व्याख्या नहीं की है। कहीं-कहीं आवश्यक होने से तालिकाओं को आंशिक रूप से गाथाओं के आगे-पीछे भी रखा गया है। पाठक अब यदि बड़ी टीका सहित ग्रन्थराज का अध्ययन इस पुस्तक को साथ में रखकर करेंगे तो उन्हें पूर्ण विषय-वस्तु अत्यंत सरलता से समझ में आकर सदैव के लिये हृदयंगम हो जावेगी।

इसी तरह जटिल गणित सम्बन्धी विषय यथा प्रत्येक अधिकार में आगत 'जीवों की संख्या' आदि सरलता से समझ में आ जावे इस हेतु ग्रन्थ के प्रारम्भ में ''अलौकिक गणित'' एक स्वतंत्र अधिकार दिया गया है। इसे पढ़कर वस्तु तत्त्व की विशालता एवं सूक्ष्मता का बहुत गहराई से भान होता है। साथ ही केवलज्ञान की महिमा स्पष्ट प्रतीत होती है।

प्रस्तुत ग्रंथ को तैयार करने में हमने श्रीमद् राजचंद्र आश्रम, अगास एवं भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली द्वारा प्रकाशित गोम्मटसार जीवकाण्ड का, पण्डित रतनचंदजी मुख्तार विरचित गोम्मटसार टीका का तथा श्रीमती उज्ज्वला शहा द्वारा अनुवादित पण्डित टोडरमलजी विरचित सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका टीका का यथोचित उपयोग किया है। हम परम आदरणीय बा.ब्र. पं.श्री रतनलालजी शास्त्री के विशेष आभारी हैं जिनके सान्निध्य में हमने अध्ययन किया व इस ग्रन्थ को प्रस्तुत करने की प्रेरणा प्राप्त हुई। पुस्तक को सुन्दर रूप देने में श्रीमती कीर्ति सिद्धार्थ बड़जात्या 'श्रीकमल', इन्दौर का एवं प्रूफ रिडिंग में प्रो. श्री शांतिलालजी बड़जात्या, इन्दौर का अथक सहयोग प्राप्त हुआ तथा टाइपिंग का समस्त कार्य श्री पीयूषकुमारजी जैन, जयपुर द्वारा किया गया। हम इनके आभारी हैं एवं उन्हें धन्यवाद देते हैं।

प्रथम संस्करण के समाप्त होने व अधिक माँग होने से इसका द्वितीय संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

''को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे'' के अनुसार पुस्तक में त्रुटियाँ होना सम्भव है। सुधी पाठकों से अनुरोध है कि त्रुटियों को सुधारकर पढ़ें व हमें भी अवगत करावें ताकि आगामी संस्करण में उसकी पुनरावृत्ति न हो।

सभी साधर्मीजन इस महान ग्रन्थ के माध्यम से संसार का स्वरूप दु:खमय जानकर उससे विरक्त होकर अनंतसुखरूप आत्मतत्त्व की रुचि उत्पन्नकर अतीन्द्रिय मोक्षसुख प्राप्त करें इसी भावना के साथ विराम लेते हैं।

दिनांक १-७-२०१६

प्रकाश - पूजा छाबड़ा
फोन नं. ९९२६०-४०१३७
पूर्व प्रकाशित तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ, प्रस्तुत ग्रन्थ, समस्त प्रेजेन्टेशन,
नोट्स एवं अन्य सामग्री - http://is.gd/jainfundamentals
प्रवचन एवं कक्षाएँ - www.youtube.com/user/JainLectures

विषय अनुक्रमणिका

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका पीठिका	–	–	I-XIV
अलौकिक गणित	–	–	1-19
संख्यामान			1-10
उपमामान			11-14
१४ धाराएँ			14-19
मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा	१	१	१
अधिकारों (प्रस्पणाओं) के नाम एवं संख्या	२	१	२
गुणस्थान एवं मार्गणास्थान की उत्पत्ति का निमित्त एवं उनके पर्यायवाची शब्द	३	१	२
२० प्रस्पणाओं का अन्तर्भाव किस-२ में	४	१	३
मार्गणा प्रस्पणा में दूसरी प्रस्पणाओं का अन्तर्भाव	५-७	३	३
गुणस्थान अधिकार	८-६९	६२	४-३७
जीवसमास "	७०-११७	४८	३८-६२
पर्याप्ति "	११८-१२८	११	६३-६७
प्राण "	१२९-१३३	५	६८-७०
संज्ञा "	१३४-१३९	६	७१-७२
मार्गणा महाधिकार मंगलाचरण एवं प्रतिज्ञा	१४०	१	७३
मार्गणा का लक्षण	१४१	१	७३
१४ मार्गणाओं के नाम	१४२	१	७३
सांतर मार्गणाओं का वर्णन	१४३-१४५	३	७४-७५
गति मार्गणा अधिकार	१४६-१६३	१८	७६-८२
इन्द्रिय " "	१६४-१८०	१७	८३-९१

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
काय मार्गणा अधिकार	१८१-२१५	३५	९२-१०५
योग " "	२१६-२७०	५५	१०६-१३०
वेद " "	२७१-२८१	११	१३१-१३६
कषाय " "	२८२-२९८	१७	१३७-१४४
ज्ञान " "	२९९-४६४	१६६	१४५-२०९
संयम " "	४६५-४८१	१७	२१०-२१६
दर्शन " "	४८२-४८८	७	२१७-२१८
लेश्या " "	४८९-५५६	६८	२१९-२६३
भव्यत्व " "	५५७-५६०	४	२६४-२७२
सम्यक्त्व " "	५६१-६५९	९९	२७३-३१५
संज्ञी " "	६६०-६६३	४	३१६-३१७
आहारक " "	६६४-६७१	८	३१८-३२०
उपयोग अधिकार	६७२-६७६	५	३२१-३२२
अन्तर्भाव अधिकार	६७७-७०५	२९	३२३-३३४
आलाप "	७०६-७३३	२८	३३५-३४२
अंतिम आशीर्वाद	७३४	१	३४२
परिशिष्ट			३४३-३४४

पण्डितप्रवर टोडरमलजी कृत
सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका
पीठिका
मंगलाचरण

बंदौं ज्ञानानंदकर, नेमिचन्द गुणकंद।
माधव वंदित विमलपद, पुण्यपयोनिधि नंद।।१।।
दोष दहन गुन गहन घन, अरि करि हरि अरहंत।
स्वानुभूति रमनी रमन, जगनायक जयवंत।।२।।
सिद्ध सुद्ध साधित सहज, स्वरससुधारसधार।
समयसार शिव सर्वगत, नमत होहु सुखकार।।३।।
जैनी वानी विविध विधि, वरनत विश्वप्रमान।
स्यात्पद-मुद्रित अहित-हर, करहु सकल कल्यान।।४।।
मैं नमो नगन जैन जन, ज्ञान-ध्यान धन लीन।
मैन मान बिन दान घन, एन हीन तन छीन।।५।।
इहविधि मंगल करन तैं, सब विधि मंगल होत।
होत उदंगल दूरि सब, तम ज्यौं भानु उदोत।।६।।

सामान्य प्रकरण

अथ मंगलाचरण करि श्रीमद् गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ, ताकी देशभाषामयी टीका करने का उद्यम करौ हौं। सो यहु ग्रंथसमुद्र तौ ऐसा है तो सातिशय बुद्धि-बल संयुक्त जीवनि करि भी जाका अवगाहन होना दुर्लभ है। अर मैं मंदबुद्धि अर्थ प्रकाशनेरूप याकी टीका करनी विचारौं हौं।

सो यहु विचार ऐसा भया जैसैं कोऊ अपने मुख तैं जिनेन्द्रदेव का सर्व गुण वर्णन किया चाहै, सो कैसैं बनै?

इहां कोऊ कहै - नाहीं बनै है तो उद्यम काहे कौं करौ हौ?

ताकौं कहिये है - जैसैं जिनेंद्रदेव के सर्वगुणकहने की सामर्थ्य नाहीं, तथापि भक्त पुरुष भक्ति के वश तैं अपनी बुद्धि अनुसार गुण वर्णन करै, तैसैं इस ग्रंथ का संपूर्ण अर्थ प्रकाशने की सामर्थ्य नाहीं। तथापि अनुराग के वश तैं मैं अपनी बुद्धि अनुसार (गुण) अर्थ प्रकाशोंगा।

बहुरि कोऊ कहै कि - अनुराग है तो अपनी बुद्धि अनुसार ग्रंथाभ्यास करो, मंदबुद्धिनि कौं टीका करने का अधिकारी होना युक्त नाहीं।

ताकौं कहिये है – जैसैं किसी शिष्यशाला विषैं बहुत बालक पढैं हैं। तिनिविषैं कोऊ बालक विशेष ज्ञान रहित है, तथापि अन्य बालकनि तैं अधिक पढ्या है, सो आपतैं थोरे पढने वाले बालकनि कौं अपने समान ज्ञान होने के अर्थि किछू लिखि देना आदि कार्य का अधिकारी हो है। तैसैं मेरे विशेष ज्ञान नाहीं, तथापि काल दोष तैं मोतैं भी मंदबुद्धि हैं, अर होंहिंगे। तिनिकैं मेरे समान इस ग्रंथ का ज्ञान होने के अर्थि टीका करने का अधिकारी भया हौं।

बहुरि कोऊ कहै कि – यहु कार्य करना तो विचार्या, परन्तु जैसैं छोटा मनुष्य बड़ा कार्य करना विचारै, तहां उस कार्य विषैं चूक होई ही, तहां वह हास्य कौं पावै है। तैसैं तुम भी मंदबुद्धि होय, इस ग्रंथ की टीका करनी विचारौ हौं सो चूक होइगी, तहां हास्य कौं पावोगे।

ताकौं कहिये है – यहु तौ सत्य है कि मैं मंदबुद्धि होइ ऐसै महान ग्रंथ की टीका करनी विचारौ हौं, सो चूक तौ होइ, परन्तु सज्जन हास्य नाहीं करैंगे। जैसैं औरनि तैं अधिक पढ्या बालक कहीं भूलै तब बड़े ऐसा विचारै हैं कि बालक है, भूलै ही भूलै, परंतु और बालकनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य नाहीं करै हैं।

तैसै मैं इहां कहीं भूलोंगा तहां सज्जन पुरुष ऐसा विचारैंगे, कि मंदबुद्धि था, सौ भूलै ही भूलै, परंतु केतेइक अतिमंदबुद्धीनि तैं भला है, ऐसैं विचारि हास्य न करेंगे।

सज्जन तो हास्य न करेंगे, परन्तु दुर्जन तौ हास्य करैंगे?

ताकौं कहिये है कि – दुष्ट तौ ऐसै ही हैं, जिनके हृदय विषै औरनि के निर्दोष भले गुण भी विपरीतरूप ही भासैं। सो उनका भय करि जामैं अपना हित होय ऐसे कार्य कौं कौन न करैगा?

बहुरि कौऊ कहै कि – पूर्व ग्रंथ थे ही, तिनिका अभ्यास करने-करावने तैं ही हित हो है, मंदबुद्धिनि करि ग्रंथ की टीका करने की महंतता काहेकौं प्रगट कीजिये?

ताकौं कहिये है कि – ग्रंथ अभ्यास करने तैं ग्रंथ की टीका रचना करने विषैं उपयोग विशेष लागै है, अर्थ भी विशेष प्रतिभासै है। बहुरि अन्य जीवनि कौं ग्रंथ अभ्यास करावने का संयोग होना दुर्लभ है। अर संयोग होइ तौ कोई ही जीव के अभ्यास होइ। अर ग्रंथ की टीका बनै तौ परंपरा अनेक जीवनि कैं अर्थ का ज्ञान होइ। तातै अपना अर अन्य जीवनि का विशेष हित होने के अर्थि टीका करिये है, महंतता का तौ किछू प्रयोजन नाहीं।

बहुरि कोऊ कहै कि इस कार्य विषैं विशेष हित हो है सो सत्य, परंतु मंदबुद्धि तैं कहीं भूलि करि अन्यथा अर्थ लिखिए, तहां महत् पाप उपजने तैं अहित भी तो होइ?

ताकौं कहिए है – यथार्थ सर्व पदार्थनि का ज्ञाता तौ केवली भगवान हैं। औरनि कैं ज्ञानावरण का क्षयोपशम के अनुसारी ज्ञान है, तिनिकौं कोई अर्थ अन्यथा भी प्रतिभासै, परंतु जिनदेव का ऐसा उपदेश है – कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्रनि के वचन की प्रतीति करि वा हठ करि वा क्रोध, मान, माया, लोभ करि वा हास्य, भयादिक करि जो अन्यथा श्रद्धान करै वा उपदेश देइ, सो महापापी है। अर विशेष ज्ञानवान गुरु के निमित्त बिना, वा अपने विशेष क्षयोपशम

बिना कोई सूक्ष्म अर्थ अन्यथा प्रतिभासै अर यहु ऐसा जानै कि जिनदेव का उपदेश ऐसैं ही है, ऐसा जानि कोई सूक्ष्म अर्थ कौं अन्यथा श्रद्धै है वा उपदेश दे तौ याकौं महत् पाप न होइ। सोइ इस ग्रंथ विषैं भी आचार्य करि कहा है –

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं, अजाणमाणो गुरुणियोगा।।२७।। जीवकाण्ड।।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम विशेष ज्ञानी तैं ग्रंथ का यथार्थ सर्व अर्थ का निर्णय करि टीका करने का प्रारंभ क्यों न कीया?

ताकौं कहिये है – काल दोष तैं केवली, श्रुतकेवली का तौ इहां अभाव ही भया। बहुरि विशेष ज्ञानी भी विरले पाइए। जो कोई है तौ दूरि क्षेत्र विषैं हैं, तिनिका संयोग दुर्लभ। अर आयु, बुद्धि बल, पराक्रम आदि तुच्छ रहि गए। तातैं जो बन्या सो अर्थ का निर्णय कीया, अवशेष जैसैं है तैसैं प्रमाण हैं।

बहुरि कोऊ कहै कि – तुम कही सो सत्य, परंतु इस ग्रंथ विषैं जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का किछू उपाय भी है?

ताकौं कहिये है – एक उपाय यहु कीजिए है – जो विशेष ज्ञानवान पुरुषनि का प्रत्यक्ष तो संयोग नाहीं, तातैं परोक्ष ही तिनिस्यों ऐसी बीनती करौ हौं कि मैं मंद बुद्धि हौं, विशेषज्ञान रहित हौं, अविवेकी हौं, शब्द, न्याय, गणित, धार्मिक आदि ग्रंथनि का विशेष अभ्यास मेरे नाहीं है, तातैं शक्ति हीन हौं; तथापि धर्मानुराग के वश तैं टीका करने का विचार कीया, सो या विषैं जहां-जहां चूक होइ, अन्यथा अर्थ होइ, तहां-तहां मेरे ऊपरि क्षमा करि तिस अन्यथा अर्थ कौं दूरि करि यथार्थ अर्थ लिखना। ऐसैं विनती करि जो चूक होइगी, ताके शुद्ध होने का उपाय कीया है।

बहुरि कोऊ कहै कि तुम टीका करनी विचारी सो तौ भला कीया, परन्तु ऐसे महान ग्रंथनि की टीका संस्कृत ही चाहिये। भाषा विषैं याकी गंभीरता भासै नाहीं।

ताकौं कहिये है – इस ग्रंथ की **जीवतत्त्वप्रदीपिका** नामा संस्कृत टीका तो पूर्वै है ही। परन्तु तहां संस्कृत, गणित, आम्नाय आदि का ज्ञान रहित जे मंदबुद्धि हैं, तिनिका प्रवेश न हो है। बहुरि इहां काल दोष तैं बुद्ध्यादिक के तुच्छ होने करि संस्कृतादि ज्ञान रहित घने जीव हैं। तिनिके इस ग्रंथ के अर्थ का ज्ञान होने के अर्थि भाषा टीका करिए है। सो जे जीव संस्कृतादि विशेषज्ञान युक्त हैं, ते मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका तैं अर्थ धारैंगे। बहुरि जे जीव संस्कृतादि विशेष ज्ञान रहित हैं, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ धारौ। बहुरि जे जीव संस्कृतादि ज्ञान सहित हैं, परंतु गणित आम्नायादिक के ज्ञान के अभाव तैं मूलग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं प्रवेश न पावै हैं, ते इस भाषा टीका तैं अर्थ कौं धारि, मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं प्रवेश करहु। बहुरि जो भाषा टीका तैं मूल ग्रंथ वा संस्कृत टीका विषैं अधिक अर्थ होइ, ताके जानने का

अन्य उपाय बनै सो करहु।

इहां कोऊ कहै – संस्कृत ज्ञानवालों कैं भाषा अभ्यास विषैं अधिकार नाहीं।

ताकौ कहिये है – संस्कृत ज्ञानवालों कौं भाषा वांचने तैं कोई दोष तो नाहीं उपजै है, अपना प्रयोजन जैसैं सिद्ध होइ तैसैं ही करना। पूर्वे अर्धमागधी आदि भाषामय महान ग्रंथ थे। बहुरि बुद्धि की मंदता जीवनि के भई, तब संस्कृतादि भाषामय ग्रंथ बने। अब विशेष बुद्धि की मंदता जीवनि कैं भई तातैं देश भाषामय ग्रंथ करने का विचार भया। बहुरि संस्कृतादिक का अर्थ भी अब भाषाद्वार करि जीवनि कौं समझाइये है। इहां भाषाद्वार करि ही अर्थ लिख्या तो किछू दोष नाहीं है।

ऐसैं विचारि श्रीमद् **गोम्मटसार** द्वितीयनामा **पंचसंग्रह** ग्रंथ की '**जीवतत्त्व प्रदीपिका**' नामा संस्कृत टीका, ताकै अनुसारि '**सम्यग्ज्ञानचंद्रिका**' नामा यहु देशभाषामयी टीका करने का निश्चय किया है। सो श्री अरहंत देव वा जिनवाणी वा निर्ग्रंथ गुरुनि के प्रसाद तैं वा मूल ग्रंथकर्ता नेमिचन्द्र आदि आचार्यनि के प्रसाद तैं यहु कार्य सिद्ध होहु।

अब इस शास्त्र के अभ्यास विषैं जीवनि कौं सन्मुख करिए है। हे भव्यजीव हौ ! तुम अपने हित कौं वांछौ हौ तौ तुमकौं जैंसै बनै तैसें या शास्त्र का अभ्यास करना। जातैं आत्मा का हित मोक्ष है। मोक्ष बिना अन्य जो है, सो परसंयोगजनित है, विनाशीक है, दु:खमय है। अर मोक्ष है सोई निज स्वभाव है, अविनाशी है, अनंत सुखमय है। तातैं मोक्ष पद पावने का उपाय तुमकौं करना। सो मोक्ष के उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र हैं। सो इनकी प्राप्ति जीवादिक के स्वरूप जानने ही तैं हो है।

सो कहिए है – जीवादि तत्त्वनि का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। सो बिना जानैं श्रद्धान का होना आकाश का फूल समान है। पहिलैं जानै तब पीछैं तैसैं ही प्रतीति करि श्रद्धान कौं प्राप्त हो है। तातैं जीवादिक का जानना श्रद्धान होने तैं पहिलैं जो होइ सोई तिनके श्रद्धानरूप सम्यग्दर्शन का कारण जानना। बहुरि श्रद्धान भए जो जीवादिक का जानना होइ, ताही का नाम सम्यग्ज्ञान है। बहुरि श्रद्धानपूर्वक जीवादि जानै स्वयमेव उदासीन होइ, हेय कौं त्यागै, उपादेय कौं ग्रहै, तब सम्यक्चारित्र हो है। अज्ञानपूर्वक क्रियाकांड तैं सम्यक्चारित्र होइ नाहीं। ऐसैं जीवादिक कौं जानने ही तैं सम्यग्दर्शनादि मोक्ष के उपायनि की प्राप्ति निश्चय करनी। सो इस शास्त्र के अभ्यास तैं जीवादिक का जानना नीकै हो है। जातैं संसार है सोई जीव अर कर्म का संबंधरूप है। बहुरि विशेष जानैं इनका संबंध का जो अभाव होइ सोई मोक्ष है। सो इस शास्त्र विषैं जीव अर कर्म का ही विशेष निरूपण है। अथवा जीवादिक षट् द्रव्य, सप्त तत्त्वादिकनि का भी या विषैं नीकैं निरूपण है। तातैं इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना।

अब इहां केइ जीव इस शास्त्र का अभ्यास विषैं अरुचि होने कौं कारण विपरीत विचार प्रकट करै हैं। तिनिकौं समझाइए है। तहां जीव प्रथमानुयोग वा चरणानुयोग वा द्रव्यानुयोग का

केवल पक्ष करि इस करणानुयोगरूप शास्त्र विषैं अभ्यास कौं निषेधै है।

तिनिविषैं प्रथमानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इदानीं जीवनि की बुद्धि मंद बहुत है, तिनिकैं ऐसै सूक्ष्म व्याख्यानरूप शास्त्र विषैं किछु समझना होइ नाहीं तातैं तीर्थंकरादिक की कथा का उपदेश दीजिए तौ नीकै समझै, अर समझि करि पाप तैं डरैं, धर्मानुरागरूप होइ, तातैं प्रथमानुयोग का उपदेश कार्यकारी है।

ताकौ कहिये है – अब भी सर्व ही जीव तौ एक से न भए हैं। हीनाधिक बुद्धि देखिए है। तातैं जैसा जीव होइ, तैसा उपदेश देना। अथवा मंदबुद्धि भी सिखाए हुए अभ्यास तैं बुद्धिमान होते देखिए है। तातैं जे बुद्धिमान हैं, तिनिकौं तौ यहु ग्रंथ कार्यकारी है ही अर जे मंदबुद्धि हैं, ते विशेषबुद्धिनि तैं सामान्य-विशेषरूप गुणस्थानादिक का स्वरूप सीखि इस शास्त्र का अभ्यास विषैं प्रवर्तौं।

इहां मंदबुद्धि कहै है कि – इस गोम्मटसार शास्त्र विषैं तौ गणित समस्या अनेक अपूर्व कथन करि बहुत कठिनता सुनिए है, हम कैसैं या विषैं प्रवेश पावें?

तिनिकौं कहिये है – भय मति करौ, इस भाषा टीका विषै गणित आदि का अर्थ सुगमरूप करि कह्या है, तातैं प्रवेश पावना कठिन रह्या नाहीं। बहुरि या शास्त्र विषैं कथन कहीं सामान्य है, कहीं विशेष है, कहीं सुगम है, कहीं कठिन है; तहां जो सर्व अभ्यास बनै तौ नीकै ही है, अर जो न बनै तौ अपनी बुद्धि के अनुसार जैसा बनै तैसा ही अभ्यास करौ। अपने उपाय में आलस्य करना नाहीं।

बहुरि तैं कह्या – प्रथमानुयोग संबंधी कथादिक सुनैं पाप तैं डरै हैं, अर धर्मानुरागरूप हो हैं।

सो तहां तौ दोऊ कार्य शिथिलता लीए हो हैं। इहां पाप-पुण्य के कारणकार्यादिक विशेष जानने तैं ते दोऊ कार्य दृढता लिए हो हैं। तातैं याका अभ्यास करना। ऐसैं प्रथमानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब चरणानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं कह्या जीव-कर्म का स्वरूप, सो जैसैं है तैसैं है ही, तिनिकौं जानैं कहा सिद्धि हो है? जो हिंसादिक का त्याग करि व्रत पालिए, वा उपवासादि तप करिए, वा अरहंतादिक की पूजा, नामस्मरण आदि भक्ति करिए, वा दान दीजिए, वा विषयादिक स्यों उदासीन हूजै इत्यादि शुभ कार्य करिए तो आत्महित होइ। तातैं इनका प्ररूपक चरणानुयोग का उपदेशादिक करना।

ताकौं कहिए है – हे स्थूलबुद्धि ! तैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे, ते करने योग्य ही हैं। परंतु ते सर्व सम्यक्त्व बिना अैसै है जैसै अंक बिना बिंदी। अर जीवादिक का स्वरूप जानैं बिना सम्यक्त्व का होना ऐसा जैसे बांझ का पुत्र। तातैं जीवादिक जानने के अर्थि इस शास्त्र का अभ्यास अवश्य करना। बहुरि तैं जैसैं व्रतादिक शुभ कार्य कहे अर तिनितैं पुण्यबंध हो है। तैसैं जीवादिक का स्वरूप जाननेरूप ज्ञानाभ्यास है, सो प्रधान शुभ कार्य है। यातैं सातिशय पुण्य

का बंध हो है। बहुरि तिन व्रतादिकनि विषैं भी ज्ञानाभ्यास की ही प्रधानता है, सो कहिए है –

जो जीव प्रथम जीव समासादि जीवादिक के विशेष जानै, पीछै यथार्थ ज्ञान करि हिंसादिक कौं त्यागि व्रत धारै, सोई व्रती है। बहुरि जीवादिक के विशेष जानै बिना कथंचित् हिंसादिक का त्याग तैं आपकौं व्रती मानै, सो व्रती नाहीं। तातैं व्रत पालने विषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

बहुरि तप दोय प्रकार है – एक बहिरंग, एक अंतरंग। तहां जाकरि शरीर का दमन होइ, सो बहिरंग तप है, अर जातैं मन का दमन होइ, सो अंतरंग तप है। इनि विषैं बहिरंग तप तैं अंतरंग तप उत्कृष्ट है। सो उपवासादिक तौ बहिरंग तप है। ज्ञानाभ्यास अंतरंग तप है। सिद्धांत विषैं भी छह प्रकार अंतरंग तपनि विषैं चौथा स्वाध्याय नाम तप कह्या है। तिसतैं उत्कृष्ट व्युत्सर्ग अर ध्यान ही है। तातैं तप करने विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। बहुरि जीवादिक के विशेषरूप गुणस्थानादिकनि का स्वरूप जानै ही अरहंतादिकनि का स्वरूप नीकै पहिचानिए है, वा अपनी अवस्था पहिचानिए है। ऐसी पहिचानि भए जो तीव्र अंतरंग भक्ति प्रकट हो है, सोई बहुत कार्यकारी है। बहुरि जो कुलक्रमादिक तैं भक्ति हो है, सो किंचिन्मात्र ही फल की दाता है। तातैं भक्ति विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

बहुरि दान चार प्रकार है – तिनिविषैं आहारदान, औषधदान, अभयदान तौ तात्कालिक क्षुधा के दु:ख कौं वा रोग के दु:ख कौं, वा मरणादि भय के दु:ख ही कौं दूर करै है। **अर ज्ञानदान है सो अनंत भव संतान संबंधी दु:ख दूर करने कौं कारण है।** तीर्थंकर, केवली, आचार्यादिकनि के भी ज्ञानदान की प्रवृत्ति है। तातैं ज्ञानदान उत्कृष्ट है, सो अपने ज्ञानाभ्यास होइ तो अपना भला करै, अर अन्य जीवनि कौं ज्ञानदान देवै। ज्ञानाभ्यास बिना ज्ञानदान देना कैसैं होइ? तातैं दान विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है।

बहुरि जैसै जन्म तैं ही केई पुरुष ठिगनि के घर गए – तहां तिन ठिगनि कौं अपने मानै हैं। बहुरि कदाचित् कोऊ पुरुष किसी निमित्त स्यों अपने कुल का वा ठिगनि का यथार्थ ज्ञान होनै तें ठिगनि स्यों अंतरंग विषैं उदासीन भया, तिनिकौं पर जानि संबंध छुड़ाया चाहै है। बाह्य जैसा निमित्त है तैसा प्रवर्ते है। बहुरि कोऊ पुरुष तिन ठिगनि कौं अपना ही जानै है अर किसी कारण तैं कोऊ ठिग स्यों अनुरागरूप प्रवर्ते है। कोई ठिग स्यों लड़ि करि उदासीन भया आहारादिक का त्यागी होइ है।

तैसैं अनादि तैं सर्व जीव संसार विषैं प्राप्त हैं, तहां कर्मनि कौं अपने मानै हैं। बहुरि कोइ जीव किसी निमित्त स्यों जीव का अर कर्म का यथार्थ ज्ञान होनै तैं कर्मनि स्यों उदासीन भया, तिनिकौं पर जानने लगा, तिनस्यों संबंध छुड़ाया चाहै है। बाह्य जैसै निमित्त है तैसैं वर्ते है। ऐसैं जो ज्ञानाभ्यास तैं उदासीनता होइ सोई कार्यकारी है। बहुरि कोई जीव तिन कर्मनि कौं अपने जानै है। अर किसी कारण तैं कोई शुभ कर्म स्यों अनुरागरूप प्रवर्ते है। कोई अशुभ कर्म स्यों दु:ख का कारण जानि उदासीन भया विषयादिक का त्यागी ही है। ऐसें ज्ञान बिना जो उदासीनता

हो सो पुण्यफल की दाता है, मोक्ष कार्य कौं न साधे है। तातैं उदासीनता विषैं भी ज्ञानाभ्यास ही प्रधान है। याही प्रकार अन्य भी शुभ कार्यनि विषैं ज्ञानाभ्यास ही प्रधान जानना। देखो ! महामुनीनि कैं भी ध्यान-अध्ययन दोय ही कार्य मुख्य हैं। तातैं शास्त्र अध्ययन तैं जीव-कर्म का स्वरूप जानि स्वरूप का ध्यान करना।

बहुरि इहां कोऊ तर्क करै कि - कोई जीव शास्त्र अध्ययन तौ बहुत करै है। अर विषयादिक का त्यागी न हो है, ताकैं शास्त्र अध्ययन कार्यकारी है कि नाहीं? जो है तौ महंत पुरुष काहेकौं विषयादिक तजैं, अर नाहीं है तो ज्ञानाभ्यास का महिमा कहां रह्या?

ताका समाधान - शास्त्राभ्यासी दोय प्रकार हैं, एक लोभार्थी, एक धर्मार्थी। तहां जो अंतरंग अनुराग बिना-ख्याति-पूजा-लाभादिक के अर्थि शास्त्राभ्यास करै, सो लोभार्थी है, सो विषयादिक का त्याग नाही करै है। अथवा ख्याति, पूजा, लाभादिक कै अर्थि विषयादिक का त्याग भी करै है, तौ भी ताका शास्त्राभ्यास कार्यकारी नाहीं।

बहुरि जो अंतरंग अनुराग तैं आत्महित के अर्थि शास्त्राभ्यास करै है, सो धर्मार्थी है। सो प्रथम तौ जैन शास्त्र ऐसे हैं जिनका धर्मार्थी होइ अभ्यास करै, सो विषयादिक का त्याग करै ही करै। ताकै तौ ज्ञानाभ्यास कार्यकारी है ही। बहुरि कदाचित् पूर्वकर्म का उदय की प्रबलता तैं न्यायरूप विषयादिक का त्याग न बनै है तौ भी ताकैं सम्यग्दर्शन, ज्ञान के होने तैं ज्ञानाभ्यास कार्यकारी हो है। जैसे असंयत गुणस्थान विषैं विषयादिक का त्याग बिना भी मोक्षमार्गपना संभवै है।

इहां प्रश्न - जो धर्मार्थी होइ जैन शास्त्र अभ्यासै, ताकै विषयादिक का त्याग न होइ सो यहु तौ बनै नाहीं। जातैं विषयादिक के सेवन परिणामनि तैं हो है, परिणाम स्वाधीन हैं।

तहाँ समाधान - परिणाम ही दोय प्रकार है। एक बुद्धिपूर्वक, एक अबुद्धिपूर्वक। तहां अपने अभिप्राय के अनुसारि होइ सो बुद्धिपूर्वक। अर दैव - निमित्त तै अपने अभिप्राय तैं अन्यथा होइ सो अबुद्धिपूर्वक। जैसे सामायिक करतैं धर्मात्मा का अभिप्राय ऐसा है कि मैं मेरे परिणाम शुभरूप राखों। तहां जो शुभपरिणाम ही होइ सो तौ बुद्धिपूर्वक। अर कर्मोदय तैं स्वयमेव अशुभ परिणाम होइ, सो अबुद्धिपूर्वक जानने। तैसै धर्मार्थी होइ जो जैन शास्त्र अभ्यासै है ताको अभिप्राय तौ विषयादिक का त्यागरूप वीतराग भाव का ही होइ, तहां वीतराग भाव होइ, तौ बुद्धिपूर्वक है। अर चारित्रमोह के उदय तैं सराग भाव होइ तौ अबुद्धिपूर्वक है। तातैं बिना वश जे सरागभाव हो हैं, तिनकरि ताकैं विषयादिक की प्रवृत्ति देखिये है। जातैं बाह्य प्रवृत्ति को कारण परिणाम है।

इहां तर्क - जो ऐसैं है तो हम भी विषयादिक सेवेंगे अर कहेंगे - हमारे उदयाधीन कार्य हो है।

ताकौं कहिये है - रे मूर्ख ! किछू कहने तैं तौ होता नाहीं ! सिद्धि तौ अभिप्राय के

अनुसारि है। तातैं जैन शास्त्र के अभ्यास तैं अपना अभिप्राय कौं सम्यक्‌रूप करना। अर अंतरंग विषैं विषयादिक सेवन का अभिप्राय होतैं तौ धर्मार्थी नाम पावै नाहीं।

ऐसैं चरणानुयोग के पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र विषैं जीव के गुणस्थानादिकरूप विशेष अर कर्म के विशेष वर्णन किए, तिनकौं जानैं अनेक विकल्प तरंग उठैं, अर किछू सिद्धि नाहीं। तातैं अपने शुद्ध स्वरूप कौं अनुभवना वा अपना अर पर का भेदविज्ञान करना – इतना ही कार्यकारी है। अथवा इनके उपदेशक जे अध्यात्मशास्त्र, तिनका ही अभ्यास करना योग्य है।

ताकौं कहिये है – हे सूक्ष्माभासबुद्धि ! तैं कह्या सो सत्य, परंतु अपनी अवस्था देखनी। जो स्वरूपानुभव विषैं वा भेदविज्ञान विषैं उपयोग निरंतर रहै, तौ काहेकौं अन्य विकल्प करने। तहां ही स्वरूपानंद सुधारस का स्वादी होइ संतुष्ट होना। परन्तु नीचली अवस्था विषैं तहां निरन्तर उपयोग रहै नाहीं। उपयोग अनेक अवलंबनि कौं चाहै है। तातैं जिस काल तहां उपयोग न लागै, तब गुणस्थानादि विशेष जानने का अभ्यास करना।

बहुरि तैं कह्या कि – अध्यात्मशास्त्रनि का ही अभ्यास करना, सो युक्त ही है। परन्तु तहां भेदविज्ञान करने के अर्थि स्व–पर का सामान्यपनैं स्वरूप निरूपण है। अर विशेष ज्ञान बिना सामान्य का जानना स्पष्ट होइ नाहीं। तातैं जीव के अर कर्म के विशेष नीकै जानैं ही स्व–पर का जानना स्पष्ट हो है। तिस विशेष जानने कौं इस शास्त्र का अभ्यास करना। जातैं सामान्य शास्त्र तैं विशेष शास्त्र बलवान है। सो ही कह्या है – ''**सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।**''

इहां वह कहै है कि – अध्यात्मशास्त्रनि विषैं तौ गुणस्थानादि विशेषनिकरि रहित शुद्धस्वरूप का अनुभवना उपादेय कह्या है। इहां गुणस्थानादि सहित जीव का वर्णन है। तातैं अध्यात्मशास्त्र अर इस शास्त्र विषैं तौ विरुद्ध भासै है, सो कैसैं है?

ताकौं कहिये है नय दोय प्रकार है – एक निश्चय, एक व्यवहार। तहां निश्चयनय करि जीव का स्वरूप गुणस्थानादि विशेष रहित अभेद वस्तु मात्र ही है। अर व्यवहारनय करि गुणस्थानादि विशेष संयुक्त अनेक प्रकार है। तहां जे जीव सर्वोत्कृष्ट, अभेद, एक स्वभाव कौं अनुभवै हैं, तिनकौं तौ तहां शुद्ध उपदेशरूप जो शुद्ध निश्चयनय सो ही कार्यकारी है।

बहुरि जे स्वानुभव दशा कौं न प्राप्त भए, वा स्वानुभवदशा तैं छूटि सविकल्प दशा कौं प्राप्त भए ऐसे अनुत्कृष्ट जो अशुद्ध स्वभाव, तिहि विषैं तिष्ठते जीव, तिनकौं व्यवहारनय प्रयोजनवान है। सोई आत्मख्याति अध्यात्मशास्त्र विषैं कह्या है –

सुद्धो सुद्धादेसो, णादव्वो परमभावदरसीहिं।
ववहारदेसिदो पुण जे दु अपरमेट्ठिदा भावे।।

इस सूत्र की व्याख्या का अर्थ विचारि देखना।

बहुरि सुनि ! तेरे परिणाम स्वरूपानुभव दशा विषैं तौ प्रवर्ते नाहीं। अर विकल्प जानि गुणस्थानादि भेदनि का विचार न करैगा तौ तू इतो भ्रष्ट ततो भ्रष्ट होय अशुभोपयोग ही (विषैं) प्रवर्तेगा, तहां तेरा बुरा होयगा।

बहुरि सुनि ! सामान्यपनैं तौ वेदांत आदि शास्त्राभासनि विषैं भी जीव का स्वरूप शुद्ध कहैं हैं, तहां विशेष जानैं बिना यथार्थ-अयथार्थ का निश्चय कैसैं होय? तातैं गुणस्थानादि विशेष जानैं जीव की शुद्ध, अशुद्ध, मिश्र अवस्था का ज्ञान होइ, तब निर्णय करि यथार्थ का अंगीकार करै। **बहुरि सुनि ! जीव का गुण ज्ञान है, सो विशेष जानैं आत्मगुण प्रकट होइ, अपना श्रद्धान भी दृढ होय। जैसैं सम्यक्त्व है, सो केवलज्ञान भए परमावगाढ नाम पावै है।** तातैं विशेष जानना।

बहुरि वह कहै है – तुम कह्या सो सत्य, परंतु करणानुयोग तैं विशेष जानैं भी द्रव्यलिंगी मुनि अध्यात्म श्रद्धान बिना संसारी ही रहै। अर अध्यात्म अनुसारि तिर्यंचादिक कैं स्तोक श्रद्धान तैं भी सम्यक्त्व हो है। वा तुषमाष भिन्न इतना ही श्रद्धान तैं शिवभूति मुनि मुक्त भया। तातैं हमारी तौ बुद्धि तैं विशेष विकल्पनि का साधन होता नाहीं। प्रयोजनमात्र अध्यात्म अभ्यास करेंगे।

याकौं कहिये है – जो द्रव्यलिंगी जैसैं करणानुयोग तैं विशेष जानै है, तैसैं अध्यात्म शास्त्रनि का भी ज्ञान वाकै होय, परंतु मिथ्यात्व के उदय तैं अयथार्थ साधन करै तौ शास्त्र कहा करै? शास्त्रनि विषैं तौ परस्पर विरुद्ध है नाहीं। कैसैं? सो कहिये है – करणानुयोग शास्त्रनि विषैं भी अर अध्यात्मशास्त्रनि विषैं भी रागादिक भाव आत्मा के कर्म निमित्त तैं उपजे कहे। द्रव्यलिंगी तिनका आप कर्त्ता हुवा प्रवर्ते है। बहुरि शरीराश्रित सर्व शुभाशुभ क्रिया पुद्गलमय कहीं। द्रव्यलिंगी अपनी जानि तिनविषैं त्यजन, ग्रहण बुद्धि करै है। बहुरि सर्व ही शुभाशुभ भाव, आस्रव बंध के कारण कहे। द्रव्यलिंगी शुभभावन को संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण मानै है। बहुरि शुद्धभाव संवर, निर्जरा, मोक्ष का कारण कह्या, ताकौं द्रव्यलिंगी पहिचानै ही नाहीं। बहुरि शुद्धात्मस्वरूप मोक्ष कह्या, ताका द्रव्यलिंगी के यथार्थ ज्ञान नाहीं। ऐसैं अन्यथा साधन करै तौ शास्त्रनि का कहा दोष है?

बहुरि तैं तिर्यंचादिक कैं सामान्य श्रद्धान तैं कार्यसिद्धि कही, सो उनकै भी अपना क्षयोपशम अनुसारि विशेष का जानना हो है। अथवा पूर्व पर्यायनि विषैं विशेष का अभ्यास कीया था, तिस संस्कार के बल तैं हो है। बहुरि जैसैं काहूने कहीं गड्या धन पाया, सो हम भी ऐसैं ही पावैंगे, ऐसा मानि सब ही कौं व्यापारादिक का त्यजन न करना। तैसैं काहूनैं स्तोक श्रद्धान तैं ही कार्य सिद्ध किया तो हम भी ऐसैं ही कार्य सिद्धि करैंगे – ऐसैं मानि सर्व ही कौं विशेष अभ्यास का त्यजन करना योग्य नाहीं, जातैं यहु राजमार्ग नाहीं। **राजमार्ग तौ यहु ही है – नानाप्रकार विशेष जानि तत्त्वनि का निर्णय भए ही कार्यसिद्धि हो है।**

बहुरि तैं कह्या, मेरी बुद्धि तैं विकल्पसाधन होता नाहीं, सो जेता बनैं तेता ही अभ्यास

कर। बहुरि तू पापकार्य विषैं तौ प्रवीण, अर इस अभ्यास विषैं कहै मेरी बुद्धि नाहीं, सो यहु तौ पापी का लक्षण है।

ऐसै द्रव्यानुयोग का पक्षपाती कौं इस शास्त्र का अभ्यास विषैं सन्मुख कीया।

अब अन्य विपरीत विचारवालों कौं समझाइए है।

तहां शब्द–शास्त्रादिक का पक्षपाती बोलै है कि – व्याकरण, न्याय, कोश, छंद, अलंकार, काव्यादिक ग्रंथनि का अभ्यास करिए तो अनेक ग्रंथनि का स्वयमेव ज्ञान होय वा पंडितपना प्रगट होय। अर इस शास्त्र के अभ्यास तैं तो एक याही का ज्ञान होय वा पंडितपना विशेष प्रकट न होय, तातैं शब्द–शास्त्रादिक का अभ्यास करना।

ताकौं कहिये है – जो तू लोक विषैं ही पंडित कहाया चाहै है तौ तू तिन ही का अभ्यास किया करि। अर जो अपना कार्य किया चाहै है तो ऐसे जैनग्रन्थनि का अभ्यास करना ही योग्य है। बहुरि जैनी तौ जीवादिक तत्त्वनि के निरूपक जे जैनग्रन्थ तिन ही का अभ्यास भए पंडित मानैंगे।

बहुरि वह कहै है कि – मैं जैनग्रंथनि का विशेष ज्ञान होने ही के अर्थि व्याकरणादिकनि का अभ्यास करौं हौं।

ताकौं कहिए है – ऐसैं है तो भलै ही है, परंतु इतना है जैसैं स्याना खितहर अपनी शक्ति अनुसारि हलादिक तैं थोड़ा बहुत खेत कौं संवारि समय विषैं बीज बोवै तौ ताकौं फल की प्राप्ति होइ। **वैसैं तू भी जो अपनी शक्ति अनुसारि व्याकरणादिक का अभ्यास तैं थोरी बहुत बुद्धि कौं संवारि यावत् मनुष्य पर्याय वा इन्द्रियनि की प्रबलता इत्यादिक वर्तै हैं, तावत् समय विषैं तत्त्वज्ञान कौं कारण जे शास्त्र, तिनिका अभ्यास करेगा तौ तुझकौं सम्यक्त्वादि की प्राप्ति होयगी।**

बहुरि जैसैं अयाना खितहर हलादिक तैं खेत कौं संवारता संवारता ही समय कौं खोवै, तौ ताकौं फलप्राप्ति होने की नाहीं, वृथा ही खेदखिन्न भया। तैसैं तू भी जो व्याकरणादिक तैं बुद्धि कौं संवारता संवारता ही समय खोवेगा तौ सम्यक्त्वादिक की प्राप्ति होने की नाहीं। वृथा ही खेदखिन्न भया। बहुरि इस काल विषैं आयु बुद्धि आदि स्तोक हैं, तातैं प्रयोजनमात्र अभ्यास करना, शास्त्रनि का तौ पार है नाहीं। बहुरि सुनि ! केई जीव व्याकरणादिक का ज्ञान बिना भी तत्त्वोपदेशरूप भाषा शास्त्रनि करि, वा उपदेश सुनने करि, वा सीखने करि तत्त्वज्ञानी होते देखिये हैं। अर केई जीव केवल व्याकरणादिक का ही अभ्यास विषैं जन्म गमावै हैं, अर तत्त्वज्ञानी न होते देखिये हैं।

बहुरि सुनि ! व्याकरणादिक का अभ्यास करने तैं पुण्य न उपजै है। धर्मार्थी होइ तिनका अभ्यास करै तौ किंचित् पुण्य उपजै। बहुरि तत्त्वोपदेशक शास्त्रनि का अभ्यास तैं सातिशय महत् पुण्य उपजै है। तातैं भला यहु है – अैसे तत्त्वोपदेशक शास्त्रानि का अभ्यास करना। ऐसैं शब्द

शास्त्रादिक का पक्षपाती कौं सन्मुख किया।

बहुरि अर्थ का पक्षपाती कहै है कि – इस शास्त्र का अभ्यास किए कहा है? सर्व कार्य धन तैं बनै हैं, धन करि ही प्रभावना आदि धर्म निपजै हैं। धनवान के निकट अनेक पंडित आनि (आय) प्राप्त होइ। अन्य भी सर्वकार्यसिद्धि होइ। तातैं धन उपजावने का उद्यम करना।

ताकौ कहिए है – रे पापी ! धन किछू अपना उपजाया तौ न हो है। भाग्य तैं हो है, सो ग्रंथाभ्यास आदि धर्म साधन तैं जो पुण्य निपजै, ताही का नाम भाग्य है। बहुरि धन होना है तौ शास्त्राभ्यास किए कैसैं न होगा? अर न होना है तौ शास्त्राभ्यास न किए कैसैं होगा? तातैं धन का होना, न होना तौ उदयाधीन है। शास्त्राभ्यास विषैं काहे कौं शिथिल हूजै। बहुरि सुनि ! धन है सो तौ विनाशीक है, भय संयुक्त है, पाप तैं निपजै है, नरकादिक का कारण है।

अर यहु शास्त्राभ्यासरूप ज्ञानधन है सो अविनाशी है, भय रहित है, धर्मरूप है, स्वर्ग मोक्ष का कारण है। सो महंत पुरुष तौ धनकादिक कौं छोड़ि शास्त्राभ्यास विषैं लगै हैं। तू पापी शास्त्राभ्यास कौं छुड़ाय धन उपजावने की बड़ाई करै है, सो तू अनंत संसारी है।

बहुरि तैं कह्या – प्रभावना आदि धर्म भी धन ही तैं हो हैं। सो प्रभावना आदि धर्म हैं सो किंचित् सावद्य क्रिया संयुक्त हैं। तिसतैं समस्त सावद्य रहित शास्त्राभ्यासरूप धर्म है, सो प्रधान है। ऐसैं न होइ तौ गृहस्थ अवस्था विषैं प्रभावना आदि धर्म साधते थे, तिनि कौं छांड़ि संजमी होइ शास्त्राभ्यास विषैं काहे को लागै है? बहुरि शास्त्राभ्यास तैं प्रभावनादिक भी विशेष हो है।

बहुरि तैं कह्या – धनवान के निकट पंडित भी आनि प्राप्त होइ। सो लोभी पंडित होंइ, अर अविवेकी धनवान होइ तहां ऐसैं हो है। अर शास्त्राभ्यास वालों की तौ इंद्रादिक सेवा करै हैं। इहां भी बड़े बड़े महंत पुरुष दास होते देखिए हैं। तातैं शास्त्राभ्यासवालौं तैं धनवान कौं महंत मति जानै।

बहुरि तैं कह्या – धन तैं सर्व कार्यसिद्धि हो है। सो धन तैं तौ इस लोक संबंधी किछू विषयादिक कार्य ऐसा सिद्ध होइ, जातैं बहुत काल पर्यंत नरकादि दुःख सहने होइ। अर शास्त्राभ्यास तैं ऐसा कार्य सिद्ध हो है जातैं इहलोक विषैं अर परलोक विषैं अनेक सुखनि की परंपरा पाइए। तातैं धन उपजावने का विकल्प छोड़ि शास्त्राभ्यास करना। अर जो सर्वथा ऐसैं न बनैं तौ संतोष लिए धन उपजावने का साधनकरि शास्त्राभ्यास विषैं तत्पर रहना। ऐसैं अर्थ उपजावने का पक्षपाती कौं सन्मुख किया।

बहुरि कामभोगादिक का पक्षपाती बोलै है कि – शास्त्राभ्यास करने विषैं सुख नाहीं, बड़ाई नाहीं। तातैं जिन करि इहां ही सुख उपजै ऐसे जे स्त्रीसेवना, खाना, पहिरना, इत्यादि विषय, तिनका सेवन करिए। अथवा जिन करि यहां ही बड़ाई होइ ऐसे विवाहादिक कार्य करिए।

ताकौं कहिए है – विषयजनित जो सुख है सो दुःख ही है। जातैं विषय सुख है, सो परनिमित्त तैं हो है। पहिले, पीछैं, तत्काल आकुलता लिए है, जाके नाश होने के अनेक कारण

पाइए है। आगामी नरकादि दुर्गति कौं प्राप्त करणहारा है। ऐसा है तौ भी तेरा चाह्या मिलै नाहीं, पूर्व पुण्य तैं हो है, तातैं विषम है। जैसे खाजि करि पीड़ित पुरुष अपना अंग कौं कठोर वस्तु तैं खुजावै, तैसे इंद्रियनि करि पीड़ित जीव, तिनकी पीड़ा सही न जाय तब किंचिन्मात्र तिस पीड़ा के प्रतिकार से भासै – ऐसैं जे विषयसुख तिन विषैं झंपापात लेवै है, परमार्थरूप सुख है नाहीं।

बहुरि **शास्त्राभ्यास करने तैं भया जो सम्यग्ज्ञान, ताकरि निपज्या जो आनन्द, सो सांचा सुख है। जातैं सो सुख स्वाधीन है, आकुलता रहित हैं, काहू करि नष्ट न हो है, मोक्ष का कारण है, विषम नाहीं।** जैसे खाजि न पीडै, तब सहज ही सुखी होइ, तैसैं तहां इंद्रिय पीड़ने कौं समर्थ न होइ, तब सहज ही, सुख कौं प्राप्त हो है। तातैं विषय सुख छोड़ि शास्त्राभ्यास करना। (जो) सर्वथा न छूटे तौ जेता बनै तेता छोड़ि, शास्त्राभ्यास विषैं तत्पर रहना।

बहुरि तैं विवाहादिक कार्य विषैं बड़ाई होने की कही, सो केतेक दिन बड़ाई रहेगी? जाकै अर्थि महापापारंभ करि नरकादि विषैं बहुतकाल दु:ख भोगना होइगा। अथवा तुझ तैं भी तिन कार्यनि विषैं धन लगावने वाले बहुत हैं, तातैं विशेष बड़ाई भी होने की नाहीं।

बहुरि शास्त्राभ्यास तैं ऐसी बड़ाई हो है, जाकी सर्वजन महिमा करें, इंद्रादिक भी प्रशंसा करैं अर परंपरा स्वर्ग मुक्ति का कारण है। तातैं विवाहादिक कार्यनि का विकल्प छोड़ि, शास्त्राभ्यास का उद्यम राखना। सर्वथा न छूटै तो बहुत विकल्प न करना। ऐसैं काम भोगादिक का पक्षपाती कौं शास्त्राभ्यास विषैं सन्मुख किया। या प्रकार अन्य जीव भी जे विपरीत विचार तैं इस ग्रंथ अभ्यास विषैं अरुचि प्रगट करैं, तिनकौं यथार्थ विचार तैं इस शास्त्र के अभ्यास विषैं सन्मुख होना योग्य है।

इहां अन्यमती कहै है कि – तुम अपने ही शास्त्र अभ्यास करने कौं दृढ किया। हमारे मत विषैं नाना युक्ति आदि करि संयुक्त शास्त्र हैं, तिनका भी अभ्यास क्यों न कराइए?

ताकौं कहिए है – तुमारे मत के शास्त्रनि विषैं आत्महित का उपदेश नाहीं। जातैं कहीं शृंगार का, कहीं युद्ध का, कहीं काम सेवनादि का, कहीं हिंसादि का कथन है। सो ए तौ बिना ही उपदेश सहज ही बनि रहें हैं। इनकौं तजैं हित होई, ते तहां उलटे पोषे हैं, तातैं तिनतैं हित कैसे होइ?

तहां वह कहै है – ईश्वरनै अैसै लीला करी है, ताकौं गावै हैं, तिसतै भला हो है।

तहां कहिये है – जो ईश्वर कै सहज सुख न होगा, तब संसारीवत् लीला करि सुखी भया। जो (वह) सहज सुखी होता तौ काहेकौं विषयादि सेवन वा युद्धादिक करता? जातैं मंदबुद्धि हू बिना प्रयोजन किंचिन्मात्र भी कार्य न करै। तातैं जानिए है – वह ईश्वर हम सारिखा ही है, ताका जस गाएं कहा सिद्धि है?

बहुरि वह कहै है कि – हमारे शास्त्रनि विषै वैराग्य, त्याग, अहिंसादिक का भी तो उपदेश है।

तहां कहिए है – सो उपदेश पूर्वापर विरोध लिए है। कही विषय पोषे हैं, कहीं निषेधे हैं। कहीं वैराग्य दिखाय, पीछै हिंसादि का करना पोष्या है। तहां वातुलवचनवत् प्रमाण कहा?

बहुरि वह कहै हे कि वेदांत आदि शास्त्रनि विषै तो तत्त्व ही का निरूपण है।

तहां कहिए है – सो निरूपण प्रमाण करि बाधित, अयथार्थ है। ताका निराकरण जैन के न्यायशास्त्रनि विषैं किया है, सो जानना। तातैं अन्यमत के शास्त्रनि का अभ्यास न करना।

ऐसै जीवनि कौं इस शास्त्र के अभ्यास विषै सन्मुख किया, तिनकौ कहिए है –

हे भव्य ! शास्त्राभ्यास के अनेक अंग हैं। शब्द का वा अर्थ का वांचना, या सीखना सिखावना, उपदेश देना, विचारना, सुनना, प्रश्न करना, समाधान जानना, बार बार चरचा करना, इत्यादि अनेक अंग हैं। तहां जैसे बने तैसै अभ्यास करना। जो सर्व शास्त्र का अभ्यास न बनै तौ इस शास्त्र विषैं सुगम वा दुर्गम अनेक अर्थनि का निरूपण है। तहां जिसका बनै तिसही का अभ्यास करना। परंतु अभ्यास विषै आलसी न होना।

देखो ! शास्त्राभ्यास की महिमा, जाकौं होतैं परंपरा आत्मानुभव दशा कौं प्राप्त होइ – सो मोक्षरूप फल निपजै है; सो तौ दूर ही तिष्ठौ। शास्त्राभ्यास तैं तत्काल ही इतने गुण हो हैं। १. क्रोधादि कषायनि की तौ मंदता हो है। २. पंचइंद्रियनि की विषयनि विषैं प्रवृत्ति रुकै है। ३. अति चंचल मन भी एकाग्र हो है। ४ हिंसादि पंच पाप न प्रवर्तैं हैं। ५. स्तोक ज्ञान होतैं भी त्रिलोक के त्रिकाल संबंधी चराचर पदार्थनि का जानना हौ है। ६. हेयोपादेय की पहिचान हो है। ७. आत्मज्ञान सन्मुख हो है (ज्ञान आत्मसन्मुख हो है)। ८. अधिक-अधिक ज्ञान होतैं आनंद निपजै है। ९. लोकविषैं महिमा, यश विशेष हो है। १०. सातिशय पुण्य का बंध हो है – इत्यादिक गुण शास्त्राभ्यास करतैं तत्काल ही प्रगट होई हैं। तातैं शास्त्राभ्यास अवश्य करना। बहुरि हे भव्य ! शास्त्राभ्यास करने का समय पावना महादुर्लभ है। काहे तैं? सो कहिए हैं –

एकेंद्रियादि असंज्ञी पर्यंत जीवनिकें तौ मन ही नाहीं। अर नारकी वेदना पीड़ित, तिर्यंच विवेक रहित, देव विषयासक्त, तातैं मनुष्यनि कैं अनेक सामग्री मिले शास्त्राभ्यास होइ। सो मनुष्य पर्याय का पावना ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव करि महादुर्लभ है।

तहां द्रव्य करि लोक विषैं मनुष्य जीव बहुत थोरे हैं, तुच्छ संख्यात मात्र ही हैं। अर अन्य जीवनि विषैं निगोदिया अनंत हैं, और जीव असंख्याते हैं।

बहुरि क्षेत्र करि मनुष्यनि का क्षेत्र बहुत स्तोक है, अढाई द्वीप मात्र ही है। अर अन्य जीवनि विषैं एकेंद्रिनि का सर्व लोक है, औरनिका केते इक राजू प्रमाण है। बहुरि काल करि मनुष्य पर्याय विषैं उत्कृष्ट रहने का काल स्तोक है, कर्मभूमि अपेक्षा पृथक्त्व कोटि पूर्व मात्र ही है। अर अन्य पर्यायनि विषैं उत्कृष्ट रहने का काल एकेंद्रिय विषैं तो असंख्यात पुद्गल परिवर्तन मात्र, अर और विषैं संख्यातपल्य मात्र है।

बहुरि भाव करि तीव्र शुभाशुभपना करि रहित ऐसे मनुष्य पर्याय कौं कारण परिणाम होने

अति दुर्लभ है। अन्य पर्याय कौं कारण अशुभरूप वा शुभरूप परिणाम होने सुलभ है। ऐसै शास्त्राभ्यास का कारण जो पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्य पर्याय, ताका दुर्लभपना जानना।

तहां सुवास, उच्चकुल, पूर्णआयु, इंद्रियनि की सामर्थ्य, नीरोगपना, सुसंगति, धर्मरूप अभिप्राय, बुद्धि की प्रबलता इत्यादिक का पावना उत्तरोत्तर महादुर्लभ है। सो प्रत्यक्ष देखिए है। अर इतनी सामग्री मिले बिना ग्रंथाभ्यास बनै नाहीं। सो तुम भाग्यकरि यहु अवसर पाया है। तातैं तुमकौ हठ करि भी तुमारे हित होने के अर्थि प्रेरै हैं। जैसैं बनै तैसैं इस शास्त्र का अभ्यास करो। बहुरि अन्य जीवनि कौ जैसैं बनै तैसैं शास्त्राभ्यास करावौ। बहुरि जे जीव शास्त्राभ्यास करते होंइ, तिनकी अनुमोदना करहु। बहुरि पुस्तक लिखावना, वा पढने, पढावनेवालों की स्थिरता करनी, इत्यादिक शास्त्राभ्यास कौं बाह्यकारण, तिनका साधन करना। जातैं इनकरि भी परंपरा कार्यसिद्धि हो है वा महत्पुण्य उपजै है।

ऐसैं इस शास्त्र का अभ्यासादि विषैं जीवनि कौ रुचिवान किया।

अलौकिक गणित

मान

लौकिक
* स्थूल एवं अल्प पदार्थों के परिमाण हेतु

अलौकिक
* सूक्ष्म एवं अनंत पदार्थों के परिमाण हेतु

- द्रव्यमान
- क्षेत्रमान
- कालमान
- भावमान

द्रव्यमान →
- संख्या मान → २१ भेद
- उपमा मान → ८ भेद

संख्यामान

- **संख्यात (३)** → ज. म. उ.
- **असंख्यात (९)** →
  - **परीत**(३) → ज. म. उ.
  - **युक्त**(३) → ज. म. उ. → *आवली के समय*
  - **असंख्यात**(३) → ज. म. उ.
- **अनंत (९)** →
  - **परीत**(३) → ज. म. उ.
  - **युक्त**(३) → ज. म. उ. → *अभव्य राशि*
  - **अनंत**(३) → ज. म. उ.
    - ज. → *सक्षय अनंत*
    - म. → *अक्षय अनंत*
    - उ. → *केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद*

जितने विषयों को
श्रुतज्ञान | **अवधिज्ञान** | **केवलज्ञान**
युगपत् प्रत्यक्ष जानता है, उसे
संख्यात | **असंख्यात** | **अनंत**
कहते हैं

२१ राशियाँ निकालने का विधान

	जघन्य राशि		मध्यम राशियाँ	उत्कृष्ट राशि
		विधान		
संख्यात	२	–	जघन्य एवं उत्कृष्ट के बीच के सर्व भेद जैसे – मध्यम संख्यात= ३,४,५,.....(उ.संख्यात–१)	(आगे की जघन्य राशि) –१
परीतासंख्यात	अंतिम अनवस्था कुंड की सरसों प्रमाण	कुंड		
युक्तासंख्यात	(ज. परीतासंख्यात)$^{ज. परीतासंख्यात}$	विरलन देय		
असंख्यातासंख्यात	(ज. युक्तासंख्यात)^{२}	वर्ग		
परीतानंत	अंतिम शलाकात्रय निष्ठापन से प्राप्त राशि	शलाकात्रय निष्ठापन		
युक्तानंत	(ज. परीतानंत)$^{ज. परीतानंत}$	विरलन देय		
अनंतानंत	(ज. युक्तानंत)^{२}	वर्ग		आगे देखें

जघन्य संख्यात = २

* एक में एक का भाग देने से अथवा एक को एक से गुणा करने से कुछ भी हानि–वृद्धि नहीं होती।
* इसलिये संख्यात का प्रारम्भ दो के अंक से ग्रहण किया है।

जघन्य परीतासंख्यात निकालने की विधि

कल्पना कीजिये कि अनवस्था, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका नाम के चार गोल कुंड हैं।

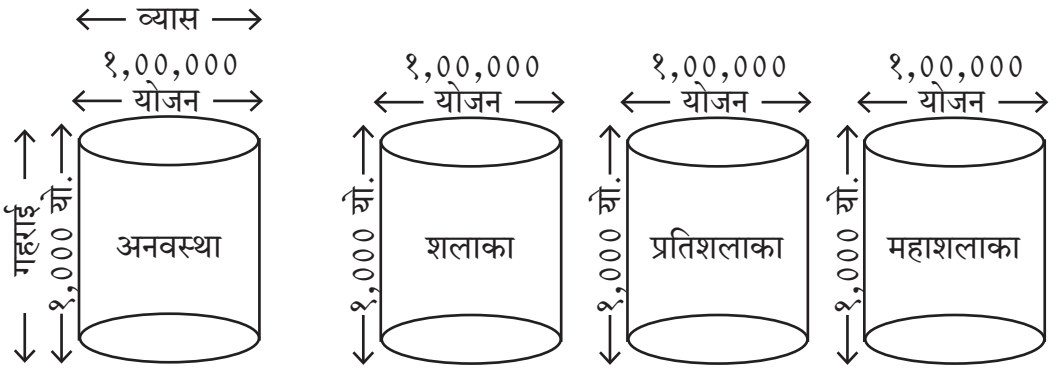

चारों कुंडों की गहराई एवं चौड़ाई का प्रमाण मील में		
२ मील = १ कोस		
२,००० कोस = १ योजन		
इसलिये ⟶ १ योजन = २,००० × २ मील = ४,००० मील		
चौड़ाई	= १ लाख योजन = १,००,००० × ४,००० मील	= ४० करोड़ मील
गहराई	= १,००० योजन = १,००० × ४,००० मील	= ४० लाख मील

उपर्युक्त ४ कुंड में से अनवस्था कुंड को गोल सरसों से शिखाऊ (पृथ्वी पर अन्न की राशि की तरह) भरना। इस तरह भरने पर १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३ ६३६३६३६३६३६३६३६३६ $\frac{४}{११}$ छियालीस अंकप्रमाण सरसों इसमें समाई। किन्तु यहाँ अपूर्णांक को ग्रहण नहीं करना।

इस अनवस्था कुंड के भरने पर दूसरी एक सरसों अनवस्था कुंडों की गिनती करने के लिये शलाका कुंड में डालनी। मध्यलोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं, जिनमें सबके बीच में जम्बूद्वीप है। इसका व्यास एक लाख योजन है, उसके चारों तरफ लवण समुद्र है, जिसका वलय व्यास दो लाख योजन है। उसको चारों तरफ से घेरकर धातकीखंड द्वीप है। इसप्रकार द्वीप के आगे समुद्र और समुद्र के आगे द्वीप के क्रम से असंख्यात द्वीप समुद्र हैं। चौड़ाई दूनी-२ होती गई है। किसी द्वीप वा समुद्र की परिधि (गोलाई) के एक तट से दूसरे तट तक की चौड़ाई को सूची कहते हैं। जैसे लवण समुद्र की सूची व्यास ५ लाख योजन है।

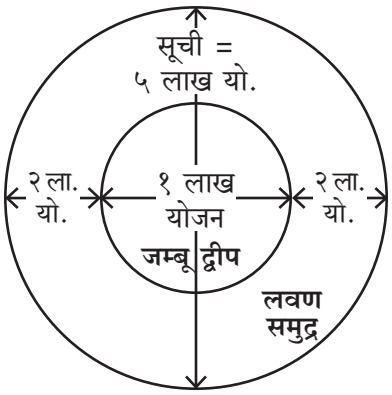

अब अनवस्था कुंड में से समस्त सरसों को निकालकर देव की सहायता से एक द्वीप में, एक समुद्र में अनुक्रम से डालते चलिये। जिस द्वीप वा समुद्र में सब सरसों पूर्ण कर अंत की सरसों डालो, उसी द्वीप वा समुद्र की सूची के समान सूचीवाला और १,००० योजन गहराई वाला दूसरा अनवस्था कुंड बनाइये। और उसको भी सरसों से शिखाऊ भरकर एक दूसरी सरसों शलाका कुंड में डालिये। इस दूसरे अनवस्था कुंड की सरसों को भी निकालकर जिस द्वीप वा समुद्र में पहले समाप्ति हुई थी, उसके आगे एक सरसों द्वीप में और एक समुद्र

में डालते चलिये। जहाँ ये सरसों भी समाप्त हो जाए वहाँ उसी द्वीप वा समुद्र की सूची प्रमाण चौड़ा और १००० योजन गहरा तीसरा अनवस्था कुंड बनाकर उसे सरसों से शिखाऊ भरिये और शलाका कुंड में तीसरी सरसों डालिये। इस तीसरे कुंड की भी सरसों निकालकर आगे के द्वीप-समुद्रों में एक-एक डालते-डालते जब सब सरसों समाप्त हो जाए तब पूर्वोक्तानुसार चौथा अनवस्था कुंड भरकर चौथी सरसों शलाका कुंड में डालिये । इसी प्रकार बढ़ते व्यास वाले एक-एक अनवस्था कुंड भरने पर एक-एक सरसों शलाका कुंड में डालते-डालते जब शलाका कुंड भी शिखाऊ भर जाए तब एक दूसरी सरसों प्रतिशलाका कुंड में डालिये। यहाँ शलाका कुंड को खाली कीजिये।

इसी तरह एक-एक अनवस्था कुंड भरने पर एक-एक सरसों शलाका कुंड में डालते-डालते जब दूसरी बार भी शलाका कुंड भर जाए तो दूसरी सरसों प्रतिशलाका कुंड में डालिये। एक एक अनवस्था कुंड भरने पर एक-एक सरसों शलाका कुंड में और एक-एक शलाका कुंड भरने पर एक-२ सरसों प्रतिशलाका कुंड में डालते-डालते जब प्रतिशलाका कुंड भी भर जाए, तब एक सरसों महाशलाका कुंड में डालिये। तब शलाका, प्रतिशलाका कुंड को खाली कीजिये।

जिस क्रम से एक बार प्रतिशलाका कुंड भरा है, उसी क्रम से दूसरी बार भरने पर दूसरी सरसों महाशलाका कुंड में डालिये। इसी तरह एक एक प्रतिशलाका कुंड भरने पर एक-एक सरसों महाशलाका कुंड में डालते-डालते जब महाशलाका कुंड भी भर जाए उस समय **सबसे बड़े अंत के अनवस्था कुंड में जितनी सरसों समाई, उतना ही जघन्य परीतासंख्यात का प्रमाण है।**

जघन्य परीतासंख्यात = ***अंतिम अनवस्था कुंड की सरसों का प्रमाण***

जघन्य युक्तासंख्यात निकालने की विधि

विरलन-देय विधान

✻ **विरलन** = जितनी बार बिखेरी जाए	✻ **देय** = जिसको बिखेरा जाए

✻ उदाहरण ⟶ $(४)^{\overset{\text{विरलन}}{४}}$ ← देय

यहाँ ४ को ४ बार रखकर आपस में गुणा करें।

४ × ४ × ४ × ४ = २५६

✻ इसी प्रकार ⟶ (जघन्य परीतासंख्यात)$^{\text{जघन्य परीतासंख्यात}}$ ← विरलन

↓ देय

= **जघन्य युक्तासंख्यात**

जघन्य असंख्यातासंख्यात निकालने की विधि

वर्ग विधान

✻ **वर्ग** = एक राशि को उस ही से गुणा करने से जो गुणनफल प्राप्त हो।
✻ उदाहरण ⟶ ५ × ५ = $(५)^{२}$ = २५
✻ इसी प्रकार ⟶ (जघन्य युक्तासंख्यात)^{२} = **जघन्य असंख्यातासंख्यात**

जघन्य परीतानंत निकालने की विधि

जघन्य असंख्यातासंख्यात का शलाकात्रयनिष्ठापन करे।

शलाकात्रयनिष्ठापन विधान

✻ शलाकात्रयनिष्ठापन की विधि को समझने के लिये यहाँ हम २ का शलाकात्रयनिष्ठापन करेंगे।
✻ २ को तीन बार अर्थात् – (१) विरलन (२) देय (३) शलाका के रूप में लिखना।
✻ विरलन राशि "२" का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर देय राशि "२" रखकर समस्त देय राशियों का परस्पर गुणा करना और शलाका राशि "२" में से एक घटाना। इस पाये हुए गुणनफल "४" प्रमाण भी एक विरलन और एक देय इस प्रकार दो राशि करना। विरलन राशि "४" का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर देय राशि "४" रखकर समस्त देयराशियों का परस्पर गुणा करना और शलाका राशि में से एक और घटाना। इस ही अनुक्रम से नवीन नवीन गुणनफल प्रमाण विरलन और देय के क्रम से एक-एक बार देयराशियों का गुणा होने पर शलाका राशि में से एक एक घटाते-घटाते जब शलाका राशि समाप्त हो जाये उस समय अंतिम गुणनफलरूप महाराशि प्राप्त होती है। (यहाँ २ के शलाकात्रयनिष्ठापन में अंतिम गुणनफलरूप महाराशि २५६ प्राप्त होती है)

प्रथम बार शलाका का निष्ठापन	शलाका	विरलन	देय
	२	२	२
	– १	२ × २ = ४	
	१	४	४
	– १	४ × ४ × ४ × ४ = २५६	२५६
	0		

* अंतिम गुणनफलरूप महाराशि "२५६" प्रमाण फिर विरलन-देय-शलाका ये तीन राशि लिखनी। विरलन राशि का विरलन कर प्रत्येक एक के ऊपर देय राशि रख देयराशि का परस्पर गुणा करते-करते पूर्वोक्त क्रमानुसार एक बार देयराशियों का गुणा होने पर शलाका राशि में से एक एक घटाते-घटाते जब यह द्वितीय बार स्थापना की हुई शलाका राशि भी समाप्त होती है उस समय दूसरी बार अंतिम गुणनफलरूप महाराशि प्राप्त होती है। (यहाँ २ के शलाकात्रयनिष्ठापन में दूसरी बार अंतिम गुणनफलरूप महाराशि माना कि "A" प्राप्त होती है)

	शलाका	विरलन	देय
दूसरी बार शलाका का निष्ठापन	२५६	२५६	२५६
	−१ / २५५	$(२५६)^{२५६} = a$	a
	−१ / २५४	$(a)^{a} = b$	b
	−१ / २५३	$(b)^{b} = c$	c
	⋮	⋮	⋮
	१ / −१ / ०	$(z)^{z} = A$	

* दूसरी बार प्राप्त हुई अंतिम गुणनफलरूप महाराशि "A" प्रमाण, पुन: विरलन-देय-शलाका ये तीन राशि लिखनी है । पूर्वोक्त क्रमानुसार जब यह तीसरी बार स्थापना की हुई शलाका राशि भी समाप्त हो जाए, उस समय प्राप्त हुई अंतिम गुणनफलरूप महाराशि इस शलाकात्रयनिष्ठापन का अंतिम फल है। (यहाँ २ के शलाकात्रयनिष्ठापन से अंतिम गुणनफलरूप महाराशि माना कि "Z" प्राप्त होती है)

तीसरी बार शलाका का निष्ठापन	शलाका	विरलन	देय
	A	A	A
	−१	$(A)^A = B$	B
	−१	$(B)^B = C$	C
	−१	$(C)^C = D$	D
	⋮	⋮	⋮
	१		
	−१	$(Y)^Y = Z$	
	0		

* कथित क्रमानुसार तीन बार तीन-तीन राशियों के गुणन विधान को "**शलाकात्रयनिष्ठापन**" कहते हैं।

* आगे भी जहाँ "शलाकात्रयनिष्ठापन" ऐसा पद आवे वहाँ ऐसा ही विधान समझ लेना।

जघन्य परीतानंत निकालने की विधि	
१	* जघन्य असंख्यातासंख्यात का शलाकात्रयनिष्ठापन करना।
	* जघन्य असंख्यातासंख्यात का शलाकात्रयनिष्ठापन करने से प्राप्त होने वाली अंतिम गुणनफलरूप महाराशि असंख्यातासंख्यात का एक मध्यम भेद है।
२	इस महाराशि में निम्न छह राशियाँ मिलाना – (१) लोक प्रमाण धर्म द्रव्य के प्रदेश (२) लोक प्रमाण अधर्म द्रव्य के प्रदेश (३) लोक प्रमाण एक जीव के प्रदेश (४) लोकाकाश के प्रदेश (५) असंख्यात लोकप्रमाण अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण (६) सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण (अप्रतिष्ठित प्रत्येक से असंख्यात लोक गुणा)

३	पुन: इस योगफल प्रमाण विरलन-देय-शलाका, ये तीन राशि स्थापन कर पूर्वोक्तानुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना।
४	इसप्रकार करने से जो महाराशि उत्पन्न हो उसमें निम्न चार राशियाँ मिलाना - (१) बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण कल्पकाल के समय (२) असंख्यात लोक प्रमाण स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान (स्थितिबंध को कारणभूत आत्मा के परिणाम) (३) स्थितिबन्धाध्यवसाय स्थान से असंख्यात गुणे अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान (अनुभागबंध को कारणभूत आत्मा के परिणाम) (४) अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान से असंख्यात गुणे मन-वचन-काय योगों के अविभागप्रतिच्छेद
५	इस दूसरे योगफल प्रमाण फिर विरलन-देय-शलाका ये तीन राशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना
६	इसप्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करने से जो राशि उत्पन्न हो, उसको **जघन्य परीतानंत** कहते हैं।

जघन्य युक्तानंत = (जघन्य परीतानंत)$^{\text{जघन्य परीतानंत}}$

जघन्य अनंतानंत = (जघन्य युक्तानंत)^{२}

अनंत के अन्य प्रकार से भेद

सक्षय

* खर्च करते-करते जिस राशि का अंत आ जाये

अक्षय

* नवीन वृद्धि न होने पर भी खर्च करते-करते जिस राशि का अंत नहीं आवे

उत्कृष्ट अनंतानंत निकालने की विधि

१	*जघन्य अनंतानंत प्रमाण विरलन-देय-शलाका, ये तीन राशि स्थापन कर शलाकात्रयनिष्ठापन करना।
	* इसप्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करने से जो महाराशि उत्पन्न हो, वह अनंतानंत का एक मध्यम भेद है।

<table>
<tr><td>२</td><td>जघन्य अनंतानंत का शलाकात्रयनिष्ठापन करने से जो संख्या हुई वह सक्षय अनंत है। इससे आगे अक्षय अनंत के भेद है, क्योंकि इस महाराशि में आगे छह राशियाँ अक्षय अनंत मिलाई जाती हैं –
(१) जीवराशि के अनंतवें भाग सिद्ध राशि
(२) सिद्ध राशि से अनंत गुणी निगोद राशि
(३) वनस्पतिकायिक राशि (निगोद राशि से कुछ अधिक)
(४) जीवराशि से अनंत गुणी पुद्गल राशि
(५) पुद्गल से अनंत गुणे तीन काल के समय
(६) तीन काल के समयों से अनंतगुणे अलोकाकाश के प्रदेश</td></tr>
<tr><td>३</td><td>छह राशियाँ मिलाने से जो योगफल हो, उस प्रमाण विरलन-देय-शलाका, ये तीन राशि स्थापन कर शलाकात्रयनिष्ठापन करना।</td></tr>
<tr><td>४</td><td>इसप्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करने से जो राशि उत्पन्न हो उसमें निम्न दो राशियाँ मिलाना –
(१) धर्म द्रव्य के अगुरुलघु गुण के अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद
(२) अधर्म द्रव्य 〃 〃 〃 〃</td></tr>
<tr><td>५</td><td>पुन: इस योगफल प्रमाण फिर विरलन-देय-शलाका ये तीन राशि स्थापन करना और पूर्वोक्त क्रमानुसार शलाकात्रयनिष्ठापन करना।</td></tr>
<tr><td>६</td><td>* इस प्रकार शलाकात्रयनिष्ठापन करने से मध्यम अनंतानंत का भेदरूप जो महाराशि उत्पन्न हुई, उसको उत्कृष्ट अनंतानंत में से घटाना और जो शेष बचे उसमें पुन: वही महाराशि मिलाना तब उत्कृष्ट अनंतानंत होता है।
<table>
<tr><td rowspan="2">माना →</td><td>केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद</td><td>= B</td></tr>
<tr><td>शलाकात्रयनिष्ठापन करने से प्राप्त महाराशि</td><td>= A</td></tr>
<tr><td></td><td>B - A</td><td>= C</td></tr>
<tr><td></td><td>C + A</td><td>= केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद</td></tr>
</table>
* उक्त महाराशि को उत्कृष्ट अनंतानंत में से घटाकर फिर मिलाने का अभिप्राय यह है कि उत्कृष्ट अनंतानंत का प्रमाण उक्त महाराशि से बहुत बड़ा है। उस महाराशि को किसी दूसरी राशि से गुणा करने पर भी उत्कृष्ट अनंतानंत के प्रमाण से बहुत कमती रहता है।
* इसलिये केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाणरूप उत्कृष्ट अनंतानंत का महत्त्व दिखलाने के लिये उपर्युक्त विधान किया है।</td></tr>
</table>

उपमामान

एक, दो आदि गणना के द्वारा कहने को | असमर्थ राशि का उपमा के द्वारा प्रतिच्छेद (ज्ञान)

(१) पल्य
* अनाज भरने का खास (गड्ढा) की उपमा

(२) सागर
* लवणसमुद्र की उपमा

(३) सूच्यंगुल
(४) प्रतरांगुल
(५) घनांगुल

(६) जगतश्रेणी
(७) जगतप्रतर
(८) लोक

(i) व्यवहार पल्य
(ii) उद्धार पल्य
(iii) अद्धा पल्य

(i) व्यवहार सागर
(ii) उद्धार सागर
(iii) अद्धा सागर

व्यवहारपल्य निकालने का विधान

अंगुल (उत्सेधांगुल) निकालने का विधान

अनंतानंत परमाणु	= अवसन्नासन्न
८ अवसन्नासन्न	= सन्नासन्न
८ सन्नासन्न	= तृटरेणु (व्यवहाराणु)
८ तृटरेणु	= त्रसरेणु (त्रस जीव के पाँव से उडनेवाला अणु)
८ त्रसरेणु	= रथरेणु (रथ से उडनेवाली धूल का अणु)
८ रथरेणु	= उत्तम भोगभूमिया का बालाग्र
८ उत्तम भोगभूमिया का बालाग्र	= मध्यम " "
८ मध्यम " "	= जघन्य " "
८ जघन्य " "	= कर्मभूमिया का "
८ कर्मभूमिया का "	= लीख
८ लीख	= सरसों
८ सरसों	= जौ
८ जौ	= अंगुल (उत्सेधांगुल)

३ प्रकार के अंगुल

	नाम	परिमाण	इससे क्या-२ नापा जाता है ?
१	**उत्सेधांगुल / व्यवहार अंगुल**	उपर्युक्त अनुसार = ८ जौ	चारों गतियों के जीवों के शरीर और देवों के नगर,वन प्रासादादिक
२	**प्रमाणांगुल**	* उत्सेधांगुल × ५०० * भरतक्षेत्र के उत्सर्पिणी काल के प्रथम चक्रवर्ती का अंगुल	महापर्वत, नदी, समुद्र, द्वीप इत्यादिक अकृत्रिम रचनाएँ
३	**आत्मांगुल**	भरत-ऐरावत क्षेत्र के मनुष्यों का अपने-२ काल का अंगुल	झारी, कलश, धनुष, ढोल, हल, मूसल, छत्र, चँवर इत्यादिक

योजन निकालने का विधान

६ अंगुल	= १ पाद
२ पाद	= १ विलस्त
२ विलस्त	= १ हाथ
४ हाथ	= १ धनुष
२००० धनुष	= १ कोश
४ कोश	= १ योजन (व्यवहार योजन)
४ कोश × ५००	= २००० कोश = १ योजन (प्रमाण योजन)

प्रमाणांगुल से निष्पन्न १ योजन प्रमाण गहरा और एक योजन प्रमाण व्यास वाला एक गोल गर्त-गड्ढा बनाना, उस गर्त को उत्तम भोगभूमिवाले मेंढे के बालों के अग्रभागों से भरना। गणित करने से उस गर्त के रोमों की संख्या ४१३४५२६३०३०८२०३१७७७४९५१२१९२०००००००००००००००० पैंतालीस (४५) अंक प्रमाण हुई। इस गर्त के एक-एक रोम को सौ-सौ वर्ष पीछे निकालते-निकालते जितने काल में वे सब रोम समाप्त हो जाएँ उतने काल को **व्यवहारपल्य** का काल कहते हैं। उपर्युक्त रोमसंख्या को १०० वर्ष के समय समूह से गुणा करने पर व्यवहारपल्य के समयों का प्रमाण होता है।

एक वर्ष में समय निकालने का विधान

१ वर्ष	= २ अयन
१ अयन	= ३ ऋतु
१ ऋतु	= २ मास
१ मास	= ३० अहोरात्री (दिन-रात)
१ अहोरात्री	= ३० मुहूर्त
१ मुहूर्त	= ४८ मिनिट =३७७३ श्वासोच्छ्वास
१ श्वासोच्छ्वास	= संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवली
१ आवली	= जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण समय

व्यवहार पल्य के समयसमूह का प्रमाण

४५ अंक प्रमाण बालाग्र × १०० × २ × ३ × २ × ३० × ३० × संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी × ज. युक्तासंख्यात

पल्य एवं सागर

		व्यवहार	उद्धार	अद्धा
पल्य	स्वरूप	उपर्युक्त अनुसार	व्यवहार पल्य के एक एक रोमखंड के असं. कोटि वर्ष के समय समूह प्रमाण खंड करने से प्राप्त हुये कुल रोमखंड	उद्धार पल्य के एक एक रोमखंड के असं. वर्ष के समय समूह प्रमाण खंड करने से प्राप्त हुये कुल रोमखंड
	समय	४५ अंक × १०० वर्ष के समय	व्यवहार पल्य के रोम-खंड × असं. करोड़ वर्ष के समय	उद्धार पल्य के रोम-खंड × असं. वर्ष के समय
	किसका वर्णन किया जाता है	रोम संख्या	द्वीप-समुद्रों की संख्या = २५ कोड़ाकोड़ी उद्धार पल्य के समय	आयु, कर्मस्थिति आदि
सागर	= १० कोड़ाकोड़ी पल्य	← १० कोड़ाकोड़ी × →		
		व्यवहार पल्य	उद्धार पल्य	अद्धा पल्य
		※ अपने-अपने नाम के पल्य को १० कोड़ाकोड़ी से गुणा करने पर अपने-अपने नाम का सागर आता है।		

उपमामान के शेष ६ भेद

सूच्यंगुल	प्रतरांगुल	घनांगुल
एक प्रमाणांगुल लंबे आकाशप्रदेशों की संख्या = $(\text{अद्धापल्य})^{\text{अद्धापल्य के अर्धच्छेद}}$	सूच्यंगुल का वर्ग = सूच्यंगुल × सूच्यंगुल = $(\text{सूच्यंगुल})^{२}$	सूच्यंगुल का घन =सूच्यंगुल×सूच्यंगुल×सूच्यंगुल = $(\text{सूच्यंगुल})^{३}$
जगतश्रेणी	**जगतप्रतर**	**लोक**
सात राजू लम्बे आकाशप्रदेशों की संख्या = ७ राजू = $(\text{घनांगुल})^{\text{पल्य के अर्धच्छेद/असंख्यात}}$	जगतश्रेणी का वर्ग = जगतश्रेणी × जगत-श्रेणी = $(\text{जगतश्रेणी})^{२}$	लोक के प्रदेशों की संख्या = जगतश्रेणी का घन = जगतश्रेणी × जगतश्रेणी × जगतश्रेणी = $(\text{जगतश्रेणी})^{३}$

अर्धच्छेद

✻ किसी राशि को **जितनी बार** आधा-आधा करने से एक शेष रहे
✻ जैसे - ४ को **२ बार** आधा-आधा करने से एक होता है - इसलिये ४ के अर्धच्छेद २ हैं - ८ के ३ और १६ के अर्धच्छेद ४ है
✻ १६ के अर्धच्छेद - $\frac{१६}{२} = ८;\quad \frac{८}{२} = ४;\quad \frac{४}{२} = २;\quad \frac{२}{२} = १$ अर्धच्छेद ⟶ १ + १ + १ + १ = ४

इसप्रकार मान के भेदों द्वारा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रमाण करते हैं -
✻ जहाँ द्रव्य का प्रमाण हो, वहाँ उतने पदार्थ जुदे-जुदे जानने।
✻ जहाँ क्षेत्र का प्रमाण हो, वहाँ उतने प्रदेश जानने।
✻ जहाँ काल का प्रमाण हो, वहाँ उतने समय जानने।
✻ जहाँ भाव का प्रमाण हो, वहाँ उतने अविभागप्रतिच्छेद जानने।

धाराएँ

	स्थान– (वर्गशलाका)	१	२	३	४	५	६
A	**द्विरूप वर्ग धारा =** जिस धारा में द्विरूप "२" के वर्ग से लेकर पूर्व–२ के वर्ग करने पर जो संख्या विशेष हो	$(२)^{२}$ = ४	$(४)^{२}$ = १६	$(१६)^{२}$ = २५६	$(२५६)^{२}$ = ६५५३६ पणट्ठी	$(\text{पणट्ठी})^{२}$ = ४२... बादाल	$(\text{बादाल})^{२}$ = १८.... एकट्ठी
B	**द्विरूप घन धारा =** जिस धारा में द्विरूपवर्ग "४" के घन को आदि में रखकर पूर्व–२ स्थान के वर्गरूप संख्या विशेष हो	$(४)^{३}$ ६४	$(१६)^{३}$ $(६४)^{२}$ ४०९६	$(२५६)^{३}$ $(४०९६)^{२}$	$(\text{पणट्ठी})^{३}$	$(\text{बादाल})^{३}$	$(\text{एकट्ठी})^{३}$
C	**द्विरूप घनाघन धारा =** जिस धारा में द्विरूपवर्ग "४" के घन का जो घन, उसको आदि में रखकर पूर्व–२ स्थान का वर्ग करने पर जो संख्या विशेष हो	$(४^{३})^{३}$ $(६४)^{३}$ २६२१४४	$(१६^{३})^{३}$ $(२६२१४४)^{२}$	$(२५६^{३})^{३}$	$(\text{पणट्ठी}^{३})^{३}$	$(\text{बादाल}^{३})^{३}$	$(\text{एकट्ठी}^{३})^{३}$

कुछ परिभाषाएँ

वर्गशलाका

* जितनी बार वर्ग करने पर विवक्षित राशि उत्पन्न हो।
* जैसे – द्विरूपवर्गधारा में **४ बार** वर्ग करने पर पणट्ठी उत्पन्न होती है अत: पणट्ठी की **वर्गशलाका** ४ है।
* अथवा, धाराओं में जितनेवाँ स्थान होने पर जो राशि होती है उतनेवाँ स्थान उस राशि की वर्गशलाका है।

वर्गमूल

* जिसका एक बार वर्ग करने पर विवक्षित राशि प्राप्त हो।
* जैसे – १६ का वर्गमूल ४ है, क्योंकि ४ का वर्ग करने पर १६ प्राप्त होते हैं।

प्रथमादि वर्गमूल

विवक्षित राशि का वर्गमूल	= प्रथम वर्गमूल
प्रथम वर्गमूल " "	= द्वितीय वर्गमूल
द्वितीय वर्गमूल " "	= तृतीय "
तृतीय वर्गमूल " "	= चतुर्थ "
चतुर्थ " " "	= पंचम "

आगे–२ के वर्गमूल भी इसी प्रकार निकाल लेना चाहिये।

सं. व.	=	संख्यात वर्गस्थान
असं. व.	=	असंख्यात वर्गस्थान
अनं. व.	=	अनंतानंत वर्गस्थान

द्विरूप वर्गधारा के स्थान

४ १६ २५६ ६५५३६ बादाल एकट्ठी —(संख्यात वर्गस्थान)→ जघन्य परीतासंख्यात की वर्गशलाका —(सं. व.)→ जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेद

—(सं. व.)→ जघन्य परीतासंख्यात का वर्गमूल ज. परीतासंख्यात —(सं. व.)→ ज. युक्तासंख्यात (आवली) ज. असंख्याता संख्यात —(असंख्यात वर्गस्थान)→ अद्धापल्य की वर्गशलाका —(असं. व.)→

अद्धापल्य के अर्धच्छेद —(असं. व.)→ अद्धापल्य का वर्गमूल अद्धापल्य —(असं. व.)→ सूच्यंगुल प्रतरांगुल —(असं. व.)→ जगतश्रेणी का घनमूल

—(असं. व.)→ जघन्य परीतानंत की वर्गशलाका —(असं. व.)→ जघन्य परीतानंत के अर्धच्छेद —(असं. व.)→ जघन्य परीतानंत का वर्गमूल जघन्य परीतानंत —(असं. व.)→

जघन्य युक्तानंत जघन्य अनंतानंत —(अनंतानंत वर्गस्थान)→ जीवराशि की वर्गशलाका —(अनं. व.)→ जीवराशि के अर्धच्छेद —(अनं. व.)→ जीवराशि का वर्गमूल जीव* राशि

* जीव राशि से आगे की समस्त राशियों की वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि एवं वर्गमूल जीवराशि की तरह कहना।

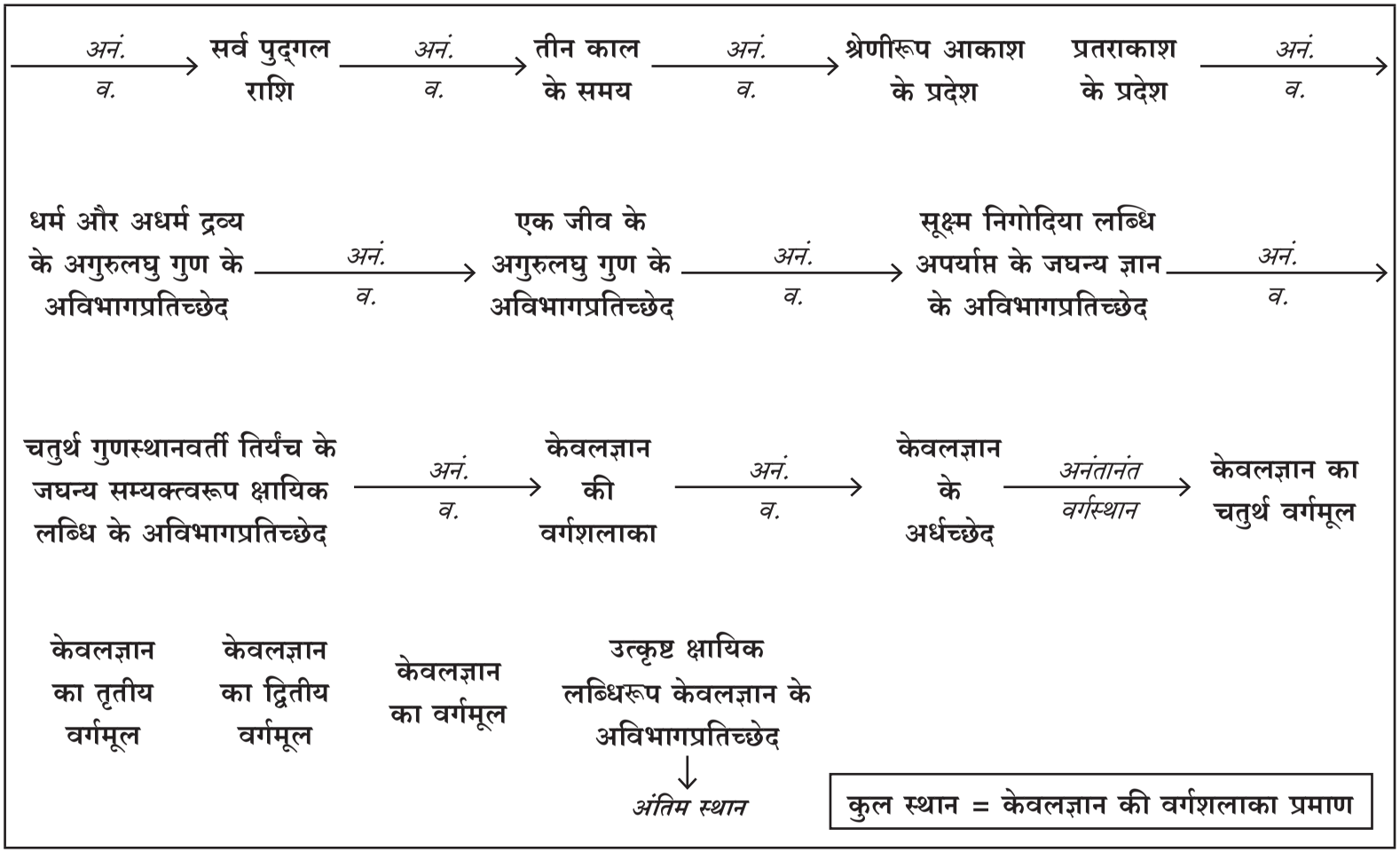
अनं. व.
सर्व पुद्गल राशि
अनं. व.
तीन काल के समय
अनं. व.
श्रेणीरूप आकाश के प्रदेश
प्रतराकाश के प्रदेश
अनं. व.
धर्म और अधर्म द्रव्य के अगुरुलघु गुण के अविभागप्रतिच्छेद
अनं. व.
एक जीव के अगुरुलघु गुण के अविभागप्रतिच्छेद
अनं. व.
सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त के जघन्य ज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद
अनं. व.
चतुर्थ गुणस्थानवर्ती तिर्यंच के जघन्य सम्यक्त्वरूप क्षायिक लब्धि के अविभागप्रतिच्छेद
अनं. व.
केवलज्ञान की वर्गशलाका
अनं. व.
केवलज्ञान के अर्धच्छेद
अनंतानंत वर्गस्थान
केवलज्ञान का चतुर्थ वर्गमूल
केवलज्ञान का तृतीय वर्गमूल
केवलज्ञान का द्वितीय वर्गमूल
केवलज्ञान का वर्गमूल
उत्कृष्ट क्षायिक लब्धिरूप केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेद
अंतिम स्थान
कुल स्थान = केवलज्ञान की वर्गशलाका प्रमाण

द्विरूपघनधारा के स्थान

"द्विरूपवर्गधारा में जिस राशि का ग्रहण किया, उस राशि का घन इस धारा में जानना"

६४ — ४०९६ —(संख्यात स्थान)→ जघन्य परीतासंख्यात का घन —(सं. स्थान)→ आवली का घन — प्रतरावली का घन —(असंख्यात स्थान)→ पल्य की वर्गशलाका का घन —(असं. स्थान)→ पल्य के अर्धच्छेद का घन —(असं. स्थान)→ पल्य के वर्गमूल का घन — पल्य का घन —(असं. स्थान)→ घनांगुल —(असं. स्थान)→ जगतश्रेणी —(असं. स्थान)→ जगतप्रतर —(अनंतानंत स्थान)→ जीवराशि की वर्गशलाका का घन —(अनं. स्थान)→ जीवराशि के अर्धच्छेद का घन —(अनं. स्थान)→ जीवराशि के वर्गमूल का घन — जीवराशि का घन —(अनं. स्थान)→ श्रेणीरूप सर्व आकाश की वर्गशलाका का घन —(अनं. स्थान)→ श्रेणीरूप सर्व आकाश के अर्धच्छेद का घन —(अनं. स्थान)→ श्रेणीरूप सर्व आकाश के वर्गमूल का घन — श्रेणी आकाश का घन = सर्व आकाश के प्रदेश —(अनं. स्थान)→ केवलज्ञान के द्वितीय वर्गमूल का घन

↓

अंतिम स्थान

कुल स्थान = केवलज्ञान की वर्गशलाका − २

द्विरूपघनाघन धारा के स्थान

"द्विरूपवर्गधारा में जिस राशि का ग्रहण किया, उस राशि के घन का घन इस धारा में जानना"

२६२१४४ → (२६२१४४)[२] —(असंख्यात स्थान)→ लोकाकाश के प्रदेशों का प्रमाण —(असं. स्थान)→ अग्निकायिक जीवों की गुणकारशलाका —(असं. स्थान)→ अग्निकायिक जीवों की वर्गशलाका —(असं. स्थान)→ अग्निकायिक जीवों की अर्धच्छेद राशि —(असं. स्थान)→ अग्निकायिक जीवों का वर्गमूल

अग्निकायिक[१] जीवराशि —(असंख्यातासंख्यात स्थान)→ अग्निकायिक[२] की स्थिति —(असं.असं. स्थान)→ अवधिज्ञान संबंधी उत्कृष्ट क्षेत्र —(असं.असं. स्थान)→ स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान —(असं.असं. स्थान)→ अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान —(असं.असं. स्थान)→ निगोद शरीरों की उत्कृष्ट संख्या —(असंख्यात लोक-असंख्यात लोक स्थान)→ निगोद काय[३] स्थिति —(असं. लोक-असं. लोक स्थान)→ उत्कृष्ट योगस्थान के अविभागप्रतिच्छेद —(अनंतानंत स्थान)→ केवलज्ञान के चतुर्थ वर्गमूल के घन का घन (अंतिम स्थान)

कुल स्थान = केवलज्ञान की वर्गशलाका – ४

नोट-(१) अग्निकायिक जीवराशि से आगे की समस्त राशियों की वर्गशलाका, अर्धच्छेद राशि एवं वर्गमूल अग्निकायिक जीवराशि की तरह कहना।
(२) अग्निकायिक में उत्पन्न हुए किसी एक जीव का उत्कृष्टरूप से अग्निकायिक पर्याय को छोड़े बिना उसी में अवस्थित रहने का काल।
(३) निगोद शरीररूप से परिणमित हुये जो पुद्गल स्कंध, वे उत्कृष्टपने से निगोद शरीर को जितने काल तक नहीं छोड़ते उतना काल।

गोम्मटसार जीवकाण्ड
(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

सिद्धं सुद्धं पणमिय, जिणिंदवरणेमिचंदमकलंकं।
गुणरयणभूसणुदयं, जीवस्स परूवणं वोच्छं।।१।।

अर्थ – जो सिद्ध, शुद्ध एवं अकलंक हैं एवं जिनके सदा गुणरूपी रत्नों के भूषणों का उदय रहता है, ऐसे श्री जिनेन्द्रवर नेमिचन्द्र स्वामी को नमस्कार करके जीव के प्ररूपण को कहूँगा ।।१।।

मंगलाचरण में

- नेमिनाथ भगवान को **नमस्कार**
- जीव प्ररूपण (अशुद्ध जीव के स्वरूप वर्णन) की **प्रतिज्ञा**

सिद्ध	सिद्ध अवस्था को प्राप्त
शुद्ध	४ घातिया कर्मों का अभाव
अकलंक	भाव कर्मों का नाश
गुणरत्नभूषण	सम्यक्त्वादि गुणों का भूषण

गुण जीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा य मग्गणाओ य।
उवओगो वि य कमसो वीसं तु परूवणा भणिदा।।२।।
संखेओ ओघो त्ति य, गुणसण्णा सा च मोहजोगभवा।
वित्थारादेसो त्ति य, मग्गणसण्णा सकम्मभवा।।३।।

अर्थ – गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा और उपयोग इस प्रकार ये बीस प्ररूपणा पूर्वाचार्यों ने कही हैं ।।२।।

अर्थ – संक्षेप और ओघ यह गुणस्थान की संज्ञा है और वह मोह तथा योग के निमित्त से उत्पन्न होती है। इसी तरह विस्तार तथा आदेश यह मार्गणा की संज्ञा है और वह भी अपने-अपने योग्य कर्मों के उदयादि से उत्पन्न होती है। तथा चकार से गुणस्थान की सामान्य एवं मार्गणा की विशेष संज्ञा भी होती है ।।३।।

संक्षिप्त रुचि वाले शिष्य की अपेक्षा
प्ररूपणा - २ (अभेद विवक्षा)

	गुणस्थान	मार्गणास्थान
अन्य नाम	संक्षेप, ओघ, सामान्य	विस्तार, आदेश, विशेष
कारण	मोह और योग	अपना-अपना कर्म का उदयादि

मध्यम रुचि वाले शिष्य की अपेक्षा
प्ररूपणा - २० (भेद विवक्षा)

गुणस्थान **जीवसमास** **पर्याप्ति** **प्राण** **संज्ञा** **१४ मार्गणा** **उपयोग**

आदेसे संलीणा, जीवा पज्जत्ति-पाण-सण्णाओ।
उवओगो वि य भेदे, वीसं तु परूवणा भणिदा।।४।।
इंदियकाये लीणा, जीवा पज्जत्ति-आण-भास-मणो।
जोगे काओ णाणे, अक्खा गदिमग्गणे आऊ।।५।।
मायालोहे रदिपुव्वाहारं, कोहमाणगम्हि भयं।
वेदे मेहुणसण्णा, लोहम्हि परिग्गहे सण्णा।।६।।
सागारो उवजोगो, णाणे मग्गम्हि दंसणे मग्गे।
अणगारो उवजोगो, लीणो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।७।।

अर्थ - जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोग इन सब भेदों का मार्गणाओं में ही भले प्रकार अन्तर्भाव हो जाता है। इसलिये अभेद विवक्षा से गुणस्थान और मार्गणा ये दो प्ररूपणा ही माननी चाहिये। किन्तु बीस प्ररूपणा जो कही हैं वे भेद विवक्षा से हैं ।।४।।

अर्थ - इन्द्रिय तथा कायमार्गणा में जीवसमास एवं पर्याप्ति का तथा श्वासोच्छ्वास, वचनबल एवं मनोबल प्राणों का पर्याप्ति में अंतर्भाव हो सकता है। तथा योगमार्गणा में कायबल प्राण का, ज्ञानमार्गणा में इन्द्रिय प्राणों का एवं गतिमार्गणा में आयुप्राण का अंतर्भाव हो सकता है ।।५।।

अर्थ - माया तथा लोभ कषाय में रतिपूर्वक आहार संज्ञा का एवं क्रोध तथा मान कषाय में भय संज्ञा का अंतर्भाव हो सकता है। तथा वेद कषाय में मैथुन संज्ञा का एवं लोभ कषाय में परिग्रह संज्ञा का अंतर्भाव हो सकता है ।।६।।

अर्थ - साकार उपयोग का ज्ञानमार्गणा में एवं अनाकार उपयोग का दर्शन मार्गणा में अंतर्भाव हो सकता है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने निर्दिष्ट किया है ।।७।।

किस-किस मार्गणा में कौन-कौन सी प्ररूपणा अन्तर्भूत हो सकती है?

	प्ररूपणा	मार्गणा	संबन्ध	किस प्रकार
१	**जीवसमास**	इन्द्रिय एवं काय	स्वरूप-स्वरूपवान्	इन्द्रिय,काय - स्वरूप । जीवसमास - स्वरूपवान्
			सामान्य-विशेष	जीवसमास - सामान्य । इन्द्रिय,काय - विशेष
२	**पर्याप्ति**	इन्द्रिय एवं काय	धर्म-धर्मी	पर्याप्ति -धर्म।इन्द्रिय,काय -धर्मी
३	**प्राण**			
	-५ इन्द्रिय	ज्ञान	कार्य-कारण	इन्द्रिय - कारण । ज्ञान - कार्य
	-कायबल	योग	सामान्य-विशेष	योग -सामान्य।काय बल-विशेष
	-वचनबल **-मनोबल** **-श्वासोच्छ्वास**	पर्याप्ति में ↓ इन्द्रिय एवं काय	कार्य-कारण	पर्याप्ति -कारण ।३ प्राण -कार्य
	-आयु	गति	साहचर्य	आयु एवं गति का उदय साथ-साथ ही होता है
४	**संज्ञा**			
	-आहार	माया एवं लोभ कषाय	स्वरूप-स्वरूपवान्	आहार(राग) - स्वरूप । कषाय(राग) - स्वरूपवान्
	-भय	क्रोध एवं मान कषाय	स्वरूप-स्वरूपवान्	भय(द्वेष) - स्वरूप । कषाय(द्वेष) - स्वरूपवान्
	-मैथुन	वेद कषाय	कार्य-कारण	वेद कषाय -कारण।मैथुन -कार्य
	-परिग्रह	लोभ कषाय	कार्य-कारण	लोभ कषाय - कारण । परिग्रह - कार्य
५	**उपयोग**			
	-ज्ञान	ज्ञान	कार्य-कारण	ज्ञानोपयोग -कारण। ज्ञान -कार्य
	-दर्शन	दर्शन	कार्य-कारण	दर्शनोपयोग -कारण।दर्शन -कार्य

अधिकार १ - गुणस्थान

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
गुणस्थान का लक्षण	८	१	५
१४ गुणस्थानों के नाम	९-१०	२	५
किन गुणस्थानों में कौन-से भाव किस अपेक्षा से कहे हैं ?	११-१४	४	७
मिथ्यात्व गुणस्थान	१५-१८	४	८
सासादन "	१९-२०	२	९
मिश्र "	२१-२४	४	११
अविरत सम्यक्त्व गुणस्थान	२५-२९	५	१२
देशविरत "	३०-३१	२	१७
प्रमत्तविरत "	३२-३३	२	१७
प्रमादों का वर्णन	३४-४४	११	१८
अप्रमत्तविरत गुणस्थान	४५-४७	३	२४
अध:प्रवृत्तकरण	४८-४९	२	२६
अपूर्वकरण गुणस्थान	५०-५५	६	२७
अनिवृत्तिकरण "	५६-५७	२	२७
सूक्ष्मसांपराय "	५८-६०	३	२९
उपशांतमोह और क्षीणमोह गुणस्थान	६१-६२	२	३०
सयोगकेवली और अयोगकेवली गुणस्थान	६३-६५	३	३१
गुणस्थानों में होनेवाली गुणश्रेणी निर्जरा	६६-६७	२	३३
सिद्धों का स्वरूप एवं विशेषण, फल	६८-६९	२	३४
गुणस्थान सम्बन्धी अन्य उपयोगी विषय जैसे गुणस्थानों में गमन-आगमन आदि			३५
कुल गाथाएँ		६२	

जेहिं दु लक्खिज्जंते उदयादिसु संभवेहिं भावेहिं।
जीवा ते गुणसण्णा णिद्दिट्ठा सव्वदरसीहिं।।८।।

अर्थ - दर्शनमोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्था के होने पर होनेवाले जिन परिणामों से युक्त जो जीव देखे जाते हैं उन जीवों को सर्वज्ञदेव ने उसी गुणस्थान वाला और उन परिणामों को गुणस्थान कहा है ।।८।।

गुणस्थान का लक्षण

* मोहनीयादि कर्मों के * उदय, उपशम, क्षय, क्षयोपशमरूप अवस्था के होने पर * जीव के परिणाम = गुणस्थान
उन परिणामों से युक्त जीव = उस-उस गुणस्थानवाला

मिच्छो सासण मिस्सो, अविरदसम्मो य देसविरदो य।
विरदा पमत्त इदरो, अपुव्व अणियट्टि सुहमो य।।९।।
उवसंत खीणमोहो, सजोगकेवलिजिणो अजोगी य।
चउदस जीवसमासा कमेण सिद्धा य णादव्वा।।१०।।

अर्थ - १ मिथ्यात्व, २ सासन, ३ मिश्र, ४ अविरतसम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण ९ अनिवृत्तिकरण, १० सूक्ष्म साम्पराय ।।९।।

अर्थ - ११ उपशान्तमोह, १२ क्षीणमोह, १३ सयोगकेवलीजिन और १४ अयोगकेवलीजिन ये चौदह जीवसमास (गुणस्थान) हैं। और सिद्ध इन जीवसमासों - गुणस्थानों से रहित हैं ।।१०।।

१४ गुणस्थान

१	**मिथ्यात्व**	जिसकी दृष्टि (श्रद्धा) मिथ्या (अतत्त्वगोचर) है
२	**सासादन**	सम्यक्त्व की आसादन (विराधना) सहित वर्ते
३	**मिश्र**	सम्यक्त्व और मिथ्यात्व का मिश्रभाव
४	**अविरतसम्यक्त्व**	जिसकी दृष्टि समीचीन है एवं जो असंयमी है
५	**देशविरत**	एकदेश संयमी
६	**प्रमत्तविरत**	प्रमाद सहित संयमी
७	**अप्रमत्तविरत**	प्रमाद रहित संयमी
८	**अपूर्वकरण**	जिसके अपूर्व-अपूर्व परिणाम हैं

९	**अनिवृत्तिकरण**	जिनके परिणामों में भेद नहीं है
१०	**सूक्ष्मसाम्पराय**	जिसके कषाय सूक्ष्म है
११	**उपशांतमोह**	जिसका मोह उपशांत हुआ है
१२	**क्षीणमोह**	जिसका मोह क्षीण हुआ है
१३	**सयोगकेवलीजिन**	योगसहित केवलज्ञानी, जिसने घाति कर्मों को जीत लिया है
१४	**अयोगकेवलीजिन**	योगरहित केवलज्ञानी जिन
गुणस्थानातीत सिद्ध भगवान		

गुणस्थानों के नाम में विशेषता

आदि दीपक (यहाँ से लेकर आगे के सभी गुणस्थानों में ये भाव पाया जाता है)

- अविरत सम्यक्त्व का → सम्यक्त्व शब्द
- प्रमत्त विरत का → विरत शब्द
- सयोग केवली जिन का → केवली शब्द

मध्य दीपक

(इसके आगे व पीछे दोनों तरफ के | गुणस्थानों में ये भाव पाया जाता है)

सयोग केवली जिन का → जिन शब्द

(यहाँ से लेकर पहले के सभी गुणस्थानों में ये भाव पाया जाता है) = **अन्त दीपक**

- अविरत सम्यक्त्व का → अविरत शब्द
- प्रमत्त विरत का → प्रमत्त शब्द
- सूक्ष्म साम्पराय का → साम्पराय शब्द
- सयोग केवली जिन → सयोग शब्द

मिच्छे खलु ओदइओ, विदिये पुण पारणामिओ भावो।
मिस्से खओवसमिओ, अविरदसम्मम्हि तिण्णेव।।११।।
एदे भावा णियमा, दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु।
चारित्तं णत्थि जदो, अविरदअंतेसु ठाणेसु।।१२।।

देसविरदे पमत्ते, इदरे व खओवसमियभावो दु।
सो खलु चरित्तमोहं, पडुच्च भणियं तहा उवरिं।।१३।।
तत्तो उवरिं उवसमभावो, उवसामगेसु खवगेसु।
खइओ भावो णियमा, अजोगिचरिमो त्ति सिद्धे य।।१४।।

अर्थ – प्रथम गुणस्थान में औदायिक भाव होते हैं और द्वितीय गुणस्थान में पारिणामिक भाव होते हैं। मिश्र में क्षायोपशमिक भाव होते हैं और चतुर्थ गुणस्थान में औपशमिक, क्षायिक क्षायोपशमिक इसप्रकार तीनों ही भाव होते हैं ।।११।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में जो नियमरूप से औदयिकादिक भाव कहे हैं वे दर्शन मोहनीय कर्म की अपेक्षा से हैं क्योंकि चतुर्थ गुणस्थान पर्यन्त चारित्र नहीं पाया जाता ।।१२।।

अर्थ – देशविरत, प्रमत्त, अप्रमत्त, इन गुणस्थानों में चारित्रमोहनीय की अपेक्षा क्षायोपशमिक भाव होते हैं तथा इनके आगे अपूर्वकरण आदि गुणस्थानों में भी चारित्रमोहनीय की अपेक्षा से ही भावों को कहेंगे ।।१३।।

अर्थ – सातवें गुणस्थान से ऊपर उपशमश्रेणीवाले आठवें, नौवें, दशवें गुणस्थान में तथा ग्यारहवें उपशांतमोह में औपशमिक भाव ही होते हैं। इसीप्रकार क्षपकश्रेणीवाले उक्त तीनों ही गुणस्थानों में तथा क्षीणमोह, सयोगकेवली, अयोगकेवली इन तीन गुणस्थानों में और गुणस्थानातीत सिद्धों के नियम से क्षायिकभाव ही पाया जाता है ।।१४।।

१४ *गुणस्थानों में भाव (मोहनीय की अपेक्षा)*

गुणस्थान	भाव	अपेक्षा
१	औदयिक	दर्शन मोहनीय
२	पारिणामिक	
३	क्षायोपशमिक	
४	औपशमिक, क्षायोपशमिक,क्षायिक	
५	क्षायोपशमिक	चारित्र मोहनीय
६–७	क्षायोपशमिक	
८–११(उपशम श्रेणी)	औपशमिक	
८–१०,१२ (क्षपक श्रेणी)	क्षायिक	
१३–१४, सिद्ध	क्षायिक	

मिच्छोदयेण मिच्छत्तमसद्दहणं तु तच्च-अत्थाणं।
एयंतं विवरीयं, विणयं संसयिदमण्णाणं।।१५।।
एयंत बुद्धदरसी, विवरीओ बह्म तावसो विणओ।
इंदो वि य संसइयो, मक्कडियो चेव अण्णाणी।।१६।।

अर्थ – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से होने वाले तत्त्वार्थ के अश्रद्धान को मिथ्यात्व कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं – एकान्त, विपरीत, विनय, संशयित और अज्ञान ।।१५।।

अर्थ – बौद्धादि मतवाले एकान्त मिथ्यादृष्टि हैं। याज्ञिक ब्राह्मणादि विपरीत मिथ्यादृष्टि हैं। तापसादि विनय मिथ्यादृष्टि हैं। इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु प्रभृति संशयमिथ्यादृष्टि हैं और मस्करी (मुसलमान) सन्यासी आदिक अज्ञानमिथ्यादृष्टि हैं ।।१६।।

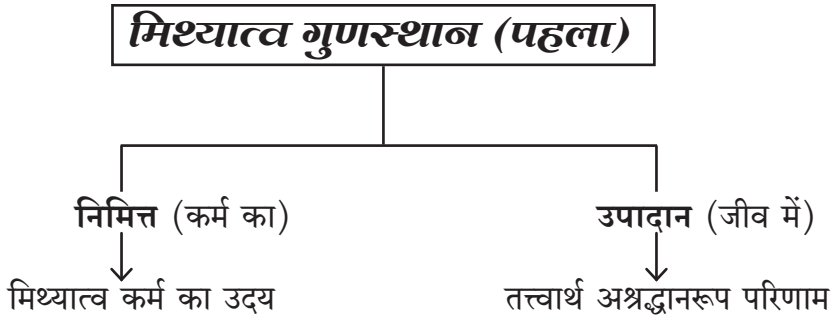

मिथ्यात्व के भेद	और उनके दृष्टांत
एकान्त	बौद्धादिक
विपरीत	याज्ञिक ब्राह्मणादि
विनय	तापसादि
संशय	इन्द्र नामक श्वेताम्बर गुरु
अज्ञान	मस्करी (मुसलमान सन्यासी) आदि
नोट : विस्तार से मिथ्यात्व के असंख्यात भेद हैं	

मिच्छंतं वेदंतो, जीवो विवरीयदंसणो होदि।
ण य धम्मं रोचेदि हु, महुरं खु रसं जहा जरिदो।।१७।।

अर्थ – मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से उत्पन्न होने वाले मिथ्या परिणामों का अनुभव करनेवाला जीव विपरीत श्रद्धानवाला हो जाता है। उसको जिस प्रकार पित्त ज्वर से युक्त जीव को मीठा रस भी अच्छा मालूम नहीं होता उसी प्रकार यथार्थ धर्म अच्छा नहीं मालूम होता – रुचिकर नहीं होता ।।१७।।

मिथ्याभाव को समझने के लिए उदाहरण

उदाहरण	सिद्धांत
जैसे –	**वैसे –**
* पित्त ज्वर से	* मिथ्यात्व से
* युक्त जीव को	* युक्त जीव को
* मीठा रस भी कटु लगता	* धर्म नहीं रुचता

मिच्छाइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।१८।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन गुरुओं के पूर्वापर विरोधादि दोषों से रहित और हित के करने वाले भी वचनों का यथार्थ श्रद्धान नहीं करता। किन्तु इसके विपरीत आचार्याभासों के द्वारा उपदिष्ट या अनुपदिष्ट असद्भाव का अर्थात् पदार्थ के विपरीत स्वरूप का इच्छानुसार श्रद्धान करता है ।।१८।।

मिथ्यादृष्टि के बाह्य चिह्न

- **उपदिष्ट (उपदेशित)**
  - अरहंत के वचनों पर श्रद्धा नहीं करता हैं
  - कुदेवादि के मिथ्या वचनों पर श्रद्धा करता हैं
- **अनुपदिष्ट (बिना उपदेशित)** ↓
  - मिथ्या वचनों पर श्रद्धा करता हैं

आदिमसम्मत्तद्धा, समयादो छावलि त्ति वा सेसे।
अणअण्णदरुदयादो, णासियसम्मो त्ति सासणक्खो सो।।१९।।

अर्थ – प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अथवा वा शब्द से द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में से जब जघन्य एक समय तथा उत्कृष्ट छह आवली प्रमाण काल शेष रहे उतने काल में अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी के भी उदय में आने से सम्यक्त्व की विराधना होने पर सम्यग्दर्शन गुण की जो अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धानरूप परिणति होती है, उसको सासन या सासादन गुणस्थान कहते हैं ।।१९।।

सासादन/सासन गुणस्थान (दूसरा)

- **निमित्त** ↓
  - अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ में से किसी एक का उदय
- **जीव का परिणाम** ↓
  - अव्यक्त (अनुभय) अतत्त्व श्रद्धान

दूसरे गुणस्थान की प्राप्ति कब होती है

↓

औपशमिक सम्यक्त्व के इतना काल अवशेष रहने पर

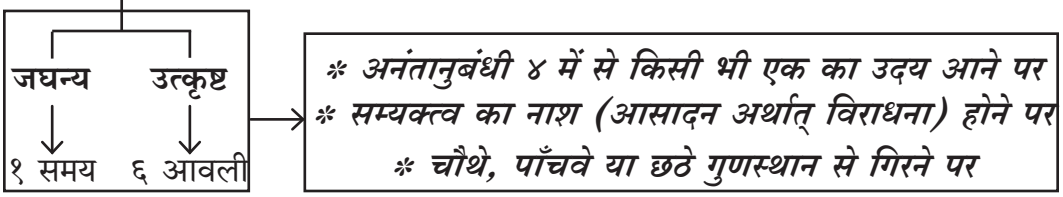

सम्मत्तरयणपव्वयसिहरादो मिच्छभूमिसमभिमुहो।
णासियसम्मत्तो सो, सासणणामो मुणेयव्वो।।२०।।

अर्थ – सम्यक्त्वरूपी रत्नपर्वत के शिखर से गिरकर जो जीव मिथ्यात्वरूपी भूमि के सम्मुख हो चुका है, अतएव जिसने सम्यक्त्व की विराधना (नाश) कर दी है, और मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं किया है, उसको सासन या सासादन गुणस्थानवर्ती कहते हैं ।।२०।।

सासादन का उदाहरण

उदाहरण	सिद्धांत
जैसे –	**वैसे –**
* रत्नपर्वतरूपी शिखर	* सम्यक्त्वरूपी शिखर
* से पतित	* से पतित
* भूमि की ओर नीचे गिरता हुआ (अन्तराल में स्थित)	* मिथ्यात्वरूपी भूमि की ओर गिरता हुआ (अन्तराल में स्थित)
नोट : यह जीव सम्यक्त्व से मिथ्यात्व की ओर गिरा है लेकिन अभी मिथ्यात्व में पहुँचा नहीं है।	
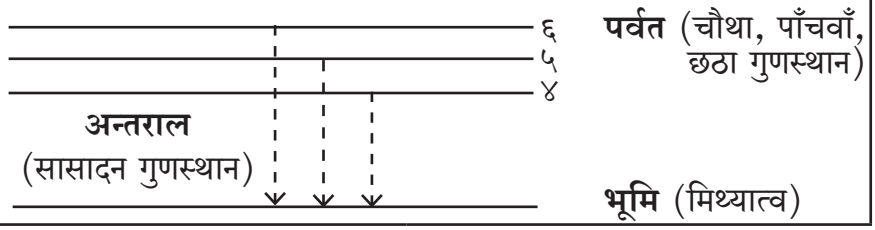	

सम्मामिच्छुदयेण य, जत्तंतरसव्वघादिकज्जेण।
ण य सम्मं मिच्छं पि य, सम्मिस्सो होदि परिणामो।।२१।।
दहिगुडमिव वामिम्सं, पुहभावं णेव कारिदुं सक्कं।
एवं मिस्सयभावो, सम्मामिच्छो त्ति णादव्वो।।२२।।

सो संजमं ण गिण्हदि, देसजमं वा ण बंधदे आउं।
सम्मं वा मिच्छं वा, पडिवज्जिय मरदि णियमेण।।२३।।
सम्मत्त-मिच्छपरिणामेसु जहिं आउगं पुरा बद्धं।
तहिं मरणं मरणंतसमुग्घादो वि य ण मिस्सम्मि।।२४।।

अर्थ - जिसका प्रतिपक्षी आत्मा के गुण को सर्वथा घातने का कार्य दूसरी सर्वघाति प्रकृतियों से विलक्षण जाति का है उस जात्यन्तर सर्वघाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति के उदय से केवल सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्वरूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है, उसको तीसरा मिश्रगुणस्थान कहते हैं ।।२१।।

अर्थ - जिस प्रकार दही और गुड़ को परस्पर इस तरह से मिलाने पर कि फिर उन दोनों को पृथक्-पृथक् नहीं कर सकें, उस द्रव्य के प्रत्येक परमाणु का रस मिश्ररूप (खट्टा और मीठा मिला हुआ) होता है। उसी ही प्रकार मिश्रपरिणामों में भी एक ही काल में सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणाम रहते हैं, ऐसा समझना चाहिये ।।२२।।

अर्थ - तृतीय गुणस्थानवर्ती जीव सकल संयम या देशसंयम को ग्रहण नहीं करता और न इस गुणस्थान में आयुकर्म का बंध ही होता है तथा इस गुणस्थानवाला जीव यदि मरण करता है तो नियम से सम्यक्त्व या मिथ्यात्वरूप परिणामों को प्राप्त करके ही मरण करता है ।।२३।।

अर्थ - तृतीय गुणस्थानवर्ती जीव ने तृतीय गुणस्थान को प्राप्त करने से पहले सम्यक्त्व या मिथ्यात्वरूप के परिणामों में से जिस जाति के परिणाम काल में आयुकर्म का बंध किया हो उस ही तरह के परिणामों के होने पर उसका मरण होता है अथवा कई आचार्य के अभिप्राय से यह नियम नहीं है । किन्तु मिश्र गुणस्थान में मरण नहीं होता और न इस गुणस्थान में मारणान्तिक समुद्घात ही होता है ।।२४।।

मिश्र/सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान (तीसरा)

निमित्त	सम्यग्मिथ्यात्व कर्म का उदय	जात्यन्तर सर्वघाति प्रकृति
परिणाम	मिश्र	सम्यक् भी, मिथ्या भी
उदाहरण	गुड़ मिश्रित दही का स्वाद	न सिर्फ खट्टा, न सिर्फ मीठा इसलिये खट्टा-मीठा
विशेषता	१	सकल संयम अथवा देश संयम ग्रहण नहीं करता
	२	आयु नहीं बाँधता
	३	मरण नहीं होता ***नोट : जिस गुणस्थान में भी पहले आयु बाँधी हो (१ या ४ में),उसी में जाकर मरण होता है***
	४	मारणांतिक समुद्घात नहीं होता

सम्मत्तदेसघादिस्सुदयादो वेदगं हवे सम्मं।
चलमलिनमगाढं तं, णिच्चं कम्मक्खवणहेदु।।२५।।
सत्तण्हं उवसमदो, उवसमसम्मो खया दु खइयो य।
विदियकसायुदयादो, असंजदो होदि सम्मो य।।२६।।

अर्थ – सम्यग्दर्शनगुण को विपरीत करने वाली प्रकृतियों में से देशघाति सम्यक्त्व प्रकृति के उदय होने पर (तथा अनंतानुबंधीचतुष्क और मिथ्यात्व मिश्र इन सर्वघाति प्रकृतियों के आगामी निषेकों का सदवस्थारूप उपशम और वर्तमान निषेकों की बिना फल दिये ही निर्जरा होने पर) जो आत्मा के परिणाम होते हैं उनको वेदक या क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। वे परिणाम चल, मलिन या अगाढ़ होते हुए भी नित्य ही अर्थात् जघन्य अन्तर्मुहूर्त से लेकर उत्कृष्ट छ्यासठ सागर पर्यन्त कर्मों की निर्जरा के कारण हैं ।।२५।।

अर्थ – दर्शनमोहनीय की तीन अर्थात् मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व प्रकृति तथा चार अनंतानुबंधी कषाय – इन सात प्रकृतियों के उपशम से औपशमिक और सर्वथा क्षय से क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है। इस चतुर्थगुणस्थानवर्ती सम्यग्दर्शन के साथ संयम बिलकुल नहीं होता क्योंकि यहाँ पर दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहा करता है। इसी से इस गुणस्थानवर्ती जीव को असंयत सम्यग्दृष्टि कहते हैं ।।२६।।

गाथा २५, २६ और २९ का चार्ट–

अविरत सम्यक्त्व (चौथा)

	अविरत	सम्यक्त्व
परिणाम	छह काय के जीवों की हिंसा और ५ इन्द्रिय व मन के विषयों में प्रवृत्ति का त्याग नहीं	जिनेन्द्रदेव के प्रवचन का श्रद्धान
निमित्त	अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय	दर्शनमोहनीय का उपशम, क्षय या क्षयोपशम

तीन प्रकार के सम्यक्त्व

नाम	औपशमिक	क्षायोपशमिक	क्षायिक	
निमित्त	अनंतानुबंधी ४ + दर्शन मोहनीय का उपशम	*सम्यक्त्व प्रकृति का उदय *मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४ का उदयाभावी क्षय और सदवस्थारूप उपशम	अनंतानुबंधी ४ + दर्शन मोहनीय ३ का क्षय	
परिणाम (श्रद्धा)	पूर्ण निर्मल, निश्चल एवं गाढ़	चल, मल, अगाढ़ दोष सहित	पूर्ण निर्मल, निश्चल एवं गाढ़	
काल :			संसारी अपेक्षा	मुक्त जीव अपेक्षा
जघन्य	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त	सादि अनंत (जघन्य-उत्कृष्ट का भेद नहीं)
उत्कृष्ट	जघन्य से संख्यात गुणा = अन्तर्मुहूर्त	६६ सागर	साधिक ३३ सागर	
छूट सकता है?	हाँ	हाँ	कभी नहीं	
अधिक से अधिक कितनी बार हो सकता है	असंख्यात बार	असंख्यात बार	१ बार	
अधिक से अधिक संसार में रहने का काल	कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन	कुछ कम अर्ध पुद्गल परावर्तन	साधिक ३३ सागर	
नोट : तीनों सम्यक्त्व कर्मक्षय के कारण हैं				

कहाँ-कहाँ किस-किस कर्म का उदय संभव है

	अनंतानुबन्धी ४	मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व
मिथ्यात्व	√	√		
सासादन	√			
मिश्र			√	
क्षयोपशम सम्यक्त्व				√
औपशमिक सम्यक्त्व				
क्षायिक सम्यक्त्व				

क्षयोपशम सम्यक्त्व

	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबन्धी ४ (सर्वघाति)		**सम्यक्त्व प्रकृति (देशघाति)**
	उदयाभावी क्षय (देशघातिरूप फल)	सदवस्थारूप उपशम (उदीरणा न होना)	↓ उदय (फल)
इस अपेक्षा	क्षयोपशम सम्यक्त्व नाम		वेदक सम्यक्त्व नाम
इसके निमित्त से	तत्त्वार्थ श्रद्धान		चलादि दोष

क्षयोपशम सम्यक्त्व के दोष

	दृष्टांत	सिद्धांत
चल	जल में तरंगों की तरह चंचल (नानारूप होना)	आप्त-आगम-पदार्थों के विषय में चंचलपना
मल	बाह्य मल सहित शुद्ध सोना	शंकादि मल सहित सम्यक्त्व
अगाढ़	वृद्ध के हाथ की लाठी	आप्तादि की प्रतीति (रूचि) में शिथिलता

उपशम सम्यक्त्वी के नीचे गिरने के मार्ग

उपशम सम्यक्त्वी के काल समाप्ति

	के पूर्व	के पश्चात्		
उदय किसका	अनंतानुबन्धी ४	मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व	सम्यक्त्व प्रकृति
गुणस्थान	दूसरा	पहला	तीसरा	(गुणस्थान यथावत् पूर्व जैसा ही रहेगा) चार से सात

उपशम सम्यक्त्व के प्रकार

	प्रथमोपशम	द्वितीयोपशम
पूर्व अवस्था (किस पूर्वक)	मिथ्यात्व (प्रथम गुणस्थान)	क्षयोपशम सम्यक्त्व
स्वामी	४-७ गुणस्थान	७-११ गुणस्थान (गिरते हुए ६,५,४ भी संभव हैं)
किसे प्राप्त होगा	मिथ्यादृष्टि जीव को	उपशम श्रेणी के सम्मुख जीव को
उत्कृष्ट कितनी बार	असंख्यात	४

सम्माइट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं तु सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं अजाणमाणो गुरुणियोगा।।२७।।
सुत्तादो तं सम्मं, दरसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।२८।।

अर्थ - जो जीव अर्हन्तादिकों द्वारा उपदेशित ऐसा जो प्रवचन अर्थात् आप्त, आगम, पदार्थ ये तीन, उन्हें श्रद्धता है, उनमें रुचि करता है, उन आप्तादिकों में असद्भावं अर्थात् अतत्त्व अन्यथारूप, उसको भी अपने विशेष ज्ञान के अभाव से केवल गुरु ही के नियोग से जो इस गुरु ने कहा, सो ही अर्हन्त की आज्ञा है, इसप्रकार प्रतीति से श्रद्धान करता है, वह भी सम्यग्दृष्टि ही है, क्योंकि अर्हन्त की आज्ञा का उल्लंघन नहीं करता है ।।२७।।

अर्थ – उस प्रकार असत्य अर्थ का श्रद्धान करनेवाला आज्ञा सम्यग्दृष्टि जीव, जिस काल प्रवीण अन्य आचार्यों द्वारा, पूर्व में ग्रहण किया हुआ असत्यार्थरूप श्रद्धान से विपरीत भाव सत्यार्थ, सो गणधरादिकों के सूत्र दिखाकर सम्यक् प्रकार से निरूपण किया जाए, उसका खोटे हठ से श्रद्धान न करे तो, उस काल से लेकर, वह जीव मिथ्यादृष्टि होता है। क्योंकि सूत्र के अश्रद्धान से जिन आज्ञा के उल्लंघन का सुप्रसिद्धपना है, उसकारण से मिथ्यादृष्टि होता है ।।२८।।

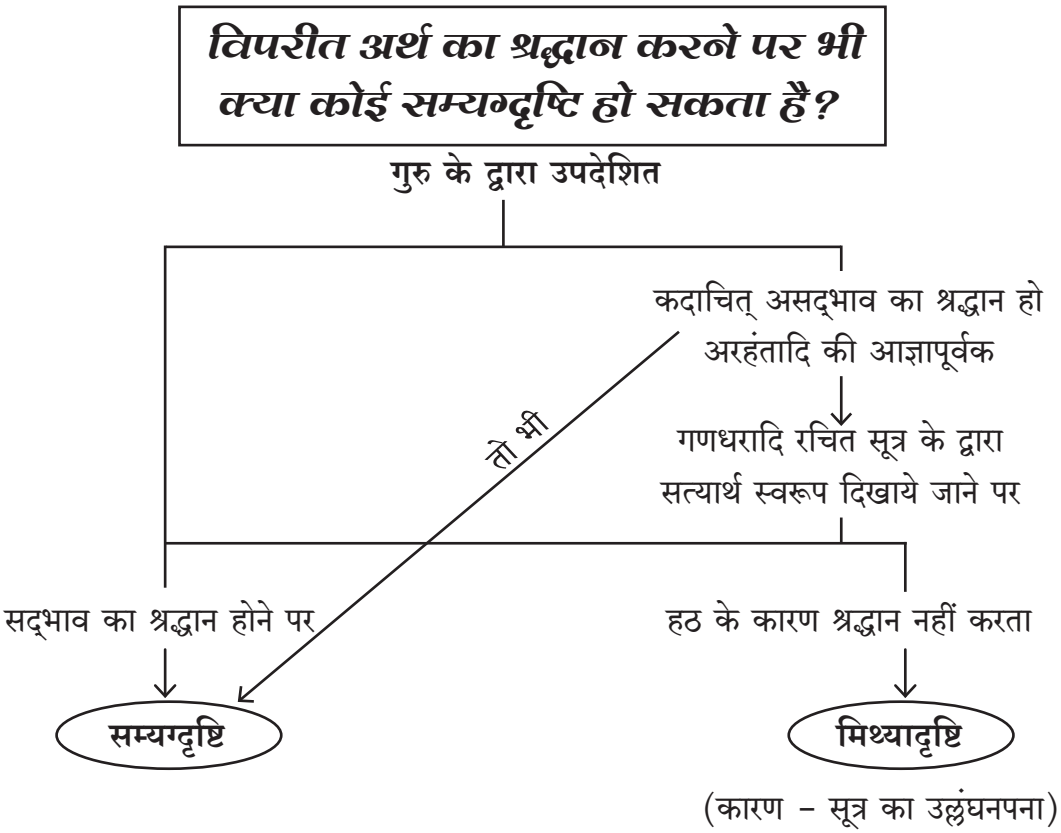

णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि।
जो सद्दहदि जिणुत्तं सम्माइट्ठी अविरदो सो।।२९।।

अर्थ – जो इन्द्रियों के विषयों से तथा त्रस स्थावर जीवों की हिंसा से विरत नहीं है, किन्तु जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित प्रवचन का श्रद्धान करता है वह अविरतसम्यग्दृष्टि है ।।२९।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १२ गाथा नं. २५–२६ का चार्ट देखें ।

पच्चक्खाणुदयादो, संजमभावो ण होदि णवरिं तु।
थोववदो होदि तदो, देसवदो होदि पंचमओ।।३०।।
जो तसवहाउ विरदो, अविरदओ तह य थावरवहादो।
एक्कसमयम्हि जीवो, विरदाविरदो जिणेक्कमई।।३१।।

अर्थ – यहाँ पर प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से पूर्ण संयम तो नहीं होता, किन्तु यहाँ इतनी विशेषता होती है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न रहने से एकदेश व्रत होते हैं। अतएव इस गुणस्थान का नाम देशव्रत या देशसंयम है। इसी को पाँचवाँ गुणस्थान कहते हैं ।।३०।।

अर्थ – जो जीव जिनेन्द्रदेव में अद्वितीय श्रद्धा को रखता हुआ त्रस की हिंसा से विरत और उस ही समय में स्थावर की हिंसा से अविरत होता है, उस जीव को विरताविरत कहते हैं ।।३१।।

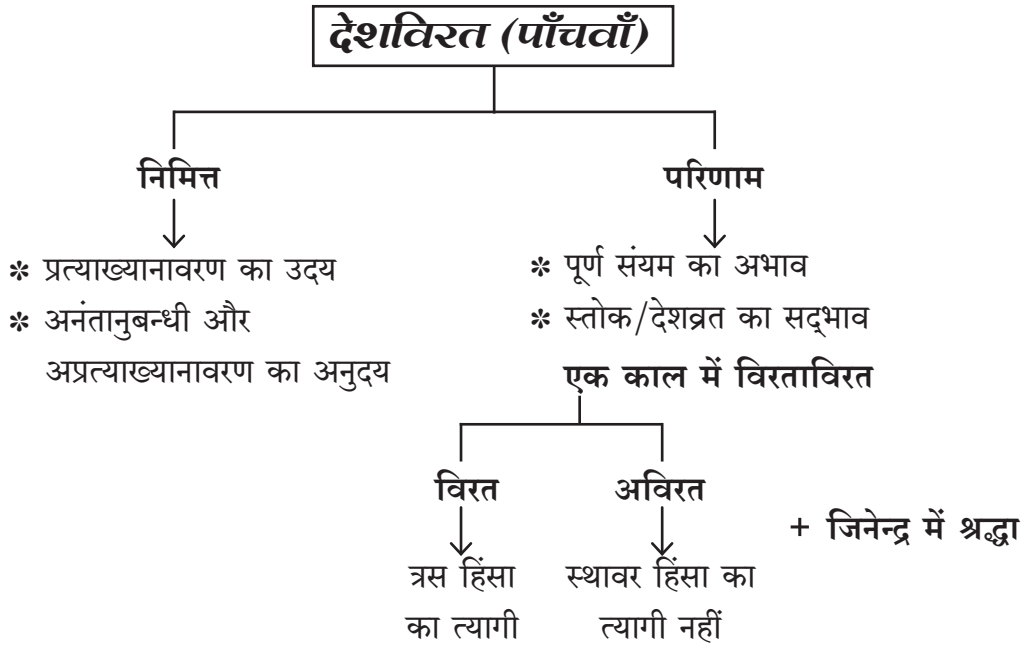

संजलणणोकसायाणुदयादो संजमो हवे जम्हा।
मलजणणपमादो वि य, तम्हा हु पमत्तविरदो सो।।३२।।
वत्तावत्तपमादे, जो वसइ पमत्तसंजदो होदि।
सयलगुणसीलकलिओ, महव्वई चित्तलायरणो।।३३।।

अर्थ – सकल संयम को रोकनेवाली प्रत्याख्यानावरण कषाय का क्षयोपशम होने से पूर्ण संयम तो हो चुका है, किन्तु उस संयम के साथ-साथ संज्वलन और नोकषाय का उदय रहने से संयम में मल को उत्पन्न करने वाला प्रमाद भी होता है। अतएव इस गुणस्थान को प्रमत्तविरत कहते हैं ।।३२।।

अर्थ – जो महाव्रती सम्पूर्ण (२८) मूलगुण और शील के भेदों से युक्त होता हुआ भी व्यक्त एवं अव्यक्त दोनों प्रकार के प्रमादों को करता है वह प्रमत्तसंयत गुणस्थानवाला है। अतएव वह चित्रल आचरणवाला माना गया हैं ।।३३।।

प्रमत्तविरत (छठा)

	प्रमत्त	विरत
निमित्त	संज्वलन और नौ नोकषाय का तीव्र उदय	मिथ्यात्व एवं ३ कषाय चौकड़ी का अनुदय
परिणाम	प्रमाद (मल को उत्पन्न करने वाला) व्यक्त — अव्यक्त चित्रल *(अनेक प्रकार का प्रमाद)*	२८ मूलगुण एवं शील के भेदों से युक्त

विकहा तहा कसाया, इंदिय णिद्दा तहेव पणयो य।
चदु चदु पणमेगेगं, होंति पमादा हु पण्णरस।।३४।।

अर्थ – चार विकथा – स्त्रीकथा, भक्तकथा, राष्ट्रकथा, अवनिपालकथा, चार कषाय – क्रोध, मान, माया, लोभ, पंच इन्द्रिय – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, एक निद्रा और एक प्रणय–स्नेह इस तरह कुल मिलाकर प्रमादों के पन्द्रह भेद हैं ।।३४।।

१५ प्रमाद

- **४ विकथा** (संयम विरुद्ध कथा)
  - स्त्रीकथा
  - भक्त (भोजन) कथा
  - राष्ट्रकथा
  - अवनिपाल (चोर) कथा
- **४ कषाय** (संयम गुण को घाते)
  - क्रोध
  - मान
  - माया
  - लोभ
- **५ इन्द्रिय विषय** (संयम विरोधी इन्द्रिय विषयरूप व्यापार)
  - स्पर्शन
  - रसना
  - घ्राण
  - चक्षु
  - कर्ण
- **निद्रा** (सामान्य का भी ग्रहण नहीं होना)
- **प्रणय** (बाह्य पदार्थ में स्नेह)

प्रमाद के विस्तृत ३७५०० भंग हेतु परिशिष्ट पृष्ठ संख्या ३४३ देखें

संखा तह पत्थारो, परियट्टण णट्ठ तह समुद्दिट्ठं।
एदे पंच पयारा, पमदसमुक्कित्तणे णेया।।३५।।

अर्थ – प्रमाद के विशेष वर्णन के विषय में इन पाँच प्रकारों को समझना चाहिये। संख्या, प्रस्तार, परिवर्तन, नष्ट और समुद्दिष्ट। आलापों के भेदों की गणना को संख्या, संख्या के रखने या निकालने के क्रम को प्रस्तार, एक भेद से दूसरे भेद पर पहँचने के क्रम को परिवर्तन, संख्या के द्वारा भेद के निकालने को नष्ट और भेद को रखकर संख्या निकालने को समुद्दिष्ट कहते हैं ।।३५।।

प्रमाद के अन्य ५ प्रकार

संख्या	प्रस्तार	परिवर्तन	नष्ट	समुदिष्ट
आलापों के भेदों की गिनती	संख्या के रखने/निकालने का क्रम	एक भेद से दूसरे पर पहुँचने का क्रम	संख्या के द्वारा भेद (भंग) निकालना	भेद (भंग) रखकर संख्या निकालना

सव्वे पि पुव्वभंगा, उवरिमभंगेसु एक्कमेक्केसु।
भेलंति त्ति य कमसो, गुणिदे उप्पज्जदे संखा।।३६।।

अर्थ – पूर्व के सब ही भङ्ग आगे के प्रत्येक भङ्ग में मिलते हैं, इसलिये क्रम से गुणा करने पर संख्या उत्पन्न होती है ।।३६।।

संख्या (भंग का जोड़) कैसे लाएँ

विकथा × कषाय × इन्द्रिय विषय × निद्रा × प्रणय
= ४ × ४ × ५ × १ × १ = ८०

पढमं पमदपमाणं, कमेण णिक्खिविय उवरिमाणं च।
पिंडं पडि एक्केकं, णिक्खित्ते होदि पत्थारो।।३७।।
णिक्खित्तु विदियमेत्तं, पढमं तस्सुवरि विदियमेक्केक्कं।
पिंडं पडि णिक्खेओ, एवं सव्वत्थ कायव्वो।।३८।।

अर्थ – प्रथम प्रमाद के प्रमाण का विरलन कर क्रम से निक्षेपण करके उसके एक-एक रूप के प्रति आगे के पिण्डरूप प्रमाद के प्रमाण का निक्षेपण करने पर प्रस्तार होता हैं ।।३७।।

अर्थ – दूसरे प्रमाद का जितना प्रमाण है उतनी जगह पर प्रथम प्रमाद के पिण्ड को रखकर, उसके ऊपर एक-एक पिण्ड के प्रति आगे के प्रमाद में से एक-एक का निक्षेपण करना और आगे भी सर्वत्र इसी प्रकार करना ।।३८।।

प्रस्तार - प्रथम प्रकार

विकथा ४	– | | | | = ४
कषाय ४	– ४ + ४ + ४ + ४ = १६ | | | |
इन्द्रिय ५ विषय	– ५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५+५ = ८० | | | | | | | | | | | | | | | | | | | |

प्रस्तार - द्वितीय प्रकार

विकथा ४	– | | | |
कषाय ४	– | | | | ४ + ४ + ४ + ४ = १६
इन्द्रिय ५	| | | | |
विषय	१६ + १६ + १६ + १६ + १६ = ८०

तदियक्खो अंतगदो आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि पढमक्खो।।३९।।
पढमक्खो अन्तगदो, आदिगदे संकमेदि विदियक्खो।
दोण्णि वि गंतूणंतं आदिगदे संकमेदि तदियक्खो।।४०।।

अर्थ – प्रमाद का तृतीय स्थान अन्त को प्राप्त होकर जब फिर से आदिस्थान को प्राप्त हो जाय तब प्रमाद का दूसरा स्थान भी बदल जाता है। इसी प्रकार जब दूसरा स्थान भी अन्त को प्राप्त होकर फिर आदि को प्राप्त हो जाय तब प्रथम प्रमाद का स्थान बदलता है। निद्रा और स्नेह इनका दूसरा भेद नहीं है, इसलिये इनमें अक्षसंचार नहीं होता ।।३९।।

अर्थ – प्रथमाक्ष जो विकथारूप प्रमादस्थान वह घूमता हुआ जब क्रम से अंततक पहुँचकर फिर स्त्रीकथारूप आदि स्थान पर आता है, तब दूसरा कषाय का स्थान क्रोध को छोड़कर, मानपर आता है। इसी प्रकार जब दूसरा कषाय स्थान भी अन्त को प्राप्त होकर फिर आदि (क्रोध) स्थान पर आता है, तब तीसरा इन्द्रियस्थान बदलता है। अर्थात् स्पर्शन को छोड़कर रसना पर आता है ।।४०।।

प्रथम प्रस्तार का परिवर्तन

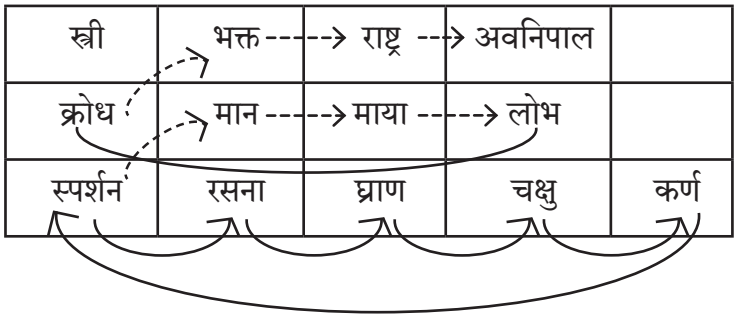

जब इन्द्रियस्थान कर्ण तक होकर पुनः स्पर्शन पर आता है, तब क्रोध का स्थान बदलकर मान होता है। इसी प्रकार जब कषायस्थान लोभ से बदलकर क्रोध पर आता है, तब विकथा में स्त्रीकथा का स्थान छूटकर भक्तकथा का स्थान आता है।

दूसरा प्रस्तार का परिवर्तन

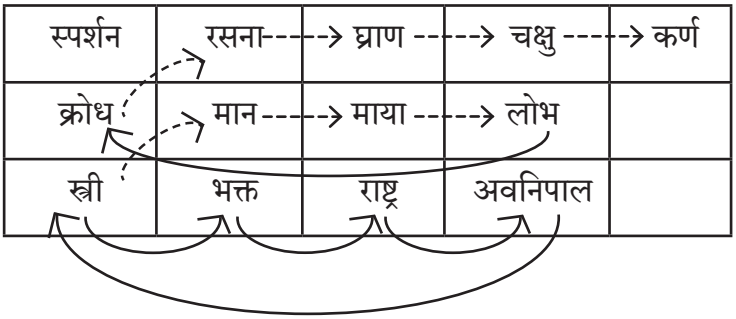

प्रथम प्रस्तार की तरह ही दूसरे प्रस्तार में लगा लेना चाहिये।

सगमाणेहिं विभत्ते सेसं लक्खित्तु जाण अक्खपदं।
लद्धे रूवं पक्खिव सुद्धे अंते ण रूवपक्खेवो।।४१।।

अर्थ – किसी ने जितनेवाँ प्रमाद का भङ्ग पूछा हो उतनी संख्या को रखकर उसमें क्रम से प्रमादप्रमाण का भाग देना चाहिये। भाग देने पर जो शेष रहे, उसको अक्षस्थान समझ जो लब्ध आवे उसमें एक मिलाकर, दूसरे प्रमाद के प्रमाण का भाग देना चाहिये और भाग देने से जो शेष रहे, उसको अक्षस्थान समझना चाहिये। किन्तु शेष स्थान में यदि शून्य हो तो अन्त का अक्षस्थान समझना चाहिये और उसमें एक नहीं मिलाना चाहिये ।।४१।।

नष्ट लाने की विधि

उदाहरण (१.) संख्या = २० प्रथम प्रस्तार से भंग :–

* २० / ५ (इन्द्रिय का जोड़) = ४

(नोट = शेष ० रहा इसलिये आगे के लिए १ न जोड़ें)

शेष = ०
↓
अंतिम इन्द्रिय = **कर्ण**

* ४ / ४ (कषाय का जोड़) = १

शेष = ०
↓
अंतिम कषाय = **लोभ**

* १
↓
पहली कथा = स्त्रीकथा

आलाप – स्नेहवान निद्रालु कर्ण इन्द्रिय के वशीभूत लोभी स्त्रीकथालापी

उदाहरण (२.) संख्या = २० दूसरे प्रस्तार से भंग :–

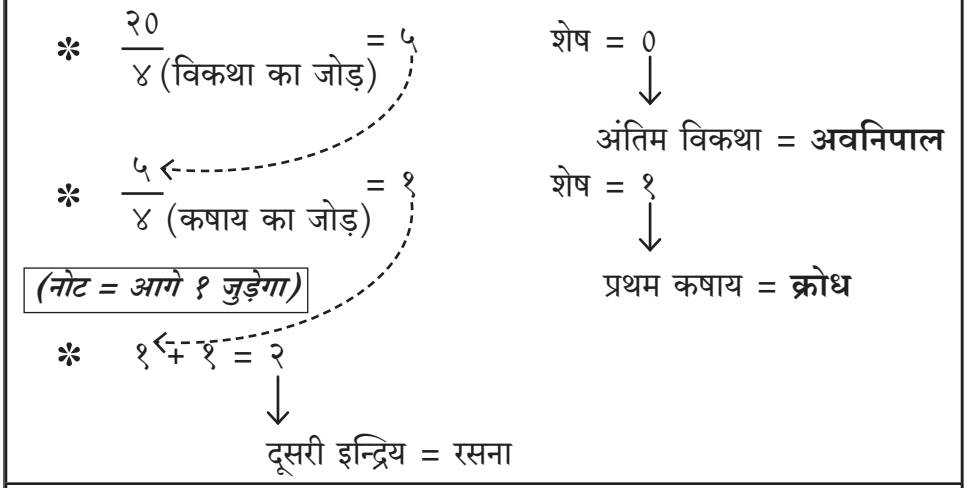

आलाप – अवनिपालकथालापी क्रोधी रसना इन्द्रिय के वशीभूत निद्रालु स्नेहवान

संठाविदूण रूवं, उवरीदो संगुणित्तु सगमाणे।
अवणिज्ज अणंकिदयं, कुज्जा एमेव सव्वत्थ।।४२।।

अर्थ – एक का स्थापन करके आगे के प्रमाद का जितना प्रमाण है, उसके साथ गुणाकार करना चाहिये। और उसमें जो अनंकित (शेष रहे प्रमाद) हो, उसको घटाएँ। इसी प्रकार आगे भी करने से उद्दिष्ट का प्रमाण निकलता है ।।४२।।

उद्दिष्ट लाने की विधि

उदाहरण – राष्ट्रकथालापी मायावी घ्राण इन्द्रियवश निद्रालु स्नेहवान कौन–सा भंग (संख्या) है?		
(१.) प्रथम प्रस्तार से –		
१ × ४ (विकथा का जोड़)	= ४–१ (राष्ट्र कथा के बाद १ कथा रही)	= ३
३ × ४ (कषाय का जोड़)	=१२–१ (लोभ कषाय के लिये)	= ११
११ × ५ (इन्द्रिय का जोड़)	=५५–२ (शेष रही २ इन्द्रिय के लिये)	= **५३**
(२.) दूसरे प्रस्तार से यही आलाप –		
१ × ५ (इन्द्रिय का जोड़)	= ५–२ (शेष इन्द्रिय)	= ३
३ × ४ (कषाय का जोड़)	=१२–१ (शेष कषाय)	= ११
११ × ४ (विकथा का जोड़)	=४४–१ (शेष विकथा)	= **४३**

इगिवितिचपणखपणदशपण्णरसं खवीसतालसट्ठी य।
संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे।।४३।।
इगिवितिचखचडवारम् खसोलरागट्ठदालचउसट्ठिं।
संठविय पमदठाणे, णट्ठुद्दिट्ठं च जाण तिट्ठाणे।।४४।।

अर्थ – तीन प्रमादस्थानों में क्रम से प्रथम पाँच इन्द्रियों के स्थान पर एक, दो, तीन, चार, पाँच को क्रम से स्थापन करना। चार कषायों के स्थान पर शून्य पांच, दश, पन्द्रह स्थापन करना। तथा विकथाओं के स्थान पर क्रम से शून्य बीस, चालीस, साठ, स्थापन करना। ऐसा करने से नष्ट उद्दिष्ट अच्छी तरह समझ में आ सकते हैं। क्योंकि जो भंग विवक्षित हो उसके स्थानों पर रक्खी हुई संख्या को परस्पर जोड़ने से, यह कितनेवां भंग है अथवा इस संख्या वाले भंग में कौन कौनसा प्रमाद आता है, यह समझ में आ सकता है ।।४३।।

अर्थ – दूसरे प्रस्तार की अपेक्षा तीनों प्रमादस्थानों में क्रम से प्रथम विकथाओं के स्थान पर १।२।३।४ स्थापन करना और कषायों के स्थान पर ०।४।८।१२ स्थापन करना और इन्द्रियों की जगह पर ०।१६।३२।४८।६४ स्थापन करना ऐसा करने से दूसरे प्रस्तार की अपेक्षा भी पूर्व की तरह नष्टोद्दिष्ट समझ में आ सकते हैं ।।४४।।

प्रथम प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

स्पर्शन १	रसना २	घ्राण ३	चक्षु ४	कर्ण ५
क्रोध ०	मान ५	माया १०	लोभ १५	
स्त्री ०	भक्त २०	राष्ट्र ४०	अवनिपाल ६०	

दूसरे प्रस्तार का गूढ़ यंत्र

स्त्री १	भक्त २	राष्ट्र ३	अवनिपाल ४	
क्रोध ०	मान ४	माया ८	लोभ १२	
स्पर्शन ०	रसना १६	घ्राण ३२	चक्षु ४८	कर्ण ६४

इन यंत्रों का उपयोग करने की विधि –

*** नष्ट निकालने के लिये – संख्या से भंग**

जिन कोठों का जोड़ मिलाने से वह संख्या मिले उन कोठों के प्रमादों का भंग होगा।

*** उद्दिष्ट निकालने के लिये – भंग से संख्या**

जिन कोठों में वह प्रमाद के उत्तर भेद हो उन कोठों के अंक को जोड़ने पर संख्या मिलेगी।

संजलणणोकसायाणुदओ मंदो जदा तदा होदि।
अपमत्तगुणो तेण य, अपमत्तो संजदो होदि।।४५।।

अर्थ – जब संज्वलन और नोकषाय का मन्द उदय होता है तब सकल संयम से युक्त मुनि के प्रमाद का अभाव हो जाता है। इस ही लिये इस गुणस्थान को अप्रमत्तसंयत कहते हैं। इसके दो भेद हैं – एक स्वस्थानाप्रमत्त दूसरा सातिशयाप्रमत्त ।।४५।।

अप्रमत्त विरत (सातवाँ)

	अप्रमत्त	विरत
निमित्त	संज्वलन और नौ नोकषाय का मंद उदय	३ कषाय चौकड़ी का अनुदय
परिणाम	प्रमाद का अभाव	सकल संयमयुक्त मुनि

जिन गुणस्थानों में क्षायोपशमिक भाव पाये जाते - उनका विस्तार

गुणस्थान	सर्वघाति स्पर्धक		देशघाति स्पर्धक	अन्य प्रकृतियाँ
	वर्तमान उदयाभावी क्षय	आगामी सदवस्थारूप उपशम	उदय	उदय
तीसरा	मिथ्यात्व		सम्यग्मिथ्यात्व (जात्यंतर सर्वघाति)	अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन
चौथा (क्षयोपशम सम्यक्त्व)	मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी ४	६	सम्यक्त्व प्रकृति	〃
पाँचवाँ सामान्य → विशेष →	→ प्रत्याख्यानावरण(अनंत बहुभाग) → अप्रत्याख्यानावरण,अनंतानुबंधी		प्रत्याख्यानावरण (अनंतवाँ भाग)	संज्वलन
छठा सामान्य → विशेष →	→ संज्वलन(अनंत बहुभाग) → प्रत्याख्यानावरण, अप्रत्याख्यानावरण,अनंतानुबंधी		संज्वलन (अनंतवाँ भाग) नोकषाय (तीव्र उदय)	
सातवां	〃		संज्वलन नोकषाय (मंद उदय)	

अप्रमत्त विरत के भेद

स्वस्थान / निरतिशय
* श्रेणी चढ़ने के सम्मुख नहीं, ७-६ में झूलने वाला

सातिशय
* उपशम या क्षपक श्रेणी चढ़ने के सम्मुख

श्रेणी क्या ?

चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम/क्षय में निमित्त वृद्धिंगत वीतराग परिणाम

उपशम श्रेणी	क्षपक श्रेणी
* २१ प्रकृतियों का उपशम	* २१ प्रकृतियों का क्षय
* ८, ९, १०, ११ गुणस्थान	* ८, ९, १०, १२ गुणस्थान

णट्ठासेसपमादो, वयगुणसीलोलिमंडिओ णाणी।
अणुवसमओ अखवओ झाणणिलीणो हु अपमत्तो।।४६।।

अर्थ - जिस संयत के सम्पूर्ण व्यक्ताव्यक्त प्रमाद नष्ट हो चुके हैं, और जो समग्र ही महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण तथा शील से युक्त है, शरीर और आत्मा के भेदज्ञान में तथा मोक्ष के कारणभूत ध्यान में निरन्तर लीन रहता है, ऐसा अप्रमत्त मुनि जब तक उपशमक या क्षपक श्रेणी का आरोहण नहीं करता तब तक उसको स्वस्थान अप्रमत्त अथवा निरतिशय अप्रमत्त कहते हैं ।।४६।।

स्वस्थान अप्रमत्त विरत की विशेषता

* सम्पूर्ण व्यक्त-अव्यक्त प्रमाद नष्ट हो गया
* सम्यग्ज्ञानी
* धर्म्य ध्यान में लीन
* ५ महाव्रत, २८ मूलगुण तथा शील से युक्त
* अनुपशामक एवं अक्षपक

इगवीसमोहखपणुपसमणणिमित्ताणि तिकरणाणि तहिं।
पढमं अधापवत्तं, करणं तु करेदि अपमत्तो।।४७।।

अर्थ - अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह बारह और नव हास्यादिक नोकषाय कुल मिलकर मोहनीय कर्म की इन इक्कीस प्रकृतियों के उपशम या क्षय करने को आत्मा के ये तीन करण अर्थात् तीन प्रकार के विशुद्ध परिणाम निमित्तभूत हैं, - अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। उनमें से सातिशय अप्रमत्त अर्थात् जो श्रेणि चढ़ने के लिये सम्मुख या उद्यत हुआ है वह नियम से पहले अध:प्रवृत्तकरण को करता है ।।४७।।

सातिशय अप्रमत्त विरत का स्वरूप

* चारित्र मोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम या क्षय करने के सम्मुख
* श्रेणी के तीन करणों में से प्रथम अध:प्रवृत्तकरण दशा

अध:करण संबंधी अनुकृष्टि रचना यंत्र हेतु परिशिष्ट पृष्ठ संख्या ३४४ देखें

जह्मा उवरिमभावा, हेट्ठिमभावेहिं सरिसगा होंति।
तह्मा पढमं करणं अधापवत्तोत्ति णिद्दिट्ठं।।४८।।
अन्तोमुहुत्तमेत्तो तक्कालो होदि तत्थ परिणामा।
लोगाणमसंखमिदा, उवरुवरिं सरिसवड्ढिगया।।४९।।
अंतोमुहुत्तकालं, गमिऊण अधापवत्तकरणं तं।
पडिसमयं सुज्झंतो, अपुव्वकरणं समल्लियइ।।५०।।
एदह्मि गुणट्ठाणे, विसरिससमयट्ठियेहिं जीवेहिं।
पुव्वमपत्ता जह्मा, होंति अपुव्वा हु परिणामा।।५१।।
भिण्णसमयट्ठियेहिं दु, जीवेहिं ण होदि सव्वदा सरिसो।
करणेहिं एक्कसमयट्ठियेहिं सरिसो विसरिसो वा।।५२।।
अंतोमुहुत्तमेत्ते पडिसमयमसंखलोगपरिणामा
कमउड्ढा पुव्वगुणे, अणुकट्टी णत्थि णियमेण।।५३।।
तारिसपरिणामट्ठियजीवा हु जिणेहिं गलियतिमिरेहिं।
मोहस्सपुव्वकरणा, खवणुवसमणुज्जया भणिया।।५४।।
णिद्दापयले णट्ठे सदि आऊ उवसमंति उवसमया।
खवयं ढुक्के खवया, णियमेण खवंति मोहं तु।।५५।।
एकह्मि कालसमये, संठाणादीहिं जह णिवट्टंति।
ण णिवट्टंति तहावि य, परिणामेहिं मिहो जेहिं।।५६।।
होंति अणियट्टिणो ते, पडिसमयं जेस्सिमेक्कपरिणामा।
विमलयरझाणहुयवहसिहाहिं णिद्दड्ढ कम्मवणा।।५७।।

अर्थ – अध:प्रवृत्तकरण के काल में से ऊपर के समयवर्ती जीवों के परिणाम नीचे के समयवर्ती जीवों के परिणामों के सदृश अर्थात् संख्या और विशुद्धि की अपेक्षा समान होते हैं, इसलिये प्रथम करण को अध:प्रवृत्त करण कहा है ।।४८।।

अर्थ – इस अध:प्रवृत्तकरण का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है और उसमें परिणाम असंख्यातलोक प्रमाण होते हैं, और ये परिणाम ऊपर-ऊपर सदृश वृद्धि को प्राप्त होते गये हैं ।।४९।।

अर्थ – जिसका अन्तर्मुहूर्त मात्र काल है, ऐसे अध:प्रवृत्तकरण को बिताकर वह सातिशय

अप्रमत्त जब प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धि को लिए हुए अपूर्वकरण जाति के परिणामों को करता है, तब उसको अपूर्वकरणनामक अष्टमगुणस्थानवर्ती कहते हैं ।।५०।।

अर्थ – इस गुणस्थान में भिन्नसमयवर्ती जीव, जो पूर्व समय में कभी भी प्राप्त नहीं हुए थे ऐसे अपूर्व परिणामों को ही धारण करते हैं, इसलिये इस गुणस्थान का नाम अपूर्वकरण है ।।५१।।

अर्थ – यहाँ पर (अपूर्वकरण में) भिन्न समयवर्ती जीवों में विशुद्ध परिणामों की अपेक्षा कभी भी सादृश्य नहीं पाया जाता; किन्तु एक समयवर्ती जीवों में सादृश्य और विसादृश्य दोनों ही पाये जाते हैं ।।५२।।

अर्थ – इस गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त मात्र है और इसमें परिणाम असंख्यात लोकप्रमाण होते हैं, और वे परिणाम उत्तरोत्तर प्रतिसमय समानवृद्धि को लिये हुए हैं तथा इस गुणस्थान में नियम से अनुकृष्टिरचना नहीं होती है ।।५३।।

अर्थ – अज्ञान अन्धकार से सर्वथा रहित जिनेन्द्रदेव ने कहा है कि उक्त परिणामों को धारण करने वाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव मोहनीयकर्म की शेष प्रकृतियों का क्षपण अथवा उपशमन करने में उद्यत होते हैं ।।५४।।

अर्थ – जिनके निद्रा और प्रचला की बंधव्युच्छित्ति हो चुकी है तथा जिनका आयुकर्म अभी विद्यमान है, ऐसे उपशमश्रेणी का आरोहण करने वाले जीव शेष मोहनीय का उपशमन करते हैं और जो क्षपकश्रेणी का आरोहण करने वाले हैं, वे नियम से मोहनीय का क्षपण करते हैं ।।५५।।

अर्थ – अन्तर्मुहूर्तमात्र अनिवृत्तिकरण के काल में से आदि या मध्य या अन्त के एक समयवर्ती अनेक जीवों में जिसप्रकार शरीर की अवगाहना आदि बाह्य करणों से तथा ज्ञानावरणादिक कर्म के क्षयोपशमादि अन्तरङ्ग करणों से परस्पर में भेद पाया जाता है, उसप्रकार जिन परिणामों के निमित्त से परस्पर में भेद नहीं पाया जाता उनको अनिवृत्तिकरण कहते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थान का जितना काल है, उतने ही उसके परिणाम हैं इसलिये उसके काल के प्रत्येक समय में अनिवृत्तिकरण का एक ही परिणाम होता है तथा ये परिणाम अत्यन्त निर्मल ध्यानरूप अग्नि की शिखाओं की सहायता से कर्मवन को भस्म कर देते हैं ।।५६-५७।।

तीन करण की विशेषता

(नोट – इसी के माध्यम से सातिशय अप्रमत्तविरत, आठवें एवं नवें गुणस्थान का वर्णन)

	अध:प्रवृत्त करण	अपूर्वकरण	अनिवृत्तिकरण
परिणाम	ऊपर समय वाले जीवों के परिणाम नीचे समय वालों से मिलते हैं	प्रतिसमय अपूर्व (जो पहले न हुये हों) ऐसे नवीन परिणाम होते हैं	जहाँ संस्थानादि का भेद होने पर भी परिणामों में भेद नहीं

	अध:प्रवृत्त करण	अपूर्वकरण	अनिवृत्तिकरण
एक समयवर्ती जीवों के परिणाम	समान भी, भिन्न भी	समान भी, भिन्न भी	समान ही
भिन्न समयवर्ती जीवों के परिणाम	समान भी, भिन्न भी	भिन्न ही	भिन्न ही
अनुकृष्टि रचना	होती है	नहीं	नहीं
परिणामों की संख्या	असंख्यात लोकप्रमाण (ऊपर-२ समान वृद्धि सहित)	असंख्यात लोकप्रमाण (अध:प्रवृत्तकरण से असंख्यातगुणे)	असंख्यात -जितने इसके समय
काल (तीनों का अन्तर्मुहूर्त)	सबसे बड़ा	अध:प्रवृत्तकरण से संख्यात गुणा हीन	अपूर्वकरण से संख्यात गुणा हीन
उदाहरण	१६ समय	८ समय	४ समय
आवश्यक	१. प्रतिसमय अनंतगुणी विशुद्धता २. स्थितिबंधापसरण ३. पाप-प्रकृतियों का अनुभागबंधापसरण ४. पुण्य-प्रकृतियों का अनुभाग बढ़ता हुआ ***(नोट - ये आवश्यक नवीन बंध में होते हैं)***	पूर्व के चार + ५. गुणश्रेणी निर्जरा ६. गुण संक्रमण ७. स्थिति कांडकघात ८.अनुभागकांडकघात ***(नोट - ये ४ कार्य सत्ता के कर्मों में होते हैं)***	पूर्व की आठ + ९. सूक्ष्म कृष्टि
कार्य	उपशम या क्षपक श्रेणी की सम्मुखता	चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियों के उपशम या क्षय की तैयारी	चारित्रमोहनीय की २० प्रकृतियों का उपशम या क्षय
विशेष		आठवें के प्रथम भाग में जब तक निद्रा-प्रचला की बंध-व्युच्छित्ति नहीं होती मरण नहीं होता	ध्यानरूपी अग्निशिखा के द्वारा कर्मवन को दग्ध करने में समर्थ

धुदकोसुंभयवत्थं, होहि जहा सुहमरायसंजुत्तं।
एवं सुहमकसाओ, सुहमसरागोत्ति णादव्वो।।५८।।
पुव्वापुव्वप्फड्डय, बादरसुहमगयकिट्टि अणुभागा।
हीणकमाणंतगुणेणवरादु वरं च हेट्ठस्स।।५९।।
अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहमसांपराओ, जहखादेणूणओ किं चि।।६०।।

अर्थ – जिस प्रकार धुले हुए कौसुंभी वस्त्र में लालिमा – सुर्खी सूक्ष्म रह जाती है, उसी प्रकार जो जीव अत्यन्त सूक्ष्म राग–लोभ कषाय से युक्त है उसको सूक्ष्मसाम्पराय नामक दशम गुण–स्थानवर्ती कहते हैं ।।५८।।

अर्थ – पूर्वस्पर्धक से अपूर्वस्पर्धक के और अपूर्वस्पर्धक से बादरकृष्टि के तथा बादरकृष्टि से सूक्ष्मकृष्टि के अनुभाग क्रम से अनंतगुणे–अनंतगुणे हीन हैं। और ऊपर के (पूर्व–पूर्व के) जघन्य से नीचे का (उत्तरोत्तर का) उत्कृष्ट और अपने–अपने उत्कृष्ट से अपना–अपना जघन्य अनंतगुणा अनंतगुणा हीन है ।।५९।।

अर्थ – चाहे उपशम श्रेणी का आरोहण करनेवाला हो अथवा क्षपकश्रेणी का आरोहण करनेवाला हो, परन्तु जो जीव सूक्ष्मलोभ के उदय का अनुभव कर रहा है, ऐसा दशवें गुणस्थानवाला जीव यथाख्यात चारित्र से कुछ ही न्यून रहता है ।।६०।।

सूक्ष्मसांपराय(कषाय)(दसवाँ)

निमित्त	सूक्ष्म संज्वलन लोभ का उदय
परिणाम	* अत्यंत सूक्ष्म राग (लोभ कषाय) से संयुक्त * यथाख्यात चारित्र से किंचित् न्यून चारित्र
उदाहरण	धुले हुए कौसुंभी वस्त्र के समान सूक्ष्म लालिमा

कृष्टि किस क्रम से होती है ?

कृष्टि = अनुभाग को कृष करना अर्थात् घटाना	उत्कृष्ट अनुभाग युक्त पूर्व स्पर्धक जघन्य अनुभाग युक्त पूर्व स्पर्धक	अनुभाग अनंतगुणा हीन होता जाता है
	उत्कृष्ट अनुभाग युक्त अपूर्व स्पर्धक जघन्य अनुभाग युक्त अपूर्व स्पर्धक	
	उत्कृष्ट अनुभाग युक्त बादर कृष्टि जघन्य अनुभाग युक्त बादर कृष्टि	
	उत्कृष्ट अनुभाग युक्त सूक्ष्म कृष्टि जघन्य अनुभाग युक्त सूक्ष्म कृष्टि	
कृष्टियाँ नौवें गुणस्थान में होती है। उनका वेदन दसवें में होता है।		

पूर्व और अपूर्व स्पर्धक में अंतर

	पूर्व स्पर्धक	अपूर्व स्पर्धक
स्वरूप	संसार-अवस्था में पाए जाने वाले कर्म की शक्ति समूहरूप	अनिवृत्तिकरण परिणामों से किये गए पूर्व स्पर्धक के अनंतवें भाग प्रमाण

कदकफलजुदजलं वा, सरए सरवाणियं व णिम्मलयं।
सयलोवसंतमोहो, उवसंतकसायओ होदि।।६१।।

अर्थ - निर्मली फल से युक्त जल की तरह, अथवा शरद ऋतु में ऊपर से स्वच्छ हो जाने वाले सरोवर के जल की तरह, सम्पूर्ण मोहनीय कर्म के उपशम से उत्पन्न होने वाले निर्मल परिणामों को उपशान्तकषाय नामक ग्यारहवाँ गुणस्थान कहते हैं ।।६१।।

उपशांतकषाय (ग्यारहवाँ)

निमित्त	सर्व मोहनीय कर्म का उपशम
परिणाम	पूर्ण वीतराग निर्मल दशा
उदाहरण	१. निर्मली फल से सहित स्वच्छ जल २. शरद कालीन सरोवर का जल

वीतरागता होने पर भी पतन के २ कारण

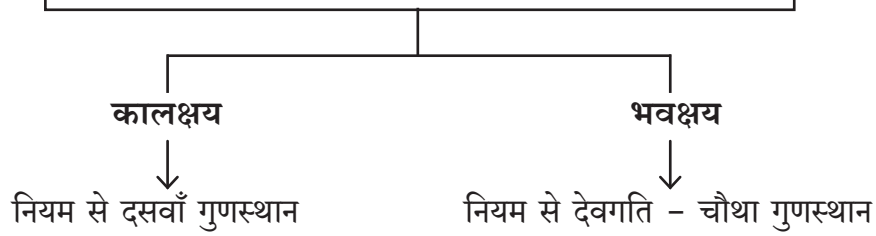

णिस्सेसखीणमोहो, फलिहामलभायणुदयसमचित्तो।
खीणकसाओ भण्णदि, णिग्गंथो वीयरायेहिं।।६२।।

अर्थ - जिस निर्ग्रन्थ का चित्त मोहनीय कर्म के सर्वथा क्षीण हो जाने से स्फटिक के निर्मल पात्र में रखे हुए जल के समान निर्मल हो गया है उसको वीतराग देव ने क्षीणकषाय नाम का बारहवें गुणस्थानवर्ती कहा है ।।६२।।

क्षीणकषाय (बारहवाँ)

निमित्त	सर्व मोहनीय कर्म का क्षय
परिणाम	अत्यंत निर्मल वीतरागी परिणाम
उदाहरण	स्फटिक मणि के पात्र में रखा निर्मल जल
विशेष	सर्व अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से रहित, परमार्थ से निर्ग्रन्थ

केवलणाणदिवायरकिरण-कलावप्पणासियण्णाणो।
णवकेवललद्धुग्गम सुजणियपरमप्पववएसो।।६३।।
असहायणाणदंसणसहिओ इदि केवली हु जोगेण।
जुत्तो ति सजोगजिणो, अणाइणिहणारिसे उत्तो।।६४।।

अर्थ - जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्य की अविभागप्रतिच्छेदरूप किरणों के समूह से (उत्कृष्ट अनंतानन्त प्रमाण) अज्ञान-अन्धकार सर्वथा नष्ट हो गया हो और जिसको नव केवललब्धियों के (क्षायिक-सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य) प्रकट होने से 'परमात्मा' यह व्यपदेश (संज्ञा) प्राप्त हो गया है, वह इन्द्रिय-आलोक आदि की अपेक्षा न रखने वाले ज्ञान-दर्शन से युक्त होने के कारण केवली और योग से युक्त रहने के कारण सयोग तथा घाति कर्मों से रहित होने के कारण जिन कहा जाता है, ऐसा अनादिनिधन आर्ष आगम में कहा है ।।६३-६४।।

सयोग केवली जिन (तेरहवाँ गुणस्थान)

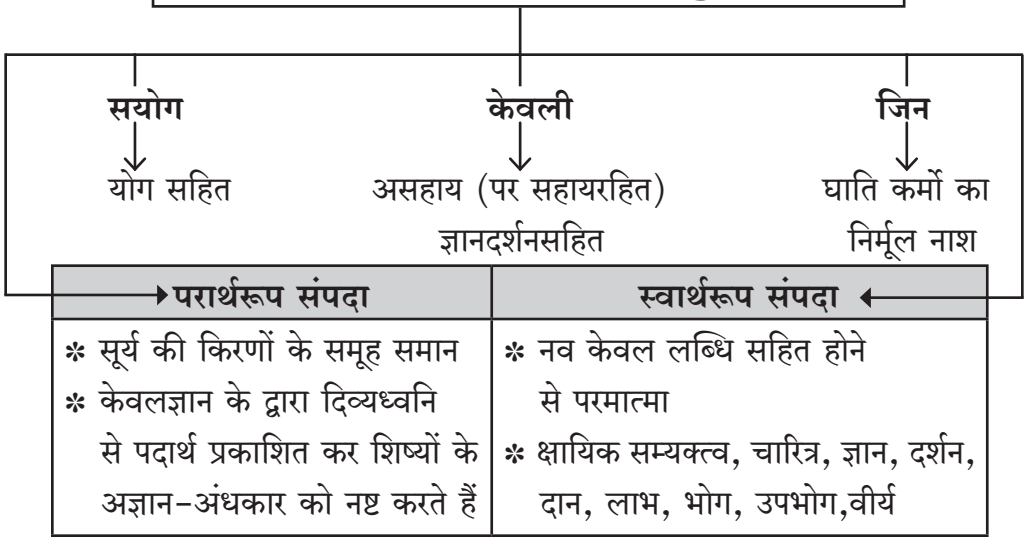

सीलेसिं संपत्तो, णिरुद्धणिस्सेसआसवो जीवो।
कम्परयविप्पमुक्को, गयजोगो केवली होदि।।६५।।

अर्थ - जो अठारह हजार शील के भेदों का स्वामी हो चुका है और जिसके कर्मों के आने का द्वार रूप आस्रव सर्वथा बन्द हो गया है तथा सत्त्व और उदयरूप अवस्था को प्राप्त कर्मरूप रज

की सर्वथा निर्जरा होने से उस कर्म से सर्वथा मुक्त होने के सम्मुख है, उस योगरहित केवली को चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोग केवली कहते हैं ।।६५।।

अयोग केवली जिन (चौदहवाँ) गुणस्थान)

- १८,००० शील के भेदों के स्वामी
- सर्व आस्रव निरोधक
- उदय व सत्त्व प्राप्त सर्व कर्मरज से मुक्त होने के सम्मुख
- योग रहित
- केवली

मूलाचार अनुसार शील के १८,००० भेद

मनोयोग १		वचन योग २		काययोग ३					
मनकरण ०		वचन करण ३		काय करण ६					
आहार संज्ञा ०		भय संज्ञा ९		मैथुन संज्ञा १८		परिग्रह संज्ञा २७			
स्पर्शन ०		रसना ३६		घ्राण ७२		चक्षु १०८		कर्ण १४४	
पृथ्वी ०	जल १८०	अग्नि ३६०	वायु ५४०	प्रत्येक ७२०	साधारण ९००	द्वीन्द्रिय १०८०	त्रीन्द्रिय १२६०	चतुरिन्द्रिय १४४०	पंचेन्द्रिय १६२०
उ.क्षमा ०	मार्दव १८००	आर्जव ३६००	शौच ५४००	सत्य ७२००	संयम ९०००	तप १०८००	त्याग १२६००	आकिंचन १४४००	ब्रह्मचर्य १६२००

सम्मत्तुप्पत्तीये, सावयविरदे अणंतकम्मंसे।
दंसणमोहक्खवगे, कसायउवसामगे य उवसंते।।६६।।
खवगे य खीणमोहे, जिणेसु दव्वा असंखगुणिदकमा।
तव्विवरीया काला, संखेज्जगुणक्कमा होंति।।६७।।

अर्थ – सम्यक्त्वोत्पत्ति अर्थात् सातिशय मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनंतानुबन्धी कर्म का विसंयोजन करनेवाला, दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय करनेवाला, कषायों का उपशम करने वाले ८-९-१०वें गुणस्थानवर्ती जीव, उपशान्तकषाय, कषायों का क्षपण करनेवाले ८-९-१०वें गुणस्थानवर्ती जीव, क्षीणमोह, सयोगी और अयोगी दोनों प्रकार के जिन, इन ग्यारह स्थानों में द्रव्य की

अपेक्षा कर्मों की निर्जरा क्रम से असंख्यातगुणी-असंख्यातगुणी अधिक-अधिक होती जाती है और उसका काल इससे विपरीत है। क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणा-संख्यातगुणा हीन है ।।६६-६७।।

गुणश्रेणी निर्जरा में विशेषता के १० स्थान (एक ही जीव की अपेक्षा)

स्थान	स्वरूप	स्वामी (गुणस्थान अपेक्षा)	निर्जरा
सातिशय मिथ्यादृष्टि	प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले करण लब्धि में	१	आगे-आगे के स्थान में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।
१. सम्यग्दृष्टि	अव्रती श्रावक	४	
२. श्रावक	व्रती श्रावक	५	
३. विरत	मुनि	७	
४. अनंतानुबंधी वियोजक	अनंतानुबंधी को अप्रत्याख्यानावरण आदि रूप विसंयोजित करने वाला	४-७	
५. दर्शनमोह क्षपक	दर्शनमोह का क्षय करने वाला	४-७	**काल –** सामान्य से सबका अंतर्मुहूर्त काल होने पर भी आगे-आगे संख्यात गुणाहीन काल है।
६. उपशामक	चारित्रमोह दबाने वाला	उपशम श्रेणी ८-१०	
७. उपशांत कषाय	चारित्रमोह दबने पर	११	
८. क्षपक	चारित्रमोह को क्षय करने वाला	क्षपक श्रेणी ८-१०	
९. क्षीण मोह	चारित्रमोह के क्षय होने पर	१२	
१०. सयोगी जिन	घातिया कर्मों का क्षय करने के बाद योग सहित	१३	
यहाँ वही का वही जीव आगे-आगे के स्थानों का धारक होता हुआ पूर्व-पूर्व स्थान की अपेक्षा असंख्यात गुणी निर्जरा करता हैं			

अट्ठविहकम्मवियला, सीदीभूदा णिरंजणा णिच्चा।
अट्ठगुणा किदकिच्चा, लोयग्गणिवासिणो सिद्धा।।६८।।

सदसिव संखो मक्कडि, बुद्धो णेयाइयो य वेसेसी।
ईसरमंडलिदंसण,विदूसणट्ठं कयं एदं।।६९।।

अर्थ – जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों से रहित हैं, अनंतसुखरूपी अमृत के अनुभव करनेवाले शान्तिमय हैं, नवीन कर्मबंध को कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्मरूपी अञ्जन से रहित हैं, सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य, अव्याबाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, ये आठ मुख्य गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं, कृतकृत्य हैं, लोक के अग्रभाग में निवास करनेवाले हैं, उनको सिद्ध कहते हैं ।।६८।।

अर्थ – सदाशिव, सांख्य, मस्करी, बौद्ध, नैयायिक और वैशेषिक, कर्तृवादी (ईश्वर को कर्त्ता मानने वाले), मण्डली इनके मतों का निराकरण करने के लिये ये विशेषण दिये हैं ।।६९।।

सिद्धों के विशेषण एवं आठ मतों का खण्डन

विशेषण		किस मत का खण्डन	मत की मान्यता (जीव...	निराकरण
१	**ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित**	सदाशिव	...सदा कर्म से रहित हैं	मुक्ति होने पर ही कर्म से रहित होता है
		मीमांसक	... के मुक्ति नहीं	कर्मरहित होने पर मुक्ति होती है
२	**सुख स्वरूप**	सांख्यमत	...को मुक्ति में सुख नहीं	सर्व दु:खों का अभाव कर जीव ही मुक्ति में सुखी होता है
३	**निरंजन (भाव कर्मों से रहित)**	मस्करी सन्यासी	...मुक्ति होने पर संसार में पुन: आते हैं	भाव कर्म के अभाव से नवीन द्रव्य कर्म नहीं होते। उसके अभाव में संसार नहीं होता
४	**नित्य**	बौद्ध	...क्षणिक हैं	सूक्ष्म अर्थपर्याय का उत्पाद-व्यय, परंतु द्रव्य सदा नित्य
५	**आठ गुणों से सहित**	* नैयायिक * वैशेषिक	... को मुक्ति में बुद्धि आदि गुणों का विनाश होता है	अनंतानंत गुण प्रकट होते हैं
६	**कृतकृत्य (कुछ करना शेष नहीं)**	ईश्वर सृष्टिवाद	ईश्वर सृष्टि बनाता है	सकल कर्म नाश होने पर कुछ करना शेष नहीं रहता
७	**लोक के अग्र भाग में स्थित**	मण्डली	...सदा ऊपर को गमन करता, कभी ठहरता नहीं	लोक के आगे धर्मास्तिकाय का अभाव होने से तनु-वातवलय में स्थित रहता हैं

गुणस्थान सम्बन्धी अन्य उपयोगी विषय

गुणस्थानों में मोहनीय का उदय

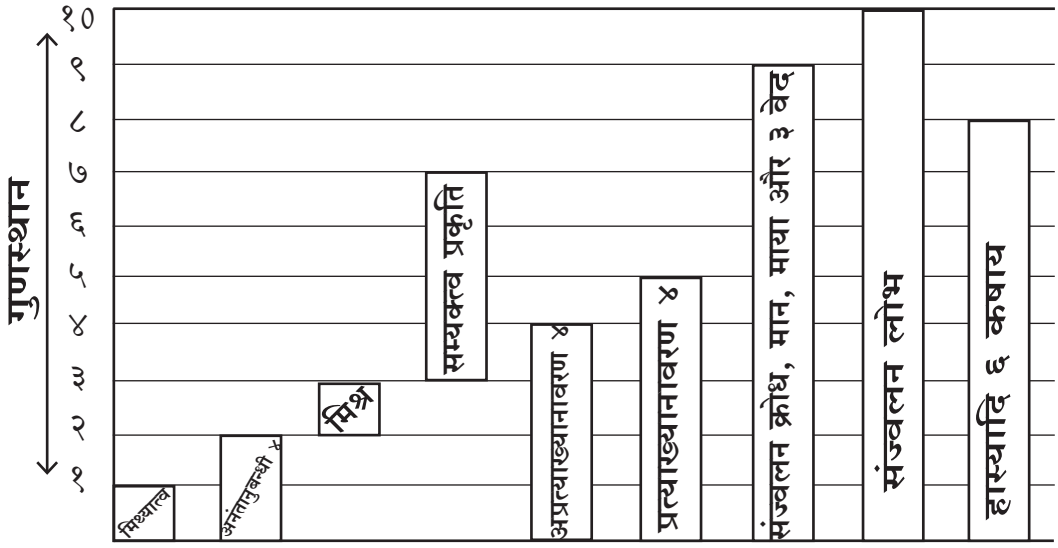

६ से १० गुणस्थान में संज्वलन का उदय कैसा ?

गुणस्थान	संज्वलन का उदय	गुणस्थान	संज्वलन का उदय
६	तीव्र	८	मंदतर
७	मंद	९	मंदतम
		१०	सूक्ष्म

गुणस्थानों में गमन- आगमन

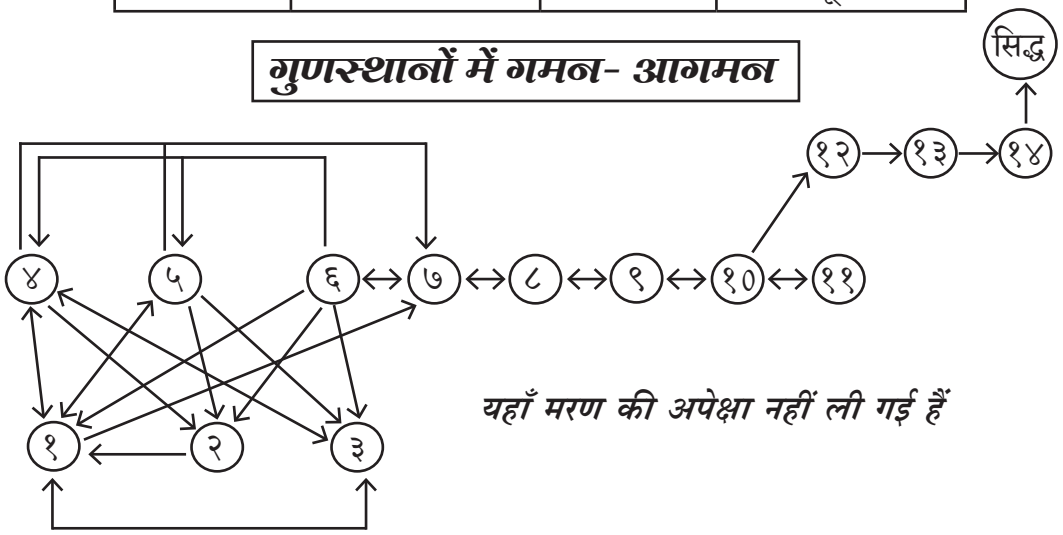

यहाँ मरण की अपेक्षा नहीं ली गई हैं

गुण-स्थान	जीव सदा काल पाए जाते	मुक्त होन के लिए अनिवार्य गुणस्थान	चारों गति के जीवों की कुल संख्या (उत्कृष्ट)	मनुष्यों की संख्या (उत्कृष्ट)	सीधे	
					गमन	आगमन
१	√	√	अनंतानन्त	**पर्याप्त**-२९ अंक प्रमाण **अपर्याप्त**- असंख्यात	३,४,५,७	६,५,४,३,२
२			असंख्यात	५२ करोड़	१ में नियम से	४,५,६
३			असंख्यात	१०४ करोड़	१,४	१,४,५,६
४	√		असंख्यात	७०० करोड़	१,२,३,५,७	१,३,५,६ मरण अपेक्षा- ७ से ११
५	√		असंख्यात	१३ करोड़	१,२,३,४,७	१,४,६
६	√	√	५ करोड़, ९३,९८,२०६	← ये ही क्योंकि ये गुणस्थान सिर्फ मनुष्य गति में ही पाए जाते हैं	१,२,३,४,५,७	एकमात्र ७
७	√	√	२ करोड़, ९६,९९,१०३		४(मरण),६,८	१,४,५,६,८
८		√	२९९+५९८ = ८९७		४(मरण),७,९	७,९
९		√	〃		४(मरण),८,१०	८,१०
१०		√	〃		४(मरण), ९,११,१२	९,११
११			२९९		४(मरण),१०	१०
१२		√	५९८		१३	१०
१३	√	√	८ लाख, ९८,५०२		१४	१२
१४		√	५९८		गुणस्थानातीत - सिद्ध	१३

गुण-स्थान	काल	
	जघन्य	उत्कृष्ट
१	अन्तर्मुहूर्त	* अनादि अनंत * अनादि सांत * सादि सांत-कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन
२	१ समय	६ आवली
३	अन्तर्मुहूर्त	जघन्य से संख्यात गुणा ज्यादा = अन्तर्मुहूर्त
४	〃	साधिक ३३ सागर
५	〃	अन्तर्मुहूर्त कम १ कोटि पूर्व
६	* १ समय (मरण अपेक्षा) * अन्तर्मुहूर्त (सामान्य से)	अन्तर्मुहूर्त
७	〃	अन्तर्मुहूर्त (ये ६ के काल से आधा होता है)
८	〃	यथायोग्य अन्तर्मुहूर्त
९	〃	〃
१०	〃	〃
११	〃	〃 (२ क्षुद्र भव = लगभग १/१२ सेकण्ड)
१२	जघन्य उत्कृष्ट का भेद नहीं अन्तर्मुहूर्त (४ क्षुद्र भव = १/६ सेकण्ड)	
१३	〃	८ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम १ कोटि पूर्व
१४	अन्तर्मुहूर्त (५ ह्रस्व अक्षरों अ,इ,उ,ऋ,ऌ)का उच्चारण काल	

काल संबंधी श्रेणी में नियम
*अगर मरण न हो तो जघन्य-उत्कृष्ट काल के भेद नहीं
*क्षपक श्रेणी चढ़ने का काल सबसे अधिक
*उपशम श्रेणी चढ़ने का काल क्षपक श्रेणी से कुछ कम
* उपशम श्रेणी में उतरने का काल चढ़ने से कुछ कम

दोनों श्रेणियों के गुणस्थानों के बड़े-छोटे अन्तर्मुहूर्त का अल्पबहुत्व	
सबसे छोटा	१०
उससे बड़ा	क्षुद्र भव
〃	११
〃	१२
〃	९
〃	८

अधिकार २ - जीवसमास

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
जीवसमास का लक्षण	७०-७१	२	३८
संक्षेप से १४ जीवसमास	७२	१	३९
विस्तार से ५७ जीवसमास	७३	१	४०
५७ जीवसमास के विशेष वर्णन हेतु स्थानादि ४ अधिकारों के नाम	७४	१	४१
स्थान अधिकार	७५-८०	६	४२
योनि अधिकार	८१-९३	१३	४६
शरीर की अवगाहना	९४-११२	१९	५१
कुल के भेद	११३-११७	५	६१
कुल गाथाएँ		४८	

जेहिं अणेया जीवा, णज्जंते बहुविहा वि तज्जादी।
ते पुण संगहिदत्था, जीवसमासा त्ति विण्णेया।।७०।।

अर्थ - जिनके द्वारा अनेक जीव तथा उनकी अनेक प्रकार की जाति जानी जाय, उन धर्मों को अनेक पदार्थों का संग्रह करने वाले होने से जीवसमास कहते हैं, ऐसा समझना चाहिये ।।७०।।

जीवसमास किसे कहते हैं ?

जिन सदृश धर्मों द्वारा

अनेक जीव — उनकी अनेक प्रकार की जातियों

का संग्रह किया जा सके

↓

वे सदृश धर्म = **जीव समास**

जीव + समास = जीवों को + इकट्ठा करने वाले ⟶ सदृश धर्म

तसचदुजुगाण मज्झे, अविरुद्धेहिं जुदजादिकम्मुदये।
जीवसमासा होंति हु, तब्भवसारिच्छसामण्णा।।७१।।

अर्थ - त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त और प्रत्येक-साधारण, इन चार युगलों में से अविरुद्ध त्रसादि कर्मों से युक्त जाति नामकर्म का उदय होने पर जीवों में होने वाले ऊर्ध्वतासामान्यरूप या तिर्यक्सामान्यरूप धर्मों को जीवसमास कहते हैं ।।७१।।

किन धर्मों के साथ किन धर्मों का विरोध और अविरोध है -

क्र.	किसके साथ	विरोध	अविरोध
१	एकेन्द्रिय	त्रस	शेष सभी
२	द्वीन्द्रियादि	स्थावर, सूक्ष्म, साधारण	〃
३	त्रस	〃 〃 〃	〃
४	स्थावर	त्रस	〃
५	बादर	सूक्ष्म	〃
६	सूक्ष्म	त्रस, बादर	〃
७	पर्याप्त	अपर्याप्त	〃
८	अपर्याप्त	पर्याप्त	〃
९	प्रत्येक	साधारण	〃
१०	साधारण	त्रस, प्रत्येक	〃

बादरसुहमेइंदिय, बितिचउरिंदिय असण्णिसण्णी य।
पज्जत्तापज्जत्ता, एवं ते चोद्दसा होंति।।७२।।

अर्थ - एकेन्द्रिय के बादर, सूक्ष्म दो भेद। पुनश्च विकलत्रय के द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तीन भेद। पुनश्च पंचेन्द्रिय के संज्ञी, असंज्ञी दो भेद, इस तरह सात जीव भेद हुये। ये एक एक भेद पर्याप्त-अपर्याप्तरूप है। इस तरह संक्षेप से चौदह जीवसमास होते हैं ।।७२।।

संक्षेप में १४ जीवसमास

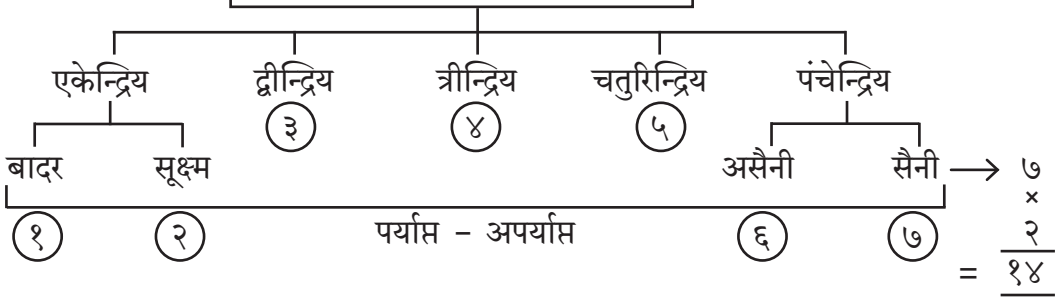

भूआउतेउवाऊ, णिच्चचदुग्गदिणिगोदथूलिदरा।
पत्तेयपदिट्ठिदरा, तस पण पुण्णा अपुण्णदुगा।।७३।।

अर्थ - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतर(चतुर्गति) निगोद। इन छह के बादर सूक्ष्म के भेद से बारह भेद होते हैं तथा प्रत्येक के दो भेद - एक प्रतिष्ठित दूसरा अप्रतिष्ठित और त्रस के पाँच भेद द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय और संज्ञी पंचेन्द्रिय। इस तरह सब मिलाकर उन्नीस भेद होते हैं ।।७३।।

सामान्य से जीवसमास के १९ भेद

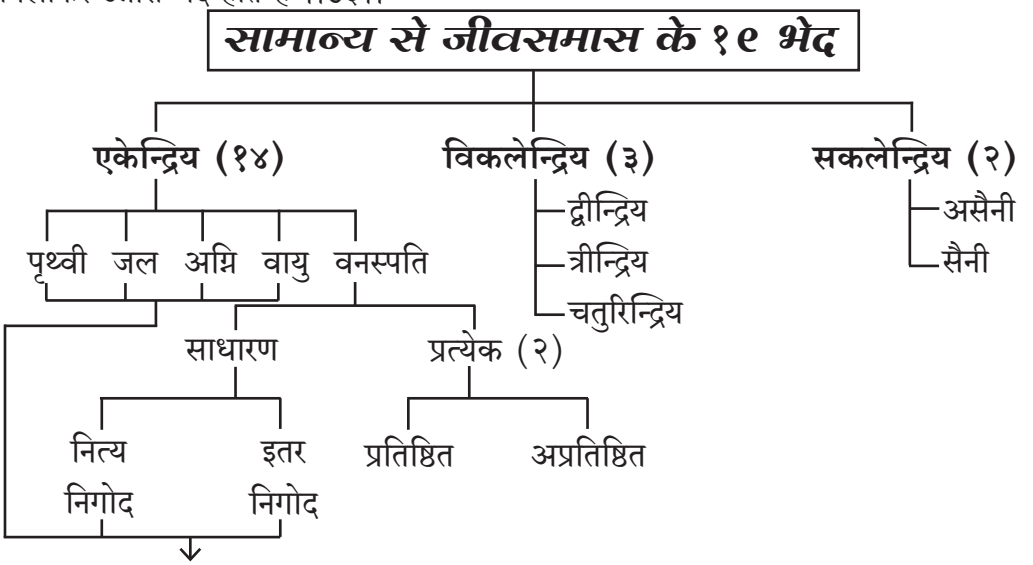

* पृथ्वी, जल,अग्नि,वायु, नित्य निगोद, इतर निगोद	बादर-सूक्ष्म	६ × २	= १२
* प्रत्येक वनस्पति	प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित	१ × २	= २
* विकलेन्द्रिय			= ३
* सकलेन्द्रिय	सैनी-असैनी	१ × २	= २
		कुल	**= १९**

जीवसमास के ५७ भेद

उपर्युक्त १९ × ३ = ५७

	पर्याप्त	**निर्वृत्त्यपर्याप्त**	**लब्ध्यपर्याप्त**
स्वरूप	जिनकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो	शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने से पूर्व	* जिनकी एक भी पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही मरण हो जाये
किस नाम कर्म का उदय	पर्याप्त		अपर्याप्त

ठाणेहिं वि जोणीहिं वि, देहोग्गाहणकुलाण भेदेहिं।
जीवसमासा सव्वे, परूविदव्वा जहाकमसो।।७४।।

अर्थ – स्थान, योनि, शरीर की अवगाहना और कुलों के भेद इन चार अधिकारों के द्वारा सम्पूर्ण जीवसमासों का क्रम से निरूपण करना चाहिये ।।७४।।

जीवसमास का वर्णन ४ अधिकारों में

स्थान	**योनि**	**देह–अवगाहना**	**कुल**
↓	↓	↓	↓
१, २, ३ आदि विकल्प	उत्पत्ति स्थान	शरीर के छोटे–बड़े भेद	शरीर को कारणभूत पुद्गल

सामण्णजीव तसथावरेसु इगिविगलसयलचरिमदुगे।
इंदियकाये चरिमस्स य दुतिचदुरपणगभेदजुदे।।७५।।
पणजुगले तससहिये, तसस्स दुतिचदुरपणगभेदजुदे।
छद्दुगपत्तेयम्हि य, तसस्स तियचदुरपणगभेदजुदे।।७६।।
सगजुगलम्हि तसस्स य, पणभंगजुदेसु होंति उणवीसा।
एयादुणवीसो त्ति य, इगिवितिगुणिदे हवे ठाणा।।७७।।

अर्थ – सामान्य से जीव का एक ही भेद है। त्रस और स्थावर अपेक्षा से दो भेद, एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय एवं सकलेन्द्रिय की अपेक्षा तीन भेद; पंचेन्द्रिय के दो भेद करने पर एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, संज्ञी, असंज्ञी इस तरह चार भेद होते हैं। पाँच इन्द्रियों की अपेक्षा पाँच भेद हैं। षट्काय की अपेक्षा छह भेद हैं। पाँच स्थावरों में त्रस के विकल और सकल मिलाने पर सात भेद तथा विकल, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से आठ भेद तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय मिलाने पर नव भेद तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से दश भेद होते हैं ।।७५।।

अर्थ – पाँच स्थावरों के बादर सूक्ष्म की अपेक्षा दश भेद में – त्रस सामान्य का एक भेद मिलाने से ग्यारह तथा त्रस के विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय मिलाने से बारह तथा त्रस के विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी मिलाने से तेरह और द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय भेद मिलाने से पन्द्रह भेद जीवसमास के होते हैं। पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद इनके बादर सूक्ष्म की अपेक्षा छह युगल और प्रत्येक वनस्पति, इनमें त्रस के उक्त विकलेन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी ये तीन भेद मिलाने से सोलह और द्वीन्द्रियादि चार भेद मिलाने से सत्रह, तथा पाँच भेद मिलाने से अठारह भेद होते हैं ।।७६।।

अर्थ – पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद के बादर सूक्ष्म की अपेक्षा छह युगल और प्रत्येक का प्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित की अपेक्षा एक युगल मिलाकर सात युगलों में त्रस के उक्त पाँच भेद मिलाने से जीवसमास के उन्नीस भेद होते हैं। इसप्रकार एक से लेकर उन्नीस तक जो जीवसमास के भेद गिनाये हैं, इनका एक, दो, तीन के साथ गुणा करने पर क्रम से उन्नीस, अड़तीस, सत्तावन अवान्तर भेद जीवसमास के होते हैं ।।७७।।

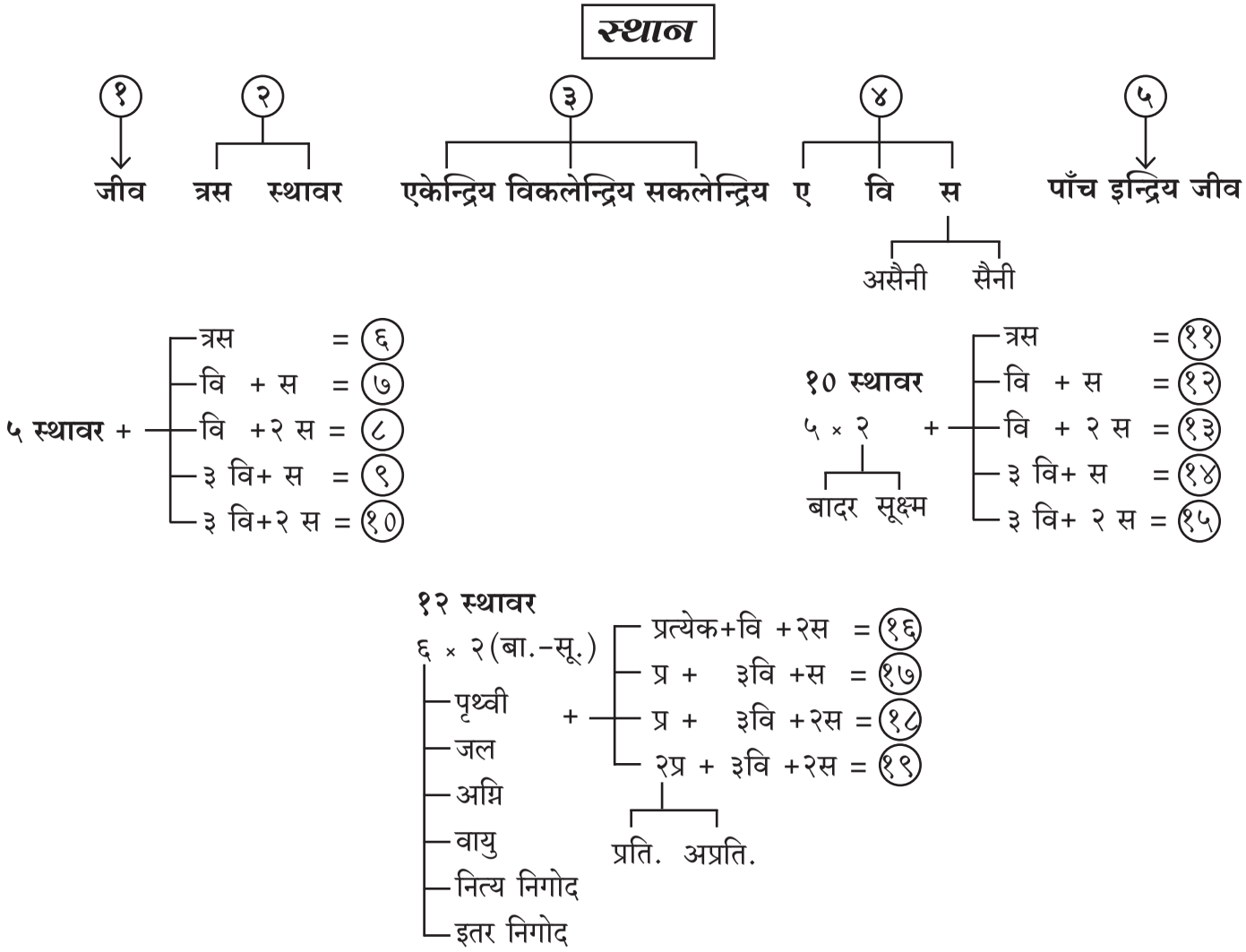
स्थान
१
जीव
२
त्रस
स्थावर
३
एकेन्द्रिय
विकलेन्द्रिय
सकलेन्द्रिय
४
ए
वि
स
असैनी
सैनी
५
पाँच इन्द्रिय जीव
५ स्थावर +
त्रस = ६
वि + स = ७
वि +२ स = ८
३ वि+ स = ९
३ वि+२ स = १०
१० स्थावर
५ × २
बादर
सूक्ष्म
+
त्रस = ११
वि + स = १२
वि + २ स = १३
३ वि+ स = १४
३ वि+ २ स = १५
१२ स्थावर
६ × २(बा.-सू.)
पृथ्वी
जल
अग्नि
वायु
नित्य निगोद
इतर निगोद
+
प्रत्येक+वि +२स = १६
प्र + ३वि +स = १७
प्र + ३वि +२स = १८
२प्र + ३वि +२स = १९
प्रति.
अप्रति.

सामण्णेण तिपंती, पढमा विदिया अपुण्णगे इदरे।
पज्जत्ते लद्धिअपज्जत्तेऽपढमा हवे पंती।।७८।।

अर्थ – उक्त उन्नीस भेदों की तीन पंक्ति करनी चाहिये। उसमें प्रथम पंक्ति सामान्य की अपेक्षा से है। और दूसरी पंक्ति अपर्याप्त तथा पर्याप्त अपेक्षा से है। और तीसरी पंक्ति पर्याप्त निर्वृत्त्यपर्याप्त तथा लब्ध्यपर्याप्त की अपेक्षा से है ।।७८।।

जीव समास के ५७ स्थान

सामान्य स्थान		१ × १९	= १९
अर्द्ध स्थान	पर्याप्त, अपर्याप्त	२ × १९	= ३८
पूर्ण स्थान	पर्याप्त, निर्वृत्ति अपर्याप्त, लब्धि अपर्याप्त	३ × १९	= ५७

इगिवण्णं इगिविगले, असण्णिसण्णिगयजलथलखगाणं।
गब्भभवे सम्मुच्छे, दुतिगं भोगथलखेचरे दो दो।।७९।।
अज्जवमलेच्छमणुए, तिदु भोगकुभोगभूमिजे दो दो।
सुरणिरये दो दो इदि, जीवसमासा हु अडणउदी।।८०।।

अर्थ – तिर्यग्गति में एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय संबंधी ५१ भेद हैं। कर्मभूमिया गर्भज तिर्यंचों में जलचर, थलचर तथा नभचर सैनी एवं असैनी के पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त अपेक्षा १२ भेद तथा सम्मूर्च्छन तिर्यंचों में लब्ध्यपर्याप्तक भी होने से १८ भेद, इसप्रकार पंचेन्द्रिय कर्मभूमिज तिर्यंचों के ३० भेद होते हैं। भोगभूमिया थलचर एवं नभचर तिर्यंचों के पर्याप्त एवं निर्वृत्त्यपर्याप्त की अपेक्षा ४ भेद होते हैं। इसप्रकार तिर्यग्गति संबंधी कुल ८५ भेद होते हैं। भोगभूमि में जलचर, सम्मूर्च्छन तथा असंज्ञी जीव नहीं होते हैं ।।७९।।

अर्थ – आर्यखण्ड में पर्याप्त, निर्वृत्त्यपर्याप्त, लब्ध्यपर्याप्त, तीनों ही प्रकार के मनुष्य होते हैं। म्लेच्छखण्ड में लब्ध्यपर्याप्त को छोड़कर दो प्रकार के ही मनुष्य होते हैं। इसीप्रकार भोगभूमि, कुभोगभूमि, देव, नारकियों में भी दो-दो ही भेद होते हैं। इसलिये सब मिलाकर जीवसमास के ९८ भेद हुए ।।८०।।

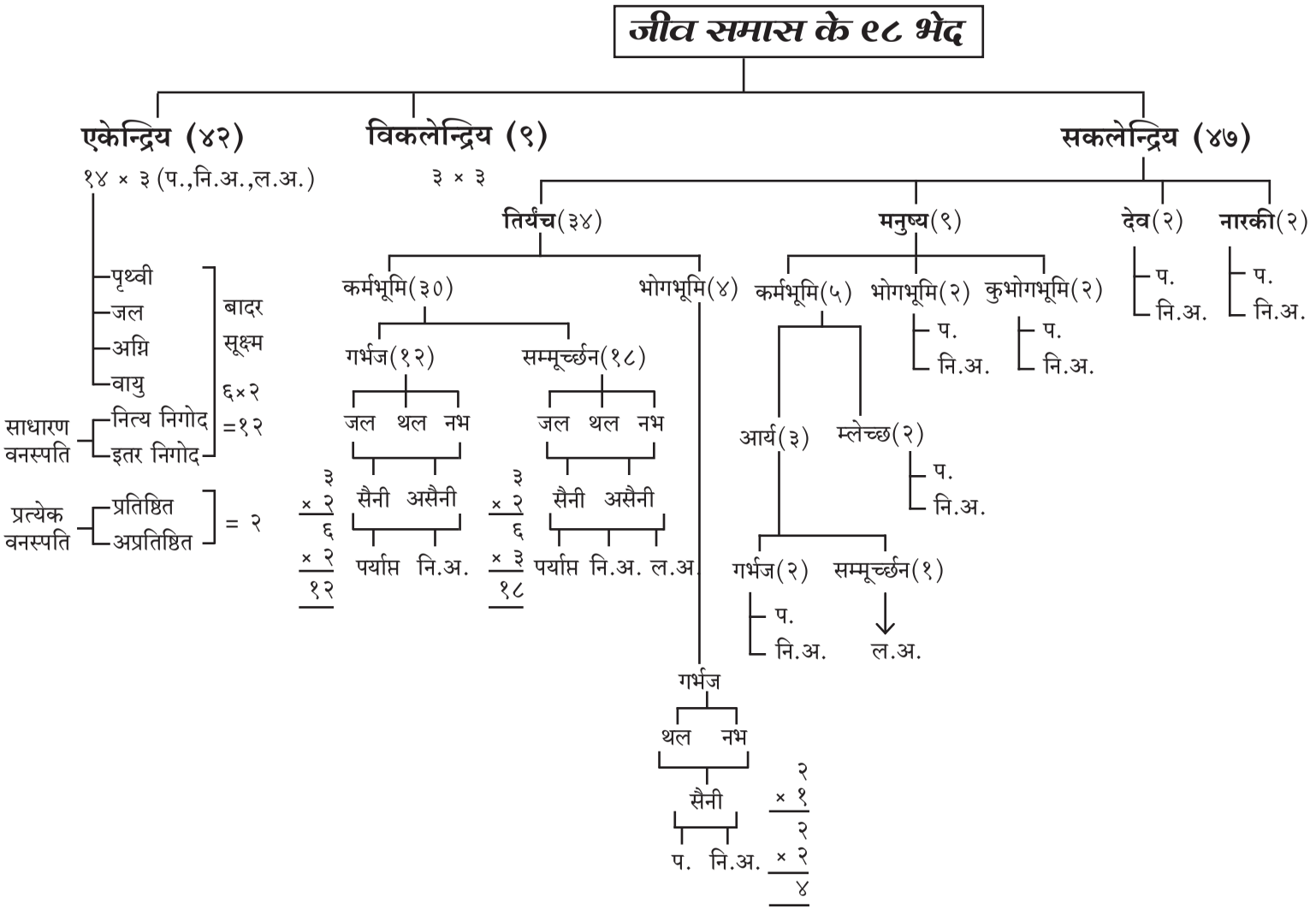
जीव समास के ९८ भेद
एकेन्द्रिय (४२)
१४ × ३ (प.,नि.अ.,ल.अ.)
पृथ्वी
जल
अग्नि
वायु
बादर
सूक्ष्म
६×२
=१२
साधारण वनस्पति
नित्य निगोद
इतर निगोद
प्रत्येक वनस्पति
प्रतिष्ठित
अप्रतिष्ठित
= २
विकलेन्द्रिय (९)
३ × ३
सकलेन्द्रिय (४७)
तिर्यंच(३४)
मनुष्य(९)
देव(२)
नारकी(२)
प.
नि.अ.
कर्मभूमि(३०)
भोगभूमि(४)
गर्भज(१२)
सम्मूर्च्छन(१८)
जल थल नभ
सैनी असैनी
पर्याप्त नि.अ.
पर्याप्त नि.अ. ल.अ.
३ × २ × २ = १२
३ × २ × ३ = १८
गर्भज
थल नभ
सैनी
प. नि.अ.
२ × १ × २ × २ = ४
कर्मभूमि(५)
भोगभूमि(२)
कुभोगभूमि(२)
आर्य(३)
म्लेच्छ(२)
गर्भज(२)
सम्मूर्च्छन(१)
ल.अ.

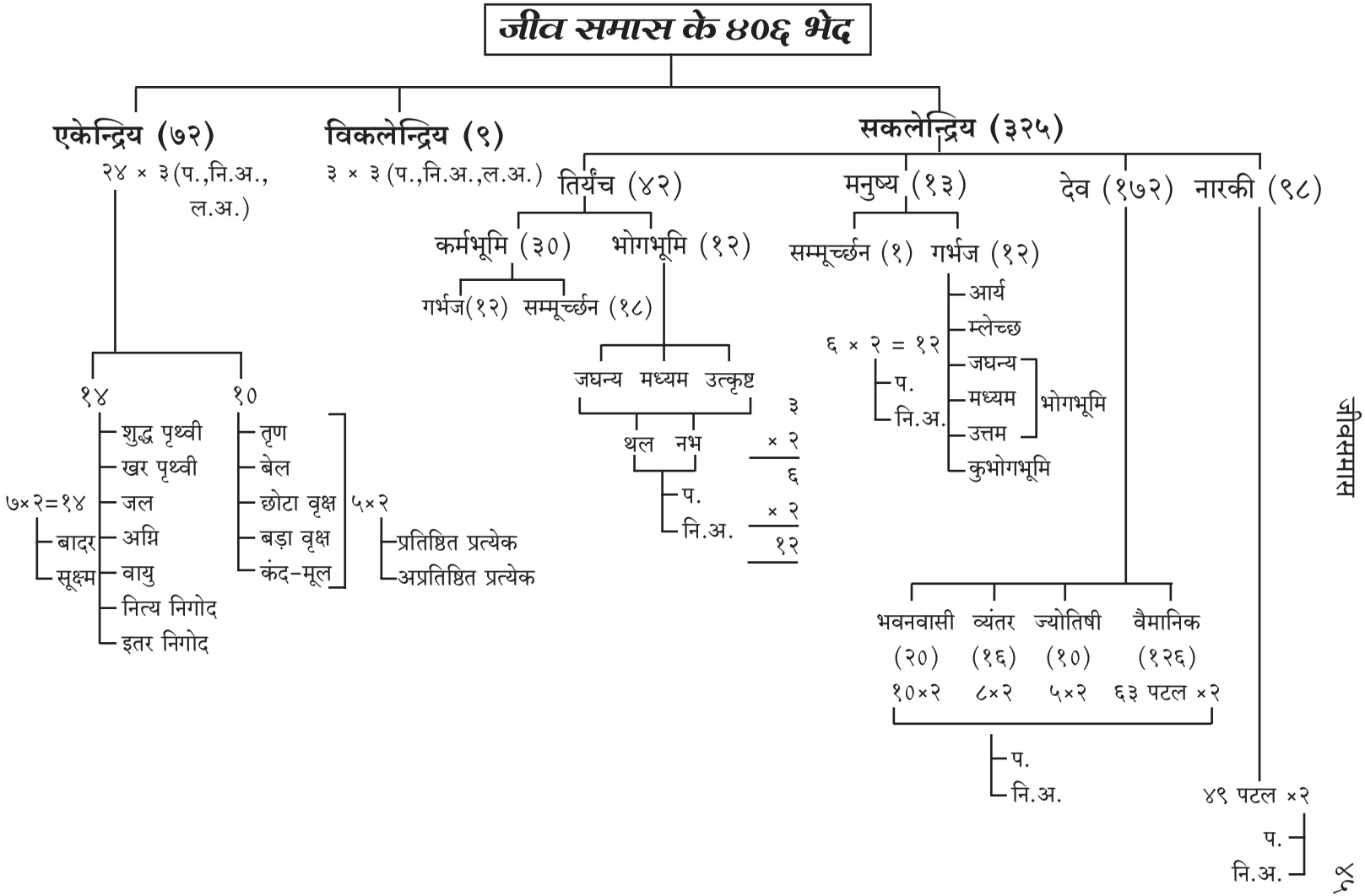
जीव समास के ४०६ भेद
एकेन्द्रिय (७२)
२४ × ३ (प.,नि.अ., ल.अ.)
१४
७×२=१४
बादर
सूक्ष्म
शुद्ध पृथ्वी
खर पृथ्वी
जल
अग्नि
वायु
नित्य निगोद
इतर निगोद
१०
तृण
बेल
छोटा वृक्ष
बड़ा वृक्ष
कंद-मूल
५×२
प्रतिष्ठित प्रत्येक
अप्रतिष्ठित प्रत्येक
विकलेन्द्रिय (९)
३ × ३ (प.,नि.अ.,ल.अ.)
सकलेन्द्रिय (३२५)
तिर्यंच (४२)
कर्मभूमि (३०)
गर्भज(१२)
सम्मूर्च्छन (१८)
भोगभूमि (१२)
जघन्य मध्यम उत्कृष्ट
थल नभ
प.
नि.अ.
३ × २ ६ × २ १२
मनुष्य (१३)
सम्मूर्च्छन (१)
गर्भज (१२)
६ × २ = १२
प.
नि.अ.
आर्य
म्लेच्छ
जघन्य
मध्यम
उत्तम
भोगभूमि
कुभोगभूमि
देव (१७२)
भवनवासी (२०) १०×२
व्यंतर (१६) ८×२
ज्योतिषी (१०) ५×२
वैमानिक (१२६) ६३ पटल ×२
प.
नि.अ.
नारकी (९८)
४९ पटल ×२
प.
नि.अ.
जीवसमास
५८

संखावत्तयजोणी, कुम्मुण्णयवंसपत्तजोणी य।
तत्थ य संखावत्ते, णियमा दु विवज्जदे गब्भो।।८१।।
कुम्मुण्णयजोणीये, तित्थयरा दुविहचक्कवट्टी य।
रामा वि य जायंते, सेसाए सेसगजणो दु।।८२।।
जम्मं खलु सम्मुच्छण, गब्भुववादा दु होदि तज्जोणी।
सच्चित्तसीदसंउडसेदर मिस्सा य पत्तेयं।।८३।।

अर्थ – शंखावर्तयोनि, कूर्मोन्नतयोनि, वंशपत्रयोनि इसतरह स्त्री–शरीर में संभवित आकाररूप योनि तीन प्रकार की हैं। योनि अर्थात् मिश्ररूप होकर औदारिकादि नोकर्मवर्गणारूप पुद्गलों से सहित बंधता है जीव जिसमें, वह योनि है। जीव का उपजने का स्थान वह योनि है। वहाँ तीन प्रकार की योनियों में शंखावर्तयोनि में तो गर्भ नियम से विवर्जित है, गर्भ रहता ही नहीं है अथवा कदाचित् रहे तो नष्ट हो जाता है ।।८१।।

अर्थ – कूर्मोन्नतयोनि में तीर्थंकर वा सकलचक्रवर्ती वा अर्धचक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वा बलभद्र उपजता है। अपि शब्द से अन्य कोई नहीं उपजता। पुनश्च अवशेष वंशपत्रयोनि में अवशेष जन उपजते हैं, तीर्थंकरादि नहीं उपजते ।।८२।।

अर्थ – जन्म तीन प्रकार का होता है, सम्मूर्छन, गर्भ और उपपाद। तथा सचित्त, शीत, संवृत, और इनसे उल्टी अचित्त, उष्ण, विवृत तथा तीनों की मिश्र, इस तरह तीनों ही जन्मों की आधारभूत नौ गुणयोनि हैं। इनमें से यथासम्भव प्रत्येक योनि को सम्मूर्छनादि जन्म के साथ लगा लेना चाहिये ।।८३।।

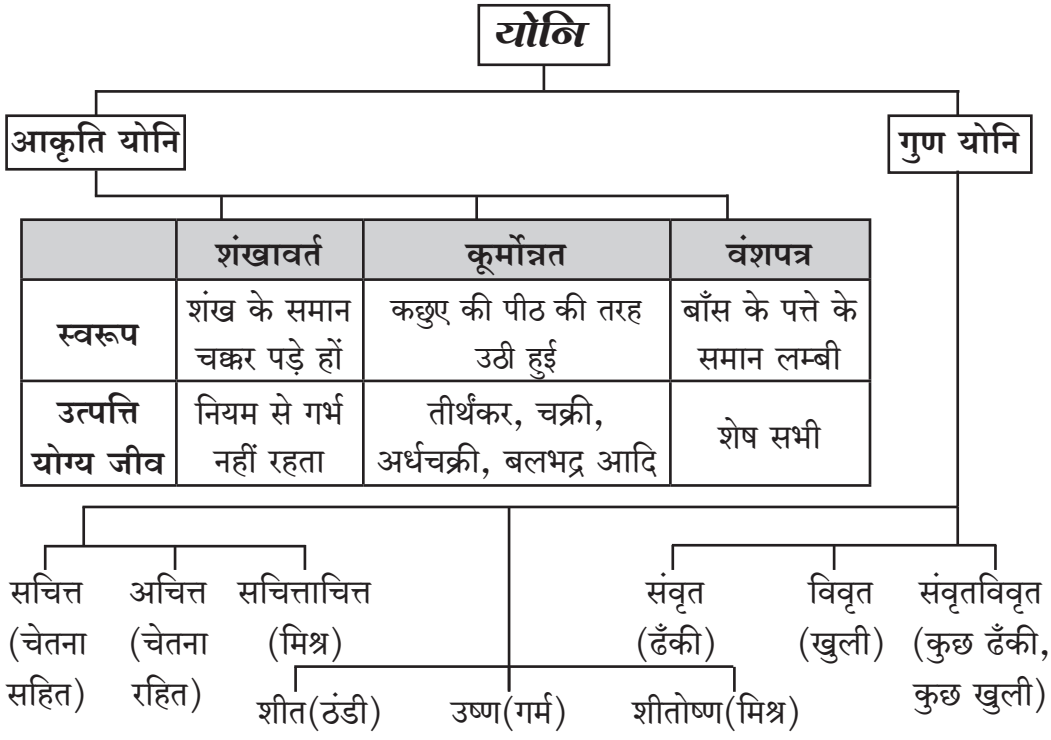

पोतजरायुजअंडज, जीवाणं गब्भ देवणिरयाणं।
उववाद सेसाणं, सम्मुच्छणयं तु णिद्दिट्ठं।।८४।।

अर्थ - जिसके शरीर के ऊपर कोई आवरण नहीं है, जिसके अवयव सम्पूर्ण हैं और योनि से निकलते ही चलना आदि की सामर्थ्य से संयुक्त है वह जीव, पोत कहलाता है। प्राणी के शरीर के ऊपर जाल समान आवरण - मांस, लहू जिसमें विस्तारूप पाया जाता है ऐसा जो जरायु, उसमें उत्पन्न जीव जरायुज कहलाता है। शुक्र, लहूमय तथा नख के समान कठिन आवरण सहित, गोल आकार का धारक वह अण्ड, उसमें उपजने वाला जीव अंडज कहलाता है। इन पोत, जरायुज, अंडज जीवों का गर्भरूप ही जन्म का भेद जानना। देव और नारकीयों का उपपाद ही जन्म का भेद हैं। पूर्वोक्त जीवों के बिना शेष समस्त जीवों का सम्मूर्छन ही जन्म का भेद सिद्धांत में कहा हैं ।।८४।।

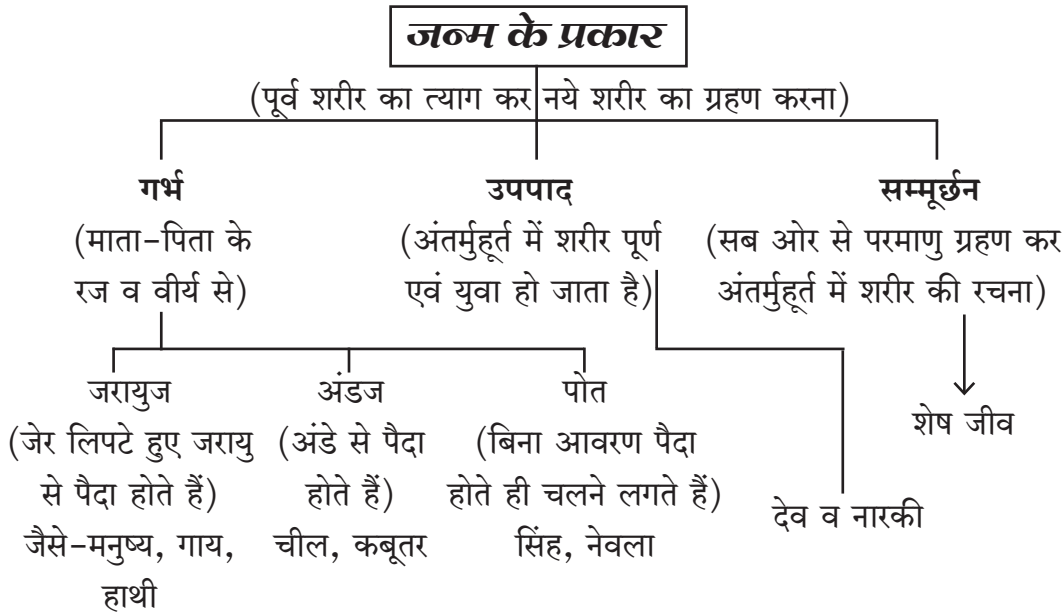

उववादे अचित्तं, गब्भे मिस्सं तु होदि सम्मुच्छे।
सचित्तं अचित्तं, मिस्सं च य होदि जोणि हु।।८५।।
उववादे सीदुसणं, सेसे सीदुसणमिस्सयं होदि।
उववादेयक्खेसु य, संउड वियलेसु विउलं तु।।८६।।
गब्भजजीवाणं पुण, मिस्सं णियमेण होदि जोणी हु।
सम्मुच्छणपंचक्खे, वियलं वा विउलजोणी हु।।८७।।

अर्थ - उपपाद जन्म की अचित्त ही योनि होती है। गर्भ जन्म की मिश्र योनि ही होती है। तथा सम्मूर्छन जन्म की सचित्त, अचित्त, मिश्र तीनों तरह को योनि होती है ।।८५।।

अर्थ - उपपाद जन्म में शीत और उष्ण दो प्रकार की योनि होती है। शेष गर्भ और सम्मूर्छन

जन्मों में शीत, उष्ण, मिश्र तीनों ही योनि होती है। उपपाद जन्मवालों की तथा एकेन्द्रिय जीवों की योनि संवृत ही होती है। और विकलेन्द्रियों की विवृत ही होती है ।।८६।।

अर्थ – गर्भज जीवों की योनि नियम से मिश्र – संवृत-विवृत की अपेक्षा मिश्रित ही होती है। पंचेन्द्रिय सम्मूर्छन जीवों की विकलेन्द्रियों की तरह विवृतयोनि ही होती है ।।८७।।

किस योनि में कौन जीव जन्म लेता है ?

<table>
<tr><th>जीव</th><th colspan="3">योनि</th></tr>
<tr><td>देव व नारकी</td><td>अचित्त</td><td>शीत व उष्ण</td><td>संवृत्त</td></tr>
<tr><td>गर्भज – मनुष्य व तिर्यंच</td><td>सचित्ताचित्त</td><td rowspan="5">तीनों प्रकार</td><td>संवृतविवृत</td></tr>
<tr><td>सम्मूच्छ्रन मनुष्य व पंचेन्द्रिय तिर्यंच</td><td rowspan="5">दो प्रकार (अचित्त व मिश्र)</td><td rowspan="2">विवृत</td></tr>
<tr><td>विकलेन्द्रिय</td></tr>
<tr><td>एकेन्द्रिय (पृथिवी, वायु, प्रत्येक वनस्पति)</td><td rowspan="4">संवृत</td></tr>
<tr><td>अग्नि</td><td>उष्ण</td></tr>
<tr><td>जल</td><td>शीत</td></tr>
<tr><td>साधारण वनस्पति</td><td>सचित्त</td><td>तीनों प्रकार</td></tr>
</table>

सामण्णेण य एवं, णव जोणीओ हवंति वित्थारे।
लक्खाण चदुरसीदी, जोणीओ होंति णियमेण।।८८।।
णिच्चिदरधादुसत्त य, तरुदस वियलिंदियेसु छच्चेव।
सुरणिरयतिरियचउरो, चोद्दस मणुए सदसहस्सा।।८९।।

अर्थ – पूर्वोक्त क्रमानुसार सामान्य से योनियों के नियम से नव ही भेद होते हैं। विस्तार की अपेक्षा इनके चौरासी लाख भेद होते हैं ।।८८।।

अर्थ – नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इनमें से प्रत्येक की सात सात लाख, तरु अर्थात् प्रत्येक वनस्पति की दश लाख; द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय इनमें से प्रत्येक की दो दो लाख अर्थात् विकलेन्द्रिय की सब मिलाकर छह लाख; देव, नारकी, तिर्यंच पंचेन्द्रिय प्रत्येक की चार चार लाख, मनुष्य की चौदह लाख, सब मिलाकर ८४ लाख योनि होती है ।।८९।।

योनि के भेद

सामान्य से → ९

विस्तार से → ८४ लाख

– तिर्यंच * एकेन्द्रिय नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु (प्रत्येक की ७-७ लाख)	६ × ७	४२ लाख
* प्रत्येक वनस्पति		१० लाख
* विकलेन्द्रिय द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय(प्रत्येक की २ लाख)	३ × २	६ लाख
* पंचेन्द्रिय तिर्यंच		४ लाख
– नारकी		४ लाख
– देव		४ लाख
– मनुष्य		१४ लाख
कुल योनि		८४ लाख

उववादा सुरणिरया, गब्भजसम्मुच्छिमा हु णरतिरिया।
सम्मुच्छिमा मणुस्साऽपज्जत्ता एयवियलक्खा।।९०।।
पंचक्खतिरिक्खाओ, गब्भजसम्मुच्छिमा तिरिक्खाणं।
भोगभुमा गब्भभवा, नरपुण्णा गब्भजा चेव।।९१।।
उववादगब्भजेसु य, लद्धिअपज्जत्तगा ण णियमेण।
णरसम्मुच्छिमजीवा, लद्धिअपज्जत्तगा चेव।।९२।।

अर्थ – देवगति और नरकगति में उपपाद जन्म ही होता है। मनुष्य तथा तिर्यंचों में यथासम्भव गर्भ और सम्मूर्छन दोनों ही प्रकार का जन्म होता है, किन्तु लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य और एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियों का सम्मूर्छन जन्म ही होता है ।।९०।।

अर्थ – कर्मभूमिया पंचेन्द्रिय तिर्यंच गर्भज तथा सम्मूर्छन ही होते हैं। भोगभूमिया तिर्यंच गर्भज ही होते हैं और जो पर्याप्त मनुष्य हैं वे भी गर्भज ही होते हैं ।।९१।।

अर्थ – उपपाद और गर्भ जन्मवालों में नियम से लब्ध्यपर्याप्तक नहीं होते और सम्मूर्छन मनुष्य नियम से लब्ध्यपर्याप्तक ही होते हैं ।।९२।।

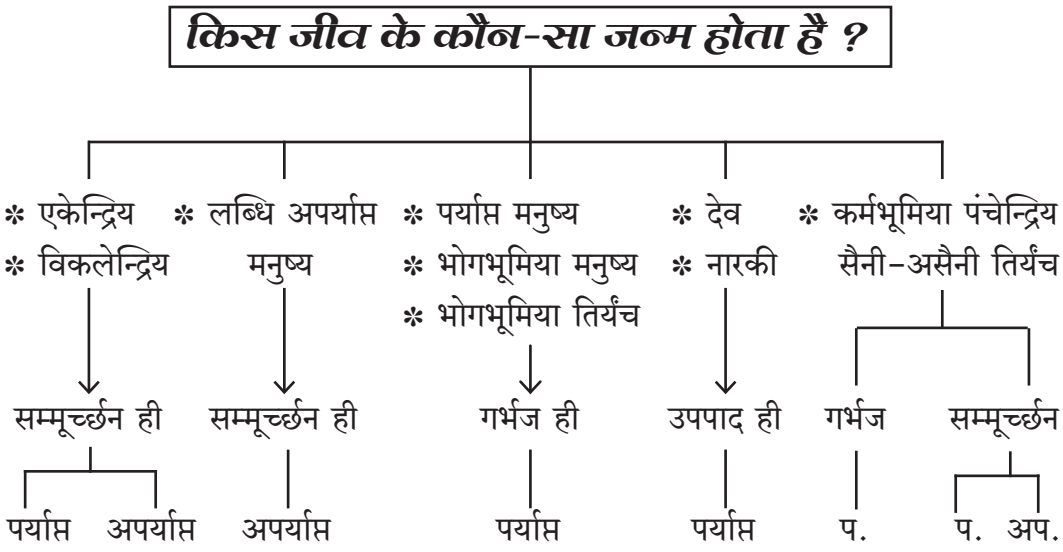

णेरइया खलु संढा, णरतिरिये तिण्णि होंति सम्मुच्छा।
संढा सुरभोगभुमा, पुरिसिच्छीवेदगा चेव।।९३।।

अर्थ – नारकी नपुंसक ही होते हैं। मनुष्य और तिर्यंचों के तीनों ही (स्त्री पुरुष नपुंसक) वेद होते हैं, सम्मूर्छन मनुष्य और तिर्यंच नपुंसक ही होते हैं। देव और भोगभूमियों के पुरुषवेद और स्त्रीवेद ही होता है ।।९३।।

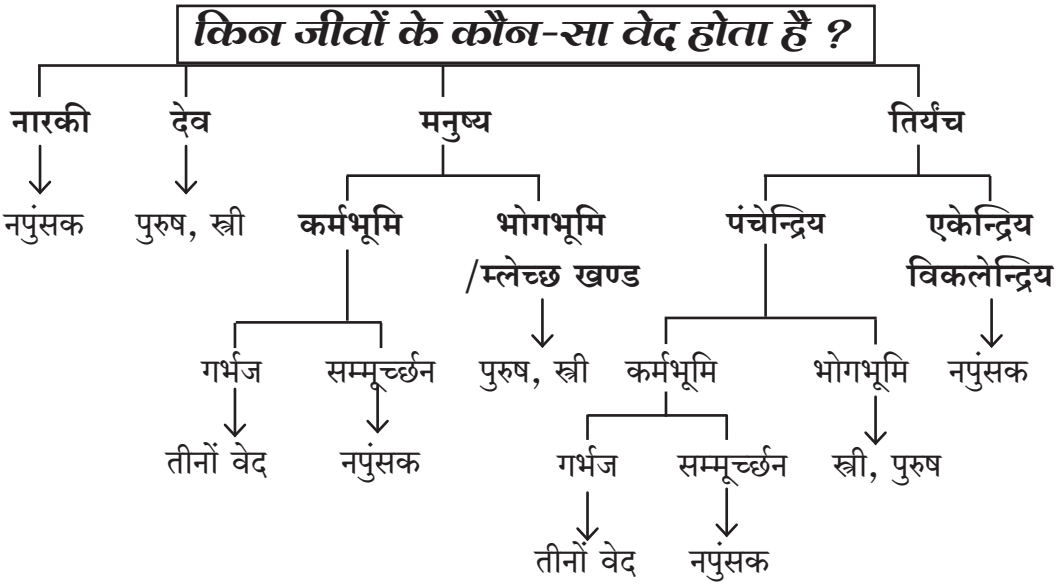

सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि।
अंगुलअसंखभागं, जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे।।९४।।

अर्थ – जितना आकाश क्षेत्र शरीर रोकता है उसका नाम यहाँ अवगाहना है। सर्व जघन्य अवगाहना ऋजुगति से उत्पन्न होने के तीसरे समय में सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्तक जीव की घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती है। तथा स्वयंभूरमण समुद्र के मध्यवर्ती महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना होती है ।।९४।।

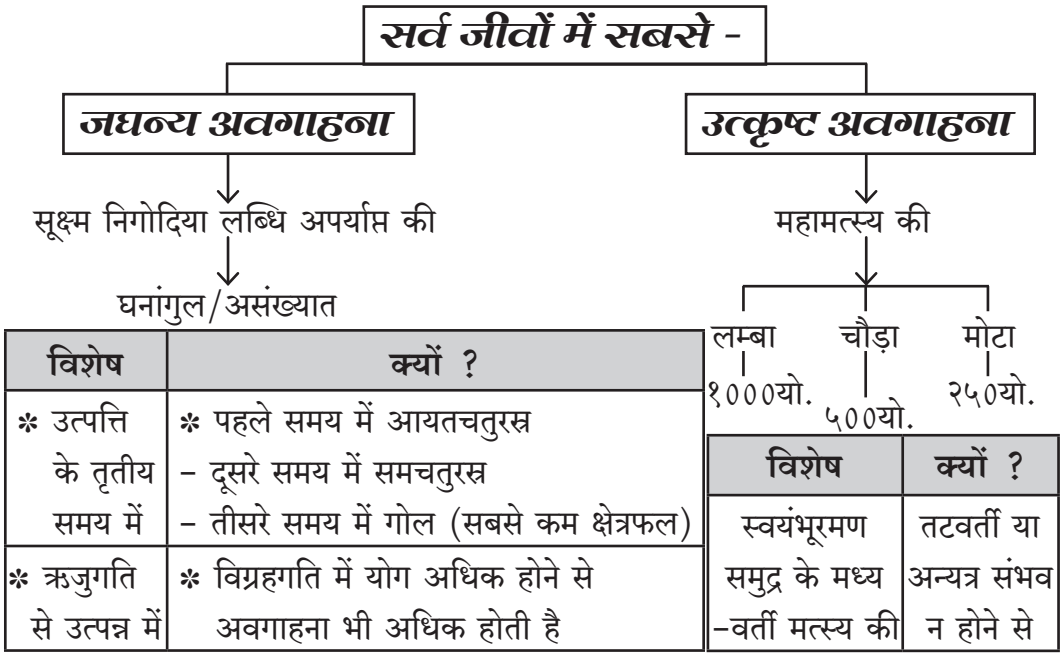

विशेष	क्यों ?
* उत्पत्ति के तृतीय समय में	* पहले समय में आयतचतुरस्र – दूसरे समय में समचतुरस्र – तीसरे समय में गोल (सबसे कम क्षेत्रफल)
* ऋजुगति से उत्पन्न में	* विग्रहगति में योग अधिक होने से अवगाहना भी अधिक होती है

विशेष	क्यों ?
स्वयंभूरमण समुद्र के मध्य –वर्ती मत्स्य की	तटवर्ती या अन्यत्र संभव न होने से

साहियसहस्समेकं, बारं कोसूणमेकमेक्कं च।
जोयणसहस्सदीहं, पम्मे वियले महामच्छे।।९५।।
बितिचपपुण्णजहण्णं, अणुंधरीकुंथुकाणमच्छीसु।
सिच्छयमच्छे विंदंगुलसंखं संखगुणिदकमा।।९६।।

अर्थ – पद्म (कमल), द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, महामत्स्य इनके शरीर की अवगाहना क्रम से कुछ अधिक एक हजार योजन, बारह योजन, तीन कोश, एक योजन, हजार योजन लम्बी समझनी चाहिये ।।९५।।

अर्थ – द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों में अनुंधरी, कुन्थु, काणमक्षिका सिक्थक मत्स्य के क्रम से जघन्य अवगाहना होती है। इसमें प्रथम की घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण है और पूर्व पूर्व की अपेक्षा उत्तर उत्तर की अवगाहना क्रम से संख्यातगुणी संख्यातगुणी अधिक अधिक है ।।९६।।

पाँचों इन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट-जघन्य अवगाहना एवं उसके स्वामी

	उत्कृष्ट		जघन्य	
	स्वामी	**कितनी (लंबाई)**	**स्वामी**	**कितनी(घनफल)**
एकेन्द्रिय	पद्म कमल	कुछ अधिक १००० यो.	सूक्ष्म निगोदिया लब्धि अपर्याप्त	घनांगुल /असंख्यात
द्वीन्द्रिय	शंख	१२ योजन	अनुंधरी	घनांगुल /संख्यात
त्रीन्द्रिय	रक्त बिच्छु	३ कोस	कुंथु	" आगे-आगे
चतुरिन्द्रिय	भ्रमर	१ योजन	काणमक्षिका	" पूर्व से
पंचेन्द्रिय	महामत्स्य	१००० योजन	सिक्थक मत्स्य	" संख्यात गुणा

सर्व जघन्य से उत्कृष्ट तक अवगाहना के भेद और स्वामी

इसी के लिए ६४ अवगाहना यंत्र की विधि –

सुहमणिवातेआभू, वातेआपुणिपदिट्ठिदं इदरं।
बितिचपमादिल्लाणं, एयाराणं तिसेढीय।।९७।।

अर्थ - निम्न चार्टों में देखे -

एक कोठे में सूक्ष्म - निगोदिया, वायुकायिक, तेजकायिक, जलकायिक, पृथ्वीकायिक इनका क्रम से स्थापन करना।

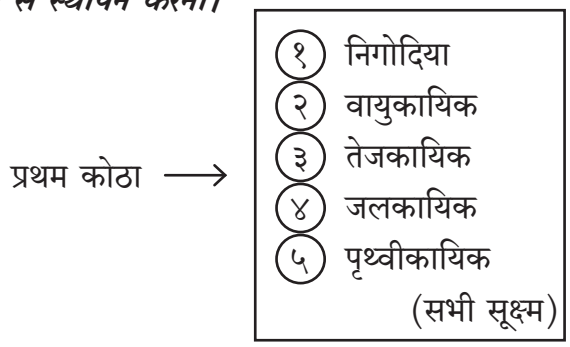

इसके आगे दूसरे कोठे में बादर - वायुकायिक, तेजकायिक, जलकायिक, पृथ्वीकायिक, निगोदिया, प्रतिष्ठित प्रत्येक इनका क्रम से स्थापन करना।

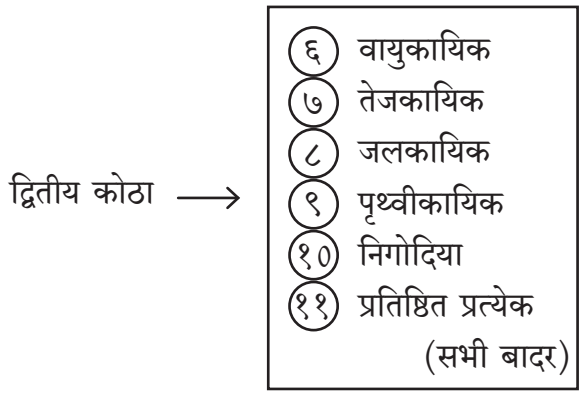

इसके आगे तीसरे कोठे में अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय का क्रम से स्थापन करना।

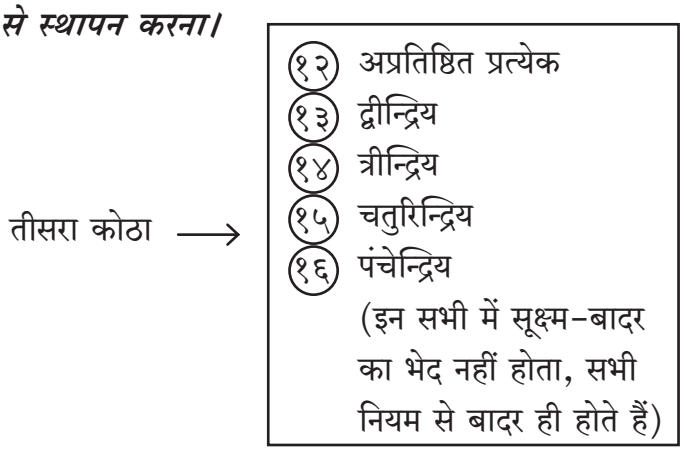

इसके आगे उक्त सोलह स्थानों में से आदि के ग्यारह स्थानों की तीन श्रेणी मांडनी चाहिए।

* *तीसरे कोठे के आगे प्रारम्भ के ११ स्थानों अर्थात् प्रथम दो कोठों को तीन श्रेणी में रखना*
* *प्रथम एवं द्वितीय कोठों को साथ-साथ दो-दो के नीचे दो-दो, इस प्रकार तीन बार स्थापित करना*

चौथा ⟶	(१७) निगोदिया (२०) वायु (२३) तेज (२६) जल (२९) पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	(३२) वायु (३५) तेज (३८) जल (४१) पृथ्वी (४४) निगोद (४७) प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	⟵ सातवाँ
पाँचवाँ ⟶	(१८) निगोद (२१) वायु (२४) तेज (२७) जल (३०) पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	(३३) वायु (३६) तेज (३९) जल (४२) पृथ्वी (४५) निगोद (४८) प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	⟵ आठवाँ
छठा ⟶	(१९) निगोदिया (२२) वायु (२५) तेज (२८) जल (३१) पृथ्वी (सभी सूक्ष्म)	(३४) वायु (३७) तेज (४०) जल (४३) पृथ्वी (४६) निगोद (४९) प्रतिष्ठित प्रत्येक (सभी बादर)	⟵ नौवाँ

अपदिट्ठिदपत्तेयं, बितिचपतिचबिअपदिट्ठिदं सयलं।
तिचविअपदिट्ठिदं च य, सयलं बादालगुणिदकमा।।९८।।

अर्थ – अगले कोठे में अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय का स्थापन करना। इसके आगे के कोठे में क्रम से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक और पंचेन्द्रिय का स्थापन करना। इससे आगे के कोठे में त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक तथा पंचेन्द्रिय का क्रम से स्थापन करना। इन सम्पूर्ण चौंसठ स्थानों में ब्यालीस स्थान उत्तरोत्तर गुणितक्रम हैं ।।९८।।

पूर्वोक्त समस्त कोठों के आगे के दसवें कोठे में तीसरे कोठे के समान स्थापन करना

दशम कोठा ⟶

५०	अप्रतिष्ठित प्रत्येक
५१	द्वीन्द्रिय
५२	त्रीन्द्रिय
५३	चतुरिन्द्रिय
५४	पंचेन्द्रिय

इसके आगे ११वें कोठे में क्रम से त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक और पंचेन्द्रिय का क्रम से स्थापन करना

ग्यारहवाँ कोठा ⟶

५५	त्रीन्द्रिय
५६	चतुरिन्द्रिय
५७	द्वीन्द्रिय
५८	अप्रतिष्ठित प्रत्येक
५९	पंचेन्द्रिय

इसके आगे एक और कोठा इसी क्रम से अर्थात् ११वें कोठे के समान पुनः १२वें कोठे में स्थापना करना

बारहवाँ कोठा ⟶

६०	त्रीन्द्रिय
६१	चतुरिन्द्रिय
६२	द्वीन्द्रिय
६३	अप्रतिष्ठित प्रत्येक
६४	पंचेन्द्रिय

इस प्रकार १२ कोठोंरूप ६४ अवगाहना का यंत्र बना

अवरमपुण्णं पढमं, सोलं पुण पढमविदियतदियोली।
पुण्णिदरपुण्णयाणं, जहण्णमुक्कस्समुक्कस्सं।।९९।।

अर्थ – आदि के सोलह स्थान जघन्य अपर्याप्तक के हैं और प्रथम, द्वितीय, तृतीय श्रेणी क्रम से पर्याप्तक, अपर्याप्तक तथा पर्याप्तक जीवों की है और उनकी यह अवगाहना क्रम से जघन्य, उत्कृष्ट और उत्कृष्ट समझनी चाहिये ।।९९।।

**** प्रथम तीन कोठों के १६ जीवसमासों की अपर्याप्तकों में जघन्य अवगाहना जानना***

कोठा १	कोठा २	कोठा ३
जघन्य अपर्याप्तक	जघन्य अपर्याप्तक	जघन्य अपर्याप्तक

**** प्रथम श्रेणी के दो (चतुर्थ एवं सप्तम) कोठों में पर्याप्तकों की जघन्य अवगाहना है।***
**** द्वितीय श्रेणी के दो (पंचम एवं अष्ठम) कोठों में अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना है।***
**** तृतीय श्रेणी के दो (षष्ठम एवं नवम) कोठों में पर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना है।***

कोठा ४ ⟶	पर्याप्तक जघन्य	पर्याप्तक जघन्य	**⟵ कोठा ७**
कोठा ५ ⟶	अपर्याप्त उत्कृष्ट	अपर्याप्त उत्कृष्ट	**⟵ कोठा ८**
कोठा ६ ⟶	पर्याप्त उत्कृष्ट	पर्याप्त उत्कृष्ट	**⟵ कोठा ९**

पुण्णजहण्णं तत्तो, वरं अपुण्णस्स पुण्णउक्कस्सं।
बीपुण्णजहण्णो त्ति असंखं संखं गुणं तत्तो।।१००।।

अर्थ – श्रेणी के आगे के प्रथम कोठे में (ऊपर की पंक्ति के छट्ठे कोठे में) पर्याप्तकों की जघन्य और दूसरे कोठे में अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट तथा तीसरे कोठे में पर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना समझनी चाहिये। द्वीन्द्रिय पर्याप्त की जघन्य अवगाहना पर्यन्त असंख्यात का गुणाकार है और इसके आगे संख्यात का गुणाकार है ।।१००।।

**** १०वें कोठे में पर्याप्तकों की जघन्य अवगाहना है।***
**** ११वें कोठे में अपर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना है।***
**** १२वें कोठे में पर्याप्तकों की उत्कृष्ट अवगाहना है।***

दसवां कोठा	ग्यारहवाँ कोठा	बारहवाँ कोठा
पर्याप्तक जघन्य	अपर्याप्तक उत्कृष्ट	पर्याप्तक उत्कृष्ट

** द्वीन्द्रिय पर्याप्तक की जघन्य अवगाहना के स्थान पर्यंत (५१ नम्बर तक) उत्तरोत्तर असंख्यात का गुणकार है।*

** इसके आगे (५२ से ६४ तक) संख्यात का गुणकार है*

४२ गुणित क्रम स्थानों में	
प्रथम २९	उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे हैं
अंतिम १३	उत्तरोत्तर संख्यात गुणे हैं

६४ स्थान में कौन गुणित क्रम और कौन अधिक क्रम हैं

उत्तरोत्तर गुणित क्रम			उत्तरोत्तर अधिक क्रम		कुल
ऊपर के ८ कोठे	१ से ३ कोठों के	– १६ स्थान	**कोठे ५ और ६ के**	– १० स्थान	
	४ और ७ के	– ११ स्थान	**कोठे ८ और ९ के**	– १२ स्थान	
	१० से १२ के	– १५ स्थान			
	कुल	**= ४२**	**कुल**	**= २२**	**६४**

सुहमेदरगुणगारो, आवलिपल्लाअसंखभागो दु।
सट्ठाणे सेढिगया, अहिया तत्थेकपडिभागो।।१०१।।

अर्थ – सूक्ष्म और बादरों का गुणकार स्वस्थान में क्रम से आवली और पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। और श्रेणीगत बाईस स्थान अपने-२ एक एक प्रतिभागप्रमाण अधिक अधिक हैं ।।१०१।।

गुणकार और अधिककार का प्रमाण

२९ स्थानों में	सूक्ष्म का गुणकार	आवली / असंख्यात
	बादर का गुणकार	पल्य / असंख्यात
२२ स्थानों में	सूक्ष्म एवं बादर का अधिक	आवली / असंख्यात

जहाँ गुणित क्रम है वहाँ –

सूक्ष्म जीव की अवगाहना निकालने के लिए पूर्व की अवगाहना को आवली/असंख्यात से गुणा करेंगे।

सूक्ष्म वायु अप. ज. अवगाहना (२)	= सूक्ष्म नि. अप. ज. अवगाहना (१) × आवली/असं.
सूक्ष्म नि. पर्याप्त ज. अवगाहना (१७)	= पंचेन्द्रिय अप. ज. अवगाहना (१६) × आवली/असं.

बादर जीव की अवगाहना निकालने के लिये पूर्व के जीव की अवगाहना को पल्य/असंख्यात से गुणा करेंगे।

बादर वायु अप. ज. अवगाहना (६)	= सूक्ष्म पृथ्वी अप. ज. अवगाहना (५) × पल्य/असं.
बादर अग्नि (तेज) अप. ज. (७)	= बादर वायु अप. ज. अवगाहना (६) × पल्य/असं.

अंतिम १३ स्थानों में संख्यात का गुणा करेंगे –

त्रीन्द्रिय पर्याप्त ज. अवगाहना (५२)	= द्वीन्द्रिय पर्याप्त ज. अवगाहना (५१) × संख्यात

इसी प्रकार आगे ६४ स्थान तक।

जहाँ अधिक क्रम है वहाँ –

* ***सूक्ष्म जीव की अवगाहना के लिये पूर्व जीव की अवगाहना को आवली / असंख्यात का भाग देंगे।***
* ***जो १ भाग आएगा, उसे पूर्व की अवगाहना में जोड़ देंगे।***

सूक्ष्म निगोद अप. उत्कृष्ट अवगा. (१८) =	सूक्ष्म निगोद पर्याप्त जघन्य अव. (१७) + $\frac{\text{सूक्ष्म नि. पर्याप्त ज. अव.}}{\text{आवली/असंख्यात}}$

विवक्षित जीव की अवगाहना = पूर्व जीव की अवगाहना + $\frac{\text{पूर्व जीव की अवगा.}}{\text{आवली/असंख्यात}}$

इसी प्रकार बादर जीव की –

बादर वायु अपर्याप्त उत्कृष्ट अव. (३३) =	बादर वायु पर्याप्त ज. अवगा. (३२) + $\frac{\text{बादर वायु प. ज. अव.}}{\text{आवली/असं.}}$

चौंसठ अवगाहनाओं का यन्त्र

(गाथा ९७ से गाथा १०१)

सूक्ष्म निगोद १	**बादर** वात ६	अप्र. प्रत्येक १२	**सूक्ष्म** निगोद १७	**बादर** वात ३२	अप्र. प्रत्येक ५०	त्रीन्द्रिय ५५	त्रीन्द्रिय ६०
वात २	तेज ७	द्वीन्द्रिय १३	वात २०	तेज ३५	द्वीन्द्रिय ५१	चतुरिन्द्रिय ५६	चतुरिन्द्रिय ६१
1 तेज ३	2 अप् ८	3 त्रीन्द्रिय १४	4 तेज २३	7 अप् ३८	10 त्रीन्द्रिय ५२	11 द्वीन्द्रिय ५७	12 द्वीन्द्रिय ६२
अप् ४	पृथ्वी ९	चतुरिन्द्रिय १५	अप् २६	पृथ्वी ४१	चतुरिन्द्रिय ५३	अप्र. प्रत्येक ५८	अप्र. प्रत्येक ६३
पृथ्वी ५	निगोद १०	पंचेन्द्रिय १६	पृथ्वी २९	निगोद ४४	पंचेन्द्रिय ५४	पंचेन्द्रिय ५९	पंचेन्द्रिय ६४
	प्र. प्रत्येक ११			प्र. प्रत्येक ४७			
अपर्याप्त जघन्य	**अपर्याप्त जघन्य**	**अपर्याप्त जघन्य**	**पर्याप्त जघन्य**	**पर्याप्त जघन्य**	**पर्याप्त जघन्य**	**अपर्याप्त उत्कृष्ट**	**पर्याप्त उत्कृष्ट**

सूक्ष्म निगोद १८	**बादर** वात ३३
वात २१	तेज ३६
5 तेज २४	8 अप् ३९
अप् २७	पृथ्वी ४२
पृथ्वी ३०	निगोद ४५
	प्रति.प्रत्येक ४८
अपर्याप्त उत्कृष्ट	**अपर्याप्त उत्कृष्ट**
सूक्ष्म निगोद १९	**बादर** वात ३४
वात २२	तेज ३७
6 तेज २५	9 अप् ४०
अप् २८	पृथ्वी ४३
पृथ्वी ३१	निगोद ४६
	प्रति.प्रत्येक ४९
पर्याप्त उत्कृष्ट	**पर्याप्त उत्कृष्ट**

अवरुवरि इगिपदेसे, जुदे असंखेज्जभागवड्ढीए।
आदी णिरंतरमदो, एगेगपदेसपरिवड्ढी।१०२।।
अवरोग्गाहणमाणे, जहण्णपरिमिदअसंखरासिहिदे।
अवरस्सुवरिं उड्ढे, जेट्ठमसंखेज्जभागस्स।।१०३।।
तस्सुवरि इगिपदेसे, जुदे अवत्तव्वभागपारंभो।
वरसंखमवहिदवरे, रूऊणे अवरउवरि जुदे।।१०४।।
तव्वड्ढीए चरिमो, तस्सुवरिं रूवसंजुदे पढमा।
संखेज्जभागउड्ढी, उवरिमदो रूवपरिवड्ढी।।१०५।।
अवरद्धे अवरुवरिं, उड्ढे तव्वड्ढिपरिसमत्ती हु।
रूवे तदुवरि उड्ढे, होदि अवत्तव्वपढमपदं।।१०६।।
रूऊणवरे अवरुस्सवरिं संवड्ढिदे तदुक्कस्सं।
तम्हि पदेसे उड्ढे, पढमा संखेज्जगुणवड्ढी।।१०७।।
अवरे वरसंखगुणे, तच्चरिमो तम्हि रूवसंजुत्ते।
उग्गाहणम्हि पढमा, होदि अवत्तव्वगुणवड्ढी।।१०८।।
अवरपरित्तासंखेणवरं संगुणिय रूवपरिहीणे।
तच्चरिमो रूवजुदे तम्हि असंखेज्जगुणपढमं।।१०९।।
रूवुत्तरेण तत्तो, आवलियासंखभागगुणगारे।
तप्पाउग्गे जादे, वाउस्सोग्गाहणं कमसो।।११०।।
एवं उवरि वि णेओ, पदेसवड्ढिक्कमो जहाजोग्गं।
सव्वत्थेक्केकम्हि य, जीवसमासाण विच्चाले।।१११।।
हेट्ठा जेसिं जहण्णं, उवरिं उक्कस्सयं हवे जत्थ।
तत्थंतरगा सव्वे, तेसिं उग्गाहणविअप्पा।।११२।।

अर्थ – जघन्य अवगाहना के प्रमाण में एक प्रदेश और मिलाने से जो प्रमाण होता है वह असंख्यातभागवृद्धि का आदिस्थान है। इसके आगे भी क्रम से एक एक प्रदेश की वृद्धि करनी चाहिये।।१०२।।

अर्थ – जघन्य अवगाहना के प्रमाण में जघन्यपरीतासंख्यात का भाग देने से जो लब्ध आवे उतने प्रदेश जघन्य अवगाहना में मिलाने पर असंख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है ।।१०३।।

अर्थ – असंख्यातभागवृद्धि के उत्कृष्ट स्थान के आगे एक प्रदेश की वृद्धि करने से अवक्तव्य भागवृद्धि का प्रारम्भ होता है। इसमें एक एक प्रदेश की वृद्धि होते होते, जब जघन्य अवगाहना के प्रमाण में उत्कृष्ट संख्या का भाग देने से जो लब्ध आवे उसमें एक कम करके जघन्य के प्रमाण में मिला दिया जाय तब –।।१०४।।

अर्थ – अवक्तव्यभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसके आगे एक प्रदेश और मिलाने से संख्यात भागवृद्धि का प्रथम स्थान होता है। इसके भी आगे एक एक प्रदेश की वृद्धि करते करते जब –।।१०५।।

अर्थ – जघन्य का जितना प्रमाण है उसमें उसका (जघन्य का) आधा प्रमाण और मिला दिया जाय तब संख्यातभागवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इसके आगे भी एक प्रदेश की वृद्धि करने पर अवक्तव्यवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ।।१०६।।

अर्थ – जघन्य के प्रमाण में एक कम जघन्य का ही प्रमाण और मिलाने से अवक्तव्य वृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। और इसमें एक प्रदेश और मिलाने से संख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ।।१०७।।

अर्थ – जघन्य को उत्कृष्ट संख्यात से गुणा करने पर संख्यातगुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। इस संख्यात गुणवृद्धि के उत्कृष्ट स्थान में ही एक प्रदेश की वृद्धि करने पर अवक्तव्य गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ।।१०८।।

अर्थ – जघन्य अवगाहना का जघन्य परीतासंख्यात के साथ गुणा करके उसमें से एक घटाने पर अवक्तव्य गुणवृद्धि का उत्कृष्ट स्थान होता है। और इसमें एक प्रदेश की वृद्धि होने पर असंख्यात गुणवृद्धि का प्रथम स्थान होता है ।।१०९।।

अर्थ – इस असंख्यात गुणवृद्धि के प्रथम स्थान के ऊपर क्रम से एक एक प्रदेश की वृद्धि होते होते जब सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकाय की जघन्य अवगाहना की उत्पत्ति के योग्य आवली के असंख्यातवें भाग का गुणाकार उत्पन्न हो जाय तब क्रम से उस वायुकाय की जघन्य अवगाहना होती है ।।११०।।

अर्थ – जिस प्रकार सूक्ष्म निगोदिया अपर्याप्त से लेकर सूक्ष्म अपर्याप्त वातकाय की जघन्य अवगाहना पर्यन्त प्रदेश वृद्धि के क्रम से अवगाहना के स्थान बताये, उस ही प्रकार आगे भी वात से तेज और तेजस्कायिक से लेकर पर्याप्त पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना पर्यन्त सम्पूर्ण जीवसमासों के प्रत्येक अन्तराल में प्रदेशवृद्धिक्रम से अवगाहनास्थानों को समझना चाहिये ।।१११।।

अर्थ – जिन जीवों की प्रथम जघन्य अवगाहना का और अनंतर उत्कृष्ट अवगाहना का जहाँ जहाँ पर वर्णन किया गया है उनके मध्य में जितने भेद हैं उन सबका उसी के भेदों में अन्तर्भाव होता है ।।११२।।

बावीस सत्त तिण्णि य, सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं।
णेया पुढविदगागणि, वाउक्कायाण परिसंखा।।११३।।
कोडिसयसहस्साइं, सत्तट्ठ णव य अट्ठवीसाइं।
बेइंदिय–तेइंदिय–चउरिंदिय–हरिदकायाणं।।११४।।
अद्धतेरस बारस, दसयं कुलकोडिसदसहस्साइं।
जलचर–पक्खि–चउप्पय–उरपरिसप्पेसु णव होंति।।११५।।

छप्पंचाधियवीसं, बारसकुलकोडिसदसहस्साइं।
सुर-णेरइय-णराणं जहाकमं होंति णेयाणि।।११६।।
एया य कोडिकोडी, सत्ताणउदी, य सदसहस्साइं।
पण्णं कोडिसहस्सा, सव्वंगीणं कुलाणं य।।११७।।

अर्थ - पृथिवीकायिक जीवों के कुल बाईस लाख कोटि, जलकायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि, अग्निकायिक जीवों के कुल तीन लाख कोटि और वायुकायिक जीवों के कुल सात लाख कोटि हैं ।।११३।।

अर्थ - द्वीन्द्रिय जीवों के कुल सात लाख कोटि, त्रीन्द्रिय जीवों के कुल आठ लाख कोटि, चतुरिन्द्रिय जीवों के कुल नौ लाख कोटि, और वनस्पतिकायिक जीवों के कुल २८ लाख कोटि हैं ।।११४।।

अर्थ - पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में जलचर जीवों के साढ़े बारह लाख कोटि, पक्षियों के बारह लाख कोटि, पशुओं के दश लाख कोटि, और छाती के सहारे से चलने वाले दुमुही आदि के नव लाख कोटि कुल हैं ।।११५।।

अर्थ - देव, नारकी तथा मनुष्य इनके कुल क्रम से छब्बीस लाख कोटि, पच्चीस लाख कोटि तथा बारह लाख कोटि हैं। जो कि भव्यजीवों के लिये ज्ञातव्य हैं ।।११६।।

अर्थ - इस प्रकार पृथिवीकायिक से लेकर मनुष्य पर्यन्त सम्पूर्ण जीवों के समस्त कुलों की संख्या एक कोड़ाकोड़ी तथा सत्तानवे लाख और पचास हजार कोटि है ।।११७।।

जीवों के कुलों की संख्या

जीव	कुल (लाख कोटि में)	जीव	कुल (लाख कोटि में)
पृथ्वीकायिक	२२	पंचेन्द्रिय तिर्यंच-जलचर	१२.५
जलकायिक	७	" - नभचर	१२
अग्निकायिक	३	" - थलचर	१०
वायुकायिक	७	"-छाती से चलने वाले	९
वनस्पतिकायिक	२८	नारकी	२५
द्वीन्द्रिय	७	देव	२६
त्रीन्द्रिय	८	मनुष्य	१२
चतुरिन्द्रिय	९	**कुल जोड़**	**१९७.५**
= १ करोड़ ९७ लाख ५० हजार करोड़ = १,९७,५०,०००,००,००,०००			

अधिकार ३ - पर्याप्ति

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
पर्याप्ति का स्वरूप, भेद एवं स्वामी	११८-११९	२	६३
पर्याप्ति का काल	१२०-१२१	२	६४
लब्ध्यपर्याप्तक का स्वरूप	१२२	१	६५
६६३३६ क्षुद्रभवों का वर्णन	१२३-१२५	३	६६
समुद्घात केवली के अपर्याप्तपना होना	१२६	१	६७
गुणस्थानों में पर्याप्त-अपर्याप्त अवस्था	१२७-१२८	२	६७
कुल गाथाएँ		**११**	

जह पुण्णापुण्णाइं, गिह-घड-वत्थादियाइं दव्वाइं।
तह पुण्णिदरा जीवा, पज्जत्तिदरा मुणेयव्वा।।११८।।

अर्थ - जिस प्रकार घर, घट, वस्त्र आदिक अचेतन द्रव्य पूर्ण और अपूर्ण दोनों प्रकार के होते हैं उसी प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीव भी पूर्ण और अपूर्ण दो प्रकार के होते हैं। जो पूर्ण हैं उनको पर्याप्त और जो अपूर्ण हैं उनको अपर्याप्त कहते हैं ।।११८।।

पर्याप्ति

(आहारादि वर्गणा को शरीरादिरूप परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता)

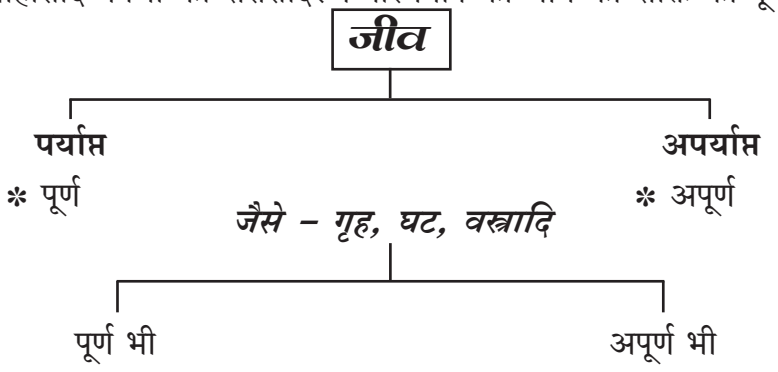

आहार-सरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण-भास-मणो।
चत्तारि पंच छप्पि य, एइंदिय-वियल-सण्णीणं।।११९।।
पज्जत्तीपट्ठवणं जुगवं, तु कमेण होदि णिट्ठवणं।
अंतोमुहुत्तकालेणहियकमा तत्तियालावा।।१२०।।

अर्थ – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन इस प्रकार पर्याप्ति के छह भेद हैं। इनमें से एकेन्द्रिय जीवों के आदि की चार पर्याप्ति, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय) और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के अन्तिम मन:पर्याप्ति को छोड़कर शेष पाँच पर्याप्ति तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के सभी छहों पर्याप्ति हुआ करती हैं ।।११९।।

अर्थ – सम्पूर्ण पर्याप्तियों का आरम्भ तो युगपत् होता है, किन्तु उनकी पूर्णता क्रम से होती है। इनका काल यद्यपि पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर का कुछ-कुछ अधिक है, तथापि सामान्य की अपेक्षा सबका अन्तर्मुहूर्तमात्र ही काल है ।।१२०।।

पर्याप्ति के भेद

क्र.	पर्याप्ति	किसको	किस रूप परिणमित		काल	
१.	आहार	आहार वर्गणा	खल (कठोर रूप) रस (पतले रूप)	जीव की शक्ति की पूर्णता	अंतर्मुहूर्त	(पूर्व से संख्यात भाग अधिक-अधिक)
२.	शरीर	" (खल-रस को)	खल -हड्डी आदि रूप रस - रुधिरादि रूप		"	
३.	इन्द्रिय	"	द्रव्येन्द्रिय आकार रूप		"	
४.	श्वासोच्छ्वास	"	श्वासोच्छ्वास रूप		"	
५.	भाषा	भाषा वर्गणा	शब्द रूप		"	
६.	मन:	मनो वर्गणा	द्रव्य मन रूप		"	

नोट : छहों पर्याप्ति की – शुरूआत एक साथ होती है
– पूर्णता क्रम से होती है

किस जीव की कितनी पर्याप्ति होती है?

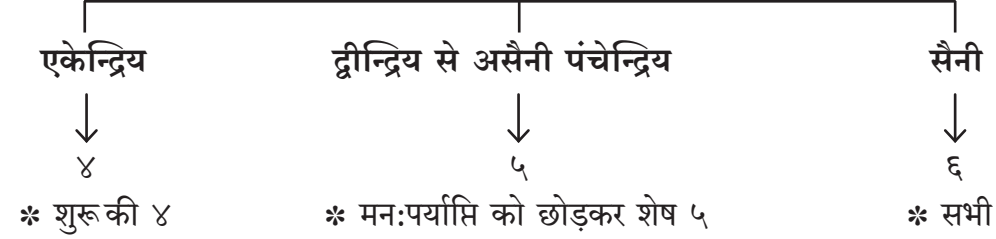

पज्जत्तस्स य उदये, णियणियपज्जत्तिणिट्ठिदो होदि।
जाव सरीरमपुण्णं, णिव्वात्ति अपुण्णगो ताव।।१२१।।

उदये दु अपुण्णस्स य, सगसगपज्जत्तियं ण णिट्ठवदि।
अंतोमुहुत्तमरणं, लद्धिअपज्जत्तगो सो दु।।१२२।।

अर्थ – पर्याप्ति नामकर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियों से पूर्ण होता है, तथापि जब तक उसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तब तक उसको पर्याप्त नहीं कहते, किन्तु निर्वृत्त्यपर्याप्त कहते हैं ।।१२१।।

अर्थ – अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने से जो जीव अपने-अपने योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण न करके अन्तर्मुहूर्त काल में ही मरण को प्राप्त हो जाय उसको लब्ध्यपर्याप्तक कहते हैं ।।१२२।।

गाथा १२१-१२२, १२६ और १२७ का चार्ट-

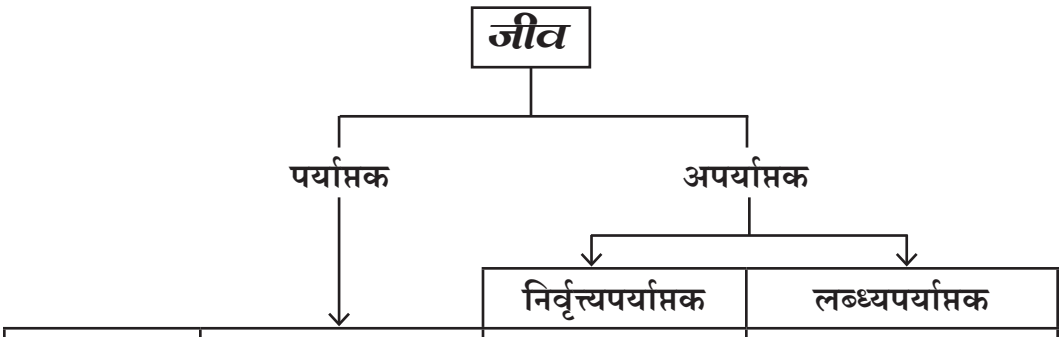

		निर्वृत्त्यपर्याप्तक	लब्ध्यपर्याप्तक
स्वरूप	शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो गई है	शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है, लेकिन नियम से पूर्ण होगी	एक भी पर्याप्ति न पूर्ण हुई है, न होगी (एक भी पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही मरण हो जायेगा)
कब होता	शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के बाद आयु पर्यंत	शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने के पहले तक	आयु प्रमाण अंतर्मुहूर्त पर्यंत
किस नाम कर्म का उदय	पर्याप्त	पर्याप्त	अपर्याप्त
गुणस्थान	सभी १४	१,२,४,६ और १३	सिर्फ पहला

नोट : १३वें गुणस्थान में निर्वृत्त्यपर्याप्तक अवस्था का हेतु –
**** योगों की अपूर्णता – कपाट समुद्घात के काल में***
**** वैसे यहाँ – शरीर पूर्ण हैं***
– पर्याप्त नामकर्म का उदय हैं

तिण्णिसया छत्तीसा, छवट्ठिसहस्सगाणि मरणाणि।
अंतोमुहुत्तकाले, तावदिया चेव खुद्दभवा।।१२३।।
सीदी सट्ठी तालं, वियले चउवीस होंति पंचक्खे।
छावट्ठिं च सहस्सा, सयं च बत्तीसमेयक्खे।।१२४।।

पुढविदगागणिमारुद, साहारणथूलसुहमपत्तेया।
एदेसु अपुण्णेसु य, एक्केक्के बार खं छक्कं।।१२५।।

अर्थ – एक अन्तर्मुहूर्त में एक लब्ध्यपर्याप्तक जीव छ्यासठ हजार तीन सौ छत्तीस बार मरण और उतने ही भवों – जन्मों को भी धारण कर सकता है। इन भवों को क्षुद्रभव शब्द से कहा गया है ।।१२३।।

अर्थ – विकलेन्द्रियों में द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के ८० भव, त्रीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के ६०, चतुरिन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के ४० और पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक के २४ तथा एकेन्द्रियों के ६६१३२ भवों को धारण कर सकता है, अधिक को नहीं ।।१२४।।

अर्थ – स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही प्रकार के जो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और साधारण एवं प्रत्येक वनस्पति, इस प्रकार सम्पूर्ण ग्यारह प्रकार के लब्ध्यपर्याप्तकों में से प्रत्येक (हरएक) के ६०१२ निरतंर क्षुद्रभव होते हैं ।।१२५।।

एक जीव के अंतर्मुहूर्त में लब्ध्यपर्याप्त अवस्था के निरतंरपने अधिक से अधिक भव (क्षुद्रभव)

क्षुद्रभव = सबसे छोटी आयु का भव

जीव	प्रत्येक के भव	कुल भव	एकेन्द्रियादि के कुल भव
सूक्ष्म पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति	६०१२	५×६०१२ = ३००६०	
बादर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, साधारण वनस्पति	६०१२	५×६०१२ = ३००६०	
बादर प्रत्येक वनस्पति		६०१२	
एकेन्द्रिय			६६१३२
द्वीन्द्रिय		८०	८०
त्रीन्द्रिय		६०	६०
चतुरिन्द्रिय		४०	४०
असैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच		८	
सैनी पंचेन्द्रिय तिर्यंच		८	
मनुष्य		८	
पंचेन्द्रिय			२४
कुल क्षुद्रभव			६६३३६

६६३३६ क्षुद्रभव कितने काल में होते हैं

✻ प्रत्येक क्षुद्रभव की **आयु**	= उच्छ्वास/१८
✻ ६६३३६ भव का **समय**	= ६६३३६ × उच्छ्वास/१८
	= ३६८५ १/३ उच्छ्वास
✻ १ मुहूर्त में ३७७३ उच्छ्वास होते हैं।	
✻ ६६३३६ लगातार भव १ मुहूर्त से भी कम काल में पूरे हो जाते हैं।	

पज्जत्तसरीरस्स य, पज्जत्तुदयस्स कायजोगस्स।
जोगिस्स अपुण्णत्तं, अपुण्णजोगो त्ति णिद्दिट्ठं।।१२६।।
लद्धिअपुण्णं मिच्छे, तत्थ वि विदिये चउत्थ-छट्ठे य।
णिव्वत्तिअपज्जत्ती, तत्थ वि सेसेसु पज्जत्ती।।१२७।।

अर्थ - जिस सयोग केवली का शरीर पूर्ण है और उसके पर्याप्ति नामकर्म का उदय भी मौजूद है तथा काययोग भी है, उसके अपर्याप्तता किस प्रकार हो सकती है ? तो इसका कारण योग का पूर्ण न होना ही बताया है ।।१२६।।

अर्थ - लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होते हैं। निर्वृत्त्यपर्याप्तक प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ और छट्ठे गुणस्थान में होते हैं। और पर्याप्तक उक्त चारों और शेष सभी गुणस्थानों में पाये जाती है ।।१२७।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ६५ गाथा नं. १२१-१२२ का चार्ट देखें ।

हेट्ठिमछप्पुढवीणं, जोइसिवणभवणसव्वइत्थीणं।
पुण्णिदरे ण हि सम्मो, ण सासणो णारयापुण्णे।।१२८।।

अर्थ - द्वितीयादिक छह नरक और ज्योतिषी व्यन्तर भवनवासी ये तीन प्रकार के देव तथा सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनको अपर्याप्त अवस्था में सम्यक्त्व नहीं होता है। और नारकियों के निर्वत्त्यपर्याप्त अवस्था में सासादन गुणस्थान नहीं होता ।।१२८।।

निर्वत्त्यपर्याप्त अवस्था दूसरे व चौथे गुणस्थान में कहाँ नहीं होती है ?

२ गुणस्थान	४ गुणस्थान
↓	↓
सातों नरक	✻ प्रथम नरक बिना छह नरक
	✻ ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी देव
	✻ सर्व स्त्री - देवांगना, मनुष्यनी, तिर्यंचनी

अधिकार ४ - प्राण

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
प्राण का निरुक्तिपूर्वक लक्षण	१२९	१	६८
प्राणों के भेद एवं उनकी उत्पत्ति की सामग्री	१३०-१३१	२	६९
प्राणों के स्वामी एवं एकेन्द्रियादि जीवों के प्राण	१३२-१३३	२	६९
कुल गाथाएँ		५	

बाहिरपाणेहिं जहा, तहेव अब्भंतरेहिं पाणेहिं।
पाणंति जेहिं जीवा, पाणा ते होंति णिद्दिट्ठा।।१२९।।
पंच वि इंदियपाणा, मणवचिकायेसु तिण्णि बलपाणा।
आणापाणप्पाणा, आउगपाणेण होंति दस पाणा।।१३०।।

अर्थ - जिस प्रकार अभ्यन्तर प्राणों के कार्यभूत नेत्रों का खोलना, वचनप्रवृत्ति, उच्छ्वास नि:श्वास आदि बाह्य प्राणों के द्वारा जीव जीते हैं, उसी प्रकार जिन अभ्यन्तर इन्द्रियावरणकर्म के क्षयोपशमादि के द्वारा जीव में जीवितपने का व्यवहार हो उनको प्राण कहते हैं ।।१२९।।

अर्थ - पाँच इन्द्रियप्राण - स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र। तीन बलप्राण - मनोबल, वचनबल, कायबल। एक श्वासोच्छ्वास तथा एक आयु इसप्रकार ये दश प्राण हैं ।।१३०।।

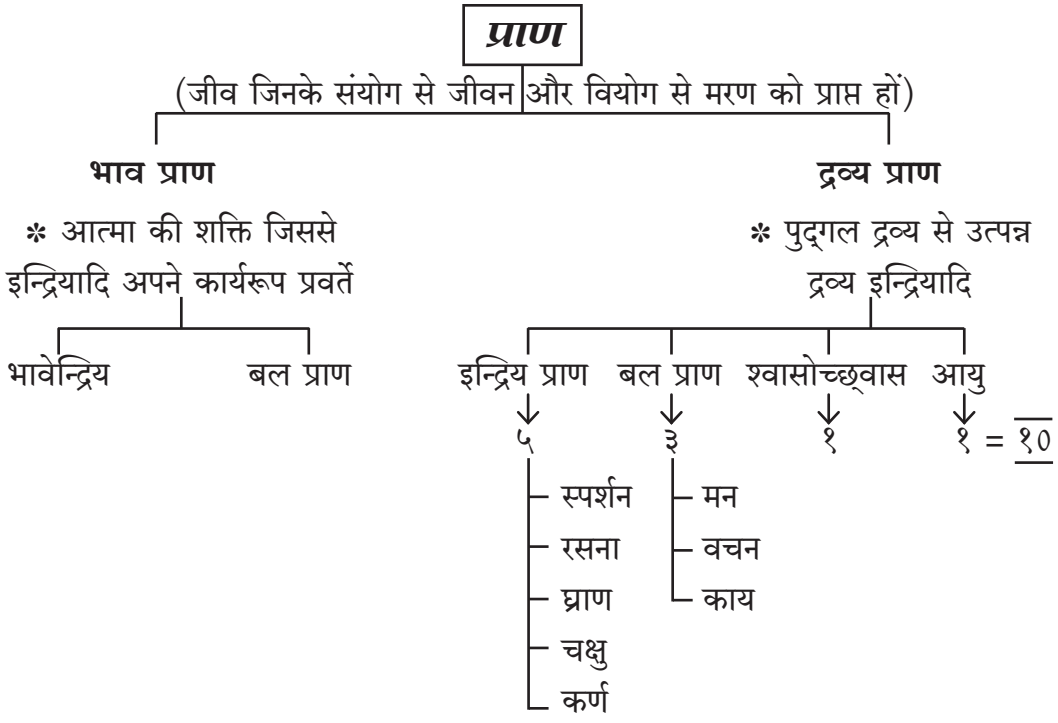

वीरियजुदमदिखउवसमुत्था णोइंदियेंदियेसु बला।
देहुदये कायाणा, वचीबला आउ आउदये।।१३१।।
इंदियकायाऊणि य, पुण्णापुण्णेसु पुण्णगे आणा।
बीइंदियादिपुण्णे, वचीमणो सण्णिपुण्णेव।।१३२।।

अर्थ – मनोबल प्राण और इन्द्रिय प्राण वीर्यान्तराय कर्म और मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशमरूप अन्तरंग कारण से उत्पन्न होते हैं। शरीरनामकर्म के उदय से कायबलप्राण होता है। श्वासोच्छ्वास और शरीरनामकर्म के उदय से प्राण-श्वासोच्छ्वास उत्पन्न होते हैं। स्वरनामकर्म के साथ शरीर नामकर्म का उदय होने पर वचनबल प्राण होता है। आयु कर्म के उदय से आयु प्राण होता है ।।१३१।।

अर्थ – इन्द्रिय, काय, आयु ये तीन प्राण, पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों ही के होते हैं। किन्तु श्वासोच्छ्वास पर्याप्त के ही होता है। और वचनबल प्राण पर्याप्त द्वीन्द्रियादि के ही होता है तथा मनोबल प्राण संज्ञीपर्याप्त के ही होता है ।।१३२।।

प्राणों की उत्पत्ति की सामग्री और स्वामी

प्राण	उत्पत्ति का कारण	स्वामी
इन्द्रिय प्राण	वीर्यान्तराय और मतिज्ञानावरण का क्षयोपशम	पर्याप्त, अपर्याप्त
मन बल	〃	पर्याप्त सैनी
काय बल	शरीर नाम कर्म	पर्याप्त, अपर्याप्त
वचन बल	〃 और स्वर नाम कर्म	पर्याप्त द्वीन्द्रियादि
श्वासोच्छ्वास	〃 और श्वासोच्छ्वास नाम कर्म	पर्याप्त
आयु	आयु कर्म	पर्याप्त, अपर्याप्त

दस सण्णीणं पाणा, सेसेगूणंतिमस्स वेऊणा।
पज्जत्तेसिदरेसु य, सत्त दुगे सेसगेगूणा।।१३३।।

अर्थ – पर्याप्त संज्ञीपंचेन्द्रिय के दश प्राण होते हैं। शेष पर्याप्तकों के एक एक प्राण कम होता जाता है, किन्तु एकेन्द्रियों के दो कम होते हैं। अपर्याप्तक संज्ञी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय के सात प्राण होते हैं और शेष अपर्याप्त जीवों के एक-एक प्राण कम होता जाता है ।।१३३।।

किस जीव के कितने और कौन-कौन से प्राण होते हैं

जीव	अपर्याप्त		पर्याप्त	
	कितने	कौन से	कितने	कौन से
एकेन्द्रिय	३	स्पर्शन इन्द्रिय, काय बल, आयु	४	३ अपर्याप्त के + श्वासो.
द्वीन्द्रिय	४	" + रसना	६	" + रसना,वचन बल
त्रीन्द्रिय	५	" + घ्राण	७	" + घ्राण
चतुरिन्द्रिय	६	" + चक्षु	८	" + चक्षु
पंचेन्द्रिय असैनी	७	" + कर्ण	९	" + कर्ण
पंचेन्द्रिय सैनी	७	"	१०	" + मन बल

सयोगकेवली	४	वचन बल, काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास
	३	काय बल, आयु, श्वासोच्छ्वास
	२	काय बल, आयु,
अयोगकेवली	१	आयु

पर्याप्ति और प्राण में अन्तर

पर्याप्ति	प्राण
* कारण	* कार्य
* पुद्गल को इन्द्रियादिरूप परिणमाने की शक्ति की पूर्णता	* वचन व्यापारादि की कारणभूत योग्यता
	* वचनादिरूप प्रवृत्ति

"अथवा"

भाव प्राण	पर्याप्ति	द्रव्य प्राण
कारण ⟶	कार्य	
	कारण	⟶ कार्य

अधिकार ५ - संज्ञा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
संज्ञा का लक्षण एवं भेद	१३४	१	७१
चारों संज्ञाओं का कारण एवं स्वरूप	१३५-१३८	४	७१
संज्ञाओं का स्वामित्व	१३९	१	७१
कुल गाथाएँ		**६**	

इह जाहि बाहिया वि य, जीवा पावंति दारुणं दुक्खं।
सेवंता वि य उभये, ताओ चत्तारि सण्णाओ।।१३४।।
आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोठाए।
सादिदरुदीरणाए, हवदि हु आहारसण्णा हु।।१३५।।
अइभीमदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमसत्तीए।
भयकम्मुदीरणाए, भयसण्णा जायदे चदुहिं।।१३६।।
पणिदरसभोयणेण य, तस्सुवजोगे कुसील सेवाए।
वेदस्सुदीरणाए, मेहुणसण्णा हवदि एवं।।१३७।।
उवयरणदंसणेण य, तस्सुवजोगेण मुच्छिदाए य।
लोहस्सुदीरणाए, परिग्गहे जायदे सण्णा।।१३८।।
णट्ठपमाए पढमा, सण्णा ण हि तत्थ कारणाभावा।
सेसा कम्मत्थित्तेणुवयारेणत्थि ण हि कज्जे।।१३९।।

अर्थ - जिनसे संक्लेशित होकर जीव इस लोक में और जिनके विषय का सेवन करने से दोनों ही भवों में दारुण दु:ख को प्राप्त होते हैं उनको संज्ञा कहते हैं। उसके विषय भेद के अनुसार चार भेद हैं - आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ।।१३४।।

अर्थ - आगे चार्ट में देखें ।।१३५-१३७।।

अर्थ - इत्र, भोजन, उत्तम वस्त्र, स्त्री, धन, धान्य आदि भोगोपभोग के साधनभूत बाह्य पदार्थों के देखने से अथवा पहले के भुक्त पदार्थों का स्मरण या उनकी कथा का श्रवण आदि करने से और ममत्व परिणामों के - परिग्रहाद्यर्जन की तीव्र गृद्धि के भाव होने से, एवं लोभकर्म का तीव्र उदय या उदीरणा होने से - इन चार कारणों से परिग्रह संज्ञा उत्पन्न होती है ।।१३८।।

अर्थ - अप्रमत्त आदि गुणस्थानों में आहारसंज्ञा नहीं होती क्योंकि वहाँ पर उसका कारण असाता वेदनीय का तीव्र उदय या उदीरणा नहीं पाई जाती। शेष तीन संज्ञाएँ भी वहाँ पर उपचार से ही होती हैं क्योंकि उनका कारण तत्तत्कर्मों का उदय वहाँ पर पाया जाता है फिर भी उनका वहाँ पर कार्य नहीं हुआ करता ।।१३९।।

संज्ञा (वांछा)

जिससे संक्लेशित होकर जीव इस लोक में दारुण दुःख को प्राप्त होता है

जिनके सेवन से दोनों ही भवों में

संज्ञा के भेद

भेद	अंतरंग निमित्त कारण (कर्म का तीव्र उदय/उदीरणा)	बाह्य निमित्त कारण	किस गुणस्थान तक होती है
आहार	असाता वेदनीय	* आहार का देखना * आहार में उपयोग (याद करना, कथा सुनना) * पेट खाली होना	छठे तक, आगे असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा का अभाव
भय	भय कषाय	* अत्यंत भयानक पदार्थ का देखना, * उसकी कथा सुनना, पूर्व देखे पदार्थ का स्मरण * शक्तिहीन होना	उपचार से, क्योंकि- * कर्मों का उदय पाया जाता है * परंतु कार्य नहीं देखा जाता है आठवें तक
मैथुन	वेद कषाय	* कामोत्पादक गरिष्ठ भोजन * काम कथा, नाटक आदि सुनना * पूर्व में भोगे काम विषयादि को याद करना * कुशील पुरुषों की संगति/गोष्ठी आदि करना	नवमें तक
परिग्रह	लोभ कषाय	* भोगोपभोग के साधनभूत धन-धान्यादिक बाह्य परिग्रहरूप उपकरण को देखना * धनादिक की कथा सुनना * पूर्व भोगे पदार्थों का स्मरण करना * परिग्रह अर्जन की तीव्र गृद्धि के भाव होना	दसवें तक

मार्गणा महाधिकार

धम्मगुणमग्गणाहयमोहारिबलं जिणं णमंसित्ता।
मग्गणमहाहियारं, विविहहियारं भणिस्सामो।।१४०।।

अर्थ – सम्यग्दर्शनादि अथवा उत्तम क्षमादि धर्मरूपी धनुष और ज्ञानादि गुणरूपी प्रत्यंचा–डोरी, तथा चौदह मार्गणारूपी बाणों से जिसने मोहरूपी शत्रु के बल–सैन्य को नष्ट कर दिया है ऐसे श्री जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके मैं उस मार्गणा महाधिकार का वर्णन करूँगा जिसमें कि और भी विविध अधिकारों का अन्तर्भाव पाया जाता है ।।१४०।।

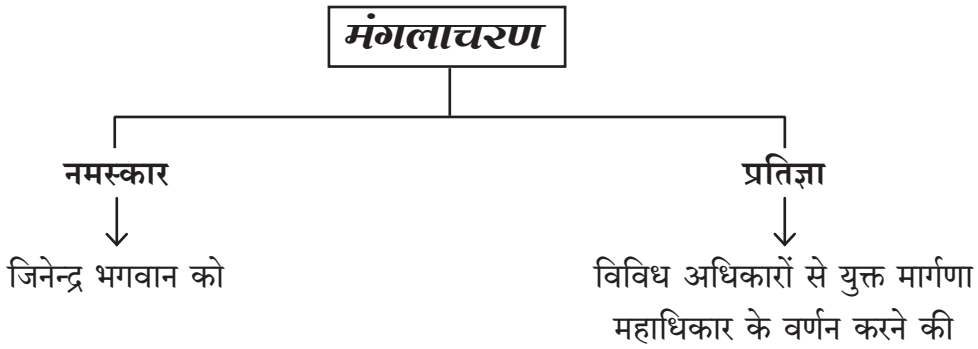

जाहि व जासु व जीवा, मग्गिज्जंते जहा तहा दिट्ठा।
ताओ चोदस जाणे सुयणाणे मग्गणा होंति।।१४१।।
गइइंदियेसु काये, जोगे वेदे कसायणाणे य।
संजमदंसणलेस्सा, भवियासम्मत्तसण्णि आहारे।।१४२।।

अर्थ – प्रवचन में जिस प्रकार से देखे हों उसी प्रकार से जीवादि पदार्थों का जिन भावों के द्वारा अथवा जिन पर्यायों में विचार–अन्वेषण किया जाय उनको ही मार्गणा कहते हैं, उनके चौदह भेद हैं ऐसा समझना चाहिये ।।१४१।।

अर्थ – गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्यत्व, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार ये चौदह मार्गणा हैं ।।१४२।।

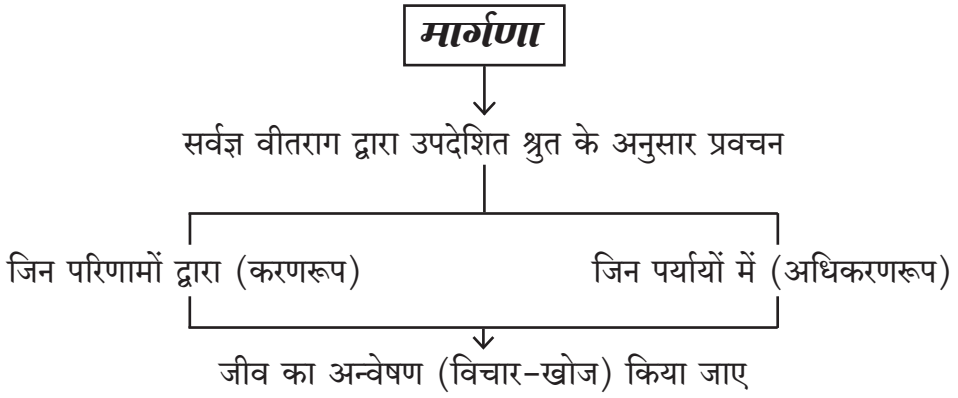

१४ मार्गणा

१. गति	५. वेद	९. दर्शन	१३. संज्ञी
२. इन्द्रिय	६. कषाय	१०. लेश्या	१४. आहार
३. काय	७. ज्ञान	११. भव्यत्व	
४. योग	८. संयम	१२. सम्यक्त्व	

उवसम सुहमाहारे, वेगुव्वियमिस्स णरअपज्जत्ते।
सासणसम्मे मिस्से, सांतरगा मग्गणा अट्ठ।।१४३।।
सत्त दिणा छम्मासा, वासपुधत्तं च बारस मुहुत्ता।
पल्लासंखं तिण्हं, वरमवरं एगसमयो दु।।१४४।।
पढमुवसमसहिदाए, विरदाविरदीए चोद्दसा दिवसा।
विरदीए पण्णरसा, विरहिदकालो दु बोधव्वो।।१४५।।

अर्थ – उपशम सम्यक्त्व, सूक्ष्मसांपराय संयम, आहारक काययोग, आहारकमिश्रकाययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग, अपर्याप्त–लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य, सासादन सम्यक्त्व और मिश्र, ये आठ सान्तरमार्गणाएँ हैं ।।१४३।।

अर्थ – उक्त आठ अन्तरमार्गणाओं का उत्कृष्ट काल क्रम से सात दिन, छः महीना, पृथक्त्व वर्ष, पृथक्त्व वर्ष, बारह मुहूर्त और अन्त की तीन मार्गणाओं का काल पल्य के असंख्यातवें भाग है। और जघन्य काल सबका एक समय है ।।१४४।।

अर्थ – प्रथमोपशम सम्यक्त्व सहित पंचम गुणस्थान का उत्कृष्ट विरहकाल चौदह दिन और छट्ठे सातवें गुणस्थान का उत्कृष्ट विरहकाल पंद्रह दिन समझना चाहिये ।।१४५।।

आठ सांतर मार्गणाऐं

–नाना जीवों की अपेक्षा

सांतर = अंतर सहित = विवक्षित मार्गणा में किसी समय में किसी भी जीव का प्राप्त न होना

मूल मार्गणा	सांतर मार्गणा	अंतर		
		उत्कृष्ट		जघन्य
गति	लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य	पल्य/असंख्यात		सभी का एक समय
सम्यक्त्व	* सासादन	〃		
	* मिश्र	〃		
	* उपशम सम्यक्त्व	* ७ दिन	(चतुर्थ गुणस्थान का)	
		* १४ दिन	(पंचम 〃)	
		* १५ दिन / (अथवा २४ दिन)	(छठे–सातवें 〃)	
संयम	सूक्ष्मसाम्पराय	६ महीना		
योग	* आहारक	वर्ष पृथक्त्व (३–९)		
	* आहारक मिश्र	〃		
	* वैक्रियिक मिश्र	१२ मुहूर्त *(इतने काल तक कोई देव/ नारकी उत्पन्न न हो)*		
नोट – शेष मूल मार्गणा व अवांतर मार्गणा निरंतर है (उनमें हमेशा जीव पाये जाते हैं)				

अधिकार ६ - गतिमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
गति का स्वरूप एवं भेद	१४६	१	७६
नरक गति का स्वरूप	१४७	१	७६
तिर्यंच " "	१४८	१	७६
मनुष्य " "	१४९	१	७६
तिर्यंच तथा मनुष्यों के भेद	१५०	१	७७
देवगति का स्वरूप	१५१	१	७७
सिद्धगति "	१५२	१	७७
४ गतियों में जीवों की संख्या -			
नरकगति में जीवों की संख्या	१५३-१५४	२	७९
तिर्यंचगति " " "	१५५-१५६	२	७९
मनुष्यगति " " "	१५७-१५९	३	७९
देवगति " " "	१६०-१६३	४	७९
कुल गाथाएँ		**१८**	

गइउदयजपज्जाया चउगइगमणस्स हेउ वा हु गई।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवगइ त्ति य हवे चदुधा।।१४६।।
ण रमंति जदो णिच्चं, दव्वे खेत्ते य काल-भावे य।
अण्णोण्णेहिं य जम्हा, तम्हा ते णारया भणिया।।१४७।।
तिरियंति कुडिलभावं, सुविउलसण्णा णिगिट्ठिमण्णाणा।
अच्चंतपावबहुला, तम्हा तेरिच्छया भणिया।।१४८।।
मण्णंति जदो णिच्चं, मणेण णिउणा मणुक्कडा जम्हा।
मण्णुब्भवा य सव्वे, तम्हा ते माणुसा भणिदा।।१४९।।

सामण्णा पंचिंदी, पज्जत्ता जोणिणी अपज्जत्ता।
तिरिया णरा तहावि य, पंचिंदियभंगदो हीणा।।१५०।।
दीव्वंति जदो णिच्चं, गुणेहिं अट्ठेहिं दिव्वभावेहिं।
भासंतदिव्वकाया, तम्हा ते वण्णिया देवा।।१५१।।
जाइजरामरणभया, संजोगविजोगदुक्खसण्णाओ।
रोगादिगा य जिस्से, ण संति सा होदि सिद्धगई।।१५२।।

अर्थ – गतिनामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। उसके चार भेद हैं, नरकगति तिर्यंचगति मनुष्यगति देवगति ।।१४६।।

अर्थ – जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव में स्वयं तथा परस्पर में प्रीति को प्राप्त नहीं होते उनको नारत (नारकी) कहते हैं ।।१४७।।

अर्थ – जो मन वचन काय की कुटिलता को प्राप्त हो, जिनकी आहारादि विषयक संज्ञा दूसरे मनुष्यों को अच्छी तरह प्रकट हो, जो निकृष्ट अज्ञानी हों तथा जिनमें अत्यन्त पाप का बाहुल्य पाया जाय उनको तिर्यंच कहते हैं ।।१४८।।

अर्थ – जो नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार करें और जो मन के द्वारा गुणदोषादि का विचार स्मरण आदि कर सकें, जो पूर्वोक्त मन के विषय में उत्कृष्ट हों, शिल्पकला आदि में भी कुशल हों तथा युग की आदि में जो मनुओं से उत्पन्न हों उनको मनुष्य कहते हैं ।।१४९।।

अर्थ – तिर्यंचों के पाँच भेद होते हैं। सामान्य तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, योनिनी तिर्यंच और अपर्याप्त तिर्यंच। इन्हीं पाँच भेदों में से पंचेन्द्रिय के एक भेद को छोड़कर बाकी के ये ही चार भेद मनुष्यों के होते हैं ।।१५०।।

अर्थ – जो देवगति में होनेवाले या पाये जानेवाले परिणामों-परिणमनों से सदा सुखी रहते हैं और जो अणिमा, महिमा आदि आठ गुणों (ऋद्धियों) के द्वारा सदा अप्रतिहतरूप से विहार करते हैं और जिनका रूप, लावण्य, यौवन आदि सदा प्रकाशमान रहता है, उनको परमागम में देव कहा है ।।१५१।।

अर्थ – एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक पाँच प्रकार की जाति, बुढ़ापा, मरण, भय, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग, इनसे होने वाले दु:ख, आहारादि विषयक संज्ञाएँ-वांछाएँ और रोग आदि की व्याधि इत्यादि विरुद्ध विषय जिस गति में नहीं पाये जाते उसको सिद्ध गति कहते हैं ।।१५२।।

गति **गति रहित**

(गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय) (चारों गतियों में गमन करने का कारण)

नाम	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव	सिद्ध
निरुक्ति अर्थ	न + रत ↓ ↓ नही हैं रति (प्रीति)	तिर: + अंचंति ↓ ↓ * तिरोभाव प्राप्त हुए * कुटिलभाव * मायाचार परिणाम	१ मन्यंते २ मनसा + निपुणा: ३ मनसा + उत्कटा: ४ मनु: + उद्भवा: ↓	देव-दिव्-दीव्यंति ↓ १ क्रीड़ा - पर्वतों, वनों,महासमुद्रों में विहार २ विजिगीषा - बलवानों को भी जीतने का भाव रखना ३ द्युति - विशिष्ट दीप्ति को धारण करना ४ स्तुति - पंच परमेष्ठी, अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों आदि की वंदना - स्तुति करना ५ मोद - पंचेन्द्रिय विषय-भोगों से मुदित रहना	
स्वरूप	- द्रव्य क्षेत्र काल भाव में - स्वयं तथा परस्पर में - प्रीति को प्राप्त नहीं होते	* मन वचन काय की कुटिलता को प्राप्त * संज्ञायें प्रकट * निकृष्ट अज्ञानी * अत्यंत पाप का बाहुल्य	* १ हेय-उपादेय जाने * २ शिल्पादि कलाओं में प्रवीणता * ३ अवधारणादि दृढ़ उपयोग के धारी * ४ कुलकरों से उत्पन्न हो	* कुलाचलादि में क्रीड़ा करें * अणिमादि गुण सहित * दैदीप्यमान, मनोहर शरीर सहित	जन्म,जरा, मरण, भय,संयोग,वियोग, दु:ख, संज्ञा, रोगादि की वेदना से रहित
भेद	सात नरक	- सामान्य तिर्यंच - पंचेन्द्रिय तिर्यंच - पर्याप्त पंचे. तिर्यंच - योनिमति तिर्यंच - अपर्याप्त पंचे. तिर्यंच	- सामान्य मनुष्य - पर्याप्त मनुष्य - मनुष्यनी - अपर्याप्त मनुष्य	- भवनवासी - व्यंतर - ज्योतिषी - वैमानिक	

सामण्णा णेरइया, घणअंगुलविदियमूलगुणसेढी।
विदियादि वारदसअड, छत्तिदुणिजपदहिदा सेढी।।१५३।।
हेट्ठिमछप्पुढवीणं रासिविहीणो दु सव्वरासी दु।
पढमावणिम्हि रासी, णेरइयाणं तु णिद्दिट्ठो।।१५४।।
संसारी पंचक्खा, तप्पुण्णा तिगदिहीणया कमसो।
सामण्णा पंचिंदी, पंचिंदियपुण्णतेरिक्खा।।१५५।।
छस्सयजोयणकदिहदजगपदरं जोणिणीण परिमाणं।
पुण्णूणा पंचक्खा, तिरियअपज्जत्तपरिसंखा।।१५६।।
सेढी सूईअंगुलआदिमतदियपदभाजिदेगूणा।
सामण्णमणुसरासी, पंचमकदिघणसमा पुण्णा।।१५७।।
तललीनमधुगविमलंधूमसिलागाविचोरभयमेरू ।
तटहरिखझसा होंति हु, माणुसपज्जत्तसंखंका।।१५८।।
पज्जत्तमणुस्साणं, तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।
सामण्णा पुण्णूणा, मणुवअपज्जत्तगा होंति।।१५९।।
तिण्णिसयजोयणाणं, वेसदछप्पण्ण अंगुलाणं च।
कदिहदपदरं वेंतर, जोइसियाणं च परिमाणं।।१६०।।
घणअंगुलपढमपदं, तदियपदं सेढिसंगुणं कमसो।
भवणे सोहम्मदुगे, देवाणं होदि परिमाणं।।१६१।।
तत्तो एगारणवसगपणचउणियमूलभाजिदा सेढी।
पल्लासंखेज्जदिमा, पत्तेयं आणदादिसुरा।।१६२।।
तिगुणा सत्तगुणा वा, सव्वट्ठा माणुसीपमाणादो।
सामण्णदेवरासी, जोइसियादो विसेसाहिया।।१६३।।

अर्थ – सामान्यतया सम्पूर्ण नारकियों का प्रमाण घनांगुल के दूसरे वर्गमूल से गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण है। द्वितीयादि पृथिवियों में रहने वाले–पाये जाने वाले नारकियों का प्रमाण क्रम से अपने बारहवें, दशवें, आठवें, छट्ठे, तीसरे और दूसरे वर्गमूल से भक्त जगच्छ्रेणी प्रमाण समझना चाहिये ।।१५३।।

अर्थ – नीचे की छह पृथिवियों के नारकियों का जितना प्रमाण हो उसको सम्पूर्ण नारक राशि में से घटाने पर जो शेष रहे उतना ही प्रथम पृथ्वी के नारकियों का प्रमाण है ।।१५४।।

अर्थ – सम्पूर्ण जीवराशि में से सिद्धराशि को घटाने पर संसार राशि का, संसारराशि में से तीन गति के जीवों का प्रमाण घटाने पर सामान्य तिर्यंचों का, सम्पूर्ण पंचेन्द्रिय जीवों के प्रमाण में से ३ गति सम्बन्धी जीवों का प्रमाण घटाने पर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों तथा संपूर्ण पर्याप्तकों के प्रमाण में से

तीन गति संबंधी पर्याप्त जीवों का प्रमाण घटाने पर पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का प्रमाण प्राप्त होता है ।।१५५।।

अर्थ – छह सौ योजन के वर्ग का जगतप्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतना ही योनिनी तिर्यंचों का प्रमाण है और पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में से पर्याप्त तिर्यंचों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों का प्रमाण है ।।१५६।।

अर्थ – सूच्यंगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का जगच्छ्रेणी में भाग देने से जो शेष रहे उसमें एक और घटाने पर जो शेष रहे उतना सामान्य मनुष्य राशि का प्रमाण है। इसमें से द्विरूपवर्गधारा में उत्पन्न पाँचवें वर्ग (बादाल) के घनप्रमाण पर्याप्त मनुष्यों का प्रमाण है ।।१५७।।

अर्थ – तकार से लेकर सकार पर्यन्त जितने अक्षर इस गाथा में बताये हैं, उतने ही अंक प्रमाण पर्याप्त मनुष्यों की संख्या है ।।१५८।।

अर्थ – पर्याप्त मनुष्यों का जितना प्रमाण है उसमें तीन चौथाई मानुषियों का प्रमाण है। सामान्य मनुष्यराशि में से पर्याप्तकों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना ही अपर्याप्त मनुष्यों का प्रमाण है ।।१५९।।

अर्थ – तीन सौ योजन के वर्ग का जगतप्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतना व्यन्तर देवों का प्रमाण है और २५६ प्रमाणांगुलों के वर्ग का जगतप्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतना ज्योतिषियों का प्रमाण है ।।१६०।।

अर्थ – जगच्छ्रेणी के साथ घनांगुल के प्रथम वर्गमूल का गुणा करने से भवनवासी और तृतीय वर्गमूल का गुणा करने से सौधर्मद्विक–सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों का प्रमाण निकलता है ।।१६१।।

अर्थ – इसके अनंतर अपने (जगच्छ्रेणी के) ग्यारहवें नववें सातवें पांचवें चौथे वर्गमूल से भाजित जगच्छ्रेणी प्रमाण तीसरे कल्प से लेकर बारहवें कल्प तक के देवों का प्रमाण है। आनतादिक में आगे के देवों का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है ।।१६२।।

अर्थ – मानुषियों का जितना प्रमाण है उससे तिगुना अथवा सातगुना सर्वार्थसिद्धि के देवों का प्रमाण है। ज्योतिषी देवों का जितना प्रमाण है उससे कुछ अधिक सम्पूर्ण देवराशि का प्रमाण है ।।१६३।।

गति संख्या

नरक		तिर्यंच		मनुष्य		देव	
कुल	$\sqrt[२]{\text{घनांगुल}} \times$ जगच्छ्रेणी	**कुल (सामान्य तिर्यंच)**	कुल – ३ संसारी गति	**कुल (सामान्य) मनुष्य**	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt{\text{सूच्यंगुल}} \times \sqrt[३]{\text{सूच्यंगुल}}} - १$	**कुल**	ज्योतिषी देवों से कुछ अधिक
२ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[१२]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$	**पंचेन्द्रिय तिर्यंच**	कुल – ३ पंचेन्द्रिय गति	**पर्याप्त मनुष्य**	(बादाल)^३ = २९ अंक प्रमाण = ७९२२८१६२५१४२ ६४३३७५९३५४३९ ५०३३६	**ज्योतिषी**	$\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ प्रमाणांगुल})^२}$
३ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[१०]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$	**पर्याप्त पंचे. तिर्यंच**	कुल पंचे.–३गति पर्याप्त पर्याप्त			**व्यंतर**	$\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{३०० यो.})^२}$
४ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[८]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$	**योनिमति**	$\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{६०० यो.})^२}$	**मनुष्यनी (मानुषी)**	पर्याप्त मनुष्य $\times \frac{३}{४}$	**भवनवासी**	$\sqrt{\text{घनांगुल}} \times$ जगच्छ्रेणी
५ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[६]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$	**अपर्याप्त पंचे. तिर्यंच**	कुल पंचे.–पर्याप्त तिर्यंच पंचे. तिर्यंच	**अपर्याप्त मनुष्य**	कुल मनुष्य – पर्याप्त मनुष्य	**सौधर्म–ऐशान**	$\sqrt[३]{\text{घनांगुल}} \times$ जगच्छ्रेणी
६ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[३]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$					**सानत्कुमार – माहेन्द्र**	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[११]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$
७ नरक	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[२]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$					**ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर**	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[९]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$
१ नरक	कुल नारकी– दूसरे से सातवें नरक					**लांतव–कापिष्ठ**	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[७]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$
						शुक्र–महाशुक्र	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[५]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$
						शतार–सहस्रार	$\frac{\text{जगच्छ्रेणी}}{\sqrt[४]{\text{जगच्छ्रेणी}}}$

देव	संख्या
आनत–प्राणत	पल्य / असं.
आरण–अच्युत	पल्य / असं.
९ ग्रैवेयक	पल्य असं.
९ अनुदिश	पल्य / असं.
४ अनुत्तर	पल्य / असं.
सर्वार्थसिद्धि	मनुष्यनी से ३ या ७ गुणा

उत्तरोत्तर संख्यात गुणा हीन ↓

अधिक क्रम से चारों गति की जीव राशि

मनुष्यनी	<	कुल पर्याप्त मनुष्य	<	सर्वार्थसिद्धि	<	४ अनुत्तर	<
९ अनुदिश	<	९ ग्रैवेयक	<	१५,१६ स्वर्ग	<	१३,१४ स्वर्ग	<
७ नरक	<	६ नरक	<	११,१२ स्वर्ग	<	९,१० स्वर्ग	<
५ नरक	<	७,८ स्वर्ग	<	४ नरक	<	५,६ स्वर्ग	<
३ नरक	<	३,४ स्वर्ग	<	२ नरक	<	कुल मनुष्य	<
१,२ स्वर्ग	<	१ नरक	<	कुल नारकी	<	भवनवासी	<
योनिमति	<	व्यंतर	<	ज्योतिषी	<	कुल देव	<
पंचे. तिर्यंच	<	सामान्य तिर्यंच					

अधिकार ७ - इन्द्रियमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
इन्द्रिय का निरुक्तिपूर्वक अर्थ	१६४	१	८३
इन्द्रियों के भेद एवं उनसे संयुक्त जीव	१६५-१६६	२	८३
एकेन्द्रियादि जीवों के सम्भाव्य इंद्रियाँ	१६७	१	८४
इंद्रियों का विषयक्षेत्र	१६८-१७०	३	८५
इंद्रियों का आकार	१७१-१७३	३	८७
अतीन्द्रिय ज्ञानवाले जीव	१७४	१	८८
संख्या -			
एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या	१७५-१७७	३	८९
त्रसजीवों की संख्या	१७८-१८०	३	९०
कुल गाथाएँ		**१७**	

अहमिंदा जह देवा, अविसेसं अहमहंति मण्णंता।
ईसंति एक्कमेक्कं, इंदा इव इंदिये जाण।।१६४।।
मदिआवरणखओवसमुत्थविसुद्धी हु तज्जबोहो वा।
भाविंदियं तु दव्वं, देहुदयजदेहचिण्हं तु।।१६५।।

अर्थ - जिस प्रकार अहमिन्द्र देवों में दूसरे की अपेक्षा न रखकर प्रत्येक अपने अपने को स्वामी मानते हैं, उसी प्रकार इन्द्रियाँ भी हैं ।।१६४।।

अर्थ - इन्द्रिय के दो भेद हैं - भावेन्द्रिय एवं द्रव्येन्द्रिय। मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली विशुद्धि अथवा उस विशुद्धि से उत्पन्न होने वाले उपयोगात्मक ज्ञान को भावेन्द्रिय कहते हैं। और शरीर नामकर्म के उदय से बननेवाले शरीर के चिह्नविशेष को द्रव्येन्द्रिय कहते हैं ।।१६५।।

इन्द्रिय

* जो अहमिन्द्र के समान स्वतंत्र है।
* प्रत्येक इन्द्रिय अपने-अपने विषय में दूसरे की अपेक्षा नहीं रखती है।

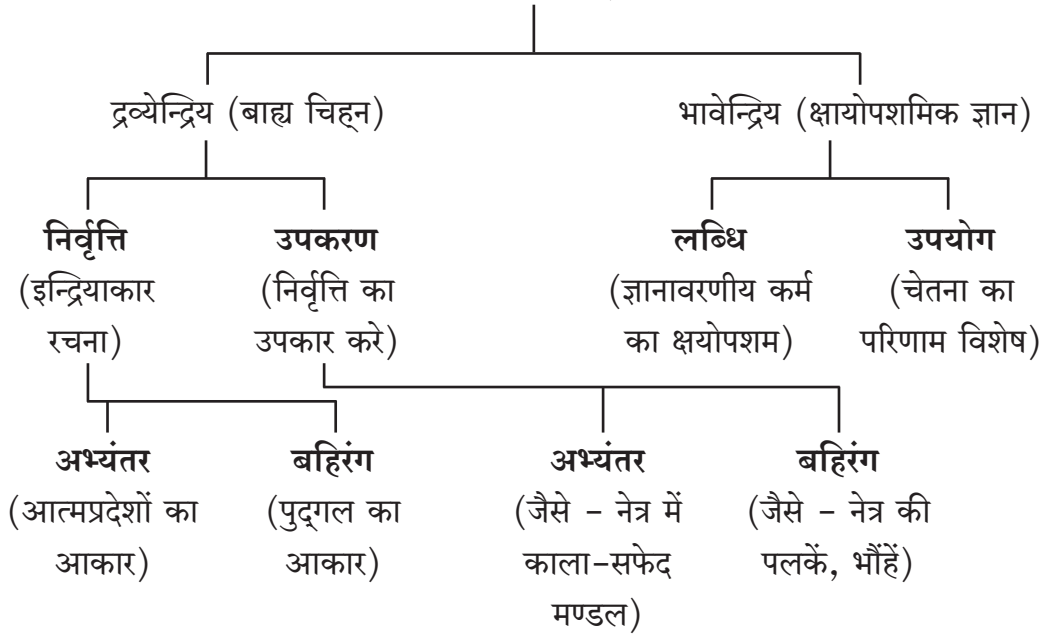

फासरसगंधरूवे, सद्दे णाणं च चिण्हयं जेसिं।
इगिबितिचदुपंचिंदिय, जीवा णियभेयभिण्णाओ।।१६६।।
एइंदियस्स फुसणं, एक्कं वि य होदि सेसजीवाणं।
होंति कमउड्ढियाइं, जिब्भाघाणच्छिसोत्ताइं।।१६७।।

अर्थ - जिन जीवों के बाह्य चिह्न (द्रव्येन्द्रिय) और उसके द्वारा होने वाला स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द इन विषयों का ज्ञान हो उनको क्रम से एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव कहते हैं, और इनके भी अनेक अवान्तर भेद हैं ।।१६६।।

अर्थ - एकेन्द्रिय जीव के एक स्पर्शनेन्द्रिय ही होती है। शेष जीवों के क्रम से रसना(जिह्वा), घ्राण, चक्षु और श्रोत्र बढ़ जाते हैं ।।१६७।।

इन्द्रियों की अपेक्षा जीवों के भेद एवं उदाहरण

जीव	बाह्य चिह्न (द्रव्येन्द्रिय)	किसका ज्ञान (भावेन्द्रिय)	उदाहरण
एकेन्द्रिय	स्पर्शन	स्पर्श	पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति
द्वीन्द्रिय	स्पर्शन, रसना	स्पर्श, रस	लट, शंख, सीप, केचुआ, जोंक आदि
त्रीन्द्रिय	स्पर्शन, रसना, घ्राण	स्पर्श, रस, गंध	चींटी, जू, लीख, खटमल, बिच्छू आदि
चतुरिन्द्रिय	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु	स्पर्श, रस, गंध, रूप	मच्छर, भौंरा, मक्खी, तितली, डांस, पतंगा आदि
पंचेन्द्रिय	स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण	स्पर्श, रस, गंध, रूप, शब्द	मनुष्य, देव, नारकी, पशु-पक्षी

धणुवीसडदसयकदी, जोयणछादालहीणतिसहस्सा।
अट्ठसहस्स धणूणं, विसया दुगुणा असण्णि त्ति।।१६८।।
सण्णिस्स वार सोदे, तिण्हं णव जोयणाणि चक्खुस्स।
सत्तेतालसहस्सा, बेसदतेसट्ठिमदिरेया।।१६९।।

अर्थ - एकेन्द्रिय के स्पर्शन, द्वीन्द्रिय के रसना एवं त्रीन्द्रिय के घ्राण का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र क्रम से चार सौ धनुष, चौसठ धनुष, सौ धनुष प्रमाण है। चतुरिन्द्रिय के चक्षु का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र दो हजार नव सौ चौवन योजन है। और आगे असंज्ञीपर्यन्त विषयक्षेत्र दूना-दूना बढ़ता गया है। असैनी के श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र आठ हजार धनुष प्रमाण है ।।१६८।।

अर्थ - संज्ञी जीव के स्पर्शन, रसना, घ्राण इन तीन इन्द्रियों में से प्रत्येक का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र नौ-नौ योजन है और श्रोत्रेन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र बारह योजन है तथा चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र सैतालीस हजार दो सौ त्रेसठ योजन से कुछ अधिक है ।।१६९।।

इन्द्रियों का विषय क्षेत्र

इन्द्रिय	एकेन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	असैनी पंचेन्द्रिय	सैनी पंचेन्द्रिय
	धनुष में	धनुष में	धनुष में	धनुष में	धनुष में	योजन में
स्पर्शन	४००	८००	१६००	३२००	६४००	९
रसना	-	६४	१२८	२५६	५१२	९
घ्राण	-	-	१००	२००	४००	९
चक्षु	-	-	-	२९५४ योजन	५९०८ योजन	४७२६३ ७/२०
श्रोत्र	-	-	-	-	८०००	१२

तिण्णिसयसट्ठिविरहिद, लक्खं दशमूलताडिदे मूलम्।
णवगुणिदे सट्ठिहदे, चक्खुप्फासस्स अद्धाणं ।।१७०।।

अर्थ – तीन सौ साठ कम एक लाख योजन जम्बूद्वीप के विष्कम्भ का वर्ग करना और उसका दशगुणा करके वर्गमूल निकालना, इससे जो राशि उत्पन्न हो उसमें नव का गुणा और साठ का भाग देने से चक्षुरिन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र निकलता है ।।१७०।।

चक्षु इन्द्रिय का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र निकालने की विधि

$$\text{जम्बूद्वीप से कुछ कम की परिधि} \times \frac{\text{सूर्य का निषध पर्वत से अयोध्या आने का काल}}{\text{सूर्य का पूरी परिधि का काल}}$$

$$= \sqrt{(९९६४० \text{ यो.})^2 \times १०} \times \frac{९ \text{ मुहूर्त}}{६० \text{ मुहूर्त}}$$

$$= ३१५०८९ \text{ यो.} \times \frac{९}{६०} = \mathbf{४७२६३\ \frac{७}{२०}\ योजन}$$

यह क्षेत्र कब बनता है

* कर्क संक्रान्ति को जब १८ मुहूर्त का दिन और १२ मुहूर्त की रात होती है
* तब चक्रवर्ती अयोध्या में अपने महल की छत से
* निषध पर्वत पर उदित सूर्य के विमान में जिनबिम्ब का दर्शन करता है।

जम्बूद्वीप का व्यास १ लाख योजन क्यों नहीं लिया गया

* सूर्य की जम्बूद्वीप में स्थित १८० योजन प्रमाण वीथियों को घटाने से
* क्योंकि अभ्यंतर वीथी में स्थित सूर्य लेना है।
* १,००,००० – (२ × १८०) = ९९६४०

↓
दोनों तरफ की

सूर्य का पूरी परिधि भ्रमण का काल ६० मुहूर्त कैसे है ?

* सूर्य को पूरे जम्बूद्वीप का चक्कर लगाने में (अर्थात सम्पूर्ण परिधि भ्रमण में) २ दिन लगते हैं
* १ दिन (३० मुहूर्त) × २ = ६० मुहूर्त

निषध पर्वत से अयोध्या का काल ९ मुहूर्त क्यों ?

* अयोध्या निषध पर्वत के दो भागों के ठीक बीचों बीच में है
* निषध पर्वत के एक भाग से दूसरे भाग तक जाने में १८ मुहूर्त लगते हैं।
* इसलिये आधा समय लिया (९ मुहूर्त) गया है।

चक्खूसोदं घाणं, जिब्भायारं मसूरजवणाली।
अतिमुत्तखुरप्पसमं, फासं तु अणेयसंठाणं।।१७१।।
अंगुलअसंखभागं, संखेज्जगुणं तदो विसेसहियं।
तत्तो असंखगुणिदं, अंगुलसंखेज्जयं तत्तु।।१७२।।
सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि।
अंगुलअसंखभागं जहण्णमुक्कस्सयं मच्छे।।१७३।।

अर्थ – मसूर के समान चक्षु का, जव की नाली के समान श्रोत्र का, तिल के फूल के समान घ्राण का तथा खुरपा के समान जिह्वा का आकार है और स्पर्शनेन्द्रिय के अनेक आकार हैं ।।१७१।।

अर्थ – आत्मप्रदेशों की अपेक्षा चक्षुरिन्द्रिय का अवगाहन घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है और इससे संख्यातगुणा श्रोत्रेन्द्रिय का अवगाहन है। श्रोत्रेन्द्रिय से पल्य के असंख्यातवें भाग अधिक घ्राणेन्द्रिय का अवगाहन है। घ्राणेन्द्रिय से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा रसनेन्द्रिय का अवगाहन हैं जो घनांगुल के संख्यातवें भागमात्र है ।।१७२।।

अर्थ – स्पर्शनेन्द्रिय की जघन्य अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है और यह अवगाहना सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के उत्पन्न होने के तीसरे समय में होती है। उत्कृष्ट अवगाहना महामत्स्य के होती है, इसका प्रमाण संख्यात घनांगुल है ।।१७३।।

इन्द्रियों के आकार व अवगाहना

<table>
<tr><th rowspan="2">इन्द्रिय</th><th rowspan="2">आकार</th><th colspan="2">अवगाहना</th></tr>
<tr><th>जघन्य</th><th>उत्कृष्ट</th></tr>
<tr><td>स्पर्शन</td><td>अनेक,अनियत</td><td>घनांगुल/असं. (सूक्ष्म निगोदिया)</td><td>सं. घनांगुल (महामत्स्य)</td></tr>
<tr><td>रसना</td><td>खुरपा</td><td colspan="2">घ्राणाकार × पल्य/असं. = घनांगुल/सं.</td></tr>
<tr><td>घ्राण</td><td>तिल पुष्प</td><td>श्रोत्राकार + श्रोत्राकार / पल्य/असं.</td><td rowspan="3">सामान्य से तीनों
घनांगुल / असं.</td></tr>
<tr><td>चक्षु</td><td>मसूर अन्न</td><td>घनांगुल / असं.</td></tr>
<tr><td>कर्ण(श्रोत्र)</td><td>यवनाली</td><td>चक्षु आकार × संख्यात</td></tr>
<tr><td colspan="4">स्पर्शन को छोड़कर शेष ४ में किसकी कम/ज्यादा अवगाहना</td></tr>
<tr><td colspan="4">चक्षु < श्रोत्र < घ्राण < रसना</td></tr>
</table>

ण वि इंदियकरणजुदा, अवग्गहादीहि गाहया अत्थे।
णेव य इंदियसोक्खा, अणिंदियाणंतणाणसुहा।।१७४।।

अर्थ – जो जीव नियम से इन्द्रियों के करण भौहें टिमकारना आदि व्यापार, उनसे संयुक्त नहीं है, इसलिये ही अवग्रहादिक क्षयोपशम ज्ञान से पदार्थ का ग्रहण (जानना) नहीं करते। तथा इन्द्रियजनित विषय-संबंध से उत्पन्न सुख उससे संयुक्त नहीं हैं वे अर्हंत और सिद्ध अतीन्द्रिय अनंत ज्ञान और अतीन्द्रिय अनंत सुख से विराजमान जानना। क्योंकि उनका ज्ञान और सुख शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि से उत्पन्न हुआ है ।।१७४।।

इन्द्रियों से मुक्त जीव

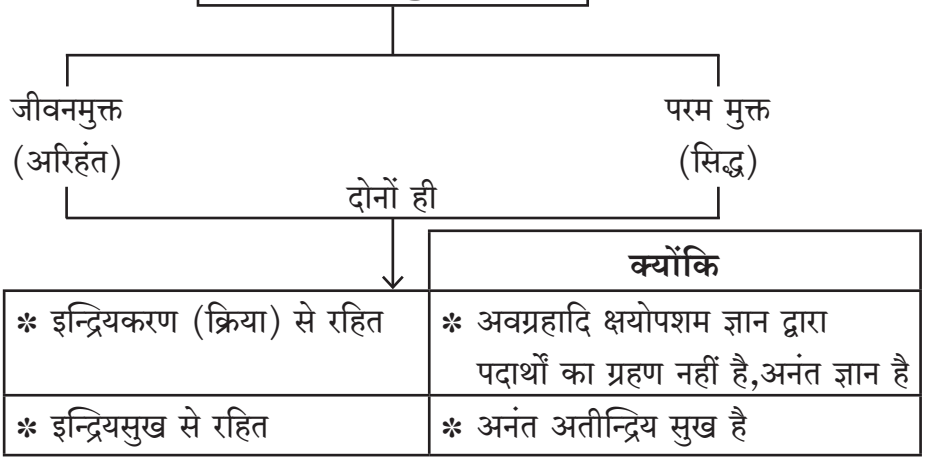

	क्योंकि
* इन्द्रियकरण (क्रिया) से रहित	* अवग्रहादि क्षयोपशम ज्ञान द्वारा पदार्थों का ग्रहण नहीं है,अनंत ज्ञान है
* इन्द्रियसुख से रहित	* अनंत अतीन्द्रिय सुख है

थावरसंखपिपीलिय, भमरमणुस्सादिगा सभेदा जे।
जुगवारमसंखेज्जा, णंताणंता णिगोदभवा।।१७५।।

अर्थ – स्थावर एकेन्द्रिय जीव, शंख आदिक द्वीन्द्रिय, चींटी आदि त्रीन्द्रिय, भ्रमर आदि चतुरिन्द्रिय, मनुष्यादि पंचेन्द्रिय जीव अपने-अपने अंतर्भेदों से युक्त असंख्यातासंख्यात हैं और निगोदिया जीव अनंतानन्त हैं ।।१७५।।

संक्षेप से एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या

एकेन्द्रिय – निगोदिया	अनंतानंत	
एकेन्द्रिय – निगोदिया को छोड़कर शेष सर्व	असंख्यातासंख्यात	अंतर्भेदों सहित
द्वीन्द्रिय	"	
त्रीन्द्रिय	"	
चतुरिन्द्रिय	"	
पंचेन्द्रिय	"	

तसहीणो संसारी, एयक्खा ताण संखगा भागा।
पुण्णाणं परिमाणं, संखेज्जदिमं अपुण्णाणं।।१७६।।

अर्थ – संसार राशि में से त्रस राशि को घटाने पर जितना शेष रहे उतने ही एकेन्द्रिय जीव हैं और एकेन्द्रिय जीवों की राशि में संख्यात का भाग देने पर एक भागप्रमाण अपर्याप्तक और शेष बहुभागप्रमाण पर्याप्तक जीव हैं ।।१७६।।

एकेन्द्रिय जीवों की संख्या

= समस्त संसारी – त्रस

अपर्याप्त = कुल एकेन्द्रिय / संख्यात

पर्याप्त = कुल एकेन्द्रिय का संख्यात बहुभाग

अपर्याप्त < पर्याप्त

बादरसुहमा तेसिं, पुण्णापुण्णे त्ति छव्विहाणं पि।
तक्कायमग्गणाये, भणिज्जमाणक्कमो णेयो।।१७७।।

अर्थ – एकेन्द्रिय जीवों के सामान्य से दो भेद हैं बादर और सूक्ष्म। इसमें भी प्रत्येक के पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से दो-दो भेद हैं। इसप्रकार एकेन्द्रियों की छह राशियों की संख्या का क्रम कायमार्गणा में कहेंगे वहाँ से ही समझ लेना ।।१७७।।

एकेन्द्रिय के भेद अन्य प्रकार से

बादर = कुल एकेन्द्रिय / असं. लोक

सूक्ष्म = कुल एकेन्द्रिय का असंख्यात बहुभाग

बादर < सूक्ष्म

पर्याप्त = बादर एकेन्द्रिय / असं. लोक

अपर्याप्त = बादर एकेन्द्रिय का असंख्यात बहुभाग

बादर पर्याप्त < बादर अपर्याप्त

अपर्याप्त = सूक्ष्म एकेन्द्रिय / संख्यात

पर्याप्त = सूक्ष्म एकेन्द्रिय का संख्यात बहुभाग

सूक्ष्म अपर्याप्त < सूक्ष्म पर्याप्त

बितिचपमाणमसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
हीणकमं पडिभागो, आवलियासंखभागो दु।।१७८।।
बहुभागे समभागो चउण्णमेदेसिमेक्कभागम्हि।
उत्तकमो तत्थ वि,बहुभागो बहुगस्स देओ दु।।१७९।।

अर्थ – प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग का जगतप्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतना सामान्य से त्रसराशि का प्रमाण है। परन्तु पूर्व-पूर्व द्वीन्द्रियादिक की अपेक्षा उत्तरोत्तर त्रीन्द्रियादिक का प्रमाण क्रम से हीन-हीन है और इसका प्रतिभागहार आवली का असंख्यातवाँ भाग है ।।१७८।।

अर्थ – त्रसराशि में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर लब्ध बहुभाग के समान चार भाग करना और एक एक भाग को द्वीन्द्रियादि चारों ही में विभक्त कर, शेष एक भाग में फिर से आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देना चाहिये और लब्ध बहुभाग को बहुत संख्यावाले को देना चाहिये। इसप्रकार अंतपर्यंत करना चाहिये।।१७९।।

त्रस जीवों की संख्या

<table>
<tr><td colspan="2">कुल त्रस जीव = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/असंख्यात}}$</td></tr>
<tr><td>द्वीन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
चतुरिन्द्रिय
पंचेन्द्रिय</td><td>सामान्य से ⟶ प्रत्येक की संख्या = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/असंख्यात}}$</td></tr>
<tr><td colspan="2">विशेष अपेक्षा ⟶ द्वीन्द्रिय > त्रीन्द्रिय > चतुरिन्द्रिय > पंचेन्द्रिय</td></tr>
</table>

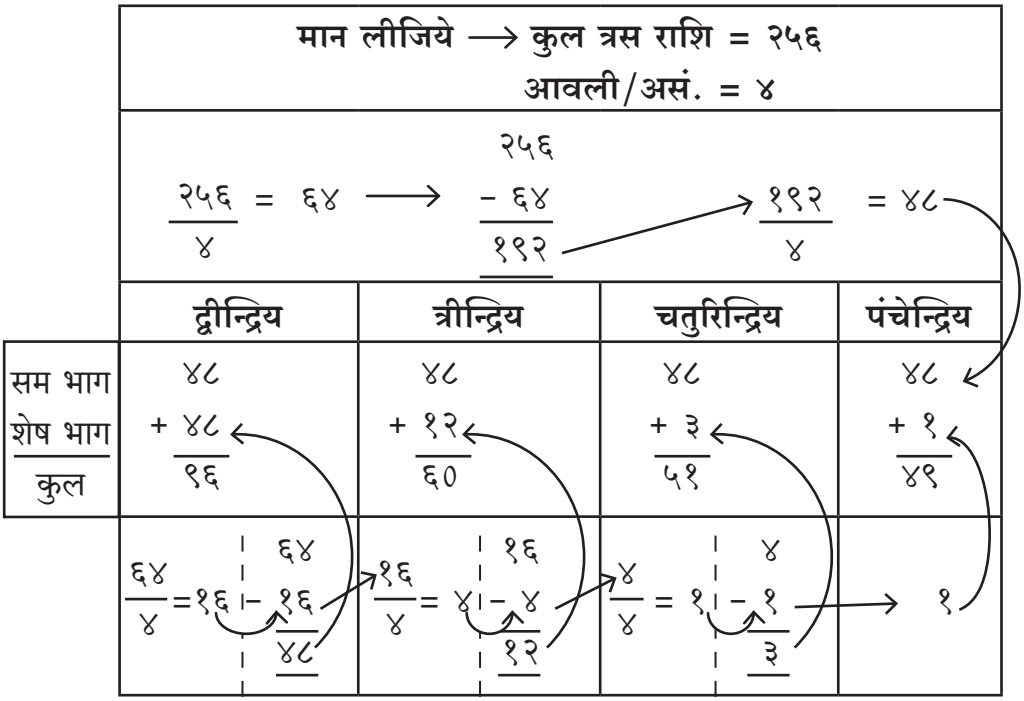

तिबिपचपुण्णपमाणं, पदरंगुलसंखभागहिदपदरं।
हीणकमं पुण्णूणा, बितिचपजीवा अपज्जत्ता ।।१८०।।

अर्थ - प्रतरांगुल के संख्यातें भाग का जगतप्रतर में भाग देने से जो लब्ध आवे उतना ही त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में से प्रत्येक के पर्याप्तक का प्रमाण है। परन्तु यह प्रमाण "बहुभागे समभागो" इस गाथा में कहे हुए क्रम के अनुसार उत्तरोत्तर हीन-हीन है। **अपनी-अपनी समस्त राशि में से पर्याप्तकों का प्रमाण घटाने पर अपर्याप्तक द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण निकलता है** ।।१८०।।

त्रस पर्याप्तकों की संख्या

कुल त्रस पर्याप्तक = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल / संख्यात}}$

द्वीन्द्रिय
त्रीन्द्रिय
चतुरिन्द्रिय
पंचेन्द्रिय

सामान्य से ⟶ प्रत्येक की संख्या = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/संख्यात}}$

विशेष अपेक्षा ⟶ त्रीन्द्रिय > द्वीन्द्रिय > पंचेन्द्रिय > चतुरिन्द्रिय

यहाँ भी पूर्व के समान ही कुल पर्याप्त त्रस जीव २५६ मानकर एवं आवली/असंख्यात = ४ मानकर द्वीन्द्रियादिक पर्याप्तक जीवों की संख्या अपने क्रमानुसार निकाल लेना चाहिये।

अधिकार ८ - कायमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
काय का स्वरूप एवं भेद	१८१-१८२	२	९२
बादर एवं सूक्ष्म शरीर के लक्षण, प्रमाण एवं आकार	१८३-१८४	२	९३
वनस्पतिकाय का स्वरूप एवं भेद	१८५-१८६	२	९४
सप्रतिष्ठित एवं अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति की पहचान	१८७-१९०	४	९५
साधारण वनस्पति का स्वरूप	१९१-१९३	३	९६
बादर निगोदिया जीवों के शरीर का आधार	१९४-१९५	२	९७
एक निगोद शरीर में जीवों की संख्या	१९६	१	९७
नित्यनिगोद का स्वरूप	१९७	१	९८
त्रस जीवों का स्वरूप एवं उनका क्षेत्र	१९८-१९९	२	९९
किन-किन के शरीर में निगोदिया जीव हैं/नहीं हैं	२००	१	१००
स्थावरकाय एवं त्रसकाय जीवों का आकार	२०१	१	१००
संसारी जीव का काय के द्वारा कर्मबंधन का दृष्टांत	२०२	१	१००
कायमार्गणा से रहित सिद्धों का स्वरूप	२०३	१	१०१
पृथ्वीकायिक आदि जीवों की संख्या	२०४-२१५	१२	१०१
कुल गाथाएँ		**३५**	

जाईअविणाभावी, तसथावरउदयजो हवे काओ।
सो जिणमदम्हि भणिओ, पुढवीकायादिछब्भेयो।।१८१।।
पुढवी आऊ तेऊ, वाऊ कम्मोदयेण तत्थेव।
णियवण्णचउक्कजुदो, ताणं देहो हवे णियमा।।१८२।।

अर्थ - जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को जिनमत में काय कहते हैं। इसके छह भेद हैं । पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस ।।१८१।।

अर्थ - पृथिवी, अप्-जल, तेज-अग्नि, वायु इनका शरीर नियम से अपने-अपने पृथिवी आदि नामकर्म के उदय से, अपने-अपने योग्य रूप, रस, गन्ध, स्पर्श से युक्त पृथिवी आदिक में बनता है ।।१८२।।

काय

जीव की पर्याय – जाति नामकर्म के साथ अविनाभावी
– त्रस व स्थावर नामकर्म के उदय से प्राप्त

- **स्थावर काय**
  - पृथ्वी
  - जल
  - अग्नि
  - वायु
  - वनस्पति
- **त्रस काय**

पाँच स्थावरों के प्रत्येक के ४-४ भेद

जैसे

पृथ्वी	**पृथ्वीजीव**	**पृथ्वीकायिक**	**पृथ्वीकाय**
पृथ्वी सामान्य	विग्रह गति का जीव जो पृथ्वी में जन्म लेने जा रहा है (जीव मात्र)	पृथ्वी रूप शरीर के संबंध से युक्त जीव (जीव + शरीर)	पृथ्वीकायिक जीव द्वारा छोड़ा गया शरीर (शरीर मात्र)

बादरसुहुमुदयेण य, बादरसुहुमा हवंति तद्देहा।
घादसरीरं थूलं, आघाददेहं हवे सुहुमं ।।१८३ ।।
तद्देहमंगुलस्स, असंखभागस्स विंदमाणं तु।
आधारे थूला ओ, सव्वत्थ णिरंतरा सुहुमा ।।१८४ ।।

अर्थ – बादर नामकर्म के उदय से बादर और सूक्ष्म नामकर्म के उदय से सूक्ष्म शरीर हुआ करता है। जो शरीर दूसरे को रोकने वाला हो अथवा जो स्वयं दूसरे से रुके उसको बादर–स्थूल कहते हैं। और जो दूसरे को न तो रोके और न स्वयं दूसरे से रुके उसको सूक्ष्म शरीर कहते हैं ।।१८३ ।।

अर्थ – बादर और सूक्ष्म दोनों ही तरह के शरीरों का प्रमाण घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण है। इनमें से स्थूल शरीर आधार की अपेक्षा रखता है। किन्तु सूक्ष्म शरीर बिना अन्तरव्यवधान के ही सब जगह अनंतानन्त भरे हुए हैं। उनको आधार की अपेक्षा नहीं रहा करती ।।१८४ ।।

शरीर के भेद

बादर	सूक्ष्म
जो दूसरों को रोके और दूसरों से रुके	जो न दूसरों को रोके और न दूसरों से रुके
आधार की अपेक्षा होती है	बिना आधार सब जगह अनंतानंत भरे है
बादर नामकर्म का उदय होता है	सूक्ष्म नामकर्म का उदय होता है
घनांगुल के असं. भाग से प्रारंभ कर संख्यात घनांगुल (महामत्स्य) की अवगाहना तक शरीर का प्रमाण होता है	शरीर का प्रमाण घनांगुल के असं. भाग होता है

उदये दु वणप्फदिकम्मस्स य जीवा वणप्फदी होंति।
पत्तेयं सामण्णं, पदिट्ठिदिदरे त्ति पत्तेयम्।।१८५।।

अर्थ – स्थावर नामकर्म का अवान्तर विशेष भेद जो वनस्पति नामकर्म है उसके उदयसे जीव वनस्पति होते हैं। उनके दो भेद हैं – एक प्रत्येक दूसरा साधारण। प्रत्येक के भी दो भेद हैं, प्रतिष्ठित और अप्रतिष्ठित ।।१८५।।

वनस्पति के भेद

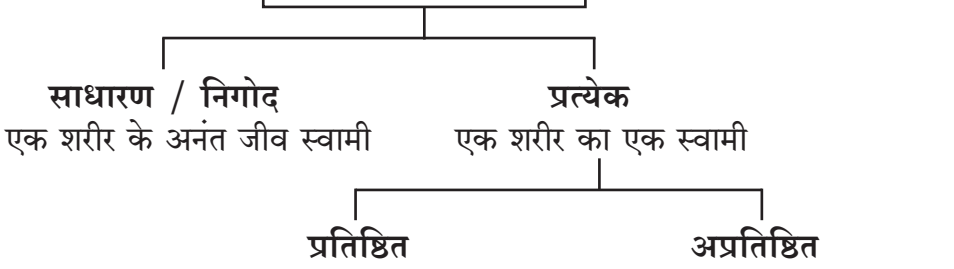

मूलग्गपोरबीजा, कंदा तह खंदबीज बीजरुहा।
सम्मुच्छिमा य भणिया, पत्तेयाणंतकाया य।।१८६।।

अर्थ – जिन वनस्पतियों का बीज मूल, अग्र, पर्व, कन्द या स्कन्ध है; अथवा जो बीज से उत्पन्न होती हैं; अथवा जो सम्मूर्च्छन हैं – वे सभी वनस्पतियाँ सप्रतिष्ठित तथा अप्रतिष्ठित दोनों प्रकार की होती हैं ।।१८६।।

उत्पत्ति-कारण की अपेक्षा प्रत्येक वनस्पति के भेद

	उत्पत्ति का कारण	जैसे –	
१	मूल	अदरक, हल्दी	*नोट – ये सभी प्रतिष्ठित व अप्रतिष्ठित दोनों प्रकार की होती हैं।*
२	अग्र	गुलाब	
३	पर्व	ईख, बेंत	
४	कन्द	पिंडालू	
५	स्कन्ध	पलाश, ढाक	
६	सम्मूर्च्छन	घास	
७	बीज	गेहूँ, धान	

गूढसिरसंधिपव्वं, समभंगमहीरुहं च छिण्णरुहं।
साहारणं सरीरं, तव्विवरीयं च पत्तेयं।।१८७।।
मूले कंदे छल्ली, पवाल सालदलकुसुम फलबीजे।
समभंगे सदि णंता, असमे सदि होंति पत्तेया।।१८८।।
कंदस्स व मूलस्स व, सालाखंदस्स वावि बहुलतरी।
छल्ली साणंतजिया, पत्तेयजिया तु तणुकदरी।।१८९।।

अर्थ – जिनकी शिरा-बहि: स्नायु, सन्धि-रेखाबन्ध, और पर्व-गाँठ अप्रकट हों, और जिसका भंग करने पर समान भंग हो, और दोनों भंगों में परस्पर हीरुक-अन्तर्गत सूत्र-तन्तु न लगा रहे तथा छेदन करने पर भी जिसकी पुन: वृद्धि हो जाय, उनको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं। और जो विपरीत हैं-इन चिह्नों से रहित हैं वे सब अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कही गयी हैं ।।१८७।।

अर्थ – जिन वनस्पतियों के मूल, कन्द त्वचा, प्रवाल-नवीन कोंपल अथवा अंकुर, क्षुद्रशाखा-टहनी, पत्र, फूल, फल तथा बीजों को तोड़ने से समान भंग हो, बिना ही हीरुक(तंतु) के भंग हो जाय, उसको सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं और जिनका भंग समान न हो उनको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं ।।१८८।।

अर्थ – जिस वनस्पति के कन्द, मूल, क्षुद्रशाखा या स्कन्ध की छाल मोटी हो उसको अनंतजीवसप्रतिष्ठित प्रत्येक कहते हैं और जिसकी छाल पतली हो उसको अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं ।।१८९।।

प्रतिष्ठित वनस्पति की पहचान के चिह्न

* जिनका शिरा, सन्धि (रेखाबंध) और पर्व (गाँठ) अप्रकट हो
* जिन वनस्पतियों के मूल, कंद, त्वचा, नवीन कोंपल, अंकुर, क्षुद्र शाखा, टहनी, पत्र, फूल, फल तथा बीजों को तोड़ने से समान भंग हो
* दोनों भंगों में तन्तु न लगा रहे
* छेदने पर भी पुन: वृद्धि हो जाए
* कन्द, मूल, क्षुद्रशाखा या स्कन्ध की छाल मोटी हो

नोट – जो इन चिह्नों से विपरीत हो, उसे अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति कहते हैं।

बीजे जोणीभूदे, जीवो चंकमदि सो व अण्णो वा।
जे वि य मूलादीया, ते पत्तेया पढमदाए।।१९०।।

अर्थ – मूल आदि वनस्पतियों की उत्पत्ति का आधारभूत पुद्गल स्कन्ध योनिभूत – जिसमें जीव उत्पत्ति की शक्ति हो, उसमें जल या कालादि के निमित्त से वही जीव अथवा अन्य जीव भी आकर उत्पन्न हो सकता है। जो मूलादि प्रतिष्ठित वनस्पतियाँ हैं, वे भी उत्पत्ति के अंतर्मुहूर्त तक अप्रतिष्ठित ही होती हैं।।१९०।।

साहारणोदयेण णिगोदसरीरा हवंति सामण्णा।
ते पुण दुविहा जीवा, बादर सुहुमा त्ति विण्णेया।।१९१।।
साहारणमाहारो, साहारणमाणपाणगहणं च।
साहारणजीवाणं, साहारणलक्खणं भणियं।।१९२।।
जत्थेक्क मरइ जीवो, तत्थ दु मरणं हवे अणंताणं।
वक्कमइ जत्थ एक्को, वक्कमणं तत्थ णंताणं।।१९३।।

अर्थ – जिन जीवों का शरीर साधारण नामकर्म के उदय के कारण निगोदरूप होता है उन्हीं को सामान्य या साधारण कहते हैं। इनके दो भेद हैं – बादर एवं सूक्ष्म ।।१९१।।

अर्थ – इन साधारण जीवों का साधारण अर्थात् समान ही तो आहार होता है और साधारण–समान अर्थात् एक साथ ही श्वासोच्छ्वास का ग्रहण होता है। इस तरह से साधारण जीवों का लक्षण परमागम में साधारण ही बताया है ।।१९२।।

अर्थ – साधारण जीवों में जहाँ पर एक जीव मरण करता है वहाँ पर अनंत जीवों का मरण होता है और जहाँ पर एक जीव उत्पन्न होता है वहाँ अनंत जीवों का उत्पाद होता है ।।१९३।।

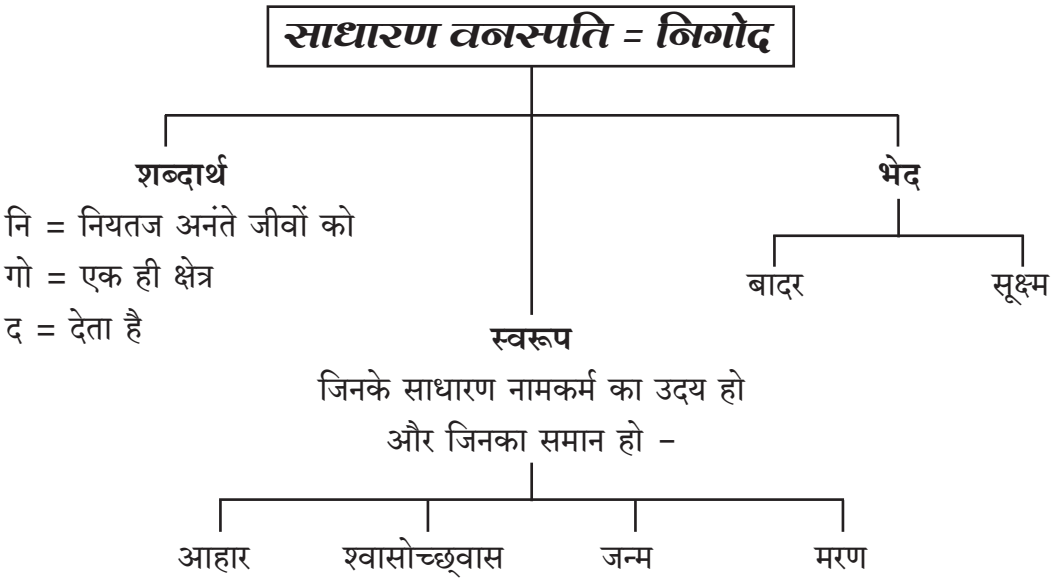

खंधा असंखलोगा, अंडरआवासपुलविदेहा वि।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ, असंखलोगेण गुणिदकमा।।१९४।।
जम्बूदीवं भरहो, कोसलसागेदतग्घराइं वा।
खंधंडरआवासा, पुलविशरीराणि दिट्ठंता।।१९५।।
एगणिगोदसरीरे, जीवा दव्वप्पमाणदो दिट्ठा।
सिद्धेहिं अणंतगुणा, सव्वेण विदीदकालेण।।१९६।।

अर्थ – स्कन्धों का प्रमाण असंख्यात लोकप्रमाण है और अंडर, आवास, पुलवि तथा देह ये क्रम से उत्तरोत्तर असंख्यात लोक-असंख्यात लोक गुणित हैं, क्योंकि वे सभी अधस्तनयोनिक हैं – इनमें पूर्व-पूर्व आधार और उत्तरोत्तर आधेय हैं ।।१९४।।

अर्थ – जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, कौशलदेश, साकेत-अयोध्या नगरी और साकेता नगरी के घर ये क्रम से स्कन्ध, अंडर, आवास, पुलवि और देह के दृष्टांत हैं ।।१९५।।

अर्थ – समस्त सिद्धराशि का और सम्पूर्ण अतीत काल के समयों का जितना प्रमाण है द्रव्य की अपेक्षा से उनसे अनंतगुणे जीव एक निगोदशरीर में रहते हैं ।।१९६।।

बादर निगोदिया जीवों के शरीर के आधार का स्वरूप

		पंच गोलक	दृष्टांत
लोक में	असं. लोक प्रमाण	स्कन्ध (प्रतिष्ठित प्रत्येक शरीर)	मध्य लोक में जम्बूद्वीप
एक स्कन्ध में	″ (ये उत्तरोत्तर असं. लोक गुणित हैं)	अंडर	जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्रादि
एक अंडर में	″	आवास	क्षेत्रादि में कौशल देशादि
एक आवास में	″	पुलवि	देशादि में अयोध्या नगरी
एक पुलवि में	″	शरीर	नगर में घर
एक शरीर में	अनंतानंत	जीव	घर में जीव

एक निगोदशरीर में जीवों का प्रमाण

द्रव्य अपेक्षा	सिद्धों से अनंत गुणे
काल अपेक्षा	अतीत काल के समयों से अनंत गुणे
क्षेत्र अपेक्षा	* सर्व आकाश प्रदेश के अनंतवें भाग * लोकाकाश के प्रदेशों से अनंत गुणे
भाव अपेक्षा	* केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों के अनंतवें भाग * सर्वावधिज्ञान के विषयभूत भावों से अनंत गुणे

अत्थि अणंता जीवा, जेहिं ण पत्तो तसाण परिणामो।
भावकलंकसुपउरा, णिगोदवासं ण मुंचंति।।१९७।।

अर्थ – ऐसे अनंतानन्त जीव हैं कि जिन्होंने त्रसों की पर्याय अभी तक कभी भी नहीं पाई है और जो निगोद अवस्था में होने वाल दुर्लेश्यारूप परिणामों से अत्यन्त अभिभूत रहने के कारण निगादस्थान को कभी नहीं छोड़ते ।।१९७।।

निगोद के प्रकार

	नित्य	इतर (चतुर्गति)
स्वरूप	जो अनादि से निगोद पर्याय को ही धारण करते आए हैं	जो निगोद से निकलकर अन्य पर्याय प्राप्त कर पुन: निगोद में गए हैं
संख्या	अक्षय अनंत	सक्षय अनंत
विशेष	भावकलंक की प्रचुरता के कारण अब तक त्रस पर्याय प्राप्त नहीं की	
भेद	**अनादि अनंत** निगोद अवस्था न छोड़ी हैं, न छोड़ेंगें **अनादि सांत** निगोद अवस्था छोड़ी नहीं, परन्तु आगे छोड़ देंगे	

विहि तिहि चहुहिं पंचहिं, सहिया जे इंदिएहिं लोयम्हि।
ते तसकाया जीवा, णेया वीरोवदेसेण।।१९८।।
उववादमारणंतिय, परिणदतसमुज्झिऊण सेसतसा।
तसणालिबाहिरम्हि य, णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।१९९।।

अर्थ – जो जीव दो, तीन, चार, पाँच इन्द्रियों से युक्त हैं उनको वीर भगवान के उपदेशानुसार त्रसकाय समझना चाहिये ।।१९८।।

अर्थ – उपपाद जन्मवाले और मारणान्तिक समुद्घातवाले त्रस जीवों को छोड़कर बाकी के त्रस जीव त्रसनाली के बाहर नहीं रहते यह जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।१९९।।

त्रसकाय

भेद		द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय
क्षेत्र	त्रस नाली	
	३ अपवाद छोड़कर	१. उपपाद – विवक्षित भव का पहला समय
		२. मारणांतिक समुद्घात – आयु के अंत में आत्मप्रदेशों का फैलना
		३. केवली समुद्घात – केवली के ३ अघातिया कर्मों की स्थिति आयु के समान करने के लिए

पुढवीआदिचउण्हं, केवलिआहारदेवणिरयंगा।
अपदिट्ठिदा णिगोदेहिं, पदिट्ठिदंगा हवे सेसा।।२००।।

अर्थ – पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवों का शरीर तथा केवलियों का शरीर, आहारकशरीर और देव-नारकियों का शरीर बादर निगोदिया जीवों से अप्रतिष्ठित है। शेष वनस्पतिकाय के जीवों का शरीर तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों का शरीर निगोदिया जीवों से प्रतिष्ठित है ।।२००।।

निगोदिया जीव किन जीवों के शरीर में नहीं होते हैं

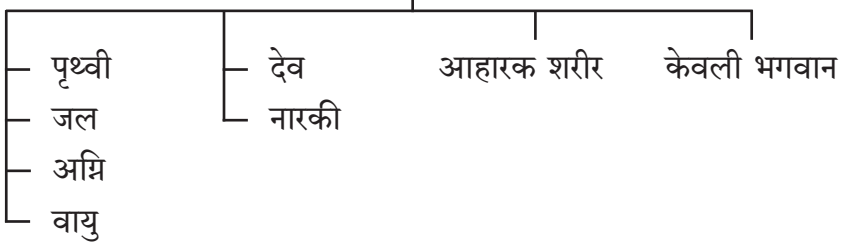

मसुरंबुबिंदुसूई, कलावधयसण्णिहो हवे देहो।
पुढवीआदिचउण्हं, तरुतसकाया अणेयविहा।।२०१।।

अर्थ – मसूर (अन्नविशेष), जल की बिन्दु, सुइयों का समूह, ध्वजा, इनके सदृश क्रम से पृथिवी,अप्, तेज, वायुकायिक जीवों का शरीर होता है और वनस्पति तथा त्रसों का शरीर अनेक प्रकार का होता है ।।२०१।।

जीवों के शरीर का आकार

पृथ्वी	मसूर दाल	*नोट – पृथ्वी, जल आदि का जो शरीर दिखता है वह अनेक जीवों के शरीरों के समूह रूप है।*
जल	जल की बिन्दु	
अग्नि	सुइयों का समूह	
वायु	ध्वजा	
वनस्पति	अनेक प्रकार का	
त्रस	अनेक प्रकार का	

जह भारवहो पुरिसो वहइ भरं गेहिऊण कावलियं।
एमेव वहइ जीवो कम्मभरं कायकावलियं।।२०२।।

अर्थ – जिस प्रकार कोई भारवाही पुरुष कावटिका के द्वारा भारका वहन करता है, उस ही प्रकार यह जीव कायरूपी कावटिका के द्वारा कर्मभार का वहन करता है ।।२०२।।

संसारी जीवों की काय का दृष्टांत

जैसे –	वैसे –
कोई पुरुष	संसारी जीव
कावड़िया के द्वारा	औदारिकादि काय के द्वारा
भार वहन करता है।	कर्मरूप भार वहन करता है।

जह कंचणमग्गिगयं, मुंचइ किट्टेण कालियाए य।
तह कायबंधमुक्का, अकाइया झाणजोगेण।।२०३।।

अर्थ – जिस प्रकार मलिन भी सुवर्ण अग्नि के द्वारा सुसंस्कृत होकर बाह्य और अभ्यन्तर दोनों ही प्रकार के मल से रहित हो जाता है उस ही प्रकार ध्यान के द्वारा यह जीव भी शरीर और कर्मबंध दोनों से रहित होकर सिद्ध हो जाता है ।।२०३।।

अकायिक मुक्त जीव

जैसे –	वैसे –
* लोक में मलसहित सोना	* निकट भव्य जीव
* अग्नि द्वारा तपाने पर	* ध्यान द्वारा
* बाह्य मल – किट्टिका	* बाह्य मल – काय
* अंतरंग मल – श्वेतादिरूप अन्य वर्ण	* अंतरंग मल – कर्म
* से रहित हो शुद्ध हो जाता है	* से सर्वथा रहित होने पर शुद्ध हो जाता है

आउड्ढरासिवारं लोगे अण्णोण्णसंगुणे तेऊ।
भूजलवाऊ अहिया पडिभागोऽसंखलोगो दु।।२०४।।
अपदिट्ठिदपत्तेया, असंखलोगप्पमाणया होंति।
तत्तो पदिट्ठिदा पुण, असंखलोगेण संगुणिदा।।२०५।।
तसरासिपुढविआदी, चउक्कपत्तेयहीणसंसारी।
साहारणजीवाणं, परिमाणं होदि जिणदिट्ठं।।२०६।।
सगसगअसंखभागो, बादरकायाण होदि परिमाणं।
सेसा सुहमपमाणं पडिभागो पुव्वणिद्दिट्ठो।।२०७।।
सुहुमेसु संखभागं, संखा भागा अपुण्णगा इदरा।
जस्सि अपुण्णद्धादो, पुण्णद्धा संखगुणिदकमा।।२०८।।

पल्लासंखेज्जवहिद, पदरंगुलभाजिदे जगप्पदरे।
जलभूणिपबादरया पुण्णा आवलि असंखभजिदकमा।।२०९।।
विंदावलिलोगाणमसंखं संखं च तेउवाऊणं।
पज्जत्ताण पमाणं, तेहिं विहीणा अपज्जत्ता।।२१०।।
साहरणबादरेसु असंखं भागं असंखगा भागा।
पुण्णाणमपुण्णाणं, परिमाणं होदि अणुकमसो।।२११।।

अर्थ – शलाकात्रयनिष्ठापन की विधि से लोक का साढ़े तीन बार परस्पर गुणा करने से तेजस्कायिक जीवों का प्रमाण निकलता है। पृथिवी, जल, वायुकायिक जीवों का उत्तरोत्तर तेजस्कायिक जीवों की अपेक्षा अधिक-अधिक प्रमाण है। इस अधिकता के प्रतिभागहार का प्रमाण असंख्यात लोक है ।।२०४।।

अर्थ – अप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीव असंख्यात लोकप्रमाण हैं, और इससे भी असंख्यात लोकगुणा प्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पतिकायिक जीवों का प्रमाण है ।।२०५।।

अर्थ – सम्पूर्ण संसारी जीवराशि में से त्रस राशि का प्रमाण और पृथिव्यादि चतुष्क (पृथिवी, अप्, तेज, वायु) तथा प्रत्येक वनस्पतिकाय का प्रमाण जो कि ऊपर बताया गया है घटाने पर जो शेष रहे उतना ही साधारण जीवों का प्रमाण है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।२०६।।

अर्थ – अपनी-अपनी राशि का असंख्यातवाँ भाग बादरकायिक जीवों का प्रमाण है और शेष बहुभाग सूक्ष्म जीवों का प्रमाण है। इसके प्रतिभागहार का प्रमाण पूर्वोक्त असंख्यात लोक प्रमाण है ।।२०७।।

अर्थ – सूक्ष्म जीवों में अपनी-अपनी राशि के संख्यात भागों में से एक भागप्रमाण अपर्याप्तक और बहुभागप्रमाण पर्याप्तक हैं। कारण यह है कि अपर्याप्तक के काल से पर्याप्तक का काल संख्यात गुणा है ।।२०८।।

अर्थ – बादर जलकायिक जीव जगतप्रतर भाजित पल्य के असंख्यातवें भाग से भक्त प्रतरांगुल प्रमाण हैं। इसमें उत्तरोत्तर आवली के असंख्यातवें भाग-आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर क्रमशः बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक, सप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त एवं अप्रतिष्ठित प्रत्येक पर्याप्त जीवों का प्रमाण प्राप्त होता हैं ।।२०९।।

अर्थ – घनावलि के असंख्यात भागों में से एक भागप्रमाण बादर पर्याप्त तेजस्कायिक जीवों का प्रमाण है और लोक के संख्यात भागों में से एक भागप्रमाण बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवों का प्रमाण है। अपनी-अपनी सम्पूर्ण राशि में से पर्याप्तकों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे वही अपर्याप्तकों का प्रमाण है ।।२१०।।

अर्थ – साधारण बादर वनस्पतिकायिक जीवों का जो प्रमाण बताया है उसके असंख्यात भागों में से एक भागप्रमाण पर्याप्त और बहुभागप्रमाण अपर्याप्त हैं ।।२११।।

एकेन्द्रियादि जीवों की संख्या

जीव	कुल संख्या		बादर	सूक्ष्म	सूक्ष्म		बादर		
	सामान्य	विशेष			अपर्याप्त	पर्याप्त	पर्याप्त		अपर्याप्त
पृथ्वी	अग्नि + $\frac{\text{अग्नि}}{\text{असं. लोक}}$	असं. लोक	पृथ्वी आदि प्रत्येक में –				$\frac{\text{बादर पर्याप्त जल}}{\text{आवली / असं.}}$	असं.जगत श्रेणी	कुल बादर – पर्याप्त बादर
जल	पृथ्वी + $\frac{\text{पृथ्वी}}{\text{असं. लोक}}$	〃	$\frac{\text{कुल राशि}}{\text{असं.लोक}}$	कुल राशि का असं. बहुभाग	कुल सूक्ष्म संख्यात	कुल सूक्ष्म का सं. बहुभाग (क्योंकि अपर्याप्त के काल से पर्याप्त का काल संख्यात गुणा है)	$\frac{\text{जगत प्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/पल्य}_{/\text{असं.}}}$	〃	
अग्नि	लोक का $३\frac{१}{२}$ बार शलाकात्रय निष्ठापन	〃					$\frac{\text{घनावलि}}{\text{असं.}}$		
वायु	जल + $\frac{\text{जल}}{\text{असं. लोक}}$	〃					$\frac{\text{लोक}}{\text{संख्यात}}$	असं.जगत प्रतर	
साधारण वनस्पति	सम्पूर्ण संसारी – पृथ्वी आदि ४ – प्रत्येक वनस्पति – त्रस	अनंतानंत					$\frac{\text{कुल बादर वन.}}{\text{असं. लोक}}$	अनंतानंत	कुल बादर का असं. बहुभाग (क्योंकि बादर में पर्याप्त अवस्था दुर्लभ है)
अप्रतिष्ठित प्रत्येक		असं. लोक	* इनमें बादर-सूक्ष्म का भेद नहीं होता है * सभी बादर होते हैं				$\frac{\text{पर्याप्त प्रति. प्रत्येक}}{\text{आवली/असं.}}$	असं.जगत श्रेणी	कुल राशि – पर्याप्त राशि
प्रतिष्ठित प्रत्येक	अप्रतिष्ठित प्रत्येक × असं. लोक	〃					$\frac{\text{बादर पर्याप्त पृथ्वी}}{\text{आवली/असं.}}$	〃	

अधिक क्रम से कुल पृथ्वी आदि

कुल अग्नि < पृथ्वी < जल < वायु < वनस्पति

अधिक क्रम से कुल बा. पर्याप्त एकेन्द्रिय

बा. प. अग्नि < अप्रति. प्रत्येक < प्र. प्रत्येक < पृथ्वी < जल < वायु < साधारण

आवलिअसंखसंखेणवहिदपदरंगुलेण हिदपदरं।
कमसो तसतप्पुण्णा पुण्णूणतसा अपुण्णा हु।।२१२।।

अर्थ – आवली के असंख्यातवें भाग से भक्त प्रतरांगुल का भाग जगतप्रतर में देने से जो लब्ध आवे उतना ही सामान्य त्रसराशि का प्रमाण है और संख्यात से भक्त प्रतरांगुल का भाग जगतप्रतर में देने से जो लब्ध आवे उतना पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण है। सामान्य त्रसराशि में से पर्याप्तकों का प्रमाण घटाने पर शेष अपर्याप्त त्रसों का प्रमाण निकलता है ।।२१२।।

त्रस जीवों की संख्या

कुल त्रस	पर्याप्त	अपर्याप्त
असं. जगत श्रेणी	कुल त्रस / असं.	कुल त्रस का असं. बहुभाग
जगत प्रतर / प्रतरांगुल / आवली असं.	जगत प्रतर / प्रतरांगुल / संख्यात (त्रसों में पर्याप्त पर्याय दुर्लभ है)	कुल त्रस – पर्याप्त त्रस

आवलिअसंखभागेणवहिदपल्लूणसायरद्धछिदा।
बादरतेपणिभूजलवादाणं चरिमसागरं पुण्णं।।२१३।।
ते वि विसेसेणहिया, पल्लासंखेज्जभागमेत्तेण।
तम्हा ते रासीओ असंखलोगेण गुणिदकमा।।२१४।।

अर्थ – आवली के असंख्यातवें भाग से भक्त पल्य को सागर में से घटाने पर जो शेष रहे उतने बादर तेजस्कायिक जीवों के अर्धच्छेद हैं और अप्रतिष्ठित प्रत्येक, प्रतिष्ठित प्रत्येक, बादर पृथ्वीकायिक, बादर जलकायिक जीवों के अर्धच्छेदों का प्रमाण क्रम से आवली के असंख्यातवें में भाग का दो बार, तीन बार, चार बार, पाँच बार पल्य में भाग देने से जो लब्ध आवे उसको सागर में घटाने से निकलता है और बादर वातकायिक जीवों के अर्धच्छेद पूर्ण सागर प्रमाण है ।।२१३।।

अर्थ – ये प्रत्येक अर्धच्छेद राशि पल्य के असंख्यातवें-असंख्यातवें भाग उत्तरोत्तर अधिक हैं। इसलिये ये सभी राशि (तेजस्कायिकादि जीवों के प्रमाण) क्रम से उत्तरोत्तर असंख्यात लोकगुणी है ।।२१४।।

बादर अग्निकायिकादिक ६ राशि-विशेष

	अर्धच्छेद राशि	
बादर अग्नि <	सागर – $\frac{\text{पल्य}}{\text{आवली/असं.}}$	छहों राशियाँ उत्तरोत्तर असं. लोक गुणित है।
अप्रतिष्ठित प्रत्येक <	सागर – $\frac{\text{पल्य}}{(\text{आवली/असं.})^2}$	
प्रतिष्ठित प्रत्येक <	सागर – $\frac{\text{पल्य}}{(\text{आवली/असं.})^3}$	
पृथ्वी <	सागर – $\frac{\text{पल्य}}{(\text{आवली/असं.})^4}$	
जल <	सागर – $\frac{\text{पल्य}}{(\text{आवली/असं.})^5}$	
वायु	सागर	

दिण्णच्छेदेणवहिद, इट्ठच्छेदेहिं पयदविरलणं भजिदे।
लद्धमिदइट्ठरासीणण्णोण्णहदीए होदि पयदधण।।२१५।।

अर्थ – देयराशि के अर्धच्छेदों से भक्त इष्ट राशि के अर्धच्छेदों का प्रकृत विरलन राशि में भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह इष्ट राशि को रखकर परस्पर गुणा करने से प्रकृत धन होता है ।।२१५।।

कायमार्गणा सम्बन्धी अन्य उपयोगी विषय

तिर्यंचों की आयु

जीव	उत्कृष्ट आयु	जीव	उत्कृष्ट आयु
मृदु (शुद्ध) पृथ्वीकायिक	१२,००० वर्ष	तीन इन्द्रिय	४९ दिन
कठोर पृथ्वीकायिक	२२,००० वर्ष	चार इन्द्रिय	६ मास
जलकायिक	७,००० वर्ष	पंचेन्द्रिय जलचर	१ कोटि पूर्व
वायुकायिक	३,००० वर्ष	सरीसर्प, रेंगने वाले पशु	९ पूर्वांग
अग्निकायिक	३ दिन	सर्प	४२,००० वर्ष
वनस्पतिकायिक	१०,००० वर्ष	पक्षी	७२,००० वर्ष
दो इन्द्रिय	१२ वर्ष	चौपाये पशु	३ पल्य
सभी की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।			

अधिकार ९ - योगमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
योग का सामान्य लक्षण	२१६	१	१०७
४ प्रकार के मनोयोग एवं वचनयोग का स्वरूप	२१७-२२१	५	१०७
१० प्रकार के सत्य	२२२-२२४	३	१०९
९ प्रकार के अनुभय वचन	२२५-२२६	२	१११
मन-वचन योग के भेदों का कारण	२२७	१	१११
सयोगकेवली के मनोयोग कैसे संभव है ?	२२८-२२९	२	११२
औदारिक काययोग	२३०	१	११३
" मिश्र "	२३१	१	११३
वैक्रियिक "	२३२-२३३	२	११४
वैक्रियिक मिश्र काययोग	२३४	१	११५
आहारक काययोग	२३५-२३९	५	११५
" मिश्र "	२४०	१	११७
कार्मण "	२४१	१	११७
योगों की प्रवृत्ति का विधान	२४२	१	११७
अयोग आत्मा का स्वरूप	२४३	१	११८
शरीर के कर्म एवं नोकर्मरूप भेद	२४४	१	११८
५ शरीरों के समयप्रबद्ध एवं उनकी अवगाहना	२४५-२४८	४	११९
विस्रसोपचय का स्वरूप	२४९	१	१२०
कर्म-नोकर्म का उत्कृष्ट संचय	२५०-२५१	२	१२०
५ शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति एवं उनमें गुणहानि आयाम	२५२-२५३	२	१२१
औदारिकादि के समयप्रबद्धों का बंधादि अवस्था में द्रव्य प्रमाण	२५४-२५५	२	१२२
५ शरीरों के उत्कृष्ट संचय की आवश्यक सामग्री एवं स्वामी	२५६-२५८	३	१२३
संख्या	२५९-२७०	१२	१२४
कुल गाथाएँ		५५	

पुग्गलविवाइदेहोदयेण मणवयणकायजुत्तस्स।
जीवस्स जा हु सत्ती, कम्मागमकारणं जोगो।।२१६।।

अर्थ – पुद्गलविपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की जो कर्मों के ग्रहण करने में कारणभूत शक्ति है उसको योग कहते हैं ।।२१६।।

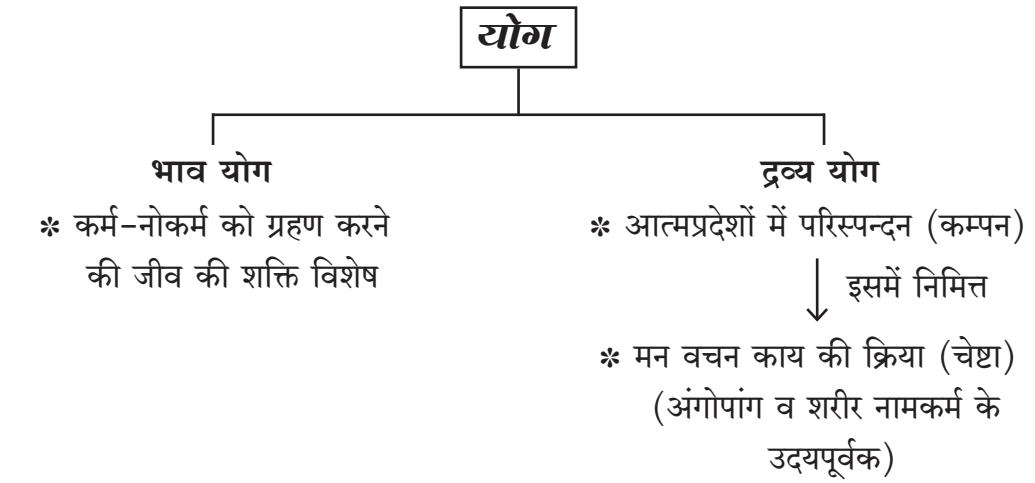

मणवयणाणपउत्ती, सच्चासच्चुभयअणुभयत्थेसु।
तण्णाम होदि तदा, तेहि दु जोगा हु तज्जोगा।।२१७।।
सब्भावमणो सच्चो, जो जोगो तेण सच्चमणजोगो।
तव्विवरोओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति।।२१८।।
ण य सच्चमोसजुत्तो, जो दु मणो सो असच्चमोसमणो।
जो जोगो तेण हवे, असच्चमोसो दु मणजोगो।।२१९।।
दसविहसच्चे वयणे, जो जोगो सो दु सच्चवचिजोगो।
तव्विवरीओ मोसो, जाणुभयं सच्चमोसो त्ति।।२२०।।
जो णेव सच्चमोसो, सो जाण असच्चमोसवचिजोगो।
अमणाणं जा भासा, सण्णीणामंतणी आदी।।२२१।।

अर्थ – सत्य, असत्य, उभय, अनुभय इन चार प्रकार के पदार्थों से जिस पदार्थ को जानने या कहने के लिए जीव के मन, वचन की प्रवृत्ति होती है उस समय में मन और वचन का वही नाम होता है और उसके सम्बंध से उस प्रवृत्ति का भी वही नाम होता है ।।२१७।।

अर्थ – समीचीन भावमन को (पदार्थ को जानने की शक्तिरूप ज्ञान को) अर्थात् समीचीन पदार्थ को विषय करने वाले मन को सत्यमन कहते हैं, और उसके द्वारा जो योग होता है उसको सत्यमनोयोग कहते हैं। सत्य से जो विपरीत है उसको मिथ्या कहते हैं तथा सत्य और मिथ्या दोनों ही प्रकार के मन को उभय मन कहते हैं। ऐसा हे भव्य! तू जान ।।२१८।।

अर्थ – जो न तो सत्य हो और न मृषा हो उसको असत्यमृषा मन कहते हैं अर्थात् अनुभयरूप पदार्थ के जानने की शक्तिरूप जो भावमन है उसको असत्यमृषा कहते हैं और उसके द्वारा जो योग होता है उसको असत्यमृषामनोयोग कहते हैं ।।२१९।।

अर्थ – वक्ष्यमाण जनपद आदि दश प्रकार के सत्य अर्थ के वाचक वचन को सत्यवचन और उससे होने वाले योग – प्रयत्नविशेष को सत्यवचनयोग कहते हैं तथा इससे जो विपरीत है उसको मृषा और जो कुछ सत्य और कुछ मृषा का वाचक है उसको उभयवचनयोग कहते हैं। ऐसा हे भव्य! तू समझ ।।२२०।।

अर्थ – जो न सत्यरूप हो और न मृषारूप ही हो उसको अनुभय वचनयोग कहते हैं। असंज्ञियों की समस्त भाषा और संज्ञियों की आमन्त्रणी आदिक भाषा अनुभय भाषा कही जाती है ।।२२१।।

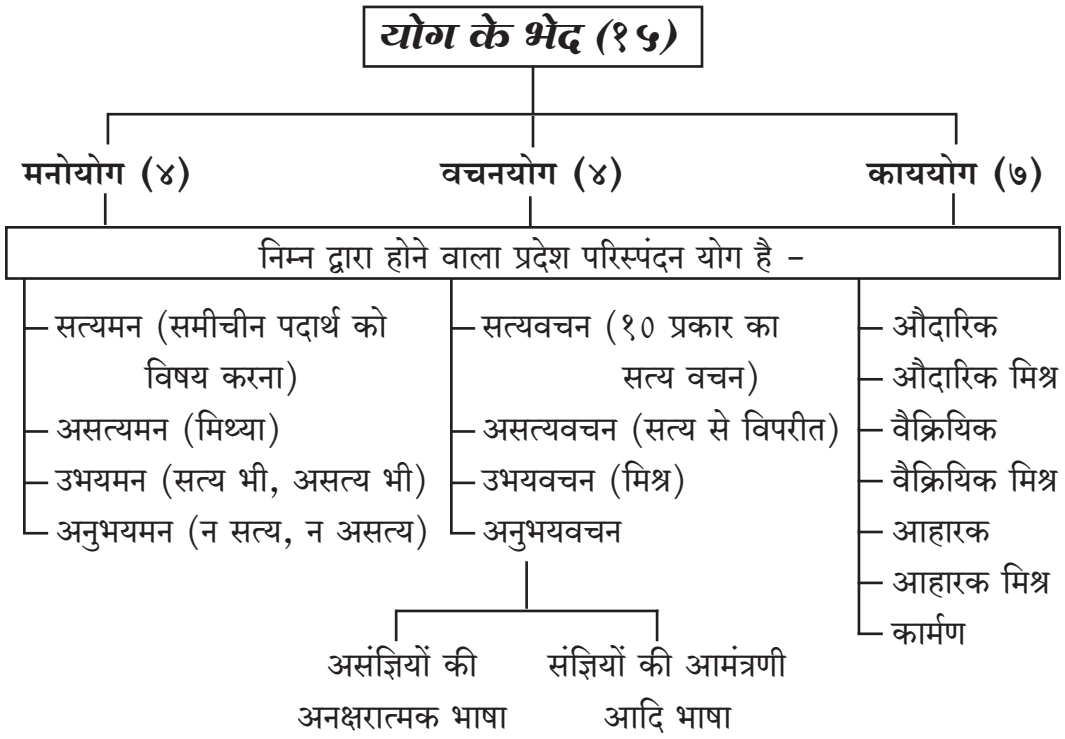

नोट – (१) आत्मप्रदेशों के परिस्पंदनरूप योग तो एक ही प्रकार का होता है। उपर्युक्त १५ भेद योग के निमित्तभूत मन, वचन, काय की चेष्टा से किये गये हैं।

४ मन एवं ४ वचन के विषयभूत पदार्थ एवं उनके दृष्टांत

		दृष्टांत
सत्य	सत्यज्ञान गोचर पदार्थ	जल
असत्य	मिथ्याज्ञान गोचर पदार्थ	मरीचिका का जल
उभय	उभयज्ञान गोचर पदार्थ	कमण्डल को घट कहना (जल रखने का काम हो सकता है इसलिये सत्य, घट का आकार नहीं इसलिये असत्य,)
अनुभय	निर्णयरहित पदार्थ	''यह कुछ है'' (विशेष ज्ञान न होने से सत्य नहीं,सामान्य ज्ञान होने से असत्य भी नहीं)

जणवदसम्मदिठवणा, णामे रूवे पडुच्चववहारे।
सम्भावणे य भावे, उवमाए दसविहं सच्चं।।२२२।।
भत्तं देवी चंदप्पह-, पडिमा तह य होदि जिणदत्तो।
सेदो दिग्घो रज्झदि, कूरोत्ति य जं हवे वयणं।।२२३।।
सक्को जंबूदीवं, पल्लट्टदि पाववज्जवयणं च।
पल्लोवमं च कमसो, जणवदसच्चादिदिट्ठंता।।२२४।।

अर्थ - जनपदसत्य, सम्मतिसत्य, स्थापनासत्य, नामसत्य, रूपसत्य, प्रतीत्यसत्य, व्यवहारसत्य, संभावनासत्य, भावसत्य, उपमासत्य, इसप्रकार सत्य के दश भेद हैं ।।२२२।।

अर्थ - उक्त दश प्रकार के सत्यवचन के ये दश दृष्टांत हैं। भक्त, देवी, चन्द्रप्रभप्रतिमा, जिनदत्त, श्वेत, दीर्घ, भात पकाया जाता है, शक्र जम्बूद्वीप को पलट सकता है, पापरहित ''यह प्रासुक है'' ऐसा वचन और पल्योपम ।।२२३-२२४।।

दस प्रकार के सत्य व उनके दृष्टांत

क्र.	सत्य	स्वरूप	दृष्टांत
१	**जनपद**	अपने-अपने देश में मनुष्य-व्यवहार में प्रवृत्त वचन	भक्त, भात, भाटु, वंटक, मुकूड, कुलु, चोरु आदि भिन्न-भिन्न शब्दों से एक ही चीज "भात" को कहना
२	**सम्मति**	बहुत मनुष्यों की सम्मति से सर्व साधारण में रूढ़	पट्टरानी के सिवाय साधारण स्त्री को देवी कहना
३	**स्थापना**	किसी वस्तु में किसी भिन्न वस्तु का आरोप करना	चन्द्रप्रभ की प्रतिमा को चन्द्रप्रभ कहना
४	**नाम**	बिना किसी अपेक्षा व्यवहार के लिये नाम रखना	जिनेन्द्र ने नहीं दिया है पर "जिनदत्त" नाम रखना
५	**रूप**	पुद्गल के अनेक गुण होने पर भी रूप की मुख्यता करना	रस, गंधादि रहने पर भी रूप गुण की अपेक्षा किसी मनुष्य को "श्वेत" कहना
६	**प्रतीत्य / आपेक्षिक**	किसी विवक्षित पदार्थ की अपेक्षा से दूसरे पदार्थ का कथन करना	किसी छोटे पदार्थ की अपेक्षा अन्य को बड़ा कहना
७	**व्यवहार**	नैगमादि नयों की प्रधानता से वचन कहना	चावल पकाने को "भात पकाता हूँ" ऐसा कहना
८	**संभावना**	असंभव बात को वस्तु के किसी धर्म के निरूपण के लिये कहना	इन्द्र जम्बूद्वीप को उलट सकता है (यहाँ इन्द्र की शक्ति बताना है)
९	**भाव**	इन्द्रिय अगोचर पदार्थों का सिद्धांत के अनुसार विधि-निषेध रूप भाव	अग्नि से पकायी वस्तु को प्रासुक कहना
१०	**उपमा**	किसी प्रसिद्ध पदार्थ से किसी पदार्थ की समानता कहना	धान भरने के गड्ढेरूप संख्या को पल्योपम की उपमा देना

आमंतणि आणवणी, याचणिया पुच्छणी य पण्णवणी।
पच्चक्खाणी संसयववयणी, इच्छाणुलोमा य।।२२५।।
णवमी अणक्खरगदा, असच्चमोसा हवंति भासाओ।
सोदाराणं जम्हा, वत्तावत्तंससंजणया।।२२६।।

अर्थ – आमन्त्रणी, आज्ञापनी, याचनी, आपृच्छनी, प्रज्ञापनी, प्रत्याख्यानी, संशयवचनी, इच्छानुलोम्नी, अनक्षरगता ये नव प्रकार की अनुभयात्मक भाषाएँ हैं, क्योंकि इनके सुननेवाले को व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही अंशों का ज्ञान होता है ।।२२५-२२६।।

९ प्रकार के अनुभय वचन

जिनके सुनने वाले को व्यक्त और अव्यक्त दोनों का ज्ञान हो

क्र.	वचन	स्वरूप	दृष्टांत
१	आमंत्रणी	बुलानेरूप	हे देवदत्त ! तुम आओ
२	आज्ञापनी	आज्ञारूप	तुम यह काम करो
३	याचनी	माँगनेरूप	तुम यह मुझको दो
४	आपृच्छनी	प्रश्नरूप	यह क्या है ?
५	प्रज्ञापनी	विनतीरूप	हे स्वामी ! मेरी यह विनती है
६	प्रत्याख्यानी	त्यागरूप	मैं इसका त्याग करता हूँ
७	संशयवचनी	संदेहरूप	यह बगुलों की पंक्ति है अथवा ध्वजा है
८	इच्छानुलोम्नी	इच्छारूप	मुझको भी ऐसा ही होना चाहिए
९	अनक्षरगता	द्वीन्द्रियादि असंज्ञी जीवों की भाषा	

मणवयणाणं मूलणिमित्तं खलु पुण्णदेहउदओ दु।
मोसुभयाणं मूलणिमित्तं खलु होदि आवरणं।।२२७।।

अर्थ – सत्य और अनुभय मनोयोग तथा वचनयोग मूल कारण पर्याप्ति और शरीर नामकर्म का उदय है। मृषा और उभय मनोयोग तथा वचनयोग का मूल कारण अपना-अपना आवरण कर्म है ।।२२७।।

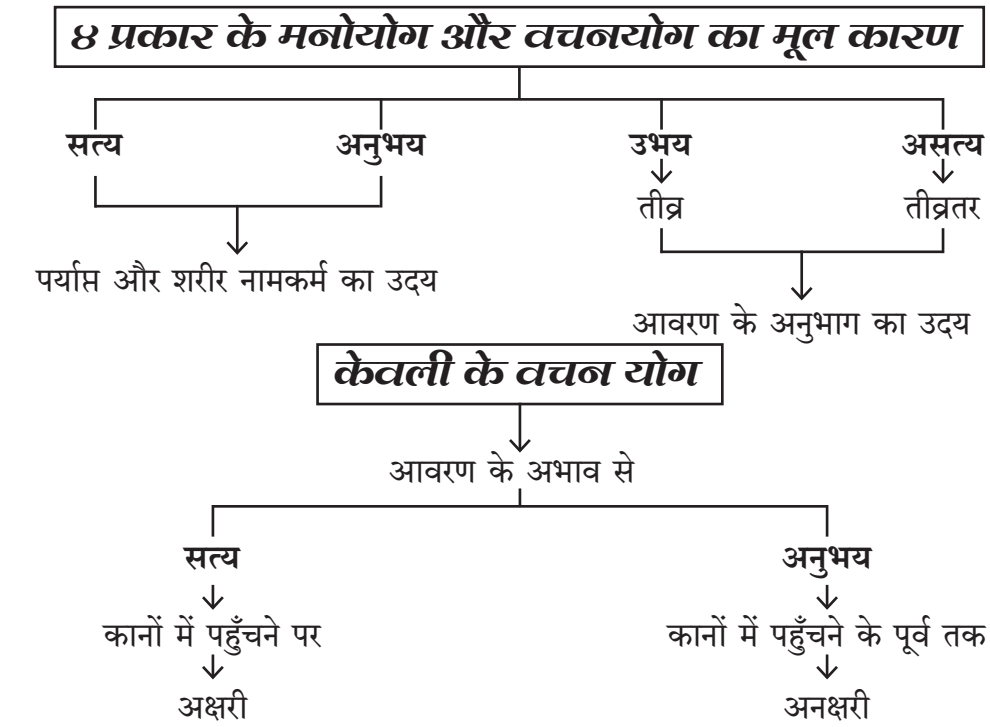

मणसहियाणं वयणं, दिट्ठं तप्पुव्वमिदि सजोगम्हि।
उत्तो मणोवयारेणिंदियणाणेण हीणम्हि।।२२८।।
अंगोवंगुदयादो, दव्वमणट्ठं जिणिंदचंदम्हि।
मणवग्गणखंधाणं आगमणादो दु मणजोगो।।२२९।।

अर्थ – छद्मस्थ मनसहित जीवों के वचनप्रयोग मनपूर्वक ही होता है। इसलिये इन्द्रियज्ञान से रहित सयोगकेवली के भी उपचार से मन कहा है ।।२२८।।

अर्थ – आंगोपांग नामकर्म के उदय से हृदयस्थान में जीवों के द्रव्यमन की विकसित-खिले हुए अष्टदल पद्म के आकार में रचना हुआ करती है। यह रचना जिन मनोवर्गणाओं के द्वारा हुआ करती है उनका अर्थात् इस द्रव्यमन की कारणभूत मनोवर्गणाओं का श्री जिनेन्द्रचन्द्र भगवान सयोगकेवली के भी आगमन हुआ करता है, इसलिये उनके उपचार से मनोयोग कहा है ।।२२९।।

पुरुमहदुदारुरालं, एयट्ठो संविजाण तम्हि भवं।
ओरालियं तमुच्चइ, ओरालियकायजोगो सो।।२३०।।
ओरालिय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो ओरालियमिस्सजोगो सो।।२३१।।
विविहगुणइड्ढिजुत्तं, विक्किरियं वा हु होदि वेगुव्वं।
तिस्से भवं च णेयं, वेगुव्वियकायजोगो सो।।२३२।।

अर्थ – पुरु, महत्, उदार, उराल, ये सब शब्द एक ही स्थूल अर्थ के वाचक है। उदार में जो होय उसको कहते हैं औदारिक । औदारिक ही पुद्गल पिण्ड का संचयरूप होने से काय हैं। औदारिक वर्गणा के स्कन्धों का औदारिक कायरूप परिणमन में कारण जो आत्मप्रदेशों का परिस्पंद हैं, वह औदारिक काययोग है ।।२३०।।

अर्थ – हे भव्य ! ऐसा समझ कि जिस औदारिक शरीर का स्वरूप पहले बता चुके है वही शरीर जब तक पूर्ण नहीं हो जाता तब तक मिश्र कहा जाता है और उसके द्वारा होनेवाले योग को औदारिक मिश्रकाययोग कहते हैं ।।२३१।।

अर्थ – नाना प्रकार के गुण और ऋद्धियों से युक्त देव तथा नारकियों के शरीर को वैक्रियिक अथवा विगूर्व कहते हैं और इसके द्वारा होने वाले योग को वैगूर्विक अथवा वैक्रियिक काययोग कहते हैं ।।२३२।।

गाथा २३०–२३२, २३४ और २३९–२४१ का चार्ट–

काय योग

	नाम	काल		योग	
१	**औदारिक**	* एकेन्द्रिय का शरीर पर्याप्ति पूरी होने से लेकर आयु पर्यंत * शेष सभी का अंतर्मुहूर्त	उदार = स्थूल, पुरु, महत् उराल औदारिक= उदार में जो हो	औदारिक शरीर के	निमित्त से होने वाला **कर्म नोकर्म** को ग्रहण करने की शक्तिरूप आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन
२	**औदारिक मिश्र**	* जन्म से शरीर पर्याप्ति पूरी होने तक– अन्तर्मुहूर्त * केवली समुद्घात के समय	औदारिक शरीर की जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो	मिश्र = औदारिक वर्गणा स्कंध तथा कार्मण शरीर के	
३	**वैक्रियिक**	अन्तर्मुहूर्त	वैगूर्व/वैक्रियिक=विविध प्रकार के गुण व ऋद्धि से संयुक्त देव और नारकियों का शरीर	वैक्रियिक काय के	

	कायोग	काल		योग	
४	**वैक्रियिक मिश्र**	अन्तर्मुहूर्त	वैक्रियिक शरीर की जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो	मिश्र=वैक्रियिक वर्गणा स्कंध तथा कार्मण शरीर के	निमित्त से होने वाला **कर्म नोकर्म** को ग्रहण करने की शक्तिरूप आत्म प्रदेशों का परिस्पंदन
५	**आहारक**	〃	देखिये आगे का चार्ट – गाथा २३५ से २३८	आहारक शरीर के	
६	**आहारक मिश्र**	〃	आहारक शरीर की जब तक शरीर पर्याप्ति पूर्ण न हो	मिश्र= आहारक शरीर वर्गणा स्कंध तथा औदारिक शरीर के	
७	**कार्मण**	* विग्रह गति में – १,२ या ३ समय * केवली समुद्घात के समय	कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त ज्ञानावरणादि ८ कर्मों का समूह	कार्मण शरीर के निमित्त से होने वाला **कर्म** को ग्रहण करने की शक्तिरूप आत्मप्रदेशों का परिस्पंदन	

बादरतेऊवाऊ, पंचिंदियपुण्णगा विगुव्वंति।
ओरालियं शरीरं, विगुव्वणप्पं हवे जेसिं।।२३३।।

अर्थ – बादर तेजस्कायिक और वायुकायिक तथा संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च एवं मनुष्य तथा भोगभूमिज तिर्यक्, मनुष्य अपने-अपने औदारिक शरीर को विक्रियारूप परिणमाते हैं ।।२३३।।

विक्रिया (शरीर परिणमन अपेक्षा)

स्वाभाविक आकार के सिवाय विभिन्न आकार बनाना

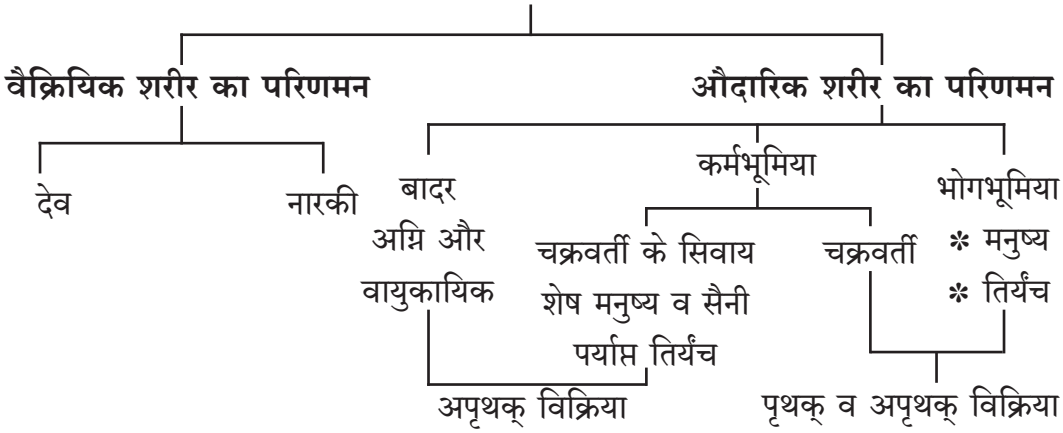

विक्रिया (कार्य अपेक्षा)

पृथक्	अपृथक्
अपने शरीर से पृथक् अनेक शरीरादिक विक्रियारूप करना	अपने शरीर को अनेक विकाररूप करना

वेगुव्विय उत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो, वेगुव्वियमिस्सजोगो सो।।२३४।।

अर्थ – वैगूर्विक का अर्थ वैक्रियक बताया जा चुका है। जब तक वह वैक्रियिक शरीर पूर्ण नहीं होता तब तक उसको वैक्रियिक मिश्र कहते हैं और उसके द्वारा होनेवाले योग को–आत्मप्रदेश परिस्पन्दन को वैक्रियिक मिश्रकाययोग कहते हैं ।।२३४।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ११३ गाथा नं. २३०–२३२ का चार्ट देखें ।

आहारस्सुदयेण य, पमत्तविरदस्स होदि आहारं।
असंजमपरिहरणट्ठं, संदेहविणासणट्ठं च।।२३५।।
णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुदिकल्लाणे।
परखेते संवित्ते, जिणजिणघरवंदणट्ठं च।।२३६।।
उत्तम अंगम्हि हवे, धादुविहीणं सुहं असंहणणं।
सुहसंठाणं धवलं, हत्थपमाण पसत्थुदयं।।२३७।।
अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदि जहण्णिदरे।
पज्जत्तीसंपुण्णे, मरणं पि कदाचि संभवई।।२३८।।

अर्थ – असंयम का परिहार करने के लिये तथा संदेह को दूर करने के लिए आहारक ऋद्धि के धारक छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से आहारक शरीर होता है ।२३५।।

अर्थ – अपने क्षेत्र में केवली तथा श्रुतकेवली का अभाव होने पर किन्तु दूसरे क्षेत्र में जहाँ पर कि औदारिक शरीर से उस समय पहुँचा नहीं जा सकता, केवली या श्रुतकेवली के विद्यमान रहने पर अथवा तीर्थंकरों के दीक्षा कल्याण आदि तीन कल्याणकों में से किसी के होने पर तथा जिन जिनगृह की वन्दना के लिये भी आहारक ऋद्धिवाले छठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्त मुनि के आहारक शरीर नामकर्म के उदय से यह शरीर उत्पन्न हुआ करता है ।।२३६।।

अर्थ – यह आहारक शरीर रसादिक धातु और संहननों से रहित तथा समचतुरस्र संस्थान से युक्त एवं चन्द्रकांत मणि के समान श्वेत और शुभ नामकर्म के उदय से शुभ अवयवों से युक्त हुआ करता है। यह एक हस्तप्रमाण वाला और आहारक शरीर आदि प्रशस्त नामकर्मों के उदय से उत्तमांग शिर में से उत्पन्न हुआ करता है ।।२३७।।

अर्थ – वह आहारक शरीर पर से अपनी और अपने से पर की बाधा से रहित होता है; इसी कारण से वैक्रियिक शरीर की तरह वज्रशिला आदि में से निकलने में समर्थ हैं। उसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण होती है। आहारक शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर कदाचित् आहारक ऋद्धिवाले मुनि का मरण भी हो सकता है ।।२३८।।

आहारक शरीर

किनके होता है ?	आहारक ऋद्धिधारी छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के
कौन–से कर्म से ?	आहारक शरीर नाम कर्म के उदय से
कब होता है ?	* सूक्ष्म अर्थ को ग्रहण करने एवं संदेह को दूर करने के लिये – अपने क्षेत्र में केवली–श्रुतकेवली का अभाव होने पर एवं परक्षेत्र (जहाँ औदारिक शरीर से नहीं जा सकते) में सद्भाव होने पर * असंयम परिहार हेतु * तीर्थंकरों के दीक्षादि ३ कल्याणकों में गमन हेतु * जिन एवं जिनगृह की वंदना हेतु
शरीर का स्वरूप	
कहाँ से उत्पन्न होता है ?	उत्तमांग सिर में से
कितना बड़ा	१ हाथ प्रमाण
रंग	श्वेत वर्ण
संस्थान	समचतुरस्र
अवयव	शुभ नामकर्म के उदय से शुभ
संहनन और रसादि सप्त धातु	से रहित
व्याघात (बाधा) रहित	न किसी से रुकता, न किसी को रोकता है
काल	
जघन्य और उत्कृष्ट	अंतर्मुहूर्त
मरण	शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर ही संभव है

आहरदि अणेण मुणी, सुहमे अत्थे सयस्स संदेहे।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारगो जोगो।।२३९।।
आहारयमुत्तत्थं, विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो, आहारयमिस्सजोगो सो।।२४०।।
कम्मेव य कम्मभवं, कम्मइयं जो दु तेण संजोगो।
कम्मइयकायजोगो, इगिविगतिगसमयकालेसु।।२४१।।

अर्थ – छठे गुणस्थानवर्ती मुनि अपने को संदेह होने पर इस शरीर के द्वारा केवली के पास में जाकर सूक्ष्म पदार्थों का आहरण (ग्रहण) करता है इसलिये इस शरीर के द्वारा होने वाले योग को आहारक काययोग कहते हैं ।।२३९।।

अर्थ – आहारक शरीर का अर्थ ऊपर बताया जा चुका है। जब तक वह पर्याप्त नहीं होता तब तक उसको आहारकमिश्र कहते हैं और उसके द्वारा होने वाले योग को आहारकमिश्रकाययोग कहते हैं ।।२४०।।

अर्थ – ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों के समूह को अथवा कार्मणशरीर नामकर्म के उदय से होने वाली काय को कार्मणकाय कहते हैं और उसके द्वारा होने वाले योग–कर्माकर्षण शक्तियुक्त आत्मप्रदेशों के परिस्पन्दन को कार्मणकाययोग कहते हैं। यह योग एक दो अथवा तीन समय तक होता है ।।२४१।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ११३ गाथा नं. २३०–२३२ का चार्ट देखें ।

वेगुव्विय–आहारयकिरिया, ण समं पमत्तविरदम्हि।
जोगो वि एक्ककाले, एक्केव य होदि णियमेण।।२४२।।

अर्थ – छठे गुणस्थान में वैक्रियिक और आहारक शरीर की क्रिया युगपत् नहीं होती और योग भी नियम से एक काल में एक ही होता है ।।२४२।।

युगपत् योग प्रवृत्ति

१ समय में १ ही योग होता है
* संस्कार से अन्य योग की प्रवृत्ति देखी जाती है
* छठे गुणस्थान में संस्कार से भी वैक्रियिक और आहारक की क्रिया एक साथ नहीं होती है

जेसिं ण संति जोगा, सुहासुहा पुण्णपावसंजणया।
ते होंति अजोगिजिणा, अणोवमाणंतबलकलिया।।२४३।।

अर्थ – जिनके पुण्य और पाप के कारणभूत शुभाशुभ योग नहीं हैं उनको अयोगिजिन कहते हैं। वे अनुपम और अनंत बल से युक्त होते हैं ।।२४३।।

अयोगी

* चौदहवें गुणस्थानवर्ती
* गुणस्थानातीत सिद्ध

पुण्य–पाप के कारणभूत शुभाशुभ योगरहित	अनुपम और अनंत बलसहित

ओरालियवेगुव्विय, आहारयतेजणामकम्मुदये।
चउणोकम्मसरीरा, कम्मेव य होदि कम्मइयं।।२४४।।

अर्थ – औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस नामकर्म के उदय से होनेवाले चार शरीरों को नोकर्म शरीर कहते हैं और कार्मण शरीर नामकर्म के उदय से होनेवाले ज्ञानावरणादिक आठ कर्मों के समूह को कार्मण शरीर कहते हैं ।।२४४।।

शरीर के प्रकार

	कर्म	नोकर्म
स्वरूप	ज्ञानावरणादि आठ कर्म स्कंध	औदारिकादि ४ शरीर
कर्म का उदय	कार्मण शरीर नामकर्म का उदय	औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस शरीर नामकर्म का उदय
नाम	कर्म	नोकर्म निषेधरूप → कार्मण शरीर के समान गुणों का घात व गति आदि रूप पराधीनता नहीं करते ईषत्, स्तोकरूप (अल्परूप) → कार्मण शरीर के सहकारी

परमाणूहिं अणंतेहिं, वग्गणसण्णा हु होदि एक्का हु।
ताहि अणंताहिं णियमा, समयपबद्धो हवे एक्को।।२४५।।

अर्थ – अनंत (अनंतानन्त) परमाणुओं की एक वर्गणा होती है और अनंत वर्गणाओं का नियम से एक समयप्रबद्ध होता है ।।२४५।।

समयप्रबद्ध आदि

समयप्रबद्ध	एक समय में आत्मा के साथ बंधनेवाले कर्म–नोकर्मरूप अनंत वर्गणाओं का समूह
वर्गणा	अनंत वर्गों का समूह
वर्ग	समान अविभाग प्रतिच्छेद शक्ति वाले कर्म या नोकर्म परमाणु
नोट – यहाँ अनंत = मध्यम अनंतानंत = सिद्ध राशि का अनंतवाँ भाग अथवा अभव्यों से अनंत गुणा	

ताणं समयपबद्धा सेढिअसंखेज्जभागगुणिदकमा।
णंतेण य तेजदुगा, परं परं होदि सुहुमं खु।।२४६।।
ओगाहणाणि ताणं, समयपबद्धाण वग्गणाणं च।
अंगुलअसंखभागा, उवरुवरिमसंखगुणहीणा।।२४७।।
तस्समयबद्धवग्गणओगाहो सूइअंगुलासंख–
भागहिदविंदअंगुलमुवरुवरिं तेण भजिदकमा।।२४८।।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों के समयप्रबद्ध उत्तरोत्तर क्रम से श्रेणि के असंख्यातवें भाग से गुणित हैं और तैजस तथा कार्मण शरीरों के समयप्रबद्ध अनंतगुणे हैं, किन्तु ये पाँचों ही शरीर उत्तरोत्तर सूक्ष्म हैं ।।२४६।।

अर्थ – इन शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणाओं की अवगाहना का प्रमाण समान्य से घनांगुल के असंख्यातवें भाग है, किन्तु विशेषतया आगे–आगे के शरीरों के समयप्रबद्ध और वर्गणाओं की अवगाहना का प्रमाण क्रम से असंख्यातगुणा–असंख्यातगुणा हीन है ।।२४७।।

अर्थ – औदारिकादि शरीरों के समयप्रबद्ध तथा वर्गणाओं का अवगाहन सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से भक्त घनांगुलप्रमाण है और पूर्व–पूर्व की अपेक्षा आगे–आगे की अवगाहना क्रम–२ से सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का भाग देने पर प्राप्त होती हैं ।।२४८।।

५ शरीरों के समयप्रबद्ध

शरीर	समयप्रबद्ध का प्रमाण		अवगाहना		
			समयप्रबद्ध	वर्गणा	
औदारिक	अनंतानंत	उत्तरोत्तर अधिक अधिक	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{सूच्यंगुल/असं.}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{२}}$	उत्तरोत्तर हीन-हीन (सूक्ष्म-सूक्ष्म)
वैक्रियिक	औदारिक × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असं.}}$		$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{२}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{३}}$	
आहारक	वैक्रियिक × $\frac{\text{श्रेणी}}{\text{असं.}}$		$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{३}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{४}}$	
तैजस	आहारक × अनंत		$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{४}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{५}}$	
कार्मण	तैजस × अनंत		$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{५}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{(\text{सूच्यंगुल/असं.})^{६}}$	

जीवादो णंतगुणा, पडिपरमाणुम्हि विस्ससोवचया।
जीवेण य समवेदा, एक्केक्कं पडि समाणा हु।।२४९।।

अर्थ - पूर्वोक्त कर्म और नोकर्म के प्रत्येक परमाणु पर समान संख्या को लिये हुए जीवराशि से अनंतगुणे विस्रसोपचयरूप परमाणु जीव के साथ सम्बद्ध है ।।२४९।।

विस्रसोपचय

↓

कर्म-नोकर्मरूप होने योग्य परमाणु

↓

- ✲ प्रत्येक कर्म नोकर्मरूप परमाणु प्रति
- ✲ जीवराशि से अनंत गुणे
- ✲ जीव के साथ एकक्षेत्रावगाहरूप
- ✲ कर्म-नोकर्म हुए बिना कर्म-नोकर्मरूप स्कंध से एक बंधनरूप

उक्कस्सट्ठिदिचरिमे, सगसगउक्कस्ससंचओ होदि।
पणदेहाणं वरजोगादिससामग्गिसहियाणं।।२५०।।
आवासया हु भव अद्धाउस्सं जोगसंकिलेसो य।
ओकड्डुक्कड्डणगा, छच्चेदे गुणिदकम्मंसे।।२५१।।

अर्थ – उत्कृष्ट योग को आदि लेकर जो जो सामग्री तत्–तत् कर्म या नोकर्म के उत्कृष्ट संचय में कारण है उस–उस सामग्री के मिलने पर औदारिकादि पाँचों ही शरीरवालों के उत्कृष्ट स्थिति के अन्तसमय में अपने–अपने कर्म और नोकर्म का उत्कृष्ट संचय होता है ।।२५०।।

अर्थ – कर्मों का उत्कृष्ट संचय करने के लिये प्रवर्तमान जीव के उनका उत्कृष्ट संचय करने के लिये ये छह आवश्यक कारण होते है – भवाद्धा, आयुष्य, योग, संक्लेश, अपकर्षण, उत्कर्षण ।।२५१।।

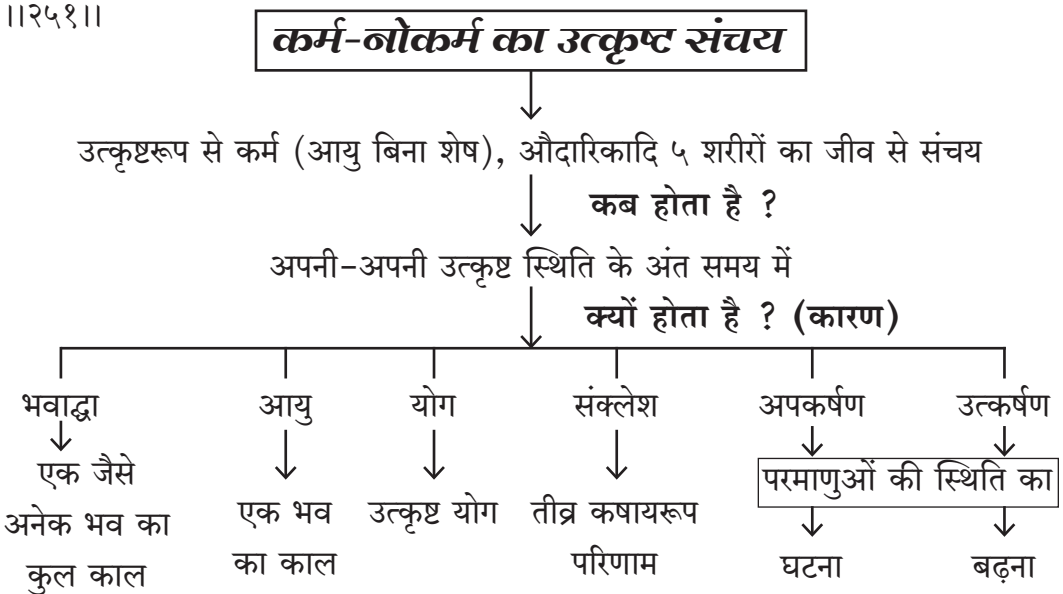

पल्लतियं उवहीणं, तेत्तीसंतोमुहुत्त उवहीणं।
छावट्ठी कम्मट्ठिदि, बंधुक्कस्सट्ठिदी ताणं।।२५२।।
अंतोमुहुत्तमेत्तं, गुणहाणी होदि आदिमतिगाणं।
पल्लासंखेज्जदिमं, गुणहाणी तेजकम्माणं।।२५३।।

अर्थ – आगे औदारिक आदि पाँच शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति का प्रमाण कहते हैं –

उन औदारिक आदि पाँच शरीरों की बंधरूप उत्कृष्ट स्थिति औदारिक की तीन पल्य, वैक्रियिक की तैंतीस सागर, आहारक की अर्न्तमुहूर्त, तैजस की छियासठ सागर है तथा कार्मण की सामान्य से सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण और विशेष से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय और अन्तरायकर्म की तीस कोड़ाकोड़ी सागर, मोहनीय की सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर, नाम और गोत्र की बीस कोड़ाकोड़ी सागर और आयुकर्म की तैंतीस सागर है। इसप्रकार बंध के प्रकरण में कही सबकी उत्कृष्ट स्थिति ग्रहण करना ।।२५२।।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक और आहारक इन तीन शरीरों में से प्रत्येक की उत्कृष्ट स्थिति संबंधी गुणहानि आयाम का प्रमाण अपने–अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त मात्र है और तैजस तथा कार्माण शरीर की उत्कृष्ट स्थितिसम्बंधी गुणहानि का प्रमाण यथायोग्य पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र है ।।२५३।।

पाँच शरीरों की उत्कृष्ट स्थिति

शरीर	उत्कृष्ट स्थिति	गुणहानि आयाम	नाना गुणहानि
औदारिक	३ पल्य	अंतर्मुहूर्त	स्थिति / गुणहानि आयाम
वैक्रियिक	३३ सागर	〃	
आहारक	अंतर्मुहूर्त	〃	
तैजस	६६ सागर	पल्य/असं.	
कार्मण	**सामान्य** – ७० कोड़ाकोड़ी सागर **विशेष** – अपनी-अपनी कर्मस्थिति प्रमाण	〃	

एक्कं समयपबद्धं बंधदि एक्कं उदेदि चरिमम्मि।
गुणहाणीण दिवड्ढं, समयपबद्धं हवे सत्तं।।२५४।।
णवरि य दुसरीराणं, गलिदवसेसाउमेत्तठिदिबंधो।
गुणहाणीण दिवड्ढं, संचयमुदयं च चरिमम्हि।।२५५।।

अर्थ – प्रतिसमय एक समयप्रबद्ध का बंध होता है और एक ही समयप्रबद्ध का उदय होता है तथा कुछ कम डेढ़ गुणहानिगुणित समयप्रबद्धों की सत्ता रहती हैं ।।२५४।।

अर्थ – औदारिक और वैक्रियिक शरीर में यह विशेषता है कि इन दोनों शरीरों के बध्यमान समयप्रबद्धों की स्थिति भुक्त आयु से अवशिष्ट आयु की स्थितिप्रमाण हुआ करती है और इनका आयु के अन्त्य समय में डेढ़ गुणहानिमात्र उदय तथा संचय रहता है ।।२५५।।

५ शरीरों के बंध, उदय, सत्त्व का द्रव्य प्रमाण

शरीर	बंध(प्रतिसमय)	उदय(प्रतिसमय)		सत्त्व
तैजस	१ समयप्रबद्ध	१ समय प्रबद्ध		किंचिदून द्वयर्धगुणहानि × समयप्रबद्ध
कार्मण				
औदारिक	१ समयप्रबद्ध	प्रथम समय	१ निषेक	चरम समय में :- किंचिदून द्वयर्धगुणहानि × समयप्रबद्ध
		द्वितीय समय	२ निषेक	
वैक्रियिक		तृतीय समय	३ निषेक	
		अंत समय	किंचिदून द्वयर्धगुणहानि × समयप्रबद्ध	
आहारक	१ समयप्रबद्ध	१ समयप्रबद्ध		चरम समय में :- किंचिदून द्वयर्धगुणहानि × समयप्रबद्ध
		अंत समय	किंचिदून द्वयर्धगुणहानि × समयप्रबद्ध	

ओरालियवरसंचं, देवुत्तरकुरुवजादजीवस्स।
तिरियमणुस्सस्स हवे, चरिमदुचरिमे तिपल्लाठिदिगस्स।।२५६।।
वेगुव्वियवरसंचं, बावीससमुद्दआरणदुगम्हि।
जम्हा वरजोगस्स य, वारा अण्णत्थ ण हि बहुगा।।२५७।।
तेजासरीरजेट्ठं, सत्तमचरिमम्हि विदियवारस्स।
कम्मस्स वि तत्थेव य, णिरये बहुवारभमिदस्स।।२५८।।

अर्थ – तीन पल्य की स्थितिवाले देवकुरु तथा उत्तरकुरु में उत्पन्न होनेवाले तिर्यंच और मनुष्यों के चरम समय में औदारिक शरीर का उत्कृष्ट संचय होता है ।।२५६।।

अर्थ – वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट संचय, बाईस सागर की आयु वाले आरण और अच्युत स्वर्ग के ऊपरी पटल संबंधी देवों के ही होता है, क्योंकि वैक्रियिक शरीर का उत्कृष्ट योग तथा उसके योग्य दूसरी सामग्रियाँ अन्यत्र अनेक बार नहीं होती ।।२५७।।

अर्थ – तैजस शरीर का उत्कृष्ट संचय सप्तम पृथिवी में दूसरी बार उत्पन्न होने वाले जीव के होता है और कार्मण शरीर का उत्कृष्ट संचय अनेक बार नरकों में भ्रमण करके सप्तम पृथिवी में उत्पन्न होनेवाले जीव के होता है। आहारक शरीर का उत्कृष्ट संचय प्रमत्तविरत के औदारिक शरीरवत् अंत समय में होता है ।।२५८।।

५ शरीरों के यथायोग्य कारण मिलने पर उत्कृष्ट संचय के स्वामी

शरीर	उत्कृष्ट संचय स्वामी
औदारिक	❊ ३ पल्य की आयु वाला ❊ देवकुरु व उत्तरकुरु भोगभूमि में उत्पन्न ❊ मनुष्य/ तिर्यंच ❊ आयु के अंतिम समय में
वैक्रियिक	❊ २२ सागर की आयु वाले ❊ आरण–अच्युत स्वर्ग में ऊपरी पटल के देव (क्योंकि अन्य स्थान पर बहुत बार उत्कृष्ट योगादि संभव नहीं)
तैजस	❊ सातवें नरक में लगातार दूसरी बार ❊ जन्मा जीव ❊ आयु के अंत समय में
कार्मण	❊ अनेक बार नरक में भ्रमण कर ❊ सातवें नरक में उत्पन्न हुआ जीव ❊ आयु के अंत समय में
आहारक	❊ छठे गुणस्थानवर्ती मुनिराज को ❊ उत्कृष्ट योगादि सामग्री मिलने पर ❊ आहारक योग के अंत समय में

योग मार्गणा - संख्या

बादरपुण्णा तेऊ, सगरासीए असंखभागमिदा।
विक्किरियसत्तिजुत्ता, पल्लासंखेज्जया वाऊ।।२५९।।
पल्लासंखेज्जाहयविंदंगुलगुणिदसेढिमेत्ता हु।
वेगुव्वियपंचक्खा, भोगभुमा पुह विगुव्वंति।।२६०।।

अर्थ – बादर पर्याप्तक तैजसकायिक जीवों का जितना प्रमाण है उनमें असंख्यातवें भाग प्रमाण विक्रिया शक्ति से युक्त हैं और वायुकायिक जितने जीव हैं उनमें पल्य के असंख्यातवें भाग विक्रियाशक्ति से युक्त हैं ।।२५९।।

अर्थ – पल्य के असंख्यातवें भाग से अभ्यस्त (गुणित) घनांगुल का जगच्छ्रेणी के साथ गुणा करने पर जो लब्ध आवे उतने ही पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों और मनुष्यों में वैक्रियिक योग के धारक हैं, और भोगभूमिया तिर्यंच तथा मनुष्य तथा कर्मभूमियाओं में चक्रवर्ती पृथक् विक्रिया भी करते हैं ।।२६०।।

विक्रिया शक्तियुक्त जीव - संख्या

जीव	विक्रिया शक्ति युक्त जीवों की संख्या	
बादर पर्याप्त अग्निकायिक	$\frac{\text{कुल बा.प. अग्निकायिक}}{\text{असं.}}$	$= \frac{\text{घनावलि/असं.}}{\text{असं.}}$
बादर पर्याप्त वायुकायिक		= पल्य/असं.
पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच (कर्मभूमिया व भोगभूमिया)	असं. जगत श्रेणी	$= \frac{\text{पल्य} \times \text{घनांगुल} \times \text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$

देवेहिं सादिरेया, तिजोगिणो तेहिं हीणतसपुण्णा।
वियजोगिणो तदूणा, संसारी एक्कजोगा हु।।२६१।।

अर्थ – देवों से कुछ अधिक त्रियोगियों का प्रमाण है। पर्याप्त त्रस राशि में से त्रियोगियों को घटाने पर जो शेष रहे उतना द्वियोगियों का प्रमाण है। संसार राशि में से द्वियोगी तथा त्रियोगियों का प्रमाण घटाने से एक योगियों का प्रमाण निकलता है ।।२६१।।

मन और वचन योगी जीवों की संख्या के लिये पहले ३, २, १ योग वाले जीवों की संख्या निकाली है।

३, २, १ योगी जीव - संख्या

जीव	संख्या	
	सामान्य	विशेष
त्रियोगी (मन, वचन, काय)	देवों से कुछ अधिक (देव + नारकी + मनुष्य + पर्याप्त सैनी पंचे. तिर्यंच)	साधिक $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^{२}}$
द्वियोगी (वचन, काय)	पर्याप्त त्रस - त्रियोगी	$\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/सं.}}$
एकयोगी (काय)	संसार राशि - (त्रियोगी + द्वियोगी) ***नोट - यहाँ तीनों मिश्र काययोग के धारक जीवों को गर्भित जानना क्योंकि उनके एक काययोग ही है।***	अनंतानंत

अंतोमुहुत्तमेत्ता चउमणजोगा कमेण संखगुणा।
तज्जोगो सामण्णं चउवचिजोगा तदो दु संखगुणा।।२६२।।
तज्जोगो सामण्णं काओ संखाहदो तिजोगमिदं।
सव्वसमासविभजिदं सगसगगुणसंगुणे दु सगरासी।।२६३।।

अर्थ - सत्य, असत्य, उभय, अनुभय इन चार मनोयोगों में प्रत्येक का काल यद्यपि अन्तर्मुहूर्त मात्र है तथापि पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर का काल क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है और चारों की जोड़ का जितना प्रमाण है उतना सामान्य मनोयोग का काल है। सामान्य मनोयोग से संख्यातगुणा चारों वचनयोगों का काल है, तथापि क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है। प्रत्येक वचनयोग का एवं चारों वचनयोगों के जोड़ का काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है ।।२६२।।

अर्थ - चारों वचनयोगों के जोड़ का जो प्रमाण हो वह सामान्य वचनयोग का काल है। इससे संख्यातगुणा काययोग का काल है। तीनों योगों के काल को जोड़ देने से जो समयों का प्रमाण हो उसका पूर्वोक्त त्रियोगीजीव राशि में भाग देने से जो लब्ध आवे उस एक भाग से अपने-अपने काल के समयों से गुणा करने पर अपनी-अपनी राशि का प्रमाण निकलता है ।।२६३।।

कुल त्रियोगी जीवों का ४ मनयोग, ४ वचनयोग, काययोग में विभाजन

" माना ⟶ संख्यात = ४ "

योग	काल		जीवों की संख्या
सत्य मनोयोग	सामान्य से सभी का काल अंत-मुर्हूर्त है। आगे-आगे संख्यात गुणा है। ↓	१ अंतर्मुहूर्त = १ अंत.	कुल त्रियोगी जीव / त्रियोगी का कुल काल ×१ अंत.
असत्य मनोयोग		१ अंत. × ४ = ४ अंत.	कुल त्रियोगी / ८५ अंत. × १७०१ ×४ अंत.
उभय मनोयोग		४ अंत. × ४ = १६ अंत.	उपर्युक्त क्रम से सभी में:- कुल त्रियोगी जीव / त्रियोगी का कुल काल × अपने अपने योग का काल
अनुभय मनोयोग		१६ अंत. × ४ = ६४ अंत.	
सामान्य मनोयोग (उपर्युक्त चारों का जोड़)		(A) = ८५ अंत.	
सत्य वचनयोग		८५अंत.×४ =८५× ४अंत.	
असत्य वचनयोग		८५अंत.×४×४=८५×१६अंत.	
उभय वचनयोग		८५अंत.×१६×४=८५×६४अंत.	
अनुभय वचनयोग		८५अंत.×६४×४=८५×२५६अंत.	
सामान्य वचनयोग (उपर्युक्त चारों का जोड़)		(B) = ८५ × ३४० अंत.	
काययोग		८५ अंत. × ३४० × ४ (C) = ८५ × १३६० अंत.	
त्रियोगी का कुल काल		=८५(१+३४०+१३६०)अंत. = ८५ × १७०१ अंत. (A) + (B) + (C)	

द्वियोगी जीवों का वचनयोग और काययोग में विभाजन

"माना ⟶ संख्यात = ४"

योग	काल	जीवों की संख्या
		$\frac{\text{कुल द्वियोगी जीव}}{\text{कुल काल}}$ × अपने-अपने योग का काल
अनुभय वचनयोग	१ अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{द्वियोगी जीव}}{\text{५ अंत.}}$ × १ अंत.
काययोग	१ अंत. × ४ (वचनयोग से संख्यात गुणा)	$\frac{\text{द्वियोगी जीव}}{\text{५ अंत.}}$ × ४ अंत.
कुल काल	**५ अंतर्मुहूर्त**	

कम्मोरालियमिस्सयओरालद्धासु संचिदअणंता।
कम्मोरालियमिस्सयओरालियजोगिणो जीवा।।२६४।।
समयत्तयसंखावलिसंखगुणावलिसमासहिदरासी।
सगगुणगुणिदे थोवो असंखसंखाहदो कमसो।।२६५।।

अर्थ – कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग तथा औदारिककाययोग के समय में एकत्रित होनेवाले कार्मणयोगी, औदारिकमिश्रयोगी तथा औदारिककाययोगी जीव अनंतानन्त हैं ।।२६४।।

अर्थ – कार्मणकाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग एवं औदारिककाययोग का काल क्रमश: तीन समय, संख्यात आवली एवं संख्यात गुणित (औदारिकमिश्र के काल से) आवली हैं। इन तीनों को जोड़ देने से जो समयों का प्रमाण हो उसका एक योगिजीवराशि में भाग देने से लब्ध एक भाग के साथ कार्मणकाल का गुणा करने पर कार्मण काययोगी जीवों का प्रमाण निकलता है। इस ही प्रकार उसी एक भाग के साथ औदारिकमिश्रकाल तथा औदारिककाल का गुणा करने पर औदारिकमिश्रकाययोगी और औदारिककाययोगी जीवों का प्रमाण होता है।।२६५।।

एकयोगी जीवों का विभाजन

योग	काल	जीवों की संख्या (सामान्य से सभी अनंतानंत)
कार्मण	३ समय	$\frac{\text{कुल एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ ३ समय
औदा. मिश्र	संख्यात आवली = अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ अंतर्मुहूर्त
औदारिक	औदारिक मिश्र काल × संख्यात = संख्यात अंतर्मुहूर्त	$\frac{\text{एकयोगी जीव}}{\text{कुल काल}} \times$ सं. अंतर्मुहूर्त
कुल काल	**३ समय + सं. आवली + सं. अंतर्मुहूर्त**	
कार्मण	***<*** ***औदारिक मिश्र*** ***<*** ***औदारिक***	
	असं. गुणा ***संख्यात गुणा***	

सोवक्कमाणुवक्कमकालो संखेज्जवासठिदिवाणे।
आवलिअसंखभागो संखेज्जावलिपमा कमसो।।२६६।।
तहिं सव्वे सुद्धसला सोवक्कमकालदो दु संखगुणा।
तत्तो संखगुणूणा अपुण्णकालम्हि सुद्धसला।।२६७।
तं सुद्धसलागाहिदणियरासिमपुण्णकाललद्धाहिं।
सुद्धसलागाहिं गुणे वेंतरवेगुव्वमिस्सा हु।।२६८।।
तहिं सेसदेवणारयमिस्सजुदे सव्वमिस्सवेगुव्वं।
सुरणिरयकायजोगा, वेगुव्वियकायजोगा हु।।२६९।।

अर्थ – संख्यात वर्ष की स्थिति वाले उसमें भी प्रधानतया जघन्य दश हजार वर्ष की स्थिति वाले व्यन्तर देवों का सोपक्रम तथा अनुपक्रम काल क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग और संख्यात आवली प्रमाण है ।।२६६।।

अर्थ – जघन्य दश हजार वर्ष की स्थिति में अनुपक्रम काल को छोड़कर पर्याप्त तथा अपर्याप्त काल सम्बंधी शुद्ध उपक्रम काल की शलाकाओं का प्रमाण सोपक्रमकाल के प्रमाण से संख्यात गुणा है और इससे संख्यातगुणा कम अपर्याप्तकाल सम्बंधी शुद्ध उपक्रमकाल की शलाकाओं का प्रमाण है ।।२६७।

अर्थ – पूर्वोक्त व्यन्तर देवों के प्रमाण में उपर्युक्त सर्व काल सम्बंधी शुद्ध उपक्रम शलाका प्रमाण का भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अपर्याप्त-काल-सम्बंधी शुद्ध उपक्रम शलाका के साथ गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतने ही वैक्रियिकमिश्रयोग के धारक व्यन्तर देव समझने चाहिये ।।२६८।।

अर्थ – वैक्रियिकमिश्रकाययोग के धारक उक्त व्यन्तरों के प्रमाण में शेष भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक और नारकियों के मिश्रकाययोगवालों का प्रमाण मिलाने से सम्पूर्ण वैक्रियिक मिश्र काययोगवालों का प्रमाण होता है और देव तथा नारकियों के काययोगवालों का प्रमाण मिलने से समस्त वैक्रियिक काययोगवालों का प्रमाण होता है ।।२६९।।

वैक्रियिक मिश्र काययोगी जीवों की संख्या निकालने की विधि :-

उपक्रम - अनुपक्रम काल		
संख्यात वर्ष (१०,००० वर्ष) की आयु वाले व्यंतरों में –		
उपक्रम काल	निरंतर उत्पत्ति सहित काल	$= \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$
अनुपक्रम काल	उत्पत्ति रहित (अंतर)काल	= १२ मुहूर्त = सं. आवली

१ मिश्र शलाका का काल	$= \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ + १२ मुहूर्त

१०,००० वर्ष में कुल मिश्र शलाकाएँ	$= \frac{१०,००० \text{ वर्ष}}{(\text{आवली}/\text{असंख्यात}) + १२ \text{ मुहूर्त}}$
	= कुछ कम संख्यात गुणा संख्यात

१०,००० वर्ष में शुद्ध उपक्रम शलाका का काल	=कुल मिश्र शलाका×एक शुद्ध उपक्रम शलाका का काल
	= कुछ कम संख्यात गुणित संख्यात × आवली/असं.

अपर्याप्त काल (अन्तर्मुहूर्त) संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल	$= \text{कुछ कम संख्यात गुणित संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \frac{\text{अंतर्मुहूर्त}}{१०,००० \text{ वर्ष}}$
	$= \text{कुछ कम संख्यात} \times \text{संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}} \times \text{संख्यात आवली}$ $\text{संख्यात} \times \text{संख्यात आवली}$
	$= \text{कुछ कम संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$

अपर्याप्त काल में उत्पन्न होने वाले व्यंतर, अर्थात् वैक्रियिक मिश्र कायोग स्थित व्यंतर
= एक समय में उत्पन्न होने वाले व्यंतर × अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम काल
= $\frac{\text{कुल व्यंतर}}{\text{१०,००० वर्ष संबंधी शुद्ध उपक्रम शलाका का काल}}$ × अपर्याप्त काल संबंधी शुद्ध उपक्रम काल
= $\frac{\text{कुल व्यंतर}}{\text{कुछ कम संख्यात} \times \text{संख्यात} \times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}}$ × कुछ कम संख्यात × आवली/असं.
= कुल व्यंतर/संख्यात

सर्व वैक्रियिक मिश्र कायोग के धारक जीव	= वैक्रियिक मिश्र काययोग के धारक व्यंतर + वैक्रियिक मिश्रकाययोग के धारक अवशेष भवनवासी, ज्योतिषी, वैमानिक एवं सर्व नारकी
नोट – एक समय में सबसे अधिक व्यंतर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनकी मुख्यता से वैक्रियिक मिश्रयोगी जीवों का प्रमाण बतलाया है।	

वैक्रियिक काय योगी जीव

= काययोग के धारक देव और नारकी
= त्रियोगी में काययोगी – औदारिक एवं आहारक काययोगी

आहारकायजोगा, चउवण्णं होंति एकसमयम्हि।
आहारमिस्सजोगा, सत्तावीसा दु उक्कस्सं।।२७०।।

अर्थ – एक समय में आहारककाययोग वाले जीव अधिक से अधिक चौवन होते हैं और आहारकमिश्रयोग वाले जीव अधिक से अधिक सत्ताईस होते हैं। यहाँ पर जो 'एक समय में' तथा 'उत्कृष्ट शब्द' है, वह मध्यदीपक है ।।२७०।।

आहारक और आहारक मिश्र - उत्कृष्ट संख्या

योग	संख्या
आहारक	५४
आहारक मिश्र	२७

अधिकार १० - वेदमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
वेद एवं उसके भेद, भेदों का स्वरूप एवं वेदरहित जीव	२७१-२७६	६	१३१
संख्या	२७७-२८१	५	१३४
कुल गाथाएँ		**११**	

पुरिसिच्छिसंढवेदोदयेण पुरिसिच्छिसंढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा।।२७१।।
वेदस्सुदीरणाए, परिणामस्स य हवेज्ज संमोहो।
संमोहेण ण जाणदि, जीवो हि गुणं व दोषं वा।।२७२।।

अर्थ - पुरुष, स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भावपुरुष, भावस्त्री और भावनपुंसक होता है, और नामकर्म के उदय से द्रव्यपुरुष, द्रव्यस्त्री, द्रव्यनपुंसक होता है। सो यह भाववेद और द्रव्यवेद प्राय: करके समान होता है, परन्तु कहीं-कहीं विषम भी होता है ।।२७१।।

अर्थ - वेद नोकषाय के तीव्र उदय तथा उदीरणा होने से जीव के परिणामों में बड़ा भारी मोह उत्पन्न होता है और इस संमोह के होने से यह जीव गुण अथवा दोष को नहीं जानता ।।२७२।।

वेद

	भाव वेद	द्रव्य वेद
कर्म	वेद नोकषाय का उदय या उदीरणा	निर्माण और अंगोपांग नामकर्म का उदय
स्वरूप	* जीव के तीव्र मोह से उत्पन्न स्त्री/पुरुष/नपुंसक भावरूप परिणाम * जिससे गुण-दोष का विचार नहीं रहता है	* पुरुष/स्त्री/नपुंसक के शरीर का आकार * मूँछ, दाढ़ी, स्तन, योनि आदि चिह्न सहित/रहित शरीर
पर्याय	जीव की पर्याय	पुद्गल (शरीर) की पर्याय
गुणस्थान	तीनों वेद - नवें गुणस्थान तक	* पुरुष वेद - चौदहवें गुणस्थान तक * स्त्री, नपुंसक - पाँचवें गुणस्थान तक

किन जीवों के कौन-सा वेद होता है

देखिये गाथा ९३ का चार्ट

द्रव्य व भाव वेद में समता-विषमता किन जीवों के

समता (नियम से जो द्रव्यवेद वही भाववेद)	विषमता (द्रव्यवेद से भाववेद भिन्न भी हो सकता है)
✲ देव ✲ नारकी ✲ भोगभूमिया – मनुष्य – तिर्यंच	✲ कर्मभूमिया गर्भज – मनुष्य – तिर्यंच
✲ एकेन्द्रिय एवं विकलेन्द्रिय तिर्यंच ✲ सम्मूर्छन मनुष्य एवं तिर्यंच	*नोट – जहाँ तीनों वेद पाये जाते हैं वही वेद विषमता होती है।*

पुरुगुणभोगे सेदे, करेदि लोयम्मि पुरुगुणं कम्मं।
पुरुउत्तमो य जम्हा, तम्हा सो वण्णिओ पुरिसो।।२७३।।
छादयदि सयं दोसे, णयदो छाददि परं वि दोसेण।
छादणसीला जम्हा, तम्हा सा वण्णिया इत्थी।।२७४।।
णेवित्थी णेव पुमं, णउंसओ उहयलिंगवदिरित्तो।
इट्ठावग्गिसमाणगवेदणगरुओ कलुसचित्तो।।२७५।।

अर्थ – उत्कृष्ट गुण अथवा उत्कृष्ट भोगों का जो स्वामी हो, अथवा जो लोक में उत्कृष्ट गुणयुक्त कर्म को करे, अथवा जो स्वयं उत्तम हो उसको पुरुष कहते हैं ।।२७३।।

अर्थ – जो मिथ्यादर्शन, अज्ञान, असंयम आदि दोषों से अपने को आच्छादित करे और मृदु भाषण, तिरछी चितवन आदि व्यापार से जो दूसरे पुरुषों को भी हिंसा, अब्रह्म आदि दोषों से आच्छादित करे, उसको आच्छादन-स्वभावयुक्त होने से स्त्री कहते हैं ।।२७४।।

अर्थ – जो न स्त्री हो और न पुरुष हो ऐसे दोनों ही लिंगों से रहित जीव को नपुंसक कहते हैं। यह अवा (भट्ठा) में पकती हुई ईंट की अग्नि के समान तीव्र कामवेदना से पीड़ित होने से प्रतिसमय कलुषितचित्त रहता है ।।२७५।।

वेद

	पुरुष	स्त्री	नपुंसक
सामान्य स्वरूप	स्त्री के साथ रमण की इच्छा	पुरुष के साथ रमण की इच्छा	युगपत् दोनों (स्त्री, पुरुष) के साथ रमण की इच्छा
निरुक्ति अर्थ	* उत्कृष्ट सम्यग्ज्ञानादि गुणों का स्वामी * उत्कृष्ट इन्द्रादिक भोगों का भोक्ता * धर्म,अर्थ,काम, मोक्षरूप पुरुषार्थ करे * उत्तम परमेष्ठी के पद में स्थित	* मिथ्यादर्शन, अज्ञान असंयम से स्वयं को * मृदुभाषण, तिरछी चितवन से दूसरों को वशकर हिंसादि पापरूप दोषों से आच्छादित करे (ढके)	स्त्री-पुरुष दोनों के चिह्नों से रहित तीव्र काम पीड़ा से भरा हुआ
कषाय की तीव्रता के दृष्टांत	तृण (तिनके) की अग्नि	कारीष (कंडे) की अग्नि	अवा (भट्टे) में पकती हुई ईंट की अग्नि

तिणकारिसिट्ठपागग्गिसरिसपरिणामवेदणुम्मुक्का।
अवगयवेदा जीवा, सगसंभवणंतवरसोक्खा।।२७६।।

अर्थ - तृण की अग्नि, कारीष अग्नि, इष्टपाक अग्नि (अवा की अग्नि) के समान वेद के परिणामों से रहित जीवों को अपगतवेद कहते हैं। ये जीव अपनी आत्मा से ही उत्पन्न होने वाले अनंत और सर्वोत्कृष्ट सुख को भोगते हैं ।।२७६।।

अपगत वेदी (वेदरहित)

- उपर्युक्त तीन प्रकार की कामवेदनारूप संक्लेशरहित
- अपनी आत्मा से उत्पन्न अनाकुल अनंत सर्वोत्कृष्ट सुख के भोक्ता
- नवें गुणस्थान के अपगतवेद भाग से गुणस्थानातीत सिद्ध तक

जोइसियवाणजोणिणितिरिवक्खपुरुसा य सण्णिणो जीवा।
तत्तेउपम्मलेस्सा, संखगुणूणा कमेणेदे।।२७७।।

अर्थ - ज्योतिषी, व्यंतर, योनिनी तिर्यंच, तिर्यक् पुरुष, संज्ञी तिर्यंच, तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंच तथा पद्मलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंच जीव क्रम से उत्तरोत्तर संख्यातगुणे-संख्यातगुणे हीन हैं ।।२७७।।

वेद मार्गणा - संख्या

क्र.	जीव	संख्या
१	ज्योतिषी >	जगतप्रतर/(२५६ अंगुल)^2
२	व्यंतर >	उत्तरोत्तर सभी राशियाँ संख्यातगुणा-संख्यातगुणा हीन हैं ↓
३	योनिनी तिर्यंच >	
४	पुरुष तिर्यंच >	
५	संज्ञी तिर्यंच >	
६	पीत लेश्या वाले संज्ञी तिर्यंच >	
७	पद्म लेश्या वाले संज्ञी तिर्यंच	

इगिपुरिसे बत्तीसं, देवी तज्जोगभजिददेवोघे।
सगगुणगारेण गुणे, पुरुसा महिला य देवेसु।।२७८।।

अर्थ - देवगति में एक देव की कम-से-कम बत्तीस देवियाँ होती हैं। इसलिये देव और देवियों के जोड़रूप तेतीस का समस्त देवराशि में भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अपने-अपने गुणाकार के साथ गुणा करने से देव और देवियों का प्रमाण निकलता है ।।२७८।।

देव-देवियों की संख्या विभाजन

देव	$\frac{\text{कुल देव}}{३३} \times १$	क्योंकि अधिकतर देवों के ३२ देवियाँ होती हैं (इसलिये ३२ + १ देव = ३३)
देवियाँ	$\frac{\text{कुल देव}}{३३} \times ३२$	

देवेंहि सादिरेया, पुरिसा देवीहिं साहिया इत्थी।
तेहिं विहीण सवेदो, रासी संढाण परिमाणं।।२७९।।

अर्थ – देवों से कुछ अधिक मनुष्य और तिर्यग्गति सहित पुरुषवेदवालों का प्रमाण है और देवियों से कुछ अधिक, मनुष्य तथा तिर्यग्गति सहित स्त्रीवेदवालों का प्रमाण है। सवेद राशि में से पुरुषवेद तथा स्त्रीवेद का प्रमाण घटाने से जो शेष रहे वह नपुंसकवेदियों का प्रमाण है ।।२७९।।

तीनों वेद वालों की संख्या

पुरुष वेद	देवों से कुछ अधिक	असंख्यात
स्त्री वेद	देवियों से कुछ अधिक	असंख्यात
नपुंसक वेद	कुल सवेद राशि– (पुरुष और स्त्री वेदी)	अनंत
पुरुष वेद < *संख्यात गुणा*	*स्त्री वेद* < *अनंत गुणा*	*नपुंसक वेद*

गब्भणपुइत्थिसण्णी, सम्मुच्छणसण्णिपुण्णगा इदरा।
कुरुजा असण्णिगब्भजणपुइत्थीवाणजोइसिया।।२८०।।
थोवा तिसु संखगुणा, तत्तो आवलिअसंखभागगुणा।
पल्लासंखेज्जगुणा, तत्तो सव्वत्थ संखगुणा।।२८१।।

अर्थ – १–२–३ गर्भज संज्ञी नपुंसक, पुल्लिंगी तथा स्त्रीलिंगी, ४–५ सम्मूर्च्छन संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त, ६ भोगभूमिया, ७–८–९ असंज्ञी गर्भज नपुंसक, पुल्लिंगी तथा स्त्रीलिंगी तथा १० व्यंतर और ११ ज्योतिषी – इन ग्यारह स्थानों को क्रम से स्थापन करना चाहिये। जिसमें पहला स्थान सबसे स्तोक है, और उससे आगे के तीन स्थान संख्यातगुणे–संख्यातगुणे हैं। पाँचवाँ स्थान आवली के असंख्यातवें भाग गुणा है। छठा स्थान पल्य के असंख्यातवें भागगुणा है। इससे आगे के पाँचों ही स्थान क्रम से संख्यातगुणे–संख्यातगुणे हैं ।।२८०–२८१।।

वेद संबंधी कुछ अन्य राशियों की आपस में तुलना(अल्पबहुत्व)

पूर्व-पूर्व की राशि से आगे-आगे की राशि अधिक है -

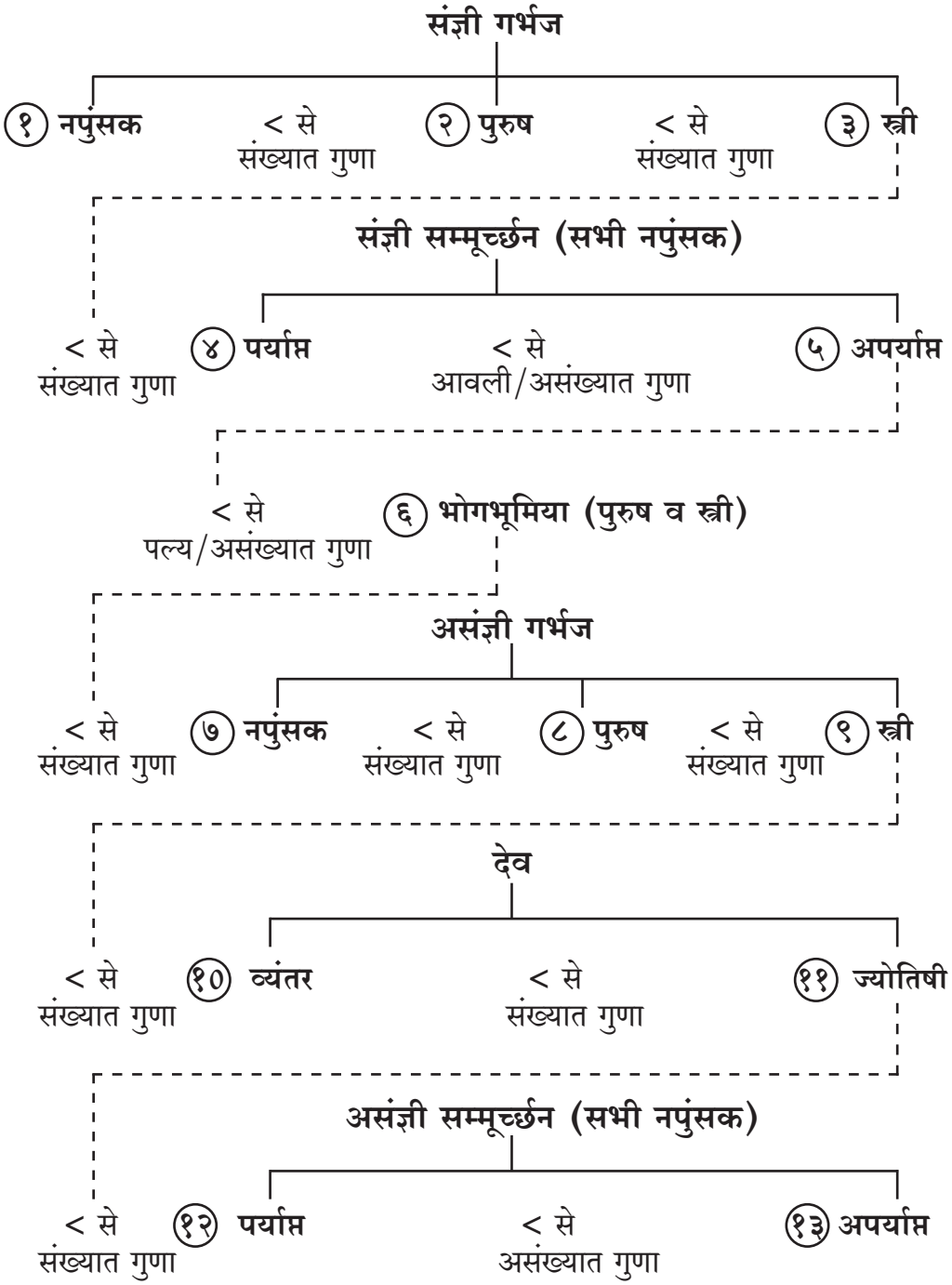

अधिकार ११ - कषायमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
कषाय एवं उसके भेद-प्रभेद	२८२-२८३	२	१३७
क्रोधादि ४ कषायों के शक्तिभेद के दृष्टांत	२८४-२८७	४	१३८
४ गतियों में उत्पत्ति के प्रथम समय में कौनसी कषाय का उदय	२८८	१	१३९
अकषायी जीव	२८९	१	१४०
कषायों के शक्तिस्थान, लेश्यास्थान एवं आयुबंधाबंध स्थान	२९०-२९५	६	१४०
संख्या	२९६-२९८	३	१४३
कुल गाथाएँ		**१७**	

सुहदुक्खसुबहुसस्सं, कम्मक्खेत्तं कसेदि जीवस्स।
संसारदूरमेरं, तेण कसाओ त्ति णं वेंति।।२८२।।

अर्थ - जीव के सुख-दुःखरूप अनेक प्रकार के धान्य को उत्पन्न करनेवाले तथा जिसकी संसाररूप मर्यादा अत्यन्त दूर है ऐसे कर्मरूपी क्षेत्र (खेत) का यह कर्षण करता है, इसलिये इसको कषाय कहते हैं ।।२८२।।

कषाय

जैसे -	किसान	हलादिक से	खेत को	संवारता है
वैसे ही -	जीव	क्रोधादिक कषाय से	अनादि अनंत पंच परावर्तन रूप संसार जिसकी सीमा है ऐसे कर्मक्षेत्र को	अनेक प्रकार के सुख-दुःखरूप फल उत्पन्न करने योग्य करता है

सम्मत्तदेससयलचरित्तजहक्खादचरणपरिणामे।
घादंति वा कसाया, चउसोल असंखलोगमिदा।।२८३।।

अर्थ - सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यातचारित्ररूपी परिणामों को जो कषे-घाते-न होने दे, उसको कषाय कहते हैं। इसके अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन - इस प्रकार चार भेद हैं। अनंतानुबंधी आदि चारों के क्रोध, मान, माया, लोभ इस तरह चार-चार भेद होने से कषाय के उत्तर भेद सोलह होते हैं, किन्तु कषाय के उदयस्थानों की अपेक्षा से असंख्यात लोकप्रमाण भेद हैं ।।२८३।।

कषाय के भेद

सामान्य से	१
विशेष से	४ – अनंतानुबन्धी आदि
क्रोधादि चौकड़ी अपेक्षा	१६
चौकड़ी नोकषाय सहित	२५
उदयस्थान के विशेष की अपेक्षा	असंख्यात लोकप्रमाण

अनंतानुबन्धी आदि ४ भेद

क्रोध **मान** **माया** **लोभ**

अनंतानुबन्धी	**अप्रत्याख्यानावरण**	**प्रत्याख्यानावरण**	**संज्वलन**
❊ तत्त्वार्थश्रद्धानरूप सम्यक्त्व	❊ देशचारित्र	❊ सकलचारित्र	❊ यथाख्यातचारित्र
← का घात हो →			
❊ अनंत संसार(मिथ्यात्व) के साथ बँधे	❊ किंचित् त्याग न होने दे	❊ पूर्ण त्याग न होने दे	❊ जो संयम के साथ प्रज्वलित रहे

सिलपुढविभेदधूलीजलराइसमाणओ हवे कोहो।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो।।२८४।।
सेलट्ठिकट्ठवेत्ते, णियभेएणणुहरंतओ माणो।
णारयतिरियणरामरगईसु उप्पायओ कमसो।।२८५।।
वेणुवमूलोरब्भयसिंगे गोमुत्तए य खोरप्पे।
सरिसी माया णारयतिरियणरामरगईसु खिवदि जियं।।२८६।।
किमिरायचक्कतणुमलहरिद्दराएण सरिसओ लोहो।
णारयतिरिक्खमाणुसदेवेसुप्पायओ कमसो।।२८७।।

अर्थ – शिलाभेद, पृथ्वीभेद, धूलिरेखा और जलरेखा के समान उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, अजघन्य और जघन्य शक्ति से विशिष्ट क्रोध कषाय जीव को क्रम से नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में उत्पन्न कराती हैं।।२८४।।

अर्थ – मान भी चार प्रकार का होता है। पत्थर के समान, हड्डी के समान, काठ के समान तथा बेंत के समान। ये चार प्रकार के मान भी क्रम से नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवगति के उत्पादक हैं।।२८५।।

अर्थ – बाँस की जड़, मेढ़े के सींग, गोमूत्र तथा खुरपा के समान उत्कृष्ट आदि शक्ति से युक्त माया जीव को यथाक्रम नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में उत्पन्न कराती हैं।।२८६।।

अर्थ – कृमिराग, चक्रमल, शरीरमल और हल्दी के रंग के समान उत्कृष्ट आदि शक्ति से युक्त विषयों की अभिलाषारूप लोभ कषाय क्रम से जीव को नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में उत्पन्न कराती हैं।।२८७।।

कषायों के उत्कृष्ट-जघन्य स्थान के दृष्टांत

	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	अजघन्य	जघन्य
क्रोध	शिला भेद	पृथ्वी भेद	धूलि रेखा	जल रेखा
मान	शैल	अस्थि	काष्ठ	बेंत
माया	बाँस की जड़	मेढ़े का सींग	गोमूत्र	खुरपा
लोभ	किरमिची रंग	चक्रमल	शरीर का मैल	हल्दी का रंग
किस गति में उत्पन्न करती है	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव

णारयतिरिक्खिणरसुरगईसु उप्पण्णपढमकालम्हि।
कोहो माया माणो लोहुदओ अणियमो वापि।।२८८।।

अर्थ – नरक, तिर्यंच, मनुष्य तथा देवगति में उत्पन्न होने के प्रथम समय में क्रम से क्रोध, माया, मान और लोभ का उदय होता है। अथवा यह नियम नहीं भी है।।२८८।।

४ गति में उत्पत्ति के प्रथम समय में कषाय

	नरक	तिर्यंच	मनुष्य	देव
द्वितीय सिद्धांत – कषायप्राभृत के कर्ता यतिवृषभाचार्य अनुसार	क्रोध	माया	मान	लोभ
प्रथम सिद्धांत – महाकर्मप्रकृतिप्राभृत के कर्ता भूतबलि आचार्य अनुसार	नियम नहीं – कोई भी कषाय का उदय संभव है			

अप्पपरोभयबाधणबंधासंजमणिमित्तकोहादी।
जेसिं णत्थि कसाया अमला अकसाइणो जीवा।।२८९।।

अर्थ – जिनके स्वयं को, दूसरे को तथा दोनों को ही बाधा देने और बन्धन करने तथा असंयम करने में निमित्तभूत क्रोधादिक कषाय नहीं है तथा जो बाह्य और अभ्यन्तर मल से रहित हैं ऐसे सिद्ध परमेष्ठी अकषायी जानना।।२८९।।

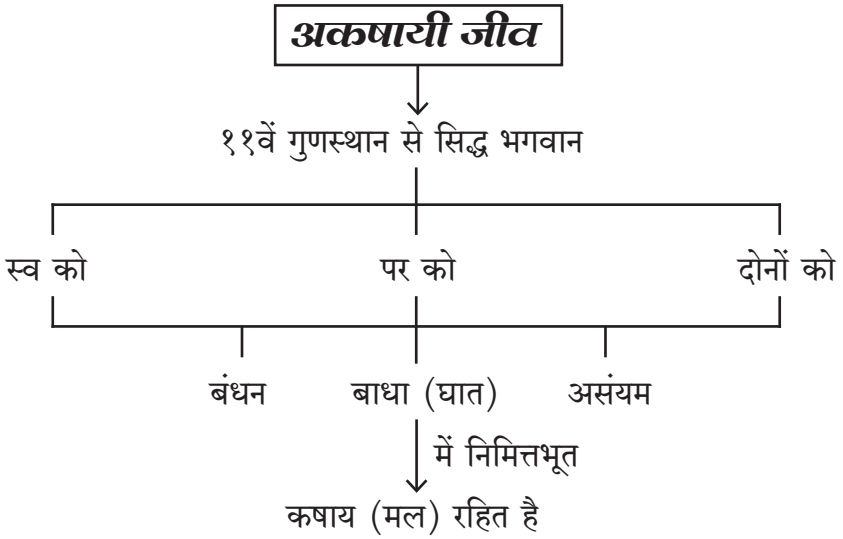

कोहादिकसायाणं, चउ चउदस वीस होंति पद संखा।
सत्तीलेस्साआउगबंधाबंधगदभेदेहिं।।२९०।।
सिलसेलवेणुमूलक्किमिरायादी कमेण चत्तारि।
कोहादिकसायाणं सत्तिं पडि होंति णियमेण।।२९१।।
किण्हं सिलासमाणे, किण्हादी छक्कमेण भूमिम्हि।
छक्कादी सुक्को त्ति य, धूलिम्मि जलम्मि सुक्केक्का।।२९२।।
सेलगकिण्हे सुण्णं, णिरयं च य भूगएगविट्ठाणे।
णिरयं इगिविंतिआऊ तिट्ठाणे चारि सेसपदे।।२९३।।
धूलिगछक्कट्ठाणे, चउराऊतिगदुगं च उवरिल्लं।
पणचदुठाणे देवं, देवं सुण्णं च तिट्ठाणे।।२९४।।
सुण्णं दुगइगिठाणे, जलम्हि सुण्णं असंखभजिदकमा।
चउचोदसवीसपदा, असंखलोगा हु पत्तेयं।।२९५।।

अर्थ – शक्ति, लेश्या तथा आयु के बंधाबंधगत भेदों की अपेक्षा से क्रोधादि कषायों के क्रम से चार, चौदह और बीस स्थान होते हैं।।२९०।।

अर्थ – शिलाभेद आदि के समान चार प्रकार का क्रोध, शैल आदि के समान चार प्रकार का मान, वेणु (बाँस) मूल आदि के समान चार तरह की माया, क्रिमिराग आदि के समान चार प्रकार का लोभ, इस तरह क्रोधादिक कषायों के उक्त नियम के अनुसार क्रम से शक्ति की अपेक्षा चार-चार स्थान हैं।।२९१।।

अर्थ – शिलासमान क्रोध में केवल कृष्ण लेश्या की अपेक्षा से एक ही स्थान होता है। पृथ्वीसमान क्रोध में कृष्ण आदिक लेश्या की अपेक्षा छह स्थान हैं। धूलिसमान क्रोध में छह लेश्याओं से लेकर शुक्ललेश्या पर्यंत छह स्थान होते हैं और जलसमान क्रोध में केवल एक शुक्ललेश्या ही होती है।।२९२।।

अर्थ – शैलगत कृष्णलेश्या में कुछ स्थान तो ऐसे हैं कि जहाँ पर आयुबंध नहीं होता। इसके अनन्तर कुछ स्थान ऐसे हैं कि जिनमें नरक आयु का बंध होता है। इसके बाद पृथ्वीभेदगत पहले और दूसरे स्थान में नरक आयु का ही बंध होता है। इसके भी बाद कृष्ण, नील, कापोत लेश्या के तीसरे भेद में (स्थान में) कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ नरक आयु का ही बंध होता है और कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ पर नरक, तिर्यंच दो आयु का बंध हो सकता है तथा कुछ स्थान ऐसे हैं जहाँ पर नरक, तिर्यंच तथा मनुष्य तीनों ही आयु का बंध हो सकता है। शेष के तीन स्थानों में चारों आयु का बंध हो सकता है।।२९३।।

अर्थ – धूलिभेदगत छह लेश्यावाले प्रथम भेद के कुछ स्थानों में चारों आयु का बंध होता है। इसके अनन्तर कुछ स्थानों में नरक आयु को छोड़कर शेष तीन आयु का और कुछ स्थानों में नरक, तिर्यंच को छोड़कर शेष दो आयु का बंध होता है। कृष्णलेश्या को छोड़कर पाँच लेश्या वाले दूसरे स्थान में तथा कृष्ण, नील लेश्या को छोड़कर शेष चार लेश्यावाले तृतीयस्थान में केवल देव आयु का बंध होता है। अंत की तीन लेश्यावाले चौथे भेद के कुछ स्थानों में देवायु का बंध होता है और कुछ स्थानों में आयु का अबंध है।।२९४।।

अर्थ – इसी के (धूलिभेदगत के ही) पद्म और शुक्ललेश्या वाले पाँचवें स्थान में और केवल शुक्ललेश्या वाले छठे स्थान में आयु का अबंध है तथा जलभेदगत केवल शुक्ललेश्यावाले एक स्थान में भी आयु का अबंध है। इसप्रकार कषायों के शक्ति की अपेक्षा चार भेद, लेश्याओं की अपेक्षा चौदह भेद, आयु के बंधाबंध की अपेक्षा बीस भेद होते हैं। इनमें प्रत्येक के अवान्तर भेद असंख्यात लोकप्रमाण हैं तथा अपने-अपने उत्कृष्ट से अपने-अपने जघन्य पर्यन्त क्रम से असंख्यातगुणे-असंख्यातगुणे हीन हैं।।२९५।।

कषायों के शक्तिस्थान, लेश्यास्थान, आयुबंधबंध-स्थान का यंत्र

शक्तिस्थान ४	शिलाभेद समान १	पृथ्वीभेद समान १					धूलिरेखा समान १					जलरेखा समान १
लेश्यास्थान १४	कृष्ण	कृष्ण	कृ. नी.	कृ. नी. का.	कृ. नी. का. पी.	कृ. नी. का. पी. प.	कृष्णादि	कृष्ण बिना	कृष्ण नील बिना	पीतादि	पद्म शुक्ल	शुक्ल
आयुबंधबंध स्थान २०	अबंध	नरकायु	नरकायु	नरकायु	नरकायु	सर्व आयु	सर्व आयु	सर्व आयु	सर्व आयु	सर्व आयु	सर्व आयु	सर्व आयु
	नरकायु	नरकायु	नरकायु	नरक-तिर्यंच आयु	नरक-तिर्यंच-मनुष्य आयु		तिर्यंच-मनुष्य-देव आयु	मनुष्य-देव आयु	देवायु	देवायु	देवायु	देवायु

पुह पुह कसायकालो, णिरये अंतोमुहुत्तपरिणामो।
लोहादी संखगुणो, देवेसु य कोहपहुदीदो।।२९६।।
सव्वसमासेणवहिदसगसगरासी पुणो वि संगुणिदे।
सगसगगुणगारेहिं य सगसगरासीण परिमाणं।।२९७।।
णरतिरिय लोहमायाकोहो माणो विइंदियादिव्व।
आवलिअसंखभज्जा, सगकालं वा समासेज्ज।।२९८।।

अर्थ - नरक में नारकियों के लोभादि कषाय का काल सामान्य से अन्तर्मुहूर्त मात्र होने पर भी पूर्व-पूर्व की अपेक्षा उत्तरोत्तर कषाय का काल पृथक्-पृथक् संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है और देवों में उत्तरोत्तर का संख्यातगुणा-संख्यातगुणा काल है।।२९६।।

अर्थ - अपनी-अपनी गति में सम्भव जीवराशि में समस्त कषायों के उदयकाल के जोड़ का भाग देने से जो लब्ध आवे उसका अपने-अपने गुणाकार से गुणन करने पर अपनी-अपनी राशि का परिमाण निकलता है।।२९७।।

अर्थ - मनुष्य-तिर्यंचों में लोभ, माया, क्रोध और मानवाले जीवों की संख्या जिस प्रकार इन्द्रियमार्गणा में द्वीन्द्रियादि जीवों की संख्या आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दे-देकर ''बहुभागे समभागे'' इत्यादि गाथा द्वारा निकाली थी, उसी प्रकार यहाँ भी निकालना चाहिये। अथवा अपने-अपने काल की अपेक्षा से उक्त कषायवाले जीवों का प्रमाण निकालना चाहिये।।२९८।।

कषाय मार्गणा में जीवों की संख्या

नरक गति में -

माना ⟶ संख्यात = ४

कषाय	काल		जीवों की संख्या
लोभ	* सामान्य से सभी का काल अंतर्मुहूर्त है * आगे-आगे संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है	१ अंतमुहूर्त	$\frac{\text{कुल नारकी}}{\text{कुल काल}}$ × १ अंतर्मुहूर्त
माया		१ अंत. × ४ = ४ अंत.	$\frac{\text{कुल नारकी}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × ४ अंतर्मुहूर्त
मान		४ अंत. × ४ = १६ अंत.	$\frac{\text{कुल नारकी}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × १६ अंतर्मुहूर्त
क्रोध		१६ अंत. × ४ = ६४ अंत.	$\frac{\text{कुल नारकी}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × ६४ अंतर्मुहूर्त
कुल काल	**८५ अंत.**		

देव गति में –

माना ⟶ संख्यात = ४

कषाय	काल		जीवों की संख्या
क्रोध	* सामान्य से सभी का काल अंतर्मुहूर्त * आगे–आगे संख्यातगुणा–संख्यातगुणा है	१ अंतमुहूर्त	$\frac{\text{कुल देव}}{\text{कुल काल}}$ × १ अंतर्मुहूर्त
मान		१ अंत. × ४ = ४ अंत.	$\frac{\text{कुल देव}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × ४ अंतर्मुहूर्त
माया		४ अंत. × ४ = १६ अंत.	$\frac{\text{कुल देव}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × १६ अंतर्मुहूर्त
लोभ		१६ अंत. × ४ = ६४ अंत.	$\frac{\text{कुल देव}}{८५ \text{ अंतर्मुहूर्त}}$ × ६४ अंतर्मुहूर्त
कुल काल	**८५ अंत.**		

मनुष्य और तिर्यंच गति में –

मान लीजिये ⟶ कुल त्रस राशि = २५६
आवली/असं. = ४

$\frac{२५६}{४} = ६४ \longrightarrow २५६ - ६४ = १९२ \longrightarrow \frac{१९२}{४} = ४८$

	लोभ	माया	क्रोध	मान
सम भाग	४८	४८	४८	४८
शेष भाग	+ ४८	+ १२	+ ३	+ १
कुल	९६	६०	५१	४९
	$\frac{६४}{४} = १६$; ६४ − १६ = ४८	$\frac{१६}{४} = ४$; १६ − ४ = १२	$\frac{४}{४} = १$; ४ − १ = ३	१

लोभ > माया > क्रोध > मान

** क्रोध, मान, माया व लोभ में से एक समय में एक का ही उदय होता है परन्तु बंध चारों का होता है।*

** अंतर्मुहूर्त में उदय नियम से बदल जाता है।*

अधिकार १२ - ज्ञानमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
ज्ञान का लक्षण एवं भेद	२९९-३००	२	१४५
मिथ्याज्ञान का कारण एवं स्वामी	३०१	१	१४६
मिश्रज्ञान का कारण एवं मन:पर्ययज्ञान के स्वामी	३०२	१	१४६
मिथ्याज्ञान के विशेष लक्षण	३०३-३०५	३	१४७
मतिज्ञान - स्वरूप, उत्पत्तिकारण, भेद, विषय	३०६-३१४	९	१४९
श्रुतज्ञान - लक्षण, भेद-प्रभेद एवं उनका विस्तारपूर्वक वर्णन	३१५-३६९	५५	१५४
अवधिज्ञान	३७०-४३७	६८	१७६
मन:पर्ययज्ञान	४३८-४५९	२२	२०१
केवलज्ञान	४६०	१	२०८
संख्या	४६१-४६४	४	२०८
कुल गाथाएँ		**१६६**	

जाणइ तिकालविसए, दव्वगुणे पज्जए य बहुभेदे।
पच्चक्खं च परोक्खं, अणेण णाणं ति णं बेंति।।२९९।।

अर्थ - जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक भूत भविष्यत् वर्तमान काल संबंधी समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा उनकी अनेक प्रकार की पर्यायों को जाने उसको ज्ञान कहते हैं। इसके दो भेद हैं - प्रत्यक्ष, परोक्ष।।२९९।।

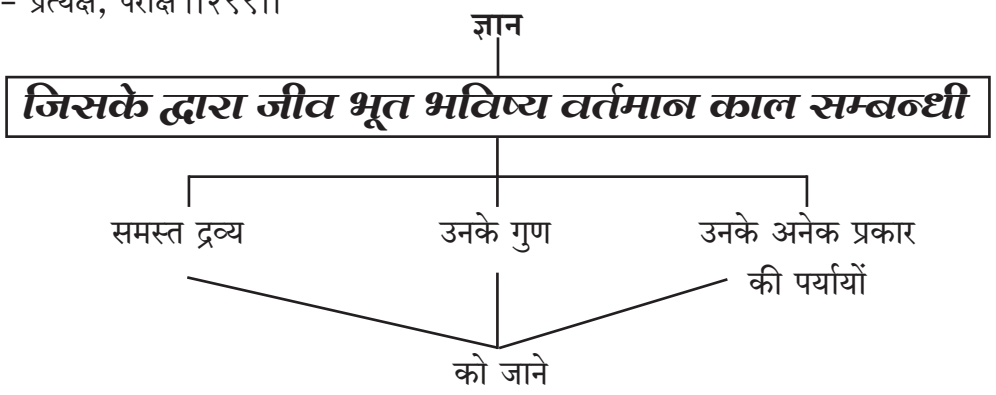

नोट : ज्ञान की पूर्ण विकसित पर्याय का भी यही स्वरूप हैं

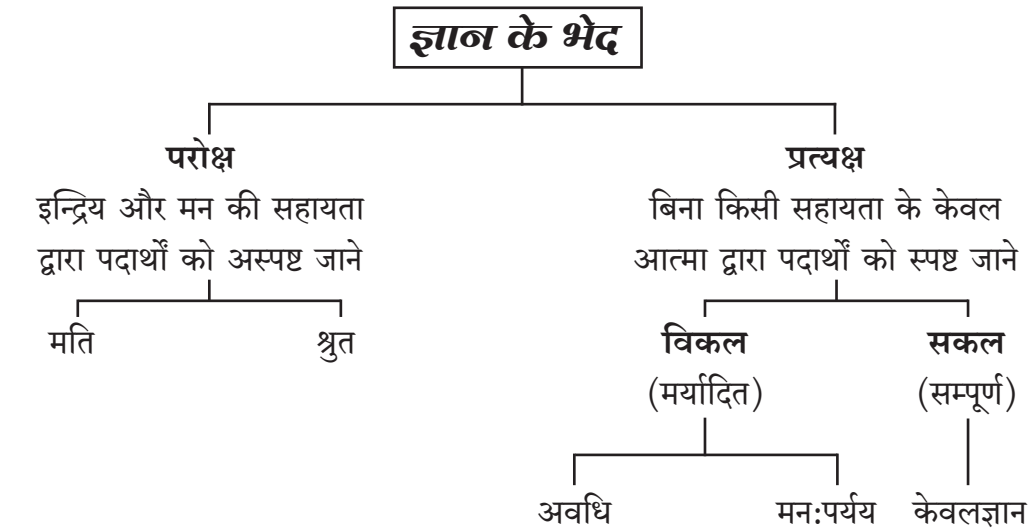

पंचेव होंति णाणा, मदिसुदओहीमणं च केवलयं।
खयउवसमिया चउरो, केवलणाणं हवे खइयं।।३००।।

अर्थ – ज्ञान के पांच भेद हैं – मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय तथा केवल। इनमें आदि के चार ज्ञान क्षायोपशमिक हैं और केवलज्ञान क्षायिक हैं ।।३००।।

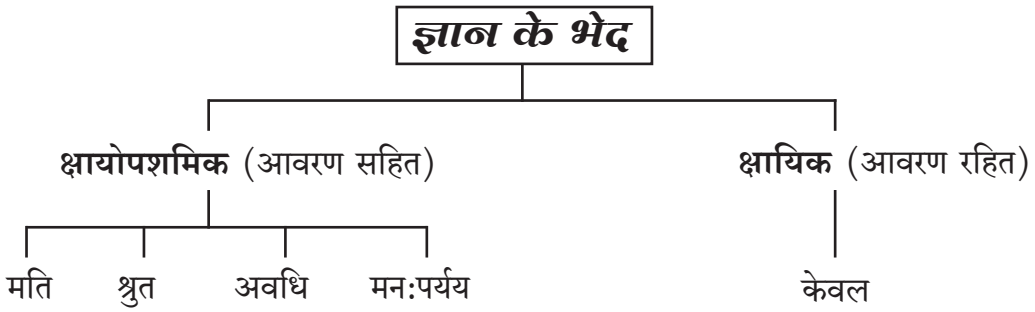

अण्णाणतियं होदि हु, सण्णाणतियं खु मिच्छअणउदये।
णवरि विभंगं णाणं, पंचिंदियसण्णिपुण्णेव।।३०१।।
मिस्सुदये सम्मिस्सं, अण्णाणतियेण णाणतियमेव।
संजमविसेससहिए, मणपज्जवणाणमुद्दिट्ठं।।३०२।।

अर्थ – आदि के तीन (मति, श्रुत, अवधि) ज्ञान समीचीन भी होते हैं और मिथ्या भी होते हैं। ज्ञान के मिथ्या होने का अंतरंग कारण मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषाय का उदय है। मिथ्या अवधि को विभंग भी कहते हैं। इसमें यह विशेषता है कि यह विभंगज्ञान संज्ञी पर्याप्त पंचेन्द्रिय के ही होता है ।।३०१।।

अर्थ – मिश्र प्रकृति के उदय से आदि के तीन ज्ञानों में समीचीनता तथा मिथ्यापना दोनों ही पाये जाते हैं, इसलिये इस तरह के इन तीनों ही ज्ञानों को मिश्रज्ञान कहते हैं। मन:पर्यय ज्ञान जिनके संयम होता है उन्हीं के होता है ।।३०२।।

मति, श्रुत, अवधि ज्ञान के प्रकार

	सम्यक् (समीचीन)	मिथ्या	मिश्र
कारण/ निमित्त	सम्यक् श्रद्धा	मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी का उदय	सम्यक्मिथ्यात्व का उदय
स्वामी	✲ **संज्ञी** - पर्याप्त अथवा -निर्वृत्त्यपर्याप्त	- **कुमति-कुश्रुत** ✲ एकेन्द्रिय से संज्ञी पर्याप्त-अपर्याप्त - **कुअवधि / विभंग** ✲ संज्ञी पर्याप्त	✲ मिश्र गुणस्थानवर्ती
गुणस्थान	४-१४	१-२	३

मन:पर्यय ज्ञान - स्वामी

✲ ६ से १२ गुणस्थानवर्ती महामुनिराज
✲ तप विशेष द्वारा वृद्धिरूप विशुद्धता के धारी

विसजंतकूडपंजरबंधादिसु विणुवएसकरणेण।
जा खलु पवट्टइ मई, मइअण्णाणं ति णं बेंति।।३०३।।
आभीयमासुरक्खं, भारहरामायणादिउवएसा।
तुच्छा असाहणीया, सुयअण्णाणं ति णं बेंति।।३०४।।
विवरीयमोहिणाणं, खओवसमियं च कम्मबीजं च।
वेभंगो त्ति पउच्चइ, समत्तणाणीण समयम्हि।।३०५।।

अर्थ - दूसरे के उपदेश के बिना ही विष यन्त्र कूट पिंजर तथा बंध आदिक के विषय में जो बुद्धि प्रवृत्त होती है उसको मत्यज्ञान कहते हैं ।।३०३।।

अर्थ - चौरशास्त्र, तथा हिंसाशास्त्र, भारत रामायण आदि के परमार्थशून्य अतएव अनादरणीय उपदेशों को मिथ्या श्रुतज्ञान कहते हैं ।।३०४।।

अर्थ - सर्वज्ञों के उपदिष्ट आगम में विपरीत अवधिज्ञान को विभंग कहते हैं। इसके दो भेद हैं-एक क्षायोपशमिक दूसरा भवप्रत्यय ।।३०५।।

मिथ्याज्ञान

✲ सामान्यपने तो मिथ्यादृष्टि का सभी ज्ञान कुमति, कुश्रुत ज्ञान है।
✲ यहाँ कुमति, कुश्रुत का वर्णन उपदेश अपेक्षा किया है।

कुमति/मत्यज्ञान

दूसरे के उपदेश के बिना जो स्वयं ही बुद्धि निम्न विषयों में प्रवृत्त होती है –	
विष	* जिसके खाने से जीव मर जाए
यंत्र	* भीतर पैर रखते ही जिसके किवाड़ बंद हो जाए * जिसके द्वारा बकरी आदि को बाँधकर सिंहादि को पकड़ा जाता है
कूट	* लकड़ी आदि के बने * जिससे चूहे आदि पकड़े जाते हैं
पिंजर	* रस्सी में गाँठ लगाकर जो जाल बनाया जाता है * जिससे हिरण, तीतर आदि पकड़े जाते हैं
बंध	* गड्ढे आदिक बनाना * हाथी आदि को पकड़ने के लिए
नोट – यदि उपरोक्त विषयों में बुद्धि उपदेश द्वारा प्रवृत्त होती है, तो वह कुश्रुतज्ञान है।	

कुश्रुत/मिथ्याश्रुतज्ञान

निम्न प्रकार के परमार्थशून्य अनादरणीय उपदेश

आभीत	**असुरक्ष**	**भारत**	**रामायण**	**आदि**	**तुच्छा**	**असाधनीया**
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
चौरादिक का शास्त्र	चोरों से रक्षा कैसे हो ऐसा राजादि का शास्त्र	पंच भर्तार आदि के विपरीत कथन पाए जाए (महाभारत)	रामजी की वानर सेना, रावण राक्षस आदि इच्छानुसार रचा शास्त्र	हिंसा यज्ञादि के पोषक एकांत शास्त्र	परमार्थ से रहित	प्रमाण करने योग्य नहीं

कुअवधि/विभंगज्ञान

परिभाषा	* द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थ हैं विषय जिसका * ऐसा आप्तादि के विषय में विपरीत ग्रहण	
शब्दार्थ	* वि = विशिष्ट जो अवधिज्ञान * भंग = विपरीत भाव	
निमित्त	अवधिज्ञानावरण, वीर्यान्तराय का क्षयोपशम	
किस का कारण बनता है	* मिथ्यात्वादि कर्मबंध का एवं * कदाचित् नरकादि गति में पूर्वभव सम्बन्धी दुराचार के दुःखफल को जानकर सम्यग्दर्शनादिरूप धर्म का	
भेद	१. भवप्रत्यय	२. गुणप्रत्यय
	* देव, नारकी को	* मनुष्य, तिर्यंच को द्रव्य संयमादिक गुणों द्वारा

अहिमुहणियमियबोहणमाभिणिबोहियमणिंदिइंदियजं।
अवगहईहावायाधारणगा होंति पत्तेयं।।३०६।।

अर्थ – इन्द्रिय और अनिन्द्रिय (मन) की सहायता से अभिमुख और नियमित पदार्थ का जो ज्ञान होता है, उसको आभिनिबोधिक ज्ञान कहते हैं। इसमें प्रत्येक के अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा ये चार-चार भेद हैं ।।३०६।।

मतिज्ञान/आभिनिबोधिक

आभिनिबोधिक = अभि + नि + बोध = अभिमुख + नियमित + ज्ञान
* इन्द्रिय और मन की सहायता के द्वारा * **अभिमुख** (स्थूल, वर्तमान योग्य क्षेत्र में अवस्थित पदार्थ) * **नियमित** (जिस-जिस इन्द्रिय का जो-जो निश्चित विषय जैसे चक्षु का रूप) * पदार्थों को जाने

मतिज्ञान का विषय व ३३६ भेद

व्यंजनावग्रह	१	= ४
× ४ इन्द्रिय (नेत्र को छोड़कर)	× ४	
		+
अर्थावग्रह, ईहा, अवाय, धारणा	४	= २४
× ५ इन्द्रिय + मन	× ६	
		= २८
× १२ प्रकार के पदार्थ		× १२
		३३६

वेंजणअत्थअवग्गहभेदा हु हवंति पत्तपत्तत्थे।
कमसो ते वावरिदा, पढमं ण हि चक्खुमणसाणं।।३०७।।
विसयाणं विसईणं, संजोगाणंतरं हवे णियमा।
अवगहणाणं गहिदे, विसेसकंखा हवे ईहा।।३०८।।
ईहणकरणेण जदा, सुणिण्णओ होदि सो अवाओ दु।
कालांतरे वि णिण्णिदवत्थुसमरणस्स कारणं तुरियं।।३०९।।

अर्थ – अवग्रह के दो भेद हैं – व्यञ्जनावग्रह एवं अर्थावग्रह। जो प्राप्त अर्थ के विषय में होता है, उसको व्यञ्जनावग्रह कहते हैं और जो अप्राप्त अर्थ के विषय में होता है, उसको अर्थावग्रह कहते हैं और ये पहले व्यंजनावग्रह पीछे अर्थावग्रह इस क्रम से होते हैं । तथा व्यंजनावग्रह चक्षु और मन से नहीं होता ।।३०७।।

अर्थ – पदार्थ और इन्द्रियों का योग्य क्षेत्र में अवस्थानरूप सम्बन्ध होने पर सामान्य अवलोकन या निर्विकल्प ग्रहण रूप दर्शन होता है और इसके अनंतर विशेष आकार आदिक को ग्रहण करने वाला अवग्रह ज्ञान होता है। इसके अनंतर जिस पदार्थ को अवग्रह ने ग्रहण किया है, उसीके किसी विशेष अर्थ को जानने की आकांक्षारूप जो ज्ञान, उसको ईहा कहते है ।।३०८।।

अर्थ – ईहा ज्ञान के अनंतर वस्तु के विशेष चिह्नों को देखकर जो उसका विशेष निर्णय होता है, उसको अवाय कहते हैं। जैसे भाषा वेष विन्यास आदि को देखकर ''यह दाक्षिणात्य ही है'' इस तरह के निश्चय को अवाय कहते हैं। जिसके द्वारा निर्णीत वस्तु का कालान्तर में भी विस्मरण न हो उसको धारणाज्ञान कहते हैं ।।३०९।।

अवग्रहादि

	अवग्रह	ईहा	अवाय	धारणा
स्वरूप	सर्वप्रथम जानना	इच्छा-अभिलाषा	निर्णय	भूलना नहीं
कालांतर में		संशय-विस्मरण हो जाता है	संशय तो नहीं, पर विस्मरण होता है	न संशय, न विस्मरण होता है
उदाहरण	कोई सफेद पदार्थ देखा	"ये बगुला है कि पताका" जानने की इच्छा हुई	पंख हिलने से जाना बगुला है	भविष्य में भूले नहीं

ज्ञान की उत्पत्ति का क्रम

चक्षु को छोड़कर शेष चार इन्द्रियाँ	अचक्षुदर्शन ⟶ व्यञ्जनावग्रह ⟶ अर्थावग्रह ⟶ ईहा ⟶ अवाय ⟶ धारणा
चक्षु इन्द्रिय	चक्षुदर्शन ⟶ अर्थावग्रह ⟶ ईहा ⟶ अवाय ⟶ धारणा
मन	अचक्षुदर्शन ⟶ अर्थावग्रह ⟶ ईहा ⟶ अवाय ⟶ धारणा

अवग्रह के भेद

व्यंजनावग्रह	अर्थावग्रह
अव्यक्त – अप्रकट जैसे – नूतन मिट्टी के घड़े पर १-२ पानी की बूंद व्यक्त नहीं	**व्यक्त – प्रकट** अधिक बूंद पड़ने पर व्यक्त
प्राप्त स्पर्श, रस, गंध, शब्द का स्पर्शित होना	**अप्राप्त** स्पर्शित न होना

बहु बहुविहं च खिप्पाणिस्सिदणुत्तं धुवं च इदरं च।
तत्थेक्केक्के जादे, छत्तीसं तिसयभेदं तु।।३१०।।
बहुवत्तिजादिगहणे, बहुबहुविहमियरमियरगहणम्हि।
सगणामादो सिद्धा, खिप्पादी सेदरा य तहा।।३११।।

अर्थ – उक्त मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ के बारह भेद हैं। बहु, अल्प, बहुविध, एकविध या अल्पविध, क्षिप्र, अक्षिप्र, अनि:सृत, नि:सृत, अनुक्त, उक्त, ध्रुव, अध्रुव। इनमें से प्रत्येक विषय में मतिज्ञान के उक्त अट्ठाईस भेदों की प्रवृत्ति होती है, इसलिये बारह को अट्ठाईस से गुणा करने पर मतिज्ञान के तीन सौ छत्तीस भेद होते हैं ।।३१०।।

अर्थ – एक जाति की बहुत सी व्यक्तियों को बहु कहते हैं। अनेक जाति के बहुत पदार्थों

को बहुविध कहते हैं। एक जाति की एक दो व्यक्तियों को अल्प (एक) कहते हैं। एक जाति की अनेक व्यक्तियों को एकविध कहते हैं अथवा दो जातियों के अनेक व्यक्तियों को अल्पविध कहते हैं। क्षिप्रादिक तथा उनके प्रतिपक्षियों का उनके नाम से ही अर्थ सिद्ध हैं ।।३११।।

मतिज्ञान के विषयभूत १२ प्रकार के पदार्थ

क्र.	पदार्थ	स्वरूप	उदाहरण
१	**बहु**	बहुत पदार्थ (संख्या वाचक)	गोरी,सांवली,काली आदि अनेक गाय
२	**बहुविध**	बहुत प्रकार के पदार्थ (प्रकार वाचक)	गाय,भैंस,घोड़ा आदि अनेक जाति
३	**क्षिप्र**	शीघ्र	शीघ्र पड़ती जलधारा या जलप्रवाह
४	**अनि: सृत**	गूढ़	जल में डूबा हाथी
५	**अनुक्त**	बिना कहा	हाथ या शिर के इशारे से बिना कहे 'हाँ' या 'ना' समझना
६	**ध्रुव**	अचल/बहुत काल स्थायी	पर्वतादि
७	**एक**	एक पदार्थ	एक गोरी गाय
८	**एकविध**	एक प्रकार के पदार्थ	गोरी, सांवली, काली आदि गाय (एक जाति – गाय)
९	**अक्षिप्र**	मंद	धीरे चलता कछुआ आदि
१०	**नि:सृत**	प्रकट	जल से निकला हाथी
११	**उक्त**	कहा हुआ	किसी ने कहा ''ये घड़ा है''
१२	**अध्रुव**	चंचल/विनाशीक	क्षणस्थायी बिजली आदि

वत्थुस्स पदेसादो, वत्थुग्गहणं तु वत्थुदेसं वा।
सयलं वा अवलंबिय, अणिस्सिदं अण्णवत्थुगई।।३१२।।
पुक्खरगहणे काले, हत्थिस्स य वदणगवयगहणे वा।
वत्थुंतरचंदस्स य, धेणुस्स य बोहणं च हवे।।३१३।।

अर्थ – वस्तु के एकदेश को देखकर समस्त वस्तु का ज्ञान होना, अथवा वस्तु के एकदेश या पूर्ण वस्तु का ग्रहण करके उसके निमित्त से किसी दूसरी वस्तु के होने वाले ज्ञान को भी अनि:सृत कहते हैं ।।३१२।।

अर्थ – जल में डूबे हुए हस्ती की सूंड को देखकर उसी समय में जलमग्न हस्ती का ज्ञान होना, अथवा मुख को देखकर उस ही समय उससे भिन्न किन्तु उसके सदृश चन्द्रमा का ज्ञान होना, अथवा गवय को देखकर उसके सदृश गौ का ज्ञान होना। इनको अनि:सृत ज्ञान कहते हैं ।।३१३।।

अनि:सृत

वस्तु के एकदेश को देख

- समस्त वस्तु का ज्ञान
- या पूर्ण को देख उसके निमित्त से दूसरी वस्तु का ज्ञान

अनि:सृत- उदाहरण

क्र.	उदाहरण	ज्ञान
१.	जल में डूबे हाथी की सूंड देखकर हाथी का ज्ञान होना	अनुमान
२.	मुख देखकर चन्द्रमा का ज्ञान	स्मृति/प्रत्यभिज्ञान
३.	गवय को देखकर गौ का ज्ञान	स्मृति/प्रत्यभिज्ञान
४.	अन्यथा अनुपपत्ति का ज्ञान – अग्नि नहीं तो धुआँ भी नहीं	तर्क

परोक्ष प्रमाण

- **मतिज्ञान**
  - स्मृति (स्मरण)
  - प्रत्यभिज्ञान (जोड़रूप ज्ञान)
  - तर्क (व्याप्ति का ज्ञान)
  - अनुमान (साधन से साध्य)
  - → विषय → अनि:सृत पदार्थ
- **श्रुतज्ञान** → आगम

एक्कचउक्कं चउ वीसट्ठावीसं च तिप्पडिं किच्चा।
इगिछव्वारसगुणिदे, मदिणाणे होंति ठाणाणि।।३१४।।

अर्थ – मतिज्ञान सामान्य की अपेक्षा एक भेद, अवग्रह ईहा अवाय धारणा की अपेक्षा चार भेद, पाँच इन्द्रिय और छठे मन से अवग्रहादि चार के गुणा करने की अपेक्षा चौबीस भेद, अर्थावग्रह और व्यञ्जनावग्रह दोनों की अपेक्षा से अट्ठाईस भेद मतिज्ञान के होते हैं। इनको क्रम से तीन पंक्तियों में स्थापना करके इनका एक, छह और बारह के साथ यथाक्रम से गुणा करने पर मतिज्ञान के सामान्य, अर्ध और पूर्ण स्थान होते हैं ।।३१४।।

मतिज्ञान के स्थान	सामान्य (पदार्थ)	अर्ध (बहु आदि ६)	पूर्ण (बहु आदि १२)
सामान्य अपेक्षा	१	६	१२
अवग्रहादि अपेक्षा	४	२४	४८
इन्द्रिय और मन अपेक्षा (४ × ६)	२४	१४४	२८८
अर्थावग्रह और व्यंजनावग्रह	२८	१६८	३३६

अत्थादो अत्थंतरमुवलंभंतं भणंति सुदणाणं।
आभिणिबोहियपुव्वं, णियमेणिह सद्दजं पमुहं।।३१५।।
लोगाणमसंखमिदा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
वेरूवछट्ठवग्गपमाणं रूउणमक्खरगं।।३१६।।
पज्जायक्खरपदसंघादं पडिवत्तियाणिजोगं च।
दुगवारपाहुडं च य, पाहुडयं वत्थु पुव्वं च।।३१७।।
तेसिं च समासेहि य, वीसविहं वा हु होदि सुदणाणं।
आवरणस्स वि भेदा, तत्तियमेत्ता हवंति त्ति।।३१८।।

अर्थ – मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ से भिन्न पदार्थ के ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान नियम से मतिज्ञानपूर्वक होता है। इस श्रुतज्ञान के अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक अथवा शब्दजन्य और लिंगजन्य इस तरह से दो भेद हैं, किन्तु इनमें शब्दजन्य श्रुतज्ञान मुख्य है ।।३१५।।

अर्थ – षट्स्थानपतित वृद्धि की अपेक्षा से पर्याय एवं पर्यायसमासरूप अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान के सबसे जघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान पर्यन्त असंख्यात लोकप्रमाण भेद होते हैं। द्विरूपवर्गधारा में छट्ठे वर्ग का जितना प्रमाण है (एकट्ठी) उसमें एक कम करने से जितना प्रमाण बाकी रहे उतना ही अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का प्रमाण है ।।३१६।।

अर्थ – पर्याय, पर्यायसमास, अक्षर, अक्षरसमास, पद, पदसमास, संघात, संघातसमास, प्रतिपत्तिक, प्रतिपत्तिकसमास, अनुयोग, अनुयोगसमास, प्राभृतप्राभृत, प्राभृतप्राभृतसमास, प्राभृत, प्राभृतसमास, वस्तु, वस्तुसमास, पूर्व, पूर्वसमास – इस तरह श्रुतज्ञान के बीस भेद हैं। इस ही लिये श्रुतज्ञानावरण कर्म के भी बीस भेद होते हैं। किन्तु पर्यायावरण कर्म के विषय में कुछ भेद हैं उसको आगे की गाथा में बतावेंगे ।।३१७-३१८।।

श्रुतज्ञान

*** मतिज्ञान के विषयभूत पदार्थ का अवलम्बन कर उससे सम्बन्धित भिन्न पदार्थ का ज्ञान**

*** नियम से मतिज्ञानपूर्वक होता है**

अनक्षरात्मक **अक्षरात्मक**

	अनक्षरात्मक	अक्षरात्मक
	↓	↓
अन्य नाम	**लिंगज**	**शब्दज**
स्वरूप/ उत्पत्ति	लिंग (चिह्न) से उत्पन्न	अक्षर, पद, छंदादि शब्दों से उत्पन्न
स्वामी	एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक	सिर्फ पंचेन्द्रिय
प्रमुखता	इससे कुछ व्यवहार प्रवृत्ति नहीं, इसलिए प्रमुख नहीं	सर्व व्यवहार (लेन-देन, शास्त्र पठनादि) का मूल इसलिए प्रमुख
उदाहरण	शीतल पवन का स्पर्श हुआ :- * शीतल पवन का जानना-मतिज्ञान * ये वायु की प्रवृत्ति वाले को हितकारी नहीं - श्रुतज्ञान	"जीव अस्ति" :- * ऐसा शब्द सुना - मतिज्ञान * जीव पदार्थ का ज्ञान हुआ - श्रुतज्ञान
प्रमाण	असंख्यात लोक प्रमाण (वे असंख्यात लोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि सहित है)	→**अपुनरुक्त अक्षर** = [एकट्ठी - १] = द्विरूपवर्गधारा का छठा स्थान - १ = $\{(२)^{६४} - १\}$ = २० अंक प्रमाण अक्षर →**पुनरुक्त अक्षर** = कुछ अधिक अपुनरुक्त अक्षर
भेद	२ भेद पर्याय — पर्याय समास	१८ भेद अक्षर — अक्षरसमास पद — पदसमास संघात — संघातसमास प्रतिपत्तिक — प्रतिपत्तिकसमास अनुयोग — अनुयोगसमास प्राभृतप्राभृत — प्राभृतप्राभृतसमास प्राभृत — प्राभृतसमास वस्तु — वस्तुसमास पूर्व — पूर्वसमास
	नोट - श्रुतज्ञानावरण के २० भेद है, इसलिए श्रुतज्ञान के भी २० भेद हैं।	

णवरि विसेसं जाणे, सुहमजहण्णं तु पज्जयं णाणं।
पज्जायावरणं पुण, तदणंतरणाणभेदम्हि।।३१९।।
सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि।
हवदि हु सव्वजहण्णं णिच्चुग्घाडं णिरावरणं।।३२०।।
सुहमणिगोदअपज्जत्तगेसु सगसंभवेसु भमिऊण।
चरिमापुण्णतिवक्काणादिमवक्कट्ठियेव हवे।।३२१।।
सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स पढमसमयम्हि।
फासिंदियमदिपुव्वं सुदणाणं लद्धिअक्खरयं।।३२२।।

अर्थ – सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक के जो सबसे जघन्य ज्ञान होता है उसको पर्याय ज्ञान कहते हैं। इसमें विशेषता केवल यही है कि इसके आवरण करनेवाले कर्म के उदय का फल इसमें (पर्याय ज्ञान में) नहीं होता, किन्तु इसके अनन्तर ज्ञान (पर्यायसमास) के प्रथम भेद में ही होता है।।३१९।।

अर्थ – सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय में सबसे जघन्य ज्ञान होता है। इसी को पर्याय ज्ञान कहते हैं। इतना ज्ञान हमेशा निरावरण तथा प्रकाशमान रहता है।।३२०।।

अर्थ – सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के अपने जितने भव (छह हजार बारह) संभव हैं उनमें भ्रमण करके अन्त के अपर्याप्त शरीर को तीन मोड़ाओं के द्वारा ग्रहण करने वाले जीव के प्रथम मोड़ा के समय में यह सर्व जघन्य ज्ञान होता है ।।३२१।।

अर्थ – सूक्ष्मनिगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक जीव के उत्पन्न होने के प्रथम समय में स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षररूप श्रुतज्ञान होता है ।।३२२।।

पर्याय ज्ञान

स्वरूप	सबसे जघन्य श्रुतज्ञान
स्वरूप विशेषता	* नित्य उद्घाटित = सदा काल प्रकट (प्रकाशमान) है * निरावरण = इतने ज्ञान का कभी आच्छादन नहीं होता है
पर्याय आवरण कर्म का फल	* पर्यायज्ञान में नहीं आता * पर्यायसमास के प्रथम भेद को आवृत्त करता है
कितना ज्ञान होता है	स्पर्शन इन्द्रियजन्य मतिज्ञानपूर्वक लब्ध्यक्षररूप श्रुतज्ञान
साथ में पाया जाने वाला ज्ञान–दर्शन	* स्पर्शन इन्द्रियजन्य **जघन्य** मतिज्ञान * **जघन्य** अचक्षुदर्शन
स्वामी	* सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्त जीव * अपर्याप्त के ६०१२ संभव भव में भ्रमण करके * अंत के भव में * तीन मोड़े से जन्म लेने पर * जन्म के प्रथम समय अर्थात् पहले मोड़े में स्थित

अवरुवरिम्मि अणंतमसंखं संखं च भागवड्ढीए।
संखमसंखमणंतं, गुणवड्ढी होंति हु कमेण।।३२३।।

अर्थ – सर्व जघन्य पर्याय ज्ञान के ऊपर क्रम से अनंतभागवृद्धि, असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धि, अनंतगुणवृद्धि –ये छह वृद्धि होती हैं ।।३२३।।

पर्यायसमास

स्वरूप	* पर्यायज्ञान एवं अक्षर ज्ञान के बीच के समस्त भेद * पर्यायज्ञान के ऊपर षट्स्थानपतित वृद्धि होने पर पर्यायसमास ज्ञान के भेद प्राप्त होते हैं
कुल भेद	असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान

षट्स्थानपतित वृद्धि

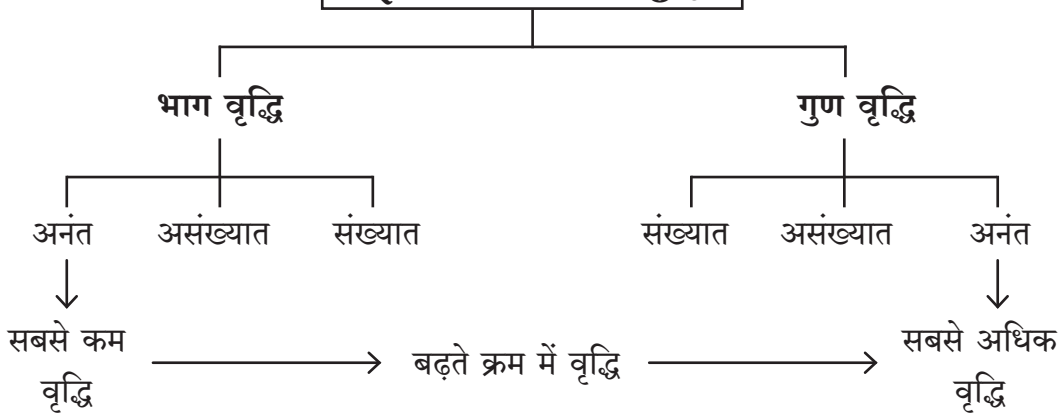

जीवाणं च य रासी, असंखलोगा वरं खु संखेज्जं।
भागगुणम्हि य कमसो, अवट्ठिदा होंति छट्ठाणे।।३२४।।

अर्थ – समस्त जीवराशि, असंख्यात लोकप्रमाण राशि, उत्कृष्ट संख्यात राशि – ये तीन राशि पूर्वोक्त अनंतभागवृद्धि आदि छह स्थानों में भागहार और गुणाकार की क्रम से अवस्थित राशि है ।।३२४।।

भागहार व गुणाकार का प्रमाण

	सिद्धान्त में	दृष्टान्त में(आगे देखें)
अनंत	कुल जीवों की संख्या	१०
असंख्यात	असंख्यात लोकप्रमाण	५
संख्यात	उत्कृष्ट संख्यात	२

उव्वंकं चउरंकं, पणछस्सत्तंक अट्ठअंकं च।
छव्वड्ढीणं सण्णा, कमसो संदिट्ठिकरणट्ठं।।३२५।।

अर्थ – लघुरूप संदृष्टि के लिये क्रम से छह वृद्धियों की ये छह संज्ञाएँ हैं। अनंतभागवृद्धि की उर्वंक, असंख्यातभागवृद्धि की चतुरंक, संख्यातभागवृद्धि की पंचांक, संख्यातगुणवृद्धि की षडंक, असंख्यातगुणवृद्धि की सप्तांक, अनंतगुणवृद्धिकी अष्टांक ।।३२५।।

छह प्रकार की वृद्धियों को समझने के लिए संज्ञा, संकेतचिह्न व दृष्टांत

माना ⟶ मूल राशि = १०००

वृद्धि	संज्ञा	संकेत	दृष्टान्त	
				वृद्धि सहित मूलराशि
अनंतभाग वृद्धि	उर्वंक	उ	$\frac{\text{मूल राशि}}{\text{अनंत}} = \frac{१०००}{१०} = १००$	१०००+१००=११००
असंख्यातभाग वृद्धि	चतुरंक	४	$\frac{\text{मूल राशि}}{\text{असंख्यात}} = \frac{१०००}{५} = २००$	१०००+२००=१२००
संख्यातभाग वृद्धि	पंचांक	५	$\frac{\text{मूल राशि}}{\text{संख्यात}} = \frac{१०००}{२} = ५००$	१०००+५००=१५००
संख्यातगुण वृद्धि	षडंक	६	मूल राशि × संख्यात = १००० × २	= २०००
असंख्यातगुण वृद्धि	सप्तांक	७	मूल राशि × असंख्यात = १००० × ५	= ५०००
अनंतगुण वृद्धि	अष्टांक	८	मूल राशि × अनंत = १००० × १०	= १००००

पर्यायसमास के प्रथमादि भेद निकालने की विधि

अनंतभाग वृद्धि	= पर्याय ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या / अनंत (कुल जीवों की संख्या)	= A
पर्यायसमास ज्ञान के प्रथम भेद के अविभाग प्रतिच्छेदों की संख्या	= पर्याय ज्ञान के अवि. प्रति. + A	
	पर्यायसमास ज्ञान के प्रथम भेद के अवि. प्रति. की संख्या / अनंत	= B
पर्याय ज्ञान का द्वितीय भेद	= पर्यायसमास ज्ञान का प्रथम भेद + B	
इसी क्रम से पूर्व ज्ञान के भेद में वृद्धि करने पर आगे का भेद प्राप्त होगा		

अंगुलअसंखभागे, पुव्वगवड्ढीगदे दु परवड्ढी।
एक्क वारं होदि हु पुणो पुणो चरिमउड्ढित्ती।।३२६।।

अर्थ – सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण पूर्ववृद्धि हो जाने पर एक बार उत्तर वृद्धि होती है। यह नियम अंत की वृद्धि पर्यन्त समझना चाहिये। सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार अनंत भाग वृद्धि हो जाने पर एक बार असंख्यात भाग वृद्धि होती है। इसी क्रम से असंख्यात भाग वृद्धि भी जब सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हो जाए तब सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण अनंत भाग वृद्धि होने पर एक बार संख्यात भाग वृद्धि होती है। इस ही तरह अंत की वृद्धि पर्यन्त जानना ।।३२६।।

वृद्धि के क्रम को समझने के लिये संकेतों का षट्स्थान यंत्र

माना ⟶ सूच्यंगुल/असं. = दो बार = काण्डक

उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ७
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ६
उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ५	उ उ ४	उ उ ४	उ उ ८

आदिमछट्ठाणम्हि य, पंच य वड्ढी हवंति सेसेसु।
छव्वड्ढीओ होंति हु, सरिसा सवत्थ पदसंखा।।३२७।।
छट्ठाणाणं आदी, अट्ठंकं होदि चरिममुव्वंकं।
जम्हा जहण्णणाणं, अट्ठंकं होदि जिणदिट्ठं।।३२८।।

अर्थ – असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानों में से प्रथम षट्स्थान में पाँच ही वृद्धि होती है, अष्टांक वृद्धि नहीं होती। शेष सम्पूर्ण षट्स्थानों में अष्टांक सहित छहों वृद्धि होती हैं। सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग अवस्थित है, इसलिये पदों की संख्या सब जगह सदृश ही समझनी चाहिये ।।३२७।।

अर्थ – सम्पूर्ण षट्स्थानों में आदि के स्थान को अष्टांक और अन्त के स्थान को उर्वंक कहते हैं, क्योंकि जघन्य पर्यायज्ञान भी अगुरुलघु गुण के अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा अष्टांक प्रमाण होता है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने प्रत्यक्ष देखा है ।।३२८।।

षट्स्थान की आदि व अंत वृद्धि

प्रथम षट्स्थानपतित में ५ वृद्धि ⟶	अनंतगुण वृद्धि यहाँ नहीं हैं
द्वितीयादि असंख्यात लोकप्रमाण स्थानों में ६ वृद्धियाँ	अनंतगुण वृद्धि – आदि
	अनंतभाग वृद्धि – अंत

एक्कं खलु अट्ठंकं, सत्तंकं कंडयं तदो हेट्ठा।
रूवहियकंडएण य, गुणिदकमा जावमुव्वंकं।।३२९।।

अर्थ – एक षट्स्थान में एक अष्टांक होता है और सप्तांक अर्थात् असंख्यातगुणवृद्धि, काण्डक–सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हुआ करती है। इसके नीचे षडंक अर्थात् संख्यातगुणवृद्धि और पंचांक अर्थात् संख्यातभागवृद्धि तथा चतुरंक–असंख्यातभागवृद्धि एवं उर्वंक–अनंतभागवृद्धि ये चार वृद्धियाँ उत्तरोत्तर क्रम से एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणित हैं ।।३२९।।

एक षट्स्थान में कौनसी वृद्धि कितनी बार होती है

वृद्धि	सिद्धान्त	दृष्टान्त	
अष्टांक	१		१ बार
सप्तांक	सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण		२ बार
षडंक	पूर्व प्रमाण × रूपाधिक कांडक = पूर्व प्रमाण × (१+ कांडक) = पूर्व प्रमाण × (१+२)	२ × ३	६ बार
पंचांक		६ × ३	१८ बार
चतुरंक		१८ × ३	५४ बार
उर्वंक		५४ × ३	१६२ बार

सव्वसमासो णियमा, रूवाहियकंडयस्स वग्गस्स।
विंदस्स य संवग्गो, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।३३०।।

अर्थ – एक अधिक काण्डक के वर्ग और घन को परस्पर गुणा करने से जो प्रमाण लब्ध आवे उतना ही एक षट्स्थानपतित वृद्धियों के प्रमाण का जोड़ है, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।३३०।।

एक षट्स्थान में वृद्धियों का जोड़

= (रूपाधिक कांडक)^{२} × (रूपाधिक कांडक)^{३}	
= (१+२)^{२} × (१+२)^{३}	
= (३)^{२} × (३)^{३}	= २४३

उक्कस्ससंखमेत्तं, तत्तिचउत्थेक्कदालछप्पण्णं।
सत्तदसमं च भागं, गंतूणय लद्धिअक्खरं दुगुणं।।३३१।।
एवं असंखलोगा, अणक्खरप्पे हवंति छट्ठाणा।
ते पज्जायसमासा, अक्खरगं उवरि वोच्छामि।।३३२।।

अर्थ – एक अधिक काण्डक से गुणित सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण अनंतभागवृद्धि के स्थान, और सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातवृद्धि के स्थान, इन दो वृद्धियों के जघन्य ज्ञान के ऊपर हो जाने पर एक बार संख्यातभागवृद्धि का स्थान होता है। इसके आगे उक्त क्रमानुसार उत्कृष्ट संख्यातमात्र संख्यातभागवृद्धियों के हो जाने पर उसमें प्रक्षेपक वृद्धि के होने से लब्ध्यक्षर का प्रमाण दूना हो जाता है। परन्तु प्रक्षेपक की वृद्धि कहाँ-कहाँ पर कितनी कितनी होती है यह बताते हैं। उत्कृष्ट संख्यातमात्र पूर्वोक्त संख्यातभागवृद्धि के स्थानों में से तीन-चौथाई भागप्रमाण स्थानों के हो जाने पर प्रक्षेपक और प्रक्षेपकप्रक्षेपक इन दो वृद्धियों के जघन्य ज्ञान के ऊपर हो जाने से लब्ध्यक्षर का प्रमाण दूना हो जाता है। पूर्वोक्त संख्यातभागवृद्धियुक्त उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थानों के छप्पन भागों में से इकतालीस भागों के बीत जाने पर प्रक्षेपक और प्रक्षेपकप्रक्षेपक की वृद्धि होने से साधिक (कुछ अधिक) जघन्य का दूना प्रमाण हो जाता है। अथवा संख्यातभागवृद्धि के उत्कृष्ट संख्यातमात्र स्थानों में से दशभाग में सातभाग प्रमाण स्थानों के अनन्तर प्रक्षेपक, प्रक्षेपकप्रक्षेपक के तथा पिशुली इन तीन वृद्धियों को साधिक जघन्य के ऊपर करने से साधिक जघन्य का प्रमाण दूना होता है ।।३३१।।

अर्थ – इसप्रकार अनक्षरात्मक श्रुतज्ञान में असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थान होते हैं। ये सब ही पर्यायसमास ज्ञान के भेद हैं। अब इसके आगे अक्षरात्मक श्रुतज्ञान का वर्णन करेंगे ।।३३२।।

चरिमुव्वंकेणवहिदअत्थक्खरगुणिदचरिममुव्वंकं।
अत्थक्खरं तु णाणं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।३३३।।

अर्थ – अन्त के उर्वंक का अर्थाक्षरसमूह में भाग देने से जो लब्ध आवे उसको अन्त के उर्वंक से गुणा करने पर अर्थाक्षर ज्ञान का प्रमाण होता है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।३३३।।

अक्षर ज्ञान

⁕ अक्षर ज्ञान अनंतगुण वृद्धि से उत्पन्न होता है	
⁕ **अक्षर =**	पर्याय समास का उत्कृष्ट भेद × यथायोग्य अनंत

पण्णवणिज्जा भावा, अणंतभागो दु अणभिलप्पाणं।
पण्णवणिज्जाणं पुण, अणंतभागो सुदणिबद्धो।।३३४।।

अर्थ – अनभिलप्य पदार्थों के अनंतवें भाग प्रमाण प्रज्ञापनीय पदार्थ होते हैं और प्रज्ञापनीय पदार्थों के अनंतवें भाग प्रमाण श्रुत में निबद्ध हैं ।।३३४।।

श्रुतनिबद्ध विषय का प्रमाण

अनभिलप्य (केवलज्ञान गोचर अनंतानंत पदार्थ) / अनंत	**= प्रज्ञापनीय**
प्रज्ञापनीय (जो दिव्यध्वनि द्वारा कहने में आवै) / अनंत	**= श्रुतनिबद्ध विषय**

एयक्खरादु उवरिं एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
संखेज्जे खलु उड्ढे पदणामं होदि सुदणाणं।।३३५।।
सोलससयचउतीसा, कोडी तियसीदिलक्खयं चेव।
सत्तसहस्साट्ठसया, अट्ठासीदी य पदवण्णा।।३३६।।
एयपदादो उवरिं, एगेगेणक्खरेण वड्ढंतो।
संखेज्जसहस्सपदे, उड्ढे संघादणाम सुदं।।३३७।।
एक्कदरगदिणिरूवयसंघादसुदादु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे संघादे उड्ढम्हि पडिवत्ती।।३३८।।
चउगइसरूवरूवयपडिवत्तीदो दु उवरि पुव्वं वा।
वण्णे संखेज्जे पडिवत्तीउड्ढम्हि अणियोगं।।३३९।।
चोद्दसमग्गणसंजुदअणियोगादुवरि वड्ढिदे वण्णे।
चउरादीअणियोगे दुगवारं पाहुडं होदि।।३४०।।
अहियारो पाहुडयं, एयट्ठो पाहुडस्स अहियारो।
पाहुडपाहुडणामं, होदि त्ति जिणेहिं णिदिट्ठं।।३४१।।
दुगवारपाहुडादो, उवरिं वण्णे कमेण चउवीसे।
दुगावारपाहुडे संउड्ढे खलु होदि पाहुडयं।।३४२।।

वीसं वीसं पाहुडअहियारे एक्कवत्थुअहियारो।
एक्केक्कवण्णउड्ढी, कमेण सव्ववत्थ णायव्वा।।३४३।।

अर्थ – अक्षरज्ञान के ऊपर क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते-होते जब संख्यात अक्षरों की वृद्धि हो जाय तब पदनामक श्रुतज्ञान होता है। अक्षरज्ञान के ऊपर और पदज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सब अक्षरसमास ज्ञान के भेद हैं ।।३३५।।

अर्थ – सोलह सौ चौंतीस कोटि तिरासी लाख सात हजार आठ सौ अठासी (१६३४८३०७८८८) एक पद में अक्षर होते हैं ।।३३६।।

अर्थ – एक पद के आगे भी क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि होते-होते संख्यात हजार पदों की वृद्धि हो जाय उसको संघातनामक श्रुतज्ञान कहते हैं। एक पद के ऊपर और संघातनामक ज्ञान के पूर्व तक जितने ज्ञान के भेद हैं वे सब पदसमास के भेद हैं। यह संघात नामक श्रुतज्ञान चार गति में से एक गति के स्वरूप का निरूपण करनेवाले अपुनरुक्त मध्यम पदों के समूह से उत्पन्न अर्थज्ञानरूप है ।।३३७।।

अर्थ – चार गति में से एक गति का निरूपण करने वाले संघात श्रुतज्ञान के ऊपर पूर्व की तरह क्रम से एक-एक अक्षर की तथा पदों और संघातों की वृद्धि होते-होते जब संख्यात हजार संघात की वृद्धि हो जाय तब एक प्रतिपत्तिक नामक श्रुतज्ञान होता है। यह ज्ञान नरकादि चार गतियों का विस्तृत स्वरूप जानने वाला है। संघात और प्रतिपत्तिक श्रुतज्ञान के मध्य में जितने ज्ञान के विकल्प हैं उतने ही संघातसमास के भेद हैं।।३३८।।

अर्थ – चारों गतियों के स्वरूप का निरूपण करनेवाले प्रतिपत्तिक ज्ञान के ऊपर क्रम से पूर्व की तरह एक-एक अक्षर की वृद्धि होते-होते जब संख्यात हजार प्रतिपत्तिक की वृद्धि हो जाय तब एक अनुयोग श्रुतज्ञान होता है। इसके पहले और प्रतिपत्तिक ज्ञान के ऊपर सम्पूर्ण प्रतिपत्तिकसमास ज्ञान के भेद हैं। अन्तिम प्रतिपत्तिकसमास ज्ञान के भेद में एक अक्षर की वृद्धि होने से अनुयोग श्रुतज्ञान होता है। इस ज्ञान के द्वारा चौदह मार्गणाओं का विस्तृत स्वरूप जाना जाता है ।।३३९।।

अर्थ – चौदह मार्गणाओं का निरूपण करनेवाले अनुयोग ज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त क्रम के अनुसार एक एक अक्षर की वृद्धि होते-होते जब चतुरादि अनुयोगों की वृद्धि हो जाय तब प्राभृतप्राभृत श्रुतज्ञान होता है। इसके पहले और अनुयोग ज्ञान के ऊपर जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सब अनुयोगसमास के भेद जानना ।।३४०।।

अर्थ – प्राभृत और अधिकार ये दोनों शब्द एक ही अर्थ के वाचक हैं। अतएव प्राभृत के अधिकार को प्राभृतप्राभृत कहते हैं, ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा हैं ।।३४१।।

अर्थ – प्राभृतप्राभृत ज्ञान के ऊपर पूर्वोक्त क्रम से एक -एक अक्षर की वृद्धि होते-होते जब चौबीस प्राभृतप्राभृत की वृद्धि हो जाय तब एक प्राभृत श्रुतज्ञान होता है। प्राभृत के पहले और प्राभृतप्राभृत के ऊपर जितने ज्ञान के विकल्प हैं वे सब ही प्राभृतप्राभृतसमास के भेद जानना। उत्कृष्ट प्राभृतप्राभृत समास के भेद में एक अक्षर की वृद्धि होने से प्राभृत ज्ञान होता है ।।३४२।।

अर्थ – पूर्वोक्त क्रमानुसार प्राभृत ज्ञान के ऊपर एक-एक अक्षर की वृद्धि होते होते जब क्रम से बीस प्राभृत की वृद्धि हो जाय तब एक वस्तु नामक अधिकार पूर्ण होता है। वस्तु ज्ञान के पहले

और प्राभृत ज्ञान के ऊपर जितने विकल्प हैं वे सब प्राभृतसमास ज्ञान के भेद हैं। उत्कृष्ट प्राभृतसमास में एक अक्षर की वृद्धि होने से वस्तु नामक श्रुतज्ञान पूर्ण होता है ।।३४३।।

अक्षरज्ञान आदि श्रुतज्ञान के भेद

	भेद	स्वरूप
१	**अक्षरज्ञान**	एक अक्षर से उत्पन्न ज्ञान
२	**अक्षर समास**	* अक्षर ज्ञान के ऊपर १-१ अक्षर की वृद्धि से प्राप्त ज्ञान * अक्षर और पदज्ञान के बीच के संख्यात भेद
३	**पद**	१६३४८३०७८८८ अपुनरुक्त अक्षरों का समूह
४	**पदसमास** - पदज्ञान और संघातज्ञान के मध्य के समस्त भेद	
५	**संघात**	* संख्यात हजार पदों का समूह * जिसमें ४ में से १ गति के स्वरूप का निरूपण हो
६	**संघातसमास**	
७	**प्रतिपत्तिक**	* संख्यात हजार संघातों का समूह * जिसमें ४ गति के विस्तृत स्वरूप का निरूपण हो
८	**प्रतिपत्तिकसमास**	
९	**अनुयोग**	* संख्यात हजार प्रतिपत्तिकों का समूह * जिसमें १४ मार्गणा के स्वरूप का निरूपण हो
१०	**अनुयोगसमास**	
११	**प्राभृतप्राभृत**	* चारादि अनुयोगों का समूह * अधिकार का अधिकार
१२	**प्राभृतप्राभृतसमास**	
१३	**प्राभृत**	* २४ प्राभृत प्राभृत का समूह * अधिकार
१४	**प्राभृतसमास**	
१५	**वस्तु**	* २० प्राभृत का समूह
१६	**वस्तुसमास**	
१७	**पूर्व**	* १० आदि वस्तु का समूह(प्रत्येक पूर्व में वस्तु की संख्या भिन्न है)
१८	**पूर्वसमास**	

सर्वत्र समासरूप ज्ञान के भेदों को निकालने की विधि

विवक्षित ज्ञान के ऊपर १–१ अक्षर क्रम से वृद्धि करते–करते जब तक अगला ज्ञान का भेद प्राप्त न हो तब तक के बीच के समस्त भेद विवक्षित ज्ञानसमास के भेद हैं

३ प्रकार के पद

नाम	स्वरूप	अक्षरों की संख्या
अर्थ पद	* किसी अर्थ विशेष का ज्ञान कराने वाला वाक्य * जैसे – "अग्नि को लाओ"	अनियत
प्रमाण पद	* छंदों के पाद * जैसे – अनुष्टुप का १ पाद	८ आदि
मध्यम पद	* संख्यात अक्षरों का समूह * *यहाँ श्रुतज्ञान के प्रकरण में यह पद विवक्षित है*	१६३४८३०७८८८

दस चोदसट्ठ अट्ठारसयं बारं च बार सोलं च।
वीसं तीसं पण्णारसं च दस चदुसु वत्थूणं।।३४४।।
उप्पायपुव्वगाणियविरियपवादत्थिणत्थियपवादे।
णाणासच्चपवादे आदाकम्मप्पवादे य।।३४५।।
पच्चक्खाणे विज्जाणुवादकल्लाणपाणवादे य।
किरियाविसालपुव्वे कमसोथ तिलोयविंदुसारे य।।३४६।।
पणणउदिसया वत्थू, पाहुडया तियसहस्सणवयसया।
एदेसु चोद्दसेसु वि, पुव्वेसु हवंति मिलिदाणि।।३४७।।

अर्थ – पूर्वज्ञान के चौदह भेद हैं, जिनमें से प्रत्येक में क्रम से दश, चौदह, आठ, अठारह, बारह, बारह, सोलह, बीस, तीस, पन्द्रह, दश, दश, दश, दश वस्तु नामक अधिकार है ।।३४४।।

अर्थ – उत्पाद, आग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणवाद, प्राणवाद, क्रियाविशाल, त्रिलोकबिन्दुसार, इस तरह से ये क्रम से पूर्वज्ञान के चौदह भेद हैं ।।३४५–३४६।।

अर्थ – इन चौदह पूर्वों के सम्पूर्ण वस्तुओं का जोड़ एक सौ पंचानवे (१९५) होता है और एक–एक वस्तु में बीस–बीस प्राभृत होते हैं, इसलिये सम्पूर्ण प्राभृतों का प्रमाण तीन हजार नौ सौ (३९००) होता है ।।३४७।।

१४ पूर्व

	नाम	वस्तु की संख्या	पदों की संख्या	वर्णन
१	**उत्पाद**	१०	१ करोड़	वस्तु के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य आदि अनेक धर्मों का
२	**आग्रायणीय**	१४	९६ लाख	द्वादशांग में प्रधानभूत ७०० सुनय और दुर्नय का और ७ तत्त्व, ९ पदार्थ, ६ द्रव्य आदि का
३	**वीर्यप्रवाद**	८	७० लाख	आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, बलवीर्य,तपोवीर्य, गुणवीर्य, पर्यायवीर्य आदि अनेक प्रकार के वीर्य (सामर्थ्य) का
४	**अस्तिनास्ति प्रवाद**	१८	६० लाख	स्यादस्ति, स्याद् नास्ति आदि सप्तभंगी का
५	**ज्ञानप्रवाद**	१२	१ कम १ करोड़	५ ज्ञान व ३ कुज्ञान के स्वरूप, संख्या, विषय, फल का
६	**सत्यप्रवाद**	१२	६ अधिक १ करोड़	वचन गुप्ति, वचन संस्कार के कारण, वचन के प्रयोग, १२ प्रकार की भाषा, बोलने वाले जीवों के भेद, बहुत प्रकार के असत्य वचन, १० प्रकार के सत्य वचन आदि का
७	**आत्मप्रवाद**	१६	२६ करोड़	"जीव वेत्ता, विष्णु, भोक्ता, बुद्ध आदि है" – इस रूप से आत्मा का
८	**कर्मप्रवाद**	२०	१ करोड़ ८० लाख	कर्म का
९	**प्रत्याख्यान**	३०	८४ लाख	पुरुष के संहनन, बल, द्रव्य, भाव आदि की अपेक्षा से सदोष वस्तु का। काल की मर्यादा सहित अथवा यावज्जीवन त्याग, उपवास विधि, उसकी भावना, ५ समिति, ३ गुप्ति आदि का
१०	**विद्यानुवाद**	१५	१ करोड़ १० लाख	७०० अल्प विद्या, ५०० महा विद्या, ८ निमित्त ज्ञान का

११	**कल्याणवाद**	१०	२६ करोड़	६३ शलाका पुरुषों के गर्भावतरण कल्याण आदि महोत्सवों का, उनके कारणभूत १६ कारण भावना, तपश्चरणादि क्रिया। चन्द्रमा सूर्य ग्रह नक्षत्र इनका गमन विशेष, ग्रहण, शकुन फल आदि का
१२	**प्राणवाद**	१०	१३ करोड़	शरीर चिकित्सा आदि अष्टांग आयुर्वेद, भूतिकर्म, विष विद्या, प्राणायाम आदि के भेद-प्रभेदों का
१३	**क्रिया-विशाल**	१०	९ करोड़	लेखन आदि ७२ कला, स्त्रियों के ६४ गुण, शिल्पादि विज्ञान गर्भाधानादि ८४ क्रिया, सम्यग्दर्शनादि १०८ क्रिया, देववंदनादि क्रिया, नित्य नैमैत्तिक क्रिया का
१४	**त्रिलोक-बिन्दुसार**	१०	१२ करोड़ ५० लाख	तीन लोक का स्वरूप, गणित, मोक्ष का स्वरूप, मोक्ष को ले जाने वाली क्रिया एवं मोक्षसुख आदि का
	कुल जोड़	**१९५ वस्तु**	**९५ करोड़ ५० लाख ५**	**कुल प्राभृत = १९५ वस्तु × २० = ३९०० प्राभृत**

अत्थक्खरं च पदसंघातं पडिवत्तियाणिजोगं च।
दुगवारपाहुडं च य पाहुडयं वत्थु पुव्वं च।।३४८।।
कमवण्णुत्तरवड्ढिय, ताण समासा य अक्खरगदाणि।
णाणवियप्पे वीसं गंथे, बारस य चोद्दसयं।।३४९।।
बारुत्तरसयकोडी, तेसीदी तह य होंति लक्खाणं।
अट्ठावण्णसहस्सा पंचेव पदाणि अंगाणं।।३५०।।
अडकोडिएयलक्खा अट्ठसहस्सा य एयसदिगं च।
पण्णत्तरि वण्णाओ, पइण्णयाणं पमाणं तु।।३५१।।

अर्थ – अर्थाक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्तिक, अनुयोग, प्राभृतप्राभृत, प्राभृत, वस्तु, पूर्व – ये नव तथा क्रम से एक-एक अक्षर की वृद्धि के द्वारा उत्पन्न होनेवाले अक्षरसमास आदि नव इस तरह अठारह भेद द्रव्यश्रुत के होते हैं। पर्याय और पर्यायसमास के मिलाने से बीस भेद ज्ञानरूप श्रुत के होते हैं। यदि ग्रन्थरूप श्रुत की विवक्षा की जाय तो आचारांग आदि बारह और उत्पादपूर्व आदि चौदह तथा चकार से सामायिकादि चौदह प्रकीर्णक स्वरूप भेद होते हैं ।।३४८-३४९।।

अर्थ – द्वादशांग के समस्त पद एक सौ बारह करोड़ त्र्यासी लाख अट्ठावन हजार पाँच (११२८३५८००५) होते हैं। आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर (८०१०८१७५) प्रकीर्णक (अंगबाह्य) अक्षरों का प्रमाण है ।।३५०-३५१।।

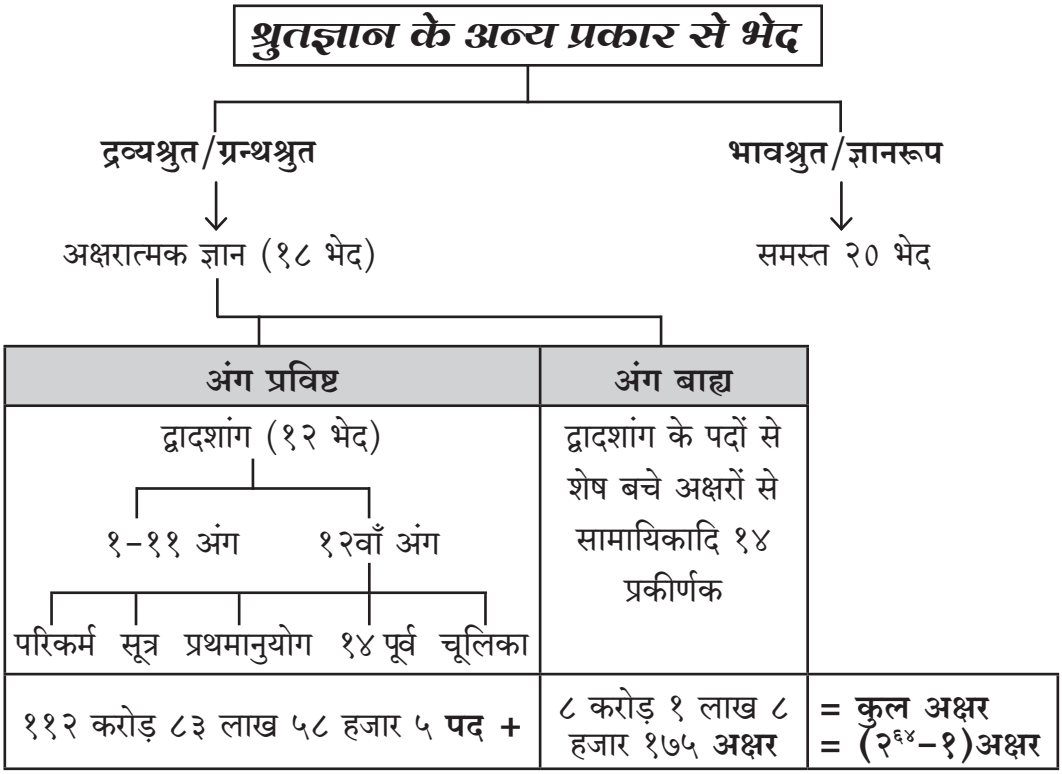

तेत्तीस वेंजणाईं, सत्तावीसा सरा तहा भणिया।
चत्तारि य जोगवहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ।।३५२।।
चउसट्ठिपदं विरलिय, दुगं च दाउण संगुणं किच्चा।
रूऊणं च कए पुण, सुदणाणस्सक्खरा होंति।।३५३।।
एकट्ठ च च य छस्सत्तयं च च य सुण्णसत्ततियसत्ता।
सुण्णं णव पण पंच य एक्कं छक्केक्कगो य पणगं च ।।३५४।।

अर्थ – तेतीस व्यंजन, सत्ताईस स्वर, चार योगवाह इस तरह कुल चौंसठ मूलवर्ण होते हैं ।।३५२।।

अर्थ – उक्त चौंसठ अक्षरों का विरलन करके प्रत्येक के ऊपर दो अंक देकर सम्पूर्ण दो के अंकों का परस्पर गुणा करने से लब्ध राशि में एक घटा देने पर जो प्रमाण रहता है, उतने ही श्रुतज्ञान के अपुनरुक्त अक्षर होते हैं ।।३५३।।

अर्थ – परस्पर गुणा करने से उत्पन्न होने वाले अक्षरों का प्रमाण इसप्रकार – एक आठ चार चार छह सात चार चार शून्य सात तीन सात शून्य नव पाँच पाँच एक छह एक पाँच ।।३५४।।

जिनवाणी के कुल अपुनरुक्त अक्षर निकालने की प्रक्रिया

६४ मूलवर्ण

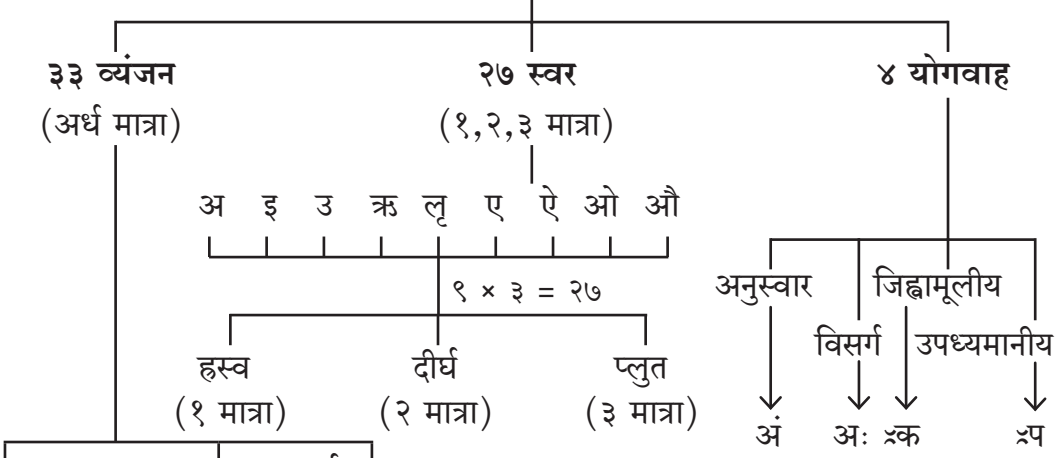

क् ख् ग् घ् ङ्	= क वर्ग
च् छ् ज् झ् ञ्	= च वर्ग
ट् ठ् ड् ढ् ण्	= ट वर्ग
त् थ् द् ध् न्	= त वर्ग
प् फ् ब् भ् म्	= प वर्ग
य् र् ल् व्	
श् ष् स् ह्	

कुल अपुनरुक्त अक्षर (एक संयोगी से लेकर ६४ संयोगी तक समस्त)
$= २^{६४}-१$
= १८४४६७४४०७३७०९५५१६१५
= एक कम एकट्ठी

मज्झिमपदक्खरवहिदवण्णा ते अंगपुव्वगपदाणि।
सेसक्खरसंखा ओ, पइण्णयाणं पमाणं तु।।३५५।।

अर्थ – मध्यमपद के अक्षरों का जो प्रमाण है उसका समस्त अक्षरों के प्रमाण में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने अंग और पूर्वगत मध्यम पद होते हैं। शेष जितने अक्षर रहें उतना अंगबाह्य अक्षरों का प्रमाण है ।।३५५।।

अंग प्रविष्ट के पद व अंगबाह्य के अक्षर निकालने की विधि

कुल अक्षर / १ मध्यम पद के अक्षर =	२^६४–१ / १६३४८३०७८८८		
= ११२८३५८००५ पद		+ ८०१०८१७५ अक्षर	
↓		↓	
अंग प्रविष्ट		**अंग बाह्य**	
दृष्टान्त से समझे –			
❊ माने – सम्पूर्ण अक्षर = १००६ मध्यम पद के अक्षर = १०			
❊ कितने **पद** बनेंगे	= १००६/१०	= १०० पद	⟶ **अंगप्रविष्ट**
❊ शेष बचे **अक्षर**		= ६ अक्षर	⟶ **अंगबाह्य**

आयारे सुद्दयडे, ठाणे समवायणामगे अंगे।
तत्तो विक्खापण्णत्तीए णाहस्स धम्मकहा।।३५६।।
तोवासयअज्झयणे, अंतयडे णुत्तरोववाददसे।
पण्हाणं वायरणे, विवायसुत्ते य पदसंखा।।३५७।।
अट्ठारस छत्तीसं, वादालं अडकडी अड वि छप्पण्णं।
सत्तरि अट्ठावीसं, चउदालं सोलससहस्सा।।३५८।।
इगिदुगपंचेयारं, तिवीसदुतिणउदिलक्ख तुरियादी।
चुलसीदिलक्खमेया, कोडी य विवागसुत्तम्हि।।३५९।।
वापणनरनोनानं, एयारंगे जुदी हु वादम्हि।
कनजतजमताननमं, जनकनजयसीम बाहिरे वण्णा।।३६०।।

अर्थ – आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, नाथधर्मकथांग, उपासकाध्ययनांग, अन्त:कृद्दशांग, अनुत्तरौपपादिकदशांग, प्रश्नव्याकरण और विपाकसूत्र इन ग्यारह अंगों के पदों की संख्या क्रम से निम्नलिखित है ।।३५६-३५७।।

अर्थ – अठारह हजार, छत्तीस हजार, बियालीस हजार, एक लाख चौंसठ हजार, दो लाख अट्ठाईस हजार, पाँच लाख छप्पन हजार, ग्यारह लाख सत्तर हजार, तेईस लाख अट्ठाईस हजार, बानवे लाख चवालीस हजार, तिरानवे लाख सोलह हजार एवं एक करोड़ चौरासी लाख ।।३५८-३५९।।

अर्थ – पूर्वोक्त ग्यारह अंगों के पदों का जोड़ चार करोड़ पन्द्रह लाख दो हजार (४१५०२०००) होता है। बारहवें दृष्टिवाद अंग में सम्पूर्ण पद एक अरब आठ करोड़ अड़सठ लाख छप्पन हजार पांच (१०८६८५६००५) होते हैं। अंगबाह्य अक्षरों का प्रमाण आठ करोड़ एक लाख आठ हजार एक सौ पचहत्तर (८०१०८१७५) है ।।३६०।।

११ अंग

क्र.	अंग का नाम	पदों की संख्या	वर्णन
१	**आचारांग**	१८ हजार	"कैसे चलिये ? कैसे बैठिये" आदि गणधर देव के प्रश्न के अनुसार "यतन से चलिये, बैठिये" आदि उत्तर वचन लिये मुनीश्वरों के समस्त आचरण का
२	**सूत्रकृतांग**	३६ हजार	ज्ञानविनय, प्रज्ञाप्रभा, कल्पाकल्प, छेदोपस्थापना, व्यवहारधर्मक्रिया व स्वसमय-परसमय का सूत्रों द्वारा
३	**स्थानांग**	४२ हजार	एक से लेकर उत्तरोत्तर एक-एक बढ़ते स्थानों का, जैसे - संग्रहनय से आत्मा एक है। व्यवहारनय से संसारी, मुक्त दो प्रकार हैं।
४	**समवायांग**	१ लाख ६४ हजार	सम्पूर्ण पदार्थों के समवाय का अर्थात् सादृश्य-सामान्य से द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा जीवादि पदार्थों का। जैसे क्षेत्र सम वाय-सातवें नरक का इन्द्रक बिल, जम्बूद्वीप एवं सर्वार्थसिद्धि विमान क्षेत्र से समान है
५	**व्याख्याप्रज्ञप्ति**	२ लाख २८ हजार	"जीव नित्य है कि अनित्य है" आदि गणधर देव द्वारा तीर्थंकर के निकट किये ६० हजार प्रश्नों का
६	**नाथधर्मकथांग/ ज्ञातृधर्मकथांग**	५ लाख ५६ हजार	तीर्थंकर के धर्म की कथा का अथवा जीवादि पदार्थों के स्वभाव का अथवा "अस्ति-नास्ति" आदि गणधर देव द्वारा किये गये प्रश्नों के उत्तरों का
७	**उपासकाध्ययनांग**	११ लाख ७० हजार	श्रावक की ११ प्रतिमा एवं व्रत, शील, आचार, क्रिया, मंत्रादिक का
८	**अन्त:कृत्दशांग**	२३ लाख २८ हजार	प्रत्येक तीर्थ में उपसर्ग सहनकर निर्वाण प्राप्त करने वाले १०-१० अंत:कृत केवली का

९	**अनुत्तरौपपादिक दशांग**	९२ लाख ४४ हजार	प्रत्येक तीर्थ में उपसर्ग सहनकर ५ अनुत्तर विमानों में गए १०-१० जीवों का
१०	**प्रश्नव्याकरणांग**	९३ लाख १६ हजार	आक्षेपणी, विक्षेपणी, संवेजनी और निर्वेजनी नाम की ४ कथाओं का तथा तीन काल संबंधी धन-धान्य, लाभ-अलाभ, जीवित-मरण, जय-पराजय संबंधी प्रश्नों के पूछने पर उनके उपाय का
११	**विपाकसूत्रांग**	१ करोड़ ८४ लाख	पुण्य और पापरूप कर्मों के फलों का
कुल जोड़		**४ करोड़ १५ लाख २ हजार**	
१२	**दृष्टिवादांग**	१,०८,६८,५६,००५	३६३ कुवादियों के मतों एवं उनके निराकरण का
द्वादशांग के सम्पूर्ण पदों का जोड़		**१,१२,८३,५८,००५**	

चंदरविजंबुदीवयदीवसमुद्दयवियाहपण्णत्ती।
परियम्मं पचविहं सुत्तं पढमाणिजोगमदो।।३६१।।
पुव्वं जलथलमाया आगासयरूवगयमिमा पंच।
भेदा हु चूलियाए तेसु पमाणं इणं कमसो।।३६२।।
गतनम मनगं गोरम मरगत जवगातनोननं जजलक्खा।
मननन धममननोननननामं रनधजधराननजलादी।।३६३।।
याजकनामेनाननमेदाणि पदाणि होंति परिकम्मे।
कानवधिवाचनाननमेसो पुण चूलियाजोगो।।३६४।।
पण्णट्ठदाल पणतीस तीस पण्णास पण्ण तेरसदं।
णउदी दुदाल पुव्वे पणवण्णा तेरससयाइं।।३६५।।
छस्सयपण्णासाइं चउसयपण्णास छसयपणुवीसा।
विहि लक्खेहि दु गुणिया पंचम रूऊण छज्जुदा छट्ठे।।३६६।।

अर्थ – बारहवें दृष्टिवाद अंग के पाँच भेद हैं – परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत, चूलिका। इसमें परिकर्म के पाँच भेद हैं – चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति, व्याख्याप्रज्ञप्ति। सूत्र का अर्थ सूचित करने वाला है, इस भेद में ''जीव अबंधक ही है, अकर्त्ता ही

है,'' इत्यादि क्रियावाद, अक्रियावाद, अज्ञान, विनयरूप ३६३ मिथ्यामतों को पूर्वपक्ष में रखकर दिखाया गया है। प्रथमानुयोग का अर्थ है कि प्रथम अर्थात् मिथ्यादृष्टि या अव्रतिक अव्युत्पन्न श्रोता को लक्ष्य करके जो प्रवृत्त हो। पूर्वगत के चौदह भेद हैं, चूलिका के पाँच भेद हैं - जलगता, स्थ-लगता, मायागता, आकाशगता, रूपगता।।३६१-३६२।।

अर्थ - क्रम से चन्द्रप्रज्ञप्ति में छत्तीस लाख पाँच हजार; सूर्यप्रज्ञप्ति में पाँच लाख तीन हजार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में तीन लाख पच्चीस हजार, द्वीपसागरप्रज्ञप्ति में बावन लाख छत्तीस हजार, व्याख्याप्रज्ञप्ति में चौरासी लाख छत्तीस हजार पद हैं। सूत्र में अठासी लाख पद हैं। प्रथमानुयोग में पाँच हजार पद हैं। चौदह पूर्वों में पंचानवे करोड़ पचास लाख पाँच पद हैं। पाँचों चूलिकाओं में से प्रत्येक में दो करोड़ नौ लाख नवासी हजार दो सौ पद हैं। चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि पाँच प्रकार के परिकर्म के पदों का जोड़ एक करोड़ इक्यासी लाख पाँच हजार (१८१०५०००) है। पाँच प्रकार की चूलिका के पदों का जोड़ दश करोड़ उनचास लाख छ्यालीस हजार (१०४९४६०००) है।।३६३-३६४।।

अर्थ - दोनों गाथाओं में उत्पादपूर्व आदि १४ पूर्वों की बताई गई संख्या को दो लाख से गुणा करना चाहिये। विशेष यह है कि इस तरह से गुणित करने पर जो संख्या उत्पन्न हो उनमें से पाँचवें पूर्व की संख्या निकालने के लिये एक कम कर देना चाहिये और छट्ठे पूर्व का प्रमाण जानने के लिये छह जोड़ देने चाहिये। ऐसा करने से पूर्वों का नियत प्रमाण निकल आता है। दो लाख से गुणा जिस जिस संख्या के साथ करना चाहिये वह उत्पाद पूर्वादि की गाथोक्त संख्या क्रम से इस प्रकार है - उत्पादपूर्व की ५०, आग्रायणीय ४८, वीर्यप्रवाद ३५, अस्तिनास्तिप्रवाद ३०, ज्ञानप्रवाद ५०, सत्यप्रवाद ५०, आत्मप्रवाद १३००, कर्मप्रवाद ९०, प्रत्याख्यान ४२, विद्यानुवाद ५५, कल्याणवाद १३००, प्राणवाद ६५०, क्रियाविशाल ४५०, त्रिलोकबिन्दुसार ६२५ ।।३६५-३६६।।

१२वें अंग दृष्टिवाद के भेद

क्र.	भेद	प्रभेद	पदों की संख्या	वर्णन
१	परिकर्म	चन्द्रप्रज्ञप्ति	३६ लाख ५ हजार	चन्द्रमा का विमान, आयु, परिवार, ऋद्धि, गति, वृद्धि, हानि, पूर्ण ग्रहण, अर्ध ग्रहण आदि का
		सूर्यप्रज्ञप्ति	५ लाख ३ हजार	सूर्य की आयु, मण्डल, परिवार, ऋद्धि, गति, दिन की हानि-वृद्धि, किरणों का प्रमाण, प्रकाश तथा ग्रहण आदि का
		जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति	३ लाख २५ हजार	जम्बूद्वीप स्थित मेरु,कुलाचल, तालाब, क्षेत्र,महानदी, कुण्ड, वेदिका, वनखण्ड, व्यंतरों के आवास

१	**परिकर्म**	**द्वीपसागर – प्रज्ञप्ति**	५२ लाख ३६ हजार	असंख्यात द्वीपसमुद्र संबंधी स्वरूप, उनमें स्थित भवनत्रिक के आवासों में विद्यमान अकृत्रिम जिन भवनों का
		व्याख्या–प्रज्ञप्ति	८४ लाख ३६ हजार	रूपी–अरूपी, जीव–अजीव द्रव्यों भव्य–अभव्य भेदों, उनके प्रमाण और लक्षणों, अनन्तर सिद्ध और परम्परा सिद्धों तथा अन्य वस्तुओं का
२	**सूत्र**		८८ लाख	"जीव अस्ति ही है या नास्ति ही है" आदि मिथ्यादृष्टियों के ३६३ मतों के पूर्वपक्ष का
३	**प्रथमा–नुयोग**		५ हजार	६३ शलाका पुरुषों का अथवा निम्न १२ वंशों का – १. तीर्थंकर, २. चक्रवर्ति, ३. विद्याधर, ४. नारायण एवं प्रतिनारायण, ५. चारण ६. प्रज्ञाश्रमण, ७. कुरुवंश, ८. हरिवंश, ९. इक्ष्वाकुवंश, १०. काश्यपवंश, ११.वादियों का वंश, १२. नाथवंश
४	**पूर्वगत**	**१४ भेद**	९५ करोड़ ५० लाख ५	***गाथा ३४४ का चार्ट देखें***
५	**चूलिका**	**जलगता**	प्रत्येक के २,०९,८९,२००	**निम्न के कारणभूत मन्त्र, तंत्र, तपश्चरण आदि का ⟶** जल में गमन, जल का स्तम्भन, अग्नि का स्तम्भन, भक्षण, अग्नि पर बैठना, अग्नि में प्रवेश
		स्थलगता		मेरु, कुलाचल, भूमि में प्रवेश करने, शीघ्र गमन आदि
		मायागता		मायावीरूप,इन्द्रजाल(जादूगरी),विक्रिया
		रूपगता		सिंह, हाथी, घोड़ा आदि के रूप बदलने
		आकाशगता		आकाश में गमन करने

सामइयचउवीसत्थयं तदो वंदणा पडिक्कमणं।
वेणइयं किदियम्मं दसवेयालं च उत्तरज्झयणं।।३६७।।
कप्पववहारकप्पाकप्पियमहकप्पियं च पुंडरियं।
महपुंडरीयणिसिहियमिदि चोद्दसमंगबाहिरयं।।३६८।।

अर्थ – सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्प्यव्यवहार, कल्प्याकल्प्य, महाकल्प्य, पुंडरीक, महापुंडरीक, निषिद्धिका – ये अंगबाह्यश्रुत के चौदह भेद हैं।।३६७-३६८।।

अंगबाह्य श्रुतज्ञान - १४ भेद

क्र.	भेद	वर्णन
१	**सामायिक**	नाम, स्थापनादि छह भेदों द्वारा समताभाव के विधान का
२	**चतुर्विंशति स्तव**	२४ तीर्थंकरों के नाम, संस्थान, ऊँचाई, पंच महाकल्याणक, ३४ अतिशयों का स्वरूप एवं तीर्थंकरों की वंदना की विधि एवं सफलता का
३	**वंदना**	एक तीर्थंकर के अवलम्बन से प्रतिमा, चैत्यालय इत्यादिक की स्तुति का
४	**प्रतिक्रमण**	दु:षमादि काल और ६ संहननों से युक्त स्थिर तथा अस्थिर स्वभाव वाले पुरुषों का आश्रय लेकर दैवसिक, रात्रिक आदि ७ प्रकार के प्रतिक्रमणों का
५	**वैनयिक**	दर्शनविनय, ज्ञानविनय आदि ५ प्रकार की विनयों का
६	**कृतिकर्म**	पंच परमेष्ठी की पूजा आदि विधि का
७	**दशवैकालिक**	दशवैकालिकों (विशिष्ट काल में होने वाली विशेषता) का एवं मुनियों की आचार विधि और गोचर विधि का
८	**उत्तराध्ययन**	"४ प्रकार के उपसर्गों को कैसे सहन करना चाहिये ?" आदि प्रश्नों के उत्तरों का
९	**कल्प्यव्यवहार**	साधुओं के योग्य आचरण का एवं अयोग्य आचरण के होने पर प्रायश्चित्त विधि का (कल्प्य=योग्य, व्यवहार=आचार)
१०	**कल्प्याकल्प्य**	द्रव्य ,क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा मुनियों के लिए योग्य और अयोग्य का
११	**महाकल्प्य**	काल और संहनन का आश्रय कर साधुओं के योग्य द्रव्य और क्षेत्रादि का

१२	**पुंडरीक**	४ प्रकार के देवों में उत्पत्ति के कारणरूप दान, पूजा, तपश्चरण, अकामनिर्जरा, सम्यग्दर्शन और संयम आदि कार्यों का
१३	**महापुंडरीक**	समस्त इन्द्र और प्रतीन्द्रों में उत्पत्ति के कारणरूप तपोविशेषादि आचरण का
१४	**निषिद्धिका**	प्रमादजन्य दोषों के निराकरण करनेरूप बहुत प्रकार के प्रायश्चित्तों का

सुदकेवलं च णाणं, दोण्णि वि सरिसाणि होंति बोहादो।
सुदणाणं तु परोक्खं, पच्चक्खं केवलं णाणं।।३६९।।

अर्थ – ज्ञान की अपेक्षा श्रुतज्ञान तथा केवलज्ञान दोनों ही सदृश हैं। परन्तु दोनों में अन्तर यही है कि श्रुतज्ञान परोक्ष है और केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ।।३६९।।

श्रुतज्ञान का माहात्म्य

असमानता		समानता
परोक्ष	← **श्रुत**	सम्यग्ज्ञान अपेक्षा – दोनों ६ द्रव्यों को जानते हैं
प्रत्यक्ष	← **केवल**	

अवहीयदि त्ति ओही, सीमाणाणे त्ति वण्णियं समये।
भवगुणपच्चयविहियं, जमोहिणाणे त्ति णं बेंति।।३७०।।
भवपच्चइगो सुरणिरयाणं तित्थे वि सव्वअंगुत्थो।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिण्हभवो।।३७१।।

अर्थ – द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से जिसके विषय की सीमा हो उसको अवधिज्ञान कहते हैं। इस ही लिये परमागम में इसको सीमाज्ञान कहा है। तथा इसके जिनेन्द्रदेव ने दो भेद कहे हैं – एक भवप्रत्यय एवं गुणप्रत्यय ।।३७०।।

अर्थ – भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव, नारकी तथा तीर्थंकरों के भी होता है और यह ज्ञान संपूर्ण अंग से उत्पन्न होता है। गुणप्रत्यय अवधिज्ञान पर्याप्त मनुष्य तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के भी होता है और यह ज्ञान शंखादि चिह्नों से होता है ।।३७१।।

अवधिज्ञान

स्वरूप	द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव द्वारा जो परिमित (सीमित) हो (मति, श्रुत, केवलज्ञान के समान इसका विषय अपरिमित नहीं है)	
विषय	❊ रूपी पुद्गल ❊ उससे संबंध लिये संसारी जीव	
पर्यायवाची नाम	सीमाज्ञान	
भेद	**भवप्रत्यय**	**गुणप्रत्यय**
	↓	↓
स्वरूप	नरकादि भव ही जिसका कारण है	सम्यग्दर्शन विशुद्धि आदि गुण जिसका कारण है
किन्हें होता है	सर्व देवों, नारकियों एवं तीर्थंकरों को	❊ किन्हीं पर्याप्त मनुष्यों को ❊ किन्हीं पर्याप्त संज्ञी तिर्यंचों को
कहाँ से उत्पन्न होता है	सर्वांग से	नाभि के ऊपर शंख, कमल, वज्रादि शुभ चिह्नों से
प्रकार	देशावधि	तीनों (देशावधि, परमावधि व सर्वावधि)

गुणपच्चइगो छद्धा, अणुगावट्ठिदपवड्ढमाणिदरा।
देसोही परमोही, सव्वोहि त्ति य तिधा ओही।।३७२।।

अर्थ – गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के छह भेद हैं – अनुगामी, अननुगामी, अवस्थित, अनवस्थित, वर्धमान, हीयमान। तथा सामान्य से अवधिज्ञान के देशावधि, परमावधि, सर्वावधि इस तरह से तीन भेद भी होते हैं ।।३७२।।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के ६ भेद

अनुगामी	**अननुगामी**	**वर्धमान**	**हीयमान**	**अवस्थित**	**अनवस्थित**
(अन्य क्षेत्र/भव में साथ जाए)	(अन्य क्षेत्र/भव में साथ न जाए)	(बढ़ता हुआ)	(घटता हुआ)	(न घटे, न बढ़े)	(घटता-बढ़ता रहे)

भवपच्चइगो ओही, देसोही होदि परमसव्वोही।
गुणपच्चइगो णियमा, देसोही वि य गुणे होदि।।३७३।।
देसोहिस्स य अवरं, णरतिरिये होदि संजदम्हि वरं।
परमोही सव्वोही, चरमसरीरस्स विरदस्स।।३७४।।
पडिवादी देसोही, अप्पडिवादी हवंति सेसा ओ।
मिच्छत्तं अविरमणं, ण य पडिवज्जंति चरमदुगे।।३७५।।
दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि रूवि जाणदे ओही।
अवरादुक्कस्सो त्ति य, वियप्परहिदो दु सव्वोही।।३७६।।

अर्थ – भवप्रत्यय अवधि नियम से देशावधि ही होता है और परमावधि तथा सर्वावधि नियम से गुणप्रत्यय ही हुआ करते हैं। देशावधिज्ञान भवप्रत्यय और गुणप्रत्यय दोनों तरह का होता है ।।३७३।।

अर्थ – जघन्य देशावधिज्ञान संयत या असंयत मनुष्य और तिर्यंचों के होता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान संयत जीवों के ही होता है। किन्तु परमावधि और सर्वावधि चरमशरीरी महाव्रती के ही होता है ।।३७४।।

अर्थ – देशावधिज्ञान प्रतिपाती होता है और परमावधि तथा सर्वावधि अप्रतिपाती होते हैं। परमावधि और सर्वावधिवाले जीव नियम से मिथ्यात्व और अव्रत अवस्था को प्राप्त नहीं होते।।३७५।।

अर्थ – जघन्य भेद से लेकर उत्कृष्ट भेदपर्यन्त अवधिज्ञान के जो असंख्यात लोक प्रमाण भेद हैं वे सब ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से प्रत्यक्षतया रूपी (पुद्गल) द्रव्य को ही ग्रहण करते हैं। तथा उसके संबंध से संसारी जीव द्रव्य को भी जानते हैं। किन्तु सर्वावधिज्ञान में जघन्य-उत्कृष्ट आदि भेद नहीं हैं – वह निर्विकल्प – एक प्रकार का है ।।३७६।।

अन्य प्रकार से अवधिज्ञान के भेद

<table>
<tr><th></th><th colspan="2">देशावधि</th><th>परमावधि</th><th>सर्वावधि</th></tr>
<tr><td>प्रकार</td><td colspan="2">भवप्रत्यय, गुणप्रत्यय</td><td colspan="2">गुणप्रत्यय</td></tr>
<tr><td rowspan="2">स्वामी</td><td>जघन्य</td><td>उत्कृष्ट</td><td colspan="2" rowspan="2">चरम शरीरी महाव्रती</td></tr>
<tr><td>* संयमी या
* असंयमी मनुष्य और तिर्यंच</td><td>सकल संयमी</td></tr>
<tr><td>विशेषता</td><td colspan="2">प्रतिपाति
(सम्यक्त्व और चारित्र से च्युत होना)</td><td colspan="2">अप्रतिपाति</td></tr>
<tr><td>भेद (जघन्य से उत्कृष्ट तक)</td><td colspan="2">असंख्यात लोक प्रमाण</td><td>असं. लोक प्रमाण</td><td>१</td></tr>
</table>

णोकम्मुरालसंचं, मज्झिमजोगज्झियं सविस्सचयं।
लोयविभत्तं जाणदि, अवरोही दव्वदो णियमा।।३७७।।
सुहमणिगोदअपज्जत्तयस्स जादस्स तदियसमयम्हि।
अवरोगाहणमाणं, जहण्णयं ओहिखेत्तं तु।।३७८।।

अर्थ – मध्यम योग के द्वारा संचित विस्रसोपचय सहित नोकर्म औदारिक वर्गणा के संचय में लोक का भाग देने से जितना द्रव्य लब्ध आवे उतने को नियम से जघन्य अवधिज्ञान द्रव्य की अपेक्षा से जानता है। इससे छोटे (सूक्ष्म) स्कंध को वह नहीं जानता। इससे स्थूल स्कंध को जानने में कुछ बाधा नहीं है।।३७७।।

अर्थ – सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक की उत्पन्न होने से तीसरे समय में जो जघन्य अवगाहना होती है उसका जितना प्रमाण है उतना ही अवधिज्ञान के जघन्य क्षेत्र का प्रमाण है ।।३७८।।

गाथा ३७७–३७८, ३८३, ३९१, ३९४–३९८, ४०४–४०७, ४१०–४११ और ४२२ का चार्ट–

देशावधि ज्ञान के भेद

⟶

0 = कोई भेद नहीं
⋮ = आगे के भेद

काण्डक	द्रव्य		क्षेत्र		काल		भाव	
	भेद		भेद		भेद		भेद	
प्रथम–जघन्य	१	विस्रसोपचय सहित नोकर्मरूप औदारिक शरीर का संचय लोकाकाश के प्रदेश = अनंतानंत परमाणुओं का स्कंध	१	सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना = घनांगुल / असं.	१	आवली के असं. भाग प्रमाण अतीत अनागत काल संबंधी व्यंजनपर्यायें = आवली / असं.	१	जघन्य काल के असं. भाग प्रमाण वर्तमान परिणमन रूप अर्थ पर्याय = आवली / असं.× असं.
	२	प्रथम भेद/ध्रुवहार		सूच्यंगुल के असं. भागप्रमाण द्रव्य के भेद होने पर क्षेत्र का अगला भेद प्राप्त होता है		घनांगुल / असं. अथवा घनांगुल सं. प्रदेश बढ़ने पर काल में वृद्धि होगी	२	प्रथम भेद × आवली / असं.
	३	द्वितीय भेद/ध्रुवहार					३	द्वितीय भेद × आवली / असं.
	४	तृतीय भेद/ध्रुवहार					४	तृतीय भेद × आवली / असं.
			२	जघन्य क्षेत्र + १ प्रदेश	२	जघन्य काल + १ समय		
			३	जघन्य क्षेत्र + २ प्रदेश	३	जघन्य काल + २ समय		
				सूच्यंगुल/असं.				

काण्डक	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
प्रथम – उत्कृष्ट		घनांगुल / संख्यात	आवली / संख्यात	
दूसरा – उत्कृष्ट		घनांगुल	कुछ कम आवली	
तीसरा		पृथक्त्व घनांगुल	पृथक्त्व आवली	
चौथा		एक हाथ	पृथक्त्व आवली	
पाँचवाँ		एक कोस	अन्तर्मुहूर्त	
छठा		एक योजन	भिन्न मुहूर्त	
सातवाँ		२५ योजन	कुछ कम १ दिन	
आठवाँ		भरत क्षेत्र	१/२ महीना	
नौवाँ		जम्बूद्वीप	कुछ अधिक १ महीना	
दसवाँ		मनुष्य लोक ४५ लाख योजन प्रमाण	१ वर्ष	
ग्यारहवाँ		रुचक (१३वाँ) द्वीप	पृथक्त्व वर्ष	
बारहवाँ		संख्यात द्वीप-समुद्र	संख्यात वर्ष	
तेरहवाँ		असंख्यात द्वीप-समुद्र	असंख्यात वर्ष	

काण्डक	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
चौदहवाँ – जघन्य	विस्रसोपचय सहित तैजस शरीर	असंख्यात द्वीप–समुद्र १	असंख्यात वर्ष १	
पन्द्रहवाँ	विस्रसोपचय सहित कार्माण शरीर	असं. द्वीप–समुद्र २	असं. वर्ष २	
सोलहवाँ	विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणा	असं. द्वीप–समुद्र ३	असं. वर्ष ३	
सत्रहवाँ	विस्रसोपचय रहित भाषा वर्गणा	असं. द्वीप–समुद्र ४	असं. वर्ष ४	
अठारहवाँ	विस्रसोपचय रहित मनो वर्गणा	अस. द्वीप–समुद्र ५	असं. वर्ष ५	
उन्नीसवें का प्रथम भेद (जघन्य)	विस्रसोपचय रहित कार्मण समयप्रबद्ध	असं. द्वीप–समुद्र ६	असं. वर्ष ६	
उन्नीसवें का द्वितीय भेद	कार्मण समयप्रबद्ध / ध्रुवहार			
त्रिचरम	कार्मण वर्गणा × ध्रुवहार			
द्विचरम	कार्मण वर्गणा			
चरम (उत्कृष्ट)	कार्मण वर्गणा / ध्रुवहार	लोक	१ समय कम पल्य	असं. लोक

उत्तरोत्तर असं. गुणा–असं. गुणा अधिक

अवरोहिखेत्तदीहं, वित्थारुस्सेहयं ण जाणामो।
अण्णं पुण समकरणे, अवरोगाहणपमाणं तु।।३७९।।
अवरोगाहणमाणं, उस्सेहंगुलअसंखभागस्स।
सूइस्स य घणपदरं, होदि हु तक्खेत्तसमकरणे।।३८०।।
अवरं तु ओहिखेत्तं, उस्सेहं अंगुलं हवे जम्हा।
सुहमोगाहणमाणं उवरि पमाणं तु अंगुलयं।।३८१।।
अवरोहिखेत्तमज्झे, अवरोही अवरदव्वमवगमदि।
तद्दव्वस्सवगाहो उस्सेहासंखघणपदरो।।३८२।।

अर्थ – जघन्य अवधिज्ञान के क्षेत्र की ऊँचाई लम्बाई चौड़ाई का भिन्न-भिन्न प्रमाण हम नहीं जानते। तथापि इतना जानते हैं कि समीकरण करने से जो क्षेत्रफल होता है, वह जघन्य अवगाहना के समान घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र होता है ।।३७९।।

अर्थ – क्षेत्रखंड विधान से समीकरण करने पर प्राप्त उत्सेधांगुल (व्यवहार सूच्यंगुल) के असंख्यातवें भाग प्रमाण-भुजा कोटी और वेध में परस्पर गुणा करने से घनांगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण जितना जघन्य अवगाहना का प्रमाण होता है उतना ही जघन्य अवधिज्ञान का क्षेत्र होता है ।।३८०।।

अर्थ – जो जघन्य अवधि का क्षेत्र पहले बताया है वह भी व्यवहारांगुल की अपेक्षा उत्सेधांगुल ही है, क्योंकि वह सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना प्रमाण है। परन्तु आगे अंगुल से प्रमाणांगुल का ग्रहण करना ।।३८१।।

अर्थ – जघन्य अवधि अपने जघन्य क्षेत्र में जितने भी असंख्यात प्रमाण जघन्य द्रव्य हैं जिसका कि प्रमाण ऊपर बताया जा चुका है उन सबको जानता है। उस द्रव्य का अवगाह उत्सेध (व्यवहार) घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र होता है ।।३८२।।

जघन्य क्षेत्र के विषय में विशेष

घन क्षेत्र	घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग
क्षेत्र का आकार	अनियत
लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई	* उपदेश उपलब्ध नहीं * सदृश्य मानने पर प्रत्येक $\frac{\text{उत्सेधांगुल}}{\text{असंख्यात}}$
अंगुल यहाँ कौनसा है	* उत्सेधांगुल (व्यवहारांगुल) * आगे क्षेत्र प्रकरण में प्रमाणांगुल जानना
जघन्य क्षेत्र में कितने जघन्य द्रव्य समा सकते हैं	$= \frac{\text{जघन्य क्षेत्र}}{\text{एक जघन्य द्रव्य की अवगाहना}}$ $= \frac{\text{घनांगुल/असं.}}{\text{घनांगुल/असं.}}$ = असंख्यात

आवलिअसंखभागं, तीदभविस्सं च कालदो अवरं।
ओही जाणदि भावे, कालअसंखेज्जभागं तु।।३८३।।

अर्थ – जघन्य अवधिज्ञान काल से आवली के असंख्यातवें भागमात्र अतीत, अनागत काल को जानता है। पुनश्च भाव से आवली के असंख्यातवें भागमात्र काल प्रमाण के असंख्यातवें भाग प्रमाण भाव, उनको जानता है। जघन्य अवधिज्ञान पूर्वोक्त क्षेत्र में, पूर्वोक्त एक द्रव्य के, आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण अतीत (भूत) काल में तथा तितने ही अनागत (भविष्य) काल में जो आकाररूप व्यंजनपर्याय हुये थे तथा होंगे उनको जानता है। पूर्वोक्त क्षेत्र में पूर्वोक्त द्रव्य के वर्तमान परिणमनरूप आवली के असंख्यातवें भाग के असंख्यातवें भाग प्रमाण अर्थपर्याय जानता है। इसतरह जघन्य दशावधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों की सीमा-मर्यादा के भेद कहे।।३८३।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नम्बर ३७७-३७८ का चार्ट देखें।

अवरद्दव्वादुवरिमदव्ववियप्पाय होदि धुवहारो।
सिद्धाणंतिमभागो, अभव्वसिद्धादणंतगुणो।।३८४।।

अर्थ – जघन्य देशावधि ज्ञान के विषयभूत द्रव्य से ऊपर द्वितीय आदि अवधिज्ञान के भेदों के विषयभूत द्रव्यों को लाने के लिये सिद्ध राशि का अनंतवाँ भाग और अभव्य राशि से अनंत गुणा ध्रुवभागहार होता है ।।३८४।।

गाथा ३८४ और ३८६-३८९ का चार्ट-

द्रव्य के भेद निकालने के लिए ध्रुवहार का प्रमाण (३ प्रकार)

१	$\frac{\text{सिद्धराशि}}{\text{अनंत}}$ (या) अभव्यों से अनंतगुणा
२	$\frac{\text{मनोद्रव्य वर्गणा के कुल विकल्प}}{\text{अनंत}}$ $= \frac{(\text{उत्कृष्ट मनोद्रव्य वर्गणा} - \text{जघन्य मनोद्रव्य वर्गणा}) + १}{\text{अनंत}}$ [उत्कृष्ट मनोद्रव्य वर्गणा = जघन्य मनोद्रव्य वर्गणा + $\frac{\text{ज. मनोवर्गणा}}{\text{अनंत}}$]
३	$\frac{\text{कार्मण वर्गणा का गुणकार}}{\text{अनंत}}$

धुवहारकम्मवग्गणगुणगारं कम्मवग्गणं गुणिदे।
समयपबद्धपमाणं, जाणिज्जो ओहिविसयम्हि।।३८५।।

अर्थ – ध्रुवहाररूप कार्मणवर्गणा के गुणाकार का और कार्मणवर्गणा का परस्पर गुणा करने से अवधिज्ञान के विषय में समयप्रबद्ध का प्रमाण निकलता है। जघन्य देशावधि का विषयभूत जो द्रव्य कहा था, उसी का नाम यहाँ समयप्रबद्ध जानना ।।३८५।।

गाथा ३८५, ३९१ और ३९२ का चार्ट–

अन्य प्रकार से जघन्य द्रव्य (समयप्रबद्ध) का प्रमाण

=	कार्मण वर्गणा का गुणकार × कार्मण वर्गणा
=	(ध्रुवहार)$^{\text{देशावधि के कुल भेद–२}}$ × (ध्रुवहार)$^{\text{परमावधि के कुल भेद + २}}$
=	(ध्रुवहार)$^{\text{देशावधि व परमावधि के समस्त भेद}}$

मणदव्ववग्गणाण, वियप्पाणंतिमसमं खु धुवहारो।
अवरुक्कस्सविसेसा, रूवहिया तव्वियप्पा हु।।३८६।।
अवरं होदि अणंतं, अणंतभागेण अहियमुक्कस्सं।
इदि मणभेदाणंतिमभागो दव्वम्मि धुवहारो।।३८७।।
धुवहारस्स पमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि।
समयपबद्धणिमित्तं, कम्मणवग्गणगुणादो दु।।३८८।।
होदि अणंतिमभागो, तग्गुणगारो वि देसओहिस्स।
दोऊणदव्वभेदपमाणद्धुवहारसंवग्गो।।३८९।।

अर्थ – मनोद्रव्य वर्गणा के उत्कृष्ट प्रमाण में से जघन्य प्रमाण के घटाने पर जो शेष रहे उसमें एक मिलाने से मनोद्रव्य वर्गणाओं के विकल्पों का प्रमाण होता है। इन विकल्पों का जितना प्रमाण हो उसके अनंत भागों में से एक भाग के बराबर अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य के ध्रुवहार का प्रमाण होता है ।।३८६।।

अर्थ – मनोवर्गणा का जघन्य भेद अनंत प्रमाण है। अनंत परमाणुओं के स्कंधरूप जघन्य मनोवर्गणा है। उस प्रमाण को अनंत का भाग देने पर जो प्रमाण आता है, उतना उस जघन्य भेद के प्रमाण में जोड़ने पर जो प्रमाण हो, वही मनोवर्गणा के उत्कृष्ट भेद का प्रमाण जानना। इतने परमाणुओं के स्कंधरूप उत्कृष्ट मनोवर्गणा है। सो जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक पूर्वोक्त प्रकार से मनोवर्गणा के जितने भेद हुये, उनके अनंतवें भागमात्र यहाँ ध्रुवहार का प्रमाण है ।।३८७।।

अर्थ – यद्यपि ध्रुवहार का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवें भाग हैं, तथापि अवधिज्ञान विषयक समयप्रबद्ध का प्रमाण निकालने के निमित्तभूत कार्मणवर्गणा के गुणकार से अनंतवें भाग समझना चाहिये। द्रव्य की अपेक्षा से देशावधिज्ञान के जितने भेद हैं, उनमें दो कम करने से जो प्रमाण शेष रहे उतनी बार ध्रुवहार का परस्पर गुणा करने से कार्मण वर्गणा के गुणकार का प्रमाण निकलता है ।।३८८–३८९।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८४ गाथा नम्बर ३८४ का चार्ट देखें।

अंगुलअसंखगुणिदा, खेत्तवियप्पा य दव्वभेदा हु।
खेत्तवियप्पा अवरुक्कस्सविसेसं हवे एत्थ।।३९०।।

अर्थ – देशावधिज्ञान के क्षेत्र की अपेक्षा जितने भेद हैं उनको सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर द्रव्य की अपेक्षा से देशावधि के भेदों का प्रमाण निकलता है। क्षेत्र की अपेक्षा उत्कृष्ट प्रमाण से सर्व जघन्य प्रमाण को घटाने से जो प्रमाण शेष रहे उतने ही क्षेत्र की अपेक्षा से देशावधि के विकल्प होते हैं। इसका सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करके उसमें एक मिलाने पर द्रव्य की अपेक्षा से देशावधि के भेद होते हैं ।।३९०।।

गाथा ३९० और ४२३ का चार्ट–

देशावधि के द्रव्यादि की अपेक्षा भेदों की संख्या

	कुल भेद
द्रव्य और भाव अपेक्षा	$\left(\text{क्षेत्र अपेक्षा कुल भेद} \times \frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}}\right) + १$
क्षेत्र अपेक्षा	उत्कृष्ट क्षेत्र – जघन्य क्षेत्र = लोक – घनांगुल / असं.
काल अपेक्षा	उत्कृष्ट काल – जघन्य काल = (पल्य–१) – आवली / असं.

अंगुलअसंखभागं, अवरं उक्कस्सयं हवे लोगो।
इदि वग्गणगुणगारो, असंखधुवहारसंवग्गो।।३९१।।

अर्थ – देशावधि का पूर्वोक्त सूक्ष्म निगोदिया लब्ध्यपर्याप्तक की जघन्य अवगाहनाप्रमाण, अर्थात् घनांगुल के असंख्यातवें भागस्वरूप जो प्रमाण बताया है वही जघन्य देशावधि के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण है। संपूर्ण लोकप्रमाण उत्कृष्ट क्षेत्र है। इस प्रकार देशावधि के सर्व द्रव्य विकल्पों के प्रमाण में से दो कम करने पर जो प्रमाण शेष रहे उतने ही ध्रुवहारों को रखकर परस्पर गुणा करने से कार्मण वर्गणा का गुणकार निष्पन्न होता है ।।३९१।।

पूर्वोक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नं. ३७७ और पृष्ठ संख्या १८५ गाथा नं. ३८५ के चार्ट देखें

वग्गणरासिपमाणं, सिद्धाणंतिमपमाणमेत्तं पि।
दुगसहियपरमभेदपमाणवहाराण संवग्गो।।३९२।।

अर्थ – कार्मणवर्गणा का प्रमाण यद्यपि सिद्ध राशि के अनंतवें भाग है, तथापि परमावधि के भेदों में दो मिलाने से जो प्रमाण हो उतनी जगह ध्रुवहार रखकर परस्पर गुणा करने से लब्धराशिप्रमाण कार्मणवर्गणा का प्रमाण होता है ।।३९२।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८५ गाथा नं. ३८५ का चार्ट देखें

परमावहिस्स भेदा, सगओगाहणवियप्पहदतेऊ।
इदि धुवहारं वग्गणगुणगारं वग्गणं जाणे।।३९३।।

अर्थ – तेजस्कायिक जीवों की अवगाहना के जितने विकल्प हैं उसका और तेजस्कायिक जीवराशि का परस्पर गुणा करने से जो राशि लब्ध आवे, उतना ही परमावधि ज्ञान के द्रव्य की अपेक्षा से भेदों का प्रमाण होता है। इसप्रकार ध्रुवहार, वर्गणा का गुणकार और वर्गणा का स्वरूप समझना चाहिये ।।३९३।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १९३ गाथा नं. ४१४ का चार्ट देखें

देसोहिअवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे विदियं।
तदियादिवियप्पेसु वि, असंखवारो त्ति एस कमो।।३९४।।
देसोहिमज्झभेदे सविस्ससोवचयतेजकम्मंगं।
तेजोभासमणाणं, वग्गणयं केवलं जत्थ।।३९५।।
पस्सदि ओही तत्थ असंखेज्ञाओ हवंति दीउवही।
वासाणि असंखेज्ञा होंति असंखेज्ञगुणिदकमा।।३९६।।
तत्तो कम्मइयस्सिगिसमयपबद्धं विविस्ससोवचयं।
धुवहारस्स विभज्ञं, सव्वोही जाव ताव हवे।।३९७।।
एदम्हि विभज्ञंते, दुचरिमदेसावहिम्मि वग्गणयं।
चरिमे कम्मइयस्सिगिवग्गणमिगिवारभजिदं तु।।३९८।।

अर्थ – देशावधिज्ञान का विषयभूत जघन्य द्रव्य पहले कहा था, उसको ध्रुवहार का भाग देने पर जो प्रमाण हो, वह दूसरे देशावधि के भेद का विषयभूत द्रव्य है। ऐसे ही ध्रुवहार का भाग देते-देते तीसरे, चौथे आदि भेदों का विषयभूत द्रव्य होता है। ऐसे असंख्यात बार अनुक्रम करना ।।३९४।।

अर्थ – देशावधिज्ञान के मध्यम भेदों में से जहाँ देशावधिज्ञान विस्रसोपचय सहित तैजस शरीररूप स्कन्ध को जानता है, उससे आगे जहाँ-जहाँ विस्रसोपचय सहित कार्मणस्कंध, विस्रसोपचय रहित तैजस वर्गणा, विस्रसोपचय रहित भाषावर्गणा, विस्रसोपचय रहित मनोवर्गणा को जानता है, वहाँ-वहाँ इन पाँचों स्थानों में क्षेत्र असंख्यात द्वीप-समुद्र और काल असंख्यात वर्ष होता है। तथापि उत्तरोत्तर असंख्यात गुणितक्रम होता है। अर्थात पहले से दूसरे, दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे और चौथे से पाँचवें भेद सम्बन्धी क्षेत्र, काल का परिमाण असंख्यात गुणा है ।।३९५-३९६।।

अर्थ – इसके अनन्तर मनोवर्गणा में ध्रुवहार का भाग देना चाहिये। इसतरह भाग देते-देते विस्रसोपचयरहित कार्मण का एक समयप्रबद्ध प्रमाण विषय आता है। उक्त क्रमानुसार इसमें भी सर्वावधि के विषय पर्यन्त ध्रुवहार का भाग देते जाना चाहिये ।।३९७।।

अर्थ – इस कार्मण समयप्रबद्ध में ध्रुवहार से भाग देने पर देशावधि के द्विचरम भेद में

कार्मणवर्गणा रूप द्रव्य विषय होता है। और अन्तिम भेद में ध्रुवहार से एक बार भाजित कार्मणवर्गणा द्रव्य होता है ।।३९८।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नं. ३७७ का चार्ट देखें

अंगुलअसंखभागे, दव्ववियप्पे गदे दु खेत्तम्हि।
एगागासपदेसो, वड्ढदि संपुण्णलोगो त्ति।।३९९।।
आवलिअसंखभागो, जहण्णकालो कमेण समयेण।
वड्ढदि देसोहिवरं पल्लं समऊणयं जाव।।४००।।

अर्थ – सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण जब द्रव्य के विकल्प हो जाय तब क्षेत्र की अपेक्षा आकाश का एक प्रदेश बढ़ता है। इस ही क्रम से एक-एक आकाश के प्रदेश की वृद्धि वहाँ तक करनी चाहिये कि जहाँ तक देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र सर्वलोक हो जाय ।।३९९।।

अर्थ – जघन्य देशावधि के विषयभूत काल का प्रमाण आवली का असंख्यातवाँ भाग है। इसके ऊपर उत्कृष्ट देशावधि के विषयभूत एक समय कम एक पल्यप्रमाण काल पर्यन्त, ध्रुव तथा अध्रुव वृद्धिरूप क्रम से एक-एक समय की वृद्धि होती है ।।४००।।

गाथा ३९९-४०० और ४०२ का चार्ट-

क्षेत्र और काल की वृद्धियाँ कब होती है

	किस प्रकार की वृद्धि होती है	कब होती है	कितनी वृद्धि होती
क्षेत्र वृद्धि	ध्रुव वृद्धि	सूच्यंगुल/असं. बार द्रव्य की वृद्धि होने पर	१ प्रदेश की
काल वृद्धि	कभी - ध्रुव वृद्धि	नियत प्रदेशों की वृद्धि होने पर	१ समय की
	कभी - अध्रुव वृद्धि	अनियत प्रदेशों की वृद्धि होने पर	
नोट – ये वृद्धिक्रम देशावधि के उत्कृष्ट भेद पर्यन्त जानना			

अंगुलअसंखभागं, धुवरूवेण य असंखवारं तु।
असंखसंखं भागं, असंखवारं तु अद्धुवगे।।४०१।।

अर्थ – घनांगुल को आवली से भाग देने पर घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग होता है। उतना ही ध्रुवरूप से वृद्धि का प्रमाण होता है। यह वृद्धि प्रथम काण्ड के अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यात बार होती है। पुनः उसी प्रथम काण्डक में अध्रुववृद्धि की विवक्षा होने पर उस वृद्धि का प्रमाण घनांगुल का असंख्यातवाँ भाग और संख्यातवाँ भाग होता है। अध्रुव वृद्धि भी प्रथम काण्डक के अन्तिम भेद पर्यन्त असंख्यातबार होती है ।।४०१।।

गाथा ४०१ और ४०३ का चार्ट–

प्रथम काण्डक (पर्व) की विशेषता

← जघन्य काल से उत्कृष्ट काल पर्यन्त →		
वृद्धि	**कितने प्रदेशों की वृद्धि होने पर १ समय की वृद्धि होती है**	**समय की वृद्धि कितनी बार होती है**
ध्रुव वृद्धि	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{आवली}} = \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असं.}}$	असंख्यात बार
अध्रुव वृद्धि	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असं.}}$ अथवा $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$	असंख्यात बार
कुल वृद्धि		असंख्यात समय

धुवअद्धुवरूवेण य, अवरे खेत्तम्हि वड्ढिदे खेत्ते।
अवरे कालम्हि पुणो, एक्केक्कं वड्ढदे समयं।।४०२।।

अर्थ – जघन्य देशावधि के विषयभूत क्षेत्र के ऊपर ध्रुवरूप से अथवा अध्रुवरूप से क्षेत्र की वृद्धि होने पर जघन्य काल के ऊपर एक-एक समय की वृद्धि होती है।।४०२।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८८ गाथा नं. ३९९ का चार्ट देखें

संखातीदा समया, पढमे पव्वम्मि उभयदो वड्ढी।
खेत्तं कालं अस्सिय, पढमादी कंडये वोच्छं।।४०३।।

अर्थ – प्रथम काण्डक में ध्रुवरूप से और अध्रुवरूप से असंख्यात समय की वृद्धि होती है। इसके आगे प्रथमादि काण्डकों का क्षेत्र और काल के आश्रय से वर्णन करते हैं ।।४०३।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ऊपर गाथा नं. ४०१ का चार्ट देखें

अंगुलमावलियाए, भागमसंखेज्जदो वि संखेज्जो।
अंगुलमावलियंतो, आवलियं चांगुलपुधत्तं।।४०४।।
आवलियपुधत्तं पुण, हत्थं तह गाउयं मुहुत्तं तु।
जोयणभिण्णमुहुत्तं, दिवसंतो पण्णुवीसं तु।।४०५।।
भरहम्मि अद्धमासं, साहियमासं च जम्बुदीवम्मि।
वासं च मणुवलोए, वासपुधत्तं च रुचगम्मि।।४०६।।

संखञ्जपमे वासे, दीवसमुद्दा हवंति संखेज्जा।
वासम्मि असंखेज्जे, दीवसमुद्दा असंखेज्जा।।४०७।।

अर्थ – प्रथम काण्डक में जघन्य क्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण और उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण है और जघन्य काल का प्रमाण आवली का असंख्यातवाँ भाग तथा उत्कृष्ट काल का प्रमाण आवली का संख्यातवाँ भाग है। दूसरे काण्डक में क्षेत्र घनांगुलप्रमाण और काल कुछ कम एक आवली प्रमाण है। तीसरे काण्डक में क्षेत्र घनांगुल पृथक्त्व और काल आवली पृथक्त्व प्रमाण है ।।४०४।।

अर्थ – चतुर्थ काण्डक में काल आवली पृथक्त्व और क्षेत्र हस्तप्रमाण है। पाँचवें काण्डक में क्षेत्र एक कोश और काल अन्तर्मुहूर्त है। छट्ठे काण्डक में क्षेत्र एक योजन और काल भिन्नमुहूर्त है। सातवें काण्डक में काल कुछ कम एक दिन और क्षेत्र पच्चीस योजन है ।।४०५।।

अर्थ – आठवें काण्डक में क्षेत्र भरतक्षेत्र प्रमाण और काल अर्धमास (पक्ष) प्रमाण है। नौवें काण्डक में क्षेत्र जम्बूद्वीप प्रमाण और काल एक मास से कुछ अधिक है। दशवें काण्डक में क्षेत्र मनुष्यलोक प्रमाण और काल एक वर्ष प्रमाण है। ग्यारहवें काण्डक में क्षेत्र रुचक द्वीप और काल वर्षपृथक्त्व प्रमाण है ।।४०६।।

अर्थ – बारहवें काण्डक में संख्यात वर्षप्रमाण काल और संख्यात द्वीप-समुद्रप्रमाण क्षेत्र है। इसके आगे तेरहवें से लेकर उन्नीसवें काण्डक पर्यन्त असंख्यात वर्षप्रमाण काल और असंख्यात द्वीप-समुद्र प्रमाण क्षेत्र है ।।४०७।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नं. ३७७ का चार्ट देखें

कालविसेसेणवहिदखेत्तविसेसो धुवा हवे वड्ढी।
अद्धुववड्ढी वि पुणो, अविरुद्धं इट्ठकंडम्मि।।४०८।।
अंगुलअसंखभागं, संखं वा अंगुलं च तस्सेव।
संखमसंखं एवं, सेढीपदरस्स अद्धुवगे।।४०९।।

अर्थ – किसी विवक्षित काण्डक के क्षेत्र विशेष में काल विशेष का भाग देने से जो शेष रहे उतना ध्रुव वृद्धि का प्रमाण है। इस ही तरह अविरोधरूप से इष्ट काण्डक में अध्रुव वृद्धि का भी प्रमाण समझना चाहिये।।४०८।।

अर्थ – घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण, वा घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण वा घनांगुलमात्र,वा संख्यात घनांगुलमात्र, वा असंख्यात घनांगुलमात्र इसी प्रकार श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण, वा श्रेणी के संख्यातवें भागप्रमाण, वा श्रेणीप्रमाण, वा संख्यात श्रेणीप्रमाण, वा असंख्यात श्रेणीप्रमाण, वा प्रतर के असंख्यातवें भाग प्रमाण, वा प्रतर के संख्यातवें भाग प्रमाण, वा प्रतरप्रमाण, वा संख्यात प्रतरप्रमाण, वा असंख्यात प्रतरप्रमाण प्रदेशों की वृद्धि होने पर एक-एक समय की वृद्धि होती है। यही अध्रुव वृद्धि का क्रम है ।।४०९।।

प्रत्येक काण्डक में ध्रुव वृद्धि का प्रमाण निकालने की विधि

$$= \frac{\text{क्षेत्र विशेष}}{\text{काल विशेष}}$$

$$= \frac{\text{प्रत्येक काण्डक का उत्कृष्ट क्षेत्र – जघन्य क्षेत्र}}{\text{प्रत्येक काण्डक का उत्कृष्ट काल – जघन्य काल}}$$

$$\text{जैसे प्रथम काण्डक में ध्रुव वृद्धि का प्रमाण} = \frac{\frac{\text{घनांगुल}}{\text{सं.}} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असं.}}}{\frac{\text{आवली}}{\text{सं.}} - \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}}$$

अध्रुव वृद्धि का प्रमाण

विवक्षित काण्डक में यथायोग्य निम्न में से संभावित वृद्धि				
$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असं.}}$	$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{सं.}}$	घनांगुल	सं. घनांगुल	असं. घनांगुल
$\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$	$\frac{\text{श्रेणी}}{\text{सं.}}$	श्रेणी	सं. श्रेणी	असं. श्रेणी
$\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{असं.}}$	$\frac{\text{प्रतर}}{\text{सं.}}$	प्रतर	सं. प्रतर	असं. प्रतर

कम्मइयवग्गणं धुवहारेणिगिवारभाजिदे दव्वं।
उक्कस्सं खेत्तं पुण, लोगो संपुण्णओ होदि।।४१०।।
पल्लसमऊण काले, भावेण असंखलोगमेत्ता हु।
दव्वस्स य पज्जाया, वरदेसोहिस्स विसया हु।।४११।।

अर्थ – कार्मणवर्गणा में एकबार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना देशावधि के उत्कृष्ट द्रव्य का प्रमाण है तथा संपूर्ण लोक उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण है ।।४१०।।

अर्थ – काल की अपेक्षा एक समय कम एक पल्य और भाव की अपेक्षा असंख्यात लोकप्रमाण द्रव्य की पर्याय उत्कृष्ट देशावधि का विषय है ।।४११।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नं. ३७७ का चार्ट देखें

काले चउण्ण उड्ढी, कालो भजिदव्व खेत्तउड्ढी य।
उड्ढीए दव्वपज्जय, भजिदव्वा खेत्त-काला हु।।४१२।।

अर्थ – काल की वृद्धि होने पर चारों प्रकार की वृद्धि होती है। क्षेत्र की वृद्धि होने पर काल की वृद्धि होती है और नहीं भी होती है। इस ही तरह द्रव्य और भाव की अपेक्षा वृद्धि होने पर क्षेत्र और काल की वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती है। परन्तु क्षेत्र और काल की वृद्धि होने पर द्रव्य और भाव की वृद्धि अवश्य होती है ।।४१२।।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की वृद्धियों के नियम

किसकी वृद्धि होने पर / किसकी वृद्धि होती है	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
द्रव्य	--	नियम से	नियम से	नियम से
क्षेत्र	भजनीय (हो भी अथवा न भी हो)	--	नियम से	भजनीय
काल	भजनीय	भजनीय	--	भजनीय
भाव	नियम से	नियम से	नियम से	--

देसावहिवरदव्वं, धुवहारेणवहिदे हवे णियमा।
परमावहिस्स अवरं, दव्वपमाणं तु जिणदिट्ठं।।४१३।।
परमावहिस्स भेदा, सगउग्गाहणवियप्पहदतेऊ।
चरमे हारपमाणं, जेट्ठस्स य होदि दव्वं तु।।४१४।।

अर्थ – देशावधि का जो उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण है उसमें एकबार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना ही नियम से परमावधि के जघन्य द्रव्य का प्रमाण निकलता है, ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है ।।४१३।।

अर्थ – अपनी (तेजस्कायिक जीवराशि की) अवगाहना के भेदों का जितना प्रमाण है उसका तेजस्कायिक जीवराशि के साथ गुणा करने पर जो राशि उत्पन्न हो उतने ही परमावधिज्ञान के भेद होते हैं। इनमें से सर्वोत्कृष्ट अंतिम भेद में द्रव्य ध्रुवहारप्रमाण होता है ।।४१४।।

गाथा ४१३-४१४ और ४१६-४१८ का चार्ट-

गाथा ४१३-४१४ और ४१६-४१८ का चार्ट-

परमावधि ज्ञान के भेद

भेद	द्रव्य	संकलित धन (क्षेत्र एवं काल निकालने हेतु)	क्षेत्र	काल	भाव
सूत्र	$\frac{\text{पूर्व भेद}}{\text{ध्रुवहार}}$	तत्काल पूर्व भेद का संकलित धन + विवक्षितवाँ भेद	देशावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{\text{संकलित धन}}$	देशावधि का उत्कृष्ट काल $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{\text{संकलित धन}}$	पूर्व भेद $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
प्रथम भेद	$\frac{\text{देशावधि का उत्कृष्ट भेद}}{\text{ध्रुवहार}} = \frac{\text{कार्मण वर्गणा/ध्रुवहार}}{\text{ध्रुवहार}}$	०+१ = १	सम्पूर्ण लोक $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	(१ समय कम पल्य) $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	$\frac{\text{देशावधि का उत्कृष्ट भेद}}{\text{असं.}}$ = असं.लोक $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
द्वितीय भेद	$\frac{\text{परमा.प्रथम भेद}}{\text{ध्रुवहार}} = \frac{\text{कार्मणवर्गणा}}{(\text{ध्रुवहार})^2}$	१+२ = ३	सम्पूर्ण लोक $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^3$	(१ समय कम पल्य) $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^3$	परमावधि का प्रथम भेद $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$
तृतीय भेद	$\frac{\text{कार्मणवर्गणा}}{(\text{ध्रुवहार})^4}$	३+३ = ६	लोक $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^6$	(१ समय कम पल्य) $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^6$	$\left[\text{असं.लोक} \times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^2\right]$ × आवली / असं.
चतुर्थ भेद	$\frac{\text{कार्मणवर्गणा}}{(\text{ध्रुवहार})^5}$	६+४ = १०	लोक $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{10}$	(१ समय कम पल्य) $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{10}$	असं.लोक $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^4$
⋮	मध्यम भेद				
अन्तिम भेद (n)	$\frac{\text{द्विचरम भेद}}{\text{ध्रुवहार}} = \frac{(\text{ध्रुवहार})^2}{\text{ध्रुवहार}} = \text{ध्रुवहार}$	$\frac{n(n+1)}{2}$	लोक $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{\frac{n(n+1)}{2}}$ = लोक $\times$ (असं. लोक)^3	(१ समय कम पल्य) $\times \left(\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}\right)^{\frac{n(n+1)}{2}}$ = (१ समय कम पल्य) $\times$ (असं. लोक)^3	द्विचरम भेद $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$ = (असं.लोक)^2
कुल भेद	तेजस्कायिक जीवों की अवगाहना के भेद × तेजस्कायिक जीव राशि = असं. लोक प्रमाण				

सव्वावहिस्स एक्को, परमाणू होदि णिव्वियप्पो सो।
गंगामहाणइस्स, पवाहोव्व धुवो हवे हारो।।४१५।।

अर्थ – परमावधि के उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण में ध्रुवहार का एकबार भाग देने से लब्ध एक परमाणुमात्र द्रव्य आता है, वही सर्वावधिज्ञान का विषय होता है। यह ज्ञान तथा इसका विषयभूत परमाणु निर्विकल्पक है। यहाँ पर जो भागहार है वह गंगा महानदी के प्रवाह की तरह ध्रुव है ।।४१५।।

गाथा ४१५ और ४१९ का चार्ट–

सर्वावधि ज्ञान

द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
परमा. का उ. द्रव्य / ध्रुवहार	परमा. का उ. क्षेत्र × (असं. लोक)^{२}	परमा. का उ. काल × असं. लोक	परमा. का उ. भाव × आवली / असं.
= ध्रुवहार / ध्रुवहार = १ परमाणु	= लोक × (असं. लोक)^{५}	=(१ समय कम पल्य) × (असं. लोक)^{४}	=(असं. लोक)^{२} × आवली / असं.

परमोहिदव्वभेदा, जेत्तियमेत्ता हु तेत्तिया होंति।
तस्सेव खेत्त–कालवियप्पा विसया असंखगुणिदकमा।।४१६।।
आवलिअसंखभागा, इच्छिदगच्छधणमाणमेत्ताओ।
देसावहिस्स खेत्ते काले वि य होंति संवग्गे।।४१७।।
गच्छसमा तक्कालियतीदे रूऊणगच्छधणमेत्ता।
उभये वि य गच्छस्स य, धणमेत्ता होंति गुणगारा।।४१८।।

अर्थ – परमावधि के जितने द्रव्य की अपेक्षा से भेद हैं उतने ही भेद क्षेत्र और काल की अपेक्षा से हैं। परन्तु उनका विषय असंख्यातगुणितक्रम है ।।४१६।।

अर्थ – किसी भी परमावधि के विवक्षित क्षेत्र के विकल्प में अथवा विवक्षित काल के विकल्प में संकल्पित धन का जितना प्रमाण हो उतनी जगह आवली के असंख्यातवें भागों को रखकर परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो वही देशावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट काल में गुणाकार का प्रमाण होता है ।।४१७।।

अर्थ – गच्छ के समान धन और गच्छ से तत्काल अतीत जो विवक्षित भेद से पहला भेद, सो विवक्षित गच्छ से एक कम गच्छ का जो संकलित धन, इन दोनों को मिलाने से गच्छ का संकलित धन प्रमाण गुणकार होता है। उदाहरण कहते हैं – जितनेवाँ भेद विवक्षित हो, उसके प्रमाण को गच्छ कहते हैं। जैसे विवक्षित भेद चौथा सो गच्छ का प्रमाण चार हुआ। और तत्काल अतीत

तीसरा भेद तीन, उसका गच्छ धन छह हुआ। गच्छ चार और यह छह मिलकर दस होते हैं। इतना ही विवक्षित गच्छ चार का संकलित धन होता है। यही चतुर्थ भेद का गुणकार होता है। इसी प्रकार सब भेदों में जानना ।।४१८।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १९३ गाथा नं. ४१३ का चार्ट देखें

परमावहिवरखेत्तेणवहिदउक्कस्सओहिखेत्तं तु।
सव्वावहिगुणगारो, काले वि असंखलोगो दु।।४१९।।

अर्थ – उत्कृष्ट अवधिज्ञान के क्षेत्र में परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना सर्वावधिसंबंधी क्षेत्र के लिये गुणकार है। तथा सर्वावधिसंबंधी काल का प्रमाण लाने के लिये असंख्यात लोक का गुणकार है ।।४१९।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १९४ गाथा नं. ४१५ का चार्ट देखें

इच्छिदरासिच्छेदं, दिण्णच्छेदेहिं भाजिदे तत्थ।
लद्धमिददिण्णरासीणब्भासे इच्छिदो रासी।।४२०।।
दिण्णच्छेदेणवहिदलोगच्छेदेण पदधणे भजिदे।
लद्धमिदलोगगुणणं, परमावहिचरिमगुणगारो।।४२१।।

अर्थ – विवक्षित राशि के अर्धच्छेदों में देयराशि के अर्धच्छेदों का भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह देयराशि का रखकर परस्पर गुणा करने से विवक्षित राशि का प्रमाण निकलता है ।।४२०।।

अर्थ – देयराशि के अर्धच्छेदों का लोक के अर्धच्छेदों में भाग देने से जो लब्ध आवे उसका विवक्षित संकल्पित धन में भाग देने से जो लब्ध आवे उतनी जगह लोकप्रमाण को रखकर परस्पर गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो वह विवक्षित पद में क्षेत्र या काल का गुणकार होता है। ऐसे ही परमावधि के अंतिम भेद में भी गुणकार जानना ।।४२१।।

आवलिअसंखभागा, जहण्णदव्वस्स होंति पज्जाया।
कालस्स जहण्णादो, असंखगुणहीणमेत्ता हु।।४२२।।

अर्थ – जघन्य देशावधि के विषयभूत द्रव्य की पर्याय आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण है तथापि जघन्य देशावधि के विषयभूत काल का जितना प्रमाण है उससे असंख्यातगुणा हीन जघन्य देशावधि के विषयभूत भाव का प्रमाण है।।४२२।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८० गाथा नं. ३७७ का चार्ट देखें

सव्वोहि त्ति य कमसो, आवलिअसंखभागगुणिदकमा।
दव्वाणं भावाणं, पदसंखा सरिसगा होंति।।४२३।।

अर्थ – जघन्य देशावधि से सर्वावधि पर्यन्त द्रव्य की पर्यायरूप भाव के भेद पूर्व-पूर्व भेद की अपेक्षा आवली के असंख्यातवें भाग से गुणितक्रम हैं। अतएव द्रव्य तथा भाव के पदों की संख्या सदृश है ।।४२३।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १८६ गाथा नं. ३९० का चार्ट देखें

सत्तमखिदिम्मि कोसं, कोसस्सद्धं पवड्ढदे ताव।
जाव य पढमे णिरये, जोयणमेक्कं हवे पुण्णं।।४२४।।

अर्थ – सातवीं भूमि में अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण एक कोस है। इसके ऊपर आधे-आधे कोस की वृद्धि होते-होते प्रथम नरक में अवधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र का प्रमाण पूर्ण एक योजन हो जाता है ।।४२४।।

नरक गति में अवधिज्ञान

नरक	उत्कृष्ट क्षेत्र	उत्कृष्ट काल
प्रथम नरक	१ योजन	भिन्न मुहूर्त
द्वितीय नरक	३ $\frac{१}{२}$ कोस	यथा योग्य अन्तर्मुहूर्त
तृतीय नरक	३ कोस	
चतुर्थ नरक	२ $\frac{१}{२}$ कोस	
पंचम नरक	२ कोस	
षष्ठम नरक	१ $\frac{१}{२}$ कोस	
सप्तम नरक	१ कोस	अन्तर्मुहूर्त

तिरिये अवरं ओघो, तेजोयंते य होदि उक्कस्सं।
मणुए ओघं देवे, जहाकमं सुणह वोच्छामि।।४२५।।

अर्थ – तिर्यञ्चों के अवधिज्ञान जघन्य देशावधि से लेकर उत्कृष्टता की अपेक्षा उस भेदपर्यन्त होता है कि जो देशावधि का भेद तैजस शरीर को विषय करता है। मनुष्यगति में अवधिज्ञान जघन्य देशावधि से लेकर उत्कृष्टतया सर्वावधिपर्यन्त होता है। देवगति में अवधिज्ञान को यथाक्रम से कहूँगा सो सुनो ।।४२५।।

तिर्यंच व मनुष्य गति में अवधिज्ञान

	जघन्य	उत्कृष्ट
तिर्यंच	जघन्य देशावधि	तैजस शरीर (देशावधि के चौदहवें काण्डक पर्यंत)
मनुष्य	〃	सर्वावधि

पणुवीसजोयणाइं, दिवसंतं च य कुमारभोम्माणं।
संखेज्जगुणं खेत्तं, बहुगं कालं तु जोइसिगे।।४२६।।
असुराणमसंखेज्जा, कोडीओ सेसजोइसंताणं।
संखातीदसहस्सा, उक्कस्सोहीण विसओ दु।।४२७।।
असुराणमसंखेज्जा, वस्सा पुण सेसजोइसंताणं।
तस्संखेज्जदिभागं, कालेण य होदि णियमेण।।४२८।।

अर्थ – भवनवासी और व्यंतरों के अवधि के क्षेत्र का जघन्य प्रमाण पच्चीस योजन और जघन्य काल कुछ कम एक दिन है और ज्योतिषी देवों के अवधि का क्षेत्र इससे संख्यातगुणा है और काल इससे बहुत अधिक है ।।४२६।।

अर्थ – असुरकुमारों के अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात कोटि योजन है। असुरों को छोड़कर बाकी के ज्योतिषी देवों तक के सभी भवनत्रिक अर्थात् नौ प्रकार के भवनवासी तथा संपूर्ण व्यन्तर और ज्योतिषी इनके अवधि का उत्कृष्ट विषयक्षेत्र असंख्यात हजार योजन है ।।४२७।।

अर्थ – असुरकुमारों के अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असंख्यात वर्ष है और शेष नौ प्रकार के भवनवासी तथा व्यन्तर और ज्योतिषी इनके अवधि के उत्कृष्ट काल का प्रमाण असुरों के अवधि के उत्कृष्ट काल के प्रमाण से नियम से संख्यातवें भागमात्र है ।।४२८।।

भवनत्रिक में अवधिज्ञान

	जघन्य		उत्कृष्ट	
देव	**भवनवासी – व्यंतर**	**ज्योतिषी**	**भवनवासी – असुरकुमार**	**शेष ९ भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी**
क्षेत्र	२५ योजन	२५ योजन × संख्यात	असं. करोड़ योजन	असं. हजार योजन
काल	कुछ कम १ दिन	१ दिन से बहुत अधिक	असं. वर्ष	असं. वर्ष/ संख्यात

भवणतियाणमधोधो, थोवं तिरियेण होदि बहुगं तु।
उड्ढेण भवणवासी, सुरगिरिसिहरो त्ति पस्संति।।४२९।।

अर्थ – भवनवासी व्यन्तर ज्योतिषी इनके अवधि का क्षेत्र नीचे नीचे कम होता है और तिर्यग् रूप से अधिक होता है। तथा भवनवासी देव अपने अवस्थित स्थान से सुरगिरि के (मेरु के) शिखरपर्यन्त अवधि के द्वारा देखते हैं ।।४२९।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २०१ गाथा नं. ४३७ का चार्ट देखें

सक्कीसाणा पढमं, बिदियं तु सणक्कुमार माहिंदा।
तदियं तु बम्ह-लांतव, सुक्क-सहस्सारया तुरियं।।४३०।।
आणद-पाणदवासी, आरण तह अच्चुदा य पस्संति।
पंचमखिदिपेरंतं, छट्ठिं गेवेज्जगा देवा।।४३१।।
सव्वं च लोयणालिं, पस्संति अणुत्तरेसु जे देवा।
सक्खेत्ते य सकम्मे, रूवगदमणंतभागं च।।४३२।।

अर्थ – सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देव अवधि के द्वारा प्रथम भूमिपर्यन्त देखते हैं। सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग के देव दूसरी पृथ्वी तक देखते हैं। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लांतव और कापिष्ठ स्वर्गवाले देव तीसरी भूमि तक देखते हैं। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार स्वर्ग के देव चौथी भूमि तक देखते हैं ।।४३०।।

अर्थ – आनत, प्राणत, आरण और अच्युत स्वर्ग के देव पाँचवीं भूमि तक अवधि के द्वारा देखते हैं और ग्रैवेयकवासी देव छट्ठी भूमि तक देखते हैं ।।४३१।।

अर्थ – नव अनुदिश तथा पंच अनुत्तरवासी देव संपूर्ण लोकनाली को अवधि द्वारा देखते हैं। अपने क्षेत्र में अर्थात् अपने-अपने विषयभूत क्षेत्र के प्रदेशसमूह में से एक प्रदेश घटाना चाहिये और अपने-अपने अवधिज्ञानावरण कर्मद्रव्य में एक बार ध्रुवहार का भाग देना चाहिये। ऐसा तब तक करना चाहिये, जबतक प्रदेशसमूह की समाप्ती हो। इससे देवों में अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य में भेद सूचित किया है ।।४३२।।

गाथा ४३०-४३२ और ४३५-४३६ का चार्ट-

वैमानिक देव में अवधिज्ञान

नाम	क्षेत्र		काल
सौधर्म–ऐशान	कुछ अधिक १$\frac{१}{२}$ राजू	(नीचे – १ नरक)	असं. करोड़ वर्ष
सानत्कुमार – माहेन्द्र	४ राजू (३+१)	(नीचे – २ नरक)	यथायोग्य पल्य/ असं.
ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	५$\frac{१}{२}$ राजू (३$\frac{१}{२}$+२)	(नीचे – ३ नरक)	
लान्तव–कापिष्ठ	६ राजू (४+२)		यथायोग्य कुछ कम पल्य
शुक्र – महाशुक्र	७$\frac{१}{२}$ राजू (४$\frac{१}{२}$+३)	(नीचे – ४ नरक)	
शतार – सहस्रार	८ राजू (५+३)		
आनत – प्राणत	९$\frac{१}{२}$ राजू (५$\frac{१}{२}$+४)	(नीचे – ५ नरक)	
आरण – अच्युत	१० राजू (६+४)		
९ ग्रैवेयक	कुछ अधिक ११ राजू (६+५)	(नीचे – ६ नरक)	
९ अनुदिश	कुछ अधिक १३ राजू	(नीचे – लोक का अंत)	
५ अनुत्तर	कुछ कम १४ राजू		

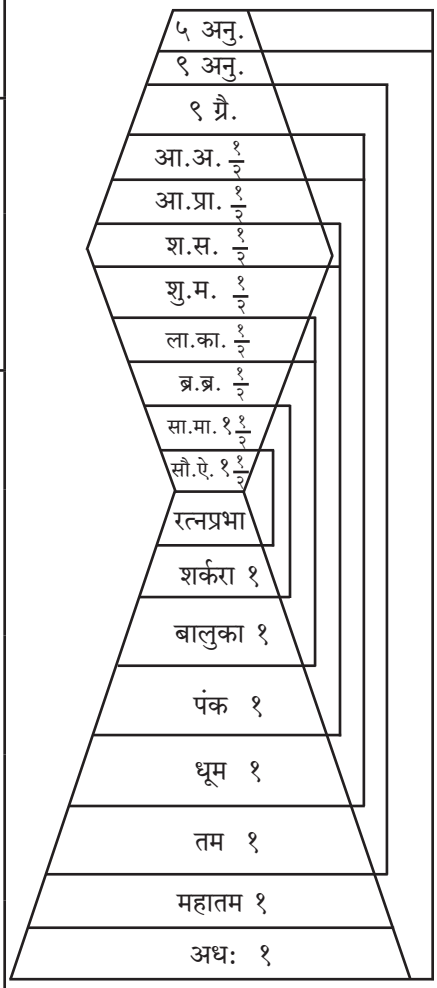

कप्पसुराणं सगसग ओहीखेत्तं विविस्ससोवचयं।
ओहीदव्वपमाणं, संठाविय धुवहरेण हरे।।४३३।।
सगसगखेत्तपदेससलायपमाणं समप्पदे जाव।
तत्थतणचरिमखंडं, तत्थतणोहिस्स दव्वं तु।।४३४।।

अर्थ –कल्पवासी देवों के अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र को और अपने-अपने विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरण द्रव्य को स्थापित करके क्षेत्र में से एक प्रदेश कम करना और द्रव्य में एक बार ध्रुवहार का भाग देना। ऐसा तब तक करना चाहिये, जब तक अपने-अपने अवधिज्ञान के क्षेत्र संबंधी प्रदेशों का परिमाण समाप्त हो। ऐसा करने से जो अवधिज्ञानावरण कर्म द्रव्य का अन्तिम खण्ड शेष रहता है, उतना ही उस अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य का परिमाण होता है ।।४३३-४३४।।

वैमानिक देवों में अवधिज्ञान के विषयभूत द्रव्य निकालने का सूत्र

$$\frac{\text{अपना-अपना विस्रसोपचय रहित अवधिज्ञानावरण कर्म का कुल द्रव्य}}{(\text{ध्रुवहार})^{\text{अपने-अपने अवधिज्ञान के विषयभूत आकाश प्रदेशों की संख्या}}}$$

जैसे –

सौधर्म-ऐशान का विषयभूत द्रव्य = $\frac{\text{सौ.ऐ.के विस्र. रहित अवधिज्ञानावरण कर्म का कुल द्रव्य}}{(\text{ध्रुवहार})^{\text{१}\frac{\text{१}}{\text{२}}\text{ राजूघन के प्रदेशों की संख्या}}}$

नोट –

ऊपर-ऊपर के देवों में अवधिज्ञान का क्षेत्र अधिक-? है। अतएव अधिक-? बार ध्रुवहार का भाग अवधिज्ञानावरण कर्म को दिया जाने से ऊपर-ऊपर के देवों का अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य सूक्ष्म-? होता चला जाता है।

सोहम्मीसाणाणमसंखेज्जाओ हु वस्सकोडीओ।
उवरिमकप्पचउक्के पल्लासंखेज्जभागो दु।।४३५।।
तत्तो लांतवकप्पप्पहुदी सव्वत्थसिद्धिपेरंतं।
किंचूणपल्लमेत्तं, कालपमाणं जहाजोग्गं।।४३६।।

अर्थ – सौधर्म और ऐशान स्वर्ग के देवों के अवधि का काल असंख्यात कोटि वर्ष है। इसके ऊपर सानत्कुमार-माहेन्द्र, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्पवाले देवों के अवधि का काल यथायोग्य पल्य का असंख्यातवाँ भाग है। इसके ऊपर लान्तव स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्तवाले देवों के अवधि का काल यथायोग्य कुछ कम पल्यप्रमाण है ।।४३५-४३६।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या १९९ गाथा नं. ४३० का चार्ट *देखें*

जोइसियंताणोहीखेत्ता उत्ता ण होंति घणपदरा।
कप्पसुराणं च पुणो, विसरित्थं आयदं होदि।।४३७।।

अर्थ – भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी इनके अवधि के क्षेत्र का प्रमाण जो पहले बताया गया है वह विसदृश है, बराबर चौकोर घनरूप नहीं है, उनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई का प्रमाण आगम में सर्वथा समान नहीं बताया गया है। तिर्यक् अधिक और ऊर्ध्वाध: कम है। कल्पवासी देवों के अवधि का क्षेत्र आयतचतुरस्र अर्थात् लम्बाई में ऊर्ध्वअध: अधिक और चौड़ाई में अर्थात् तिर्यक् थोड़ा है। शेष मनुष्य तिर्यञ्च नारकी इनके अवधि का विषयभूत क्षेत्र बराबर चौकोर घनरूप है ।।४३७।।

गाथा ४३७ और ४२९ का चार्ट–

चारों गतियों में अवधिज्ञान की दिशा

गति	दिशा
देव –	
भवनत्रिक	ऊपर–नीचे थोड़ा , चौड़ा बहुत — चौकोर घनरूप नहीं
भवनवासी	ऊँचाई–स्वस्थान से मेरु शिखर तक — चौकोर घनरूप नहीं
वैमानिक	लम्बा बहुत , चौड़ा कम – विसदृश आयत चतुरस्र
शेष ३ गति	बराबर चौकोर घनरूप

चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
मणपज्जवं ति उच्चइ, जं जाणइ तं खु णरलोए।।४३८।।
मणपज्जवं च दुविहं, उजुविउलमदि त्ति उजुमदी तिविहा।
उजुमणवयणे काए, गदत्थविसया त्ति णियमेण।।४३९।।
विउलमदी वि य छद्धा, उजुगाणुजुवयणकायचित्तगयं।
अत्थं जाणदि जम्हा, सद्दत्थगया हु ताणत्था।।४४०।।
तियकालविसयरूविं, चिंतियं वट्टमाणजीवेण।
उजुमदिणाणं जाणदि, भूदभविस्सं च विउलमदी।।४४१।।
सव्वंगअंगसंभवचिण्हादुप्पज्जदे जहा ओही।
मणपज्जवं च दव्वमणादो उप्पज्जदे णियमा।।४४२।।
हिदि होदि हु दव्वमणं, वियसियअट्ठच्छदारविंदं वा।
अंगोवंगुदयादो, मणविग्गणखंधदो णियमा।।४४३।।

णोइंदियं ति सण्णा, तस्स हवे सेसइंदियाणं वा।
वत्तत्ताभावादो, मणमणपज्जं च तत्थ हवे।।४४४।।
मणपज्जवं च णाणं, सत्तसु विरदेसु सत्तइड्ढीणं।
एगादिजुदेसु हवे, वड्ढंतविसिट्ठचरणेसु।।४४५।।
इंदियणोइंदियजोगादिं पेक्खित्तु उजुमदी होदि।
णिरवेक्खिय विउलमदी, ओहिं वा होदि णियमेण।।४४६।।
पडिवादी पुण पढमा, अप्पडिवादी हु होदि विदिया हु।
सुद्धो पढमो बोहो सुद्धतरो विदियबोहो दु।।४४७।।
परमणसि ट्ठियमट्ठं, ईहामदिणा उजुट्ठियं लहिय।
पच्छा पच्चक्खेण य, उजुमदिणा जाणदे णियमा।।४४८।।
चिंतियमचिंतियं वा, अद्धं चिंतियमणेयभेयगयं।
ओहिं वा विउलमदी, लहिऊण विजाणए पच्छा।।४४९।।
दव्वं खेत्तं कालं, भावं पडि जीवलक्खियं रूविं।
उजुविउलमदी जाणदि, अवरवरं मज्झिमं च तहा।।४५०।।

अर्थ – चिंतित और अचिंतित और अर्धचिंतित – ऐसे जो अनेक भेदवाले अन्य जीव के मन में प्राप्त हुये अर्थ, उसको जो जाने, वह मन:पर्ययज्ञान है। मन: अर्थात् अन्य जीव के मन में चिंतवनरूप प्राप्त हुआ अर्थ, उसको पर्येति अर्थात् जाने, वह मन:पर्यय है, ऐसा कहते हैं। सो इस ज्ञान की उत्पत्ति मनुष्यक्षेत्र में ही है, बाह्य नहीं है ।।४३८।।

अर्थ – सामान्य की अपेक्षा मन:पर्यय एक प्रकार का है और विशेष भेदों की अपेक्षा दो प्रकार का है – ऋजुमति एवं विपुलमति। ऋजुमति के भी तीन भेद हैं–ऋजुमनोगतार्थविषयक, ऋजुवचनगतार्थविषयक, ऋजुकायगतार्थविषयक। परकीयमनोगत होने पर भी जो सरलतया मन वचन काय के द्वारा किया गया हो ऐसे पदार्थ को विषय करने वाले ज्ञान को ऋजुमति कहते हैं। अतएव सरल मन वचन काय के द्वारा किये हुए पदार्थ को विषय करने की अपेक्षा ऋजुमति के पूर्वोक्त तीन भेद हैं ।।४३९।।

अर्थ – विपुलमति के छह भेद हैं–ऋजु मन वचन काय के द्वारा किये गये परकीय मनोगत पदार्थों को विषय करने की अपेक्षा तीन भेद और कुटिल मन, वचन, काय के द्वारा किये हुए परकीय मनोगत पदार्थों को विषय करने की अपेक्षा तीन भेद। ऋजुमति तथा विपुलमति मन:पर्यय के विषय शब्दगत तथा अर्थगत दोनों ही प्रकार के होते हैं। कोई आकर पूछे तो उसके मन की बात मन:पर्ययज्ञानी जान सकता है। कदाचित् कोई न पूछे, मौनपूर्वक स्थित हो तो भी उसके मनस्थ विषय को वह जान सकता है ।।४४०।।

अर्थ – त्रिकालसंबंधी पुद्गल द्रव्य को वर्तमान काल में कोई जीव चिंतवन करता है, उस पुद्गल द्रव्य को ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान जानता है। पुनश्च त्रिकाल संबंधी पुद्गल द्रव्य को किसी जीव ने अतीत काल में चिंतवन किया था या वर्तमान काल में चिंतवन कर रहा है वा अनागत काल में चिंतवन करेगा ऐसे पुद्गल द्रव्य को विपुलमति मन:पर्ययज्ञान जानता है ।।४४१।।

अर्थ – जैसे पहले कहा था, भवप्रत्यय अवधिज्ञान सर्व अंग से उपजता है और गुणप्रत्यय शंखादिक चिह्नों से उपजता है; तैसे मन:पर्ययज्ञान द्रव्यमन से उपजता है। नियम से अन्य अंगों के प्रदेशों में नहीं उपजता ।।४४२।।

अर्थ – वह द्रव्यमन हृदयस्थान में प्रफुल्लित आठ पंखुड़ी के कमल के आकार का, अंगोपांग नामकर्म के उदय से, तेइस जाति की पुद्गल वर्गणाओं में से मनोवर्गणा नामक स्कंधों से उत्पन्न होता है, ऐसा नियम है ।।४४३।।

अर्थ – इस द्रव्यमन की नोइन्द्रिय संज्ञा भी है, क्योंकि दूसरी इन्द्रियों की तरह यह व्यक्त नहीं है। इस द्रव्यमन के निमित्त से भावमन तथा मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है ।।४४४।।

अर्थ – प्रमत्तादि क्षीणकषाय पर्यन्त सात गुणस्थानों में से किसी एक गुणस्थानवाले के, इस पर भी सात ऋद्धियों में से कम-से-कम किसी भी एक ऋद्धि को धारण करनेवाले के, ऋद्धिप्राप्त में भी वर्धमान तथा विशिष्ट चारित्र को धारण करनेवाले के ही यह मन:पर्ययज्ञान उत्पन्न होता है ।।४४५।।

अर्थ – ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान है, वह अपने वा अन्य जीव के स्पर्शनादिक इन्द्रिय और नोइन्द्रिय-मन और मन, वचन, काय योग इनके सापेक्ष उपजता है। पुनश्च विपुलमति मन:पर्यय है, वह अवधिज्ञान की तरह उनकी अपेक्षा बिना ही नियम से उपजता है ।।४४६।।

अर्थ – ऋजुमति प्रतिपाती है, क्योंकि ऋजुमतिवाला उपशमक तथा क्षपक दोनों श्रेणियों पर चढता है। उसमें यद्यपि क्षपक की अपेक्षा ऋजुमतिवाले का पतन नहीं होता तथापि उपशम श्रेणी की अपेक्षा चारित्र मोहनीय कर्म का उद्रेक हो आने के कारण कदाचित् उसका पतन भी संभव है। विपुलमति सर्वथा अप्रतिपाती है तथा ऋजुमति शुद्ध है और विपुलमति इससे भी शुद्ध होता है अर्थात् दोनों में विपुलमति की विशुद्धि प्रतिपक्षी कर्म के क्षयोपशम विशेष के कारण अधिक है ।।४४७।।

अर्थ – पर जीव के मन में सरलपने चिंतवनरूप स्थित जो पदार्थ, उसे पहले तो ईहा नामक मतिज्ञान से प्राप्त होकर ऐसा विचार करता है कि अरे ! इसके मन में क्या है ? पश्चात् ऋजुमति मन:पर्ययज्ञान से उस अर्थ को प्रत्यक्षपने से ऋजुमति मन:पर्ययज्ञानी जानता है, ऐसा नियम है ।।४४८।।

अर्थ – चिन्तित, अचिन्तित अथवा अर्धचिन्तित ऐसा दूसरे के मन में स्थित अनेक भेद सहित अर्थ उसको पहले प्राप्त होकर उसके मन में यह है ऐसा जानता है। पश्चात् अवधिज्ञान की तरह विपुलमति मन:पर्ययज्ञान उस अर्थ को प्रत्यक्ष जानता है ।।४४९।।

अर्थ – द्रव्य प्रति, क्षेत्र प्रति, काल प्रति वा भाव प्रति द्वारा लक्षित अर्थात् चिंतवन किया हुआ जो रूपी पुद्गल द्रव्य वा पुद्गल के संबंध से युक्त संसारी जीव द्रव्य उसको जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद से ऋजुमति वा विपुलमति मन:पर्ययज्ञान जानता है ।।४५०।।

मन:पर्यय ज्ञान

↓

द्रव्य,क्षेत्र,काल,भाव की मर्यादा लिए दूसरे के मन में स्थित रूपी पदार्थ को जाने, जिसका –

भूत में	**भविष्य में**	**वर्तमान में**
↓	↓	↓
चिंतन किया हो	चिंतन किया जायेगा	चिंतन किया जा रहा है, अर्थात् जो सम्पूर्ण चिंतया नहीं
↓	↓	↓
चिंतित	अचिंतित	अर्द्धचिंतित

उत्पत्ति स्थान	द्रव्यमन स्थित आत्मप्रदेश
कब जान सकते?	किसी के द्वारा पूछने पर अथवा बिना पूछे भी
स्वामी	* छठे से बारहवें गुणस्थानवर्ती संयमी हो, * ७ ऋद्धियों में से कम-से-कम १ ऋद्धिधारी हो * वर्धमान चारित्र सहित हो, एवं
विषय	* पुद्गल द्रव्य * पुद्गल के संबंध से युक्त संसारी जीव

गाथा ४४३ और ४४४ का चार्ट–

द्रव्यमन का स्वरूप

स्थान	हृदयस्थान
आकार	विकसित आठ पंखुड़ी के कमलरूप
निमित्त	अंगोपांग नामकर्म का उदय
रचना	पौद्गलिक मनोवर्गणारूप पुद्गल स्कंध की
अन्य नाम	नोइन्द्रिय(किंचित् इन्द्रिय-स्पर्शनादि इन्द्रियों के समान प्रकट (व्यक्त) नहीं)
इसके द्वारा ज्ञानों की उत्पत्ति	* मन:पर्यय * भावमन

गाथा ४३९-४४१ और ४४६-४४९ का चार्ट-

मन:पर्यय ज्ञान के भेद

	ऋजुमति	विपुलमति
स्वरूप	सरल मन स्थित पदार्थ को जाने	सरल व कुटिल मन स्थित पदार्थ को जाने
भेद	३ भेद — सरल मन, सरल वचन, सरल काय को प्राप्त अर्थ को जानने वाला	६ भेद — सरल मन, कुटिल मन, सरल वचन, कुटिल वचन, सरल काय, कुटिल काय को प्राप्त अर्थ को जानने वाला
किसे जानते	* वर्तमान में चिंतित त्रिकाल विषयक पदार्थ को *दूसरे के मन में चिंतवनरूप स्थित पदार्थ को	* भूत, भविष्य, वर्तमानकाल में चिंतित त्रिकाल संबंधी पदार्थ को * दूसरे के मन में स्थित चिंतित, अचिंतित, अर्द्धचिंतित पदार्थ को
सापेक्षता	अपने व अन्य की इन्द्रिय, मन, योगों के सापेक्ष	अवधिज्ञान की तरह उनकी अपेक्षा बिना
प्रतिपात (विशुद्ध परिणामों में गिरावट)	प्रतिपाती	अप्रतिपाती
विशुद्धता	विशुद्ध	विशुद्धतर
किस पूर्वक होता है	ईहा मतिज्ञान पूर्वक	मतिज्ञान पूर्वक होने का नियम नहीं

अवरं दव्वमुरालियसरीरणिज्झिण्णसमयबद्धं तु।
चक्खिंदियणिज्झण्णं, उक्कस्सं उजुमदिस्स हवे।।४५१।।
मणदव्ववग्गणाणमणंतिमभागेण उजुगउक्कस्सं।
खंडिदमेत्तं होदि हु, विउलमदिस्सावरं दव्वं।।४५२।।
अट्ठण्हं कम्माणं, समयपवद्धं विविस्ससोवचयम्।
धुवहारेणिगिवारं, भजिदे विदियं हवे दव्वं।।४५३।।
तव्विदियं कप्पाणमसंखेज्जाणं च समयसंखसमं।
धुवहारेणवहरिदे, होदि हु उक्कस्सयं दव्वं।।४५४।।
गाउयपुधत्तमवरं, उक्कस्सं होदि जोयणपुधत्तं।
विउलमदिस्स य अवरं, तस्स पुधत्तं वरं खु णरलोयं।।४५५।।

णरलोएत्ति य वयणं, विक्खंभणियामयं ण वट्टस्स।
जम्हा तग्घणपदरं, मणपज्जवखेत्तमुद्दिट्ठं।।४५६।।
दुग-तिगभवा हु अवरं, सत्तट्ठभवा हवंति उक्कस्सं।
अड-णवभवा हु अवरमसंखेज्जं विउलउक्कस्सं।।४५७।।
आवलिअसंखभागं, अवरं च वरं च वरमसंखगुणं।
तत्तो असंखगुणिदं, असंखलोगं तु विउलमदी।।४५८।।
मज्झिम दव्वं खेत्तं, कालं भावं च मज्झिमं णाणं।
जाणदि इदि मणपज्जवणाणं कहिदं समासेण।।४५९।।

अर्थ – ऋजुमति का जघन्य द्रव्य औदारिक शरीर के निर्जीर्ण समयप्रबद्धप्रमाण है तथा उत्कृष्ट द्रव्य चक्षुरिन्द्रिय के निर्जरा द्रव्यप्रमाण है ।।४५१।।

अर्थ – मनोद्रव्यवर्गणा के जितने विकल्प हैं, उसमें अनंत का भाग देने से लब्ध एक भागप्रमाण ध्रुवहार का, ऋजुमति के विषयभूत उत्कृष्ट द्रव्यप्रमाण में भाग देने से जो लब्ध आवे उतने द्रव्य स्कन्ध को विपुलमति जघन्य की अपेक्षा से जानता है ।।४५२।।

अर्थ – विस्रसोपचय से रहित आठ कर्मों के समयप्रबद्ध का जो प्रमाण है उसमें एक बार ध्रुवहार का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना विपुलमति के द्वितीय द्रव्य का प्रमाण होता है ।।४५३।।

अर्थ – असंख्यात कल्पों के जितने समय हैं उतनी बार विपुलमति के द्वितीय द्रव्य में ध्रुवहार का भाग देने से विपुलमति के उत्कृष्ट द्रव्य का प्रमाण निकलता है ।।४५४।।

अर्थ – ऋजुमति का जघन्य क्षेत्र गव्यूतिपृथक्त्व-दो तीन कोस और उत्कृष्ट योजनपृथक्त्व - सात आठ योजन है। विपुलमति का जघन्य क्षेत्र पृथक्त्वयोजन - आठ नव योजन तथा उत्कृष्ट क्षेत्र मनुष्यलोक प्रमाण है ।।४५५।।

अर्थ – मन:पर्यय के उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण जो नरलोक प्रमाण कहा है सो यहाँ नरलोक इस शब्द से मनुष्यलोक का विष्कम्भ (व्यास) ग्रहण करना चाहिये न कि वृत्त, क्योंकि मानुषोत्तर पर्वत के बाहर चारों कोणों में स्थित तिर्यंच अथवा देवों के द्वारा चिंतित पदार्थ को भी विपुलमति जानता है; कारण यह है कि मन:पर्ययज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र ऊँचाई में कम होते हुए भी समचतुरस्र घनप्रतररूप पैंतालीस लाख योजन प्रमाण है ।।४५६।।

अर्थ – काल की अपेक्षा से ऋजुमति का विषयभूत जघन्य काल अतीत और अनागत दो तीन भव तथा उत्कृष्ट सात आठ भव है। इसी प्रकार विपुलमति का जघन्य काल अतीत और अनागत आठ नौ भव तथा उत्कृष्ट पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण भव हैं ।।४५७।।

अर्थ – भाव की अपेक्षा से ऋजुमति का जघन्य तथा उत्कृष्ट विषय आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण है, तथापि जघन्य प्रमाण से उत्कृष्ट प्रमाण असंख्यात गुणा है। विपुलमति का जघन्य प्रमाण ऋजुमति के उत्कृष्ट विषय से असंख्यातगुणा है और उत्कृष्ट विषय असंख्यात लोक प्रमाण है ।।४५८।।

अर्थ – इसप्रकार द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जघन्य और उत्कृष्ट प्रमाण बताया। इनके मध्य के जितने भेद हैं उनको मन:पर्ययज्ञान के मध्यम भेद विषय करते हैं। इस तरह संक्षेप से मन:पर्ययज्ञान का निरूपण किया ।।४५९।।

द्रव्यादि जघन्य-उत्कृष्ट चतुष्टय

भेद	द्रव्य	क्षेत्र	काल (अतीत अनागत रूप भव)	भाव
ऋजुमति मन:पर्यय				
जघन्य	औदारिक शरीर के निर्जरारूप समयप्रबद्ध	पृथक्त्व कोस (२–३ कोस)	(अतीत अनागत) २–३ भव	आवली / असं.
मध्यम	0 0 0 0	0 0 0 0	0 0 0 0	0 0 0 0
उत्कृष्ट	चक्षु इन्द्रिय की निर्जरा मात्र द्रव्य	पृथक्त्व योजन (७–८ योजन)	७–८ भव	आवली / असं. (ज. से असं.गुणा)
विपुलमति मन:पर्यय				
जघन्य	ऋजुमति का उ. द्रव्य / ध्रुवहार (ध्रुवहार= मनोवर्गणा के कुल भेद / अनंत)	पृथक्त्व योजन (८–९ योजन)	८–९ भव	आवली / असं. (ऋजु. के उ. से असं. गुणा)
द्वितीय भेद	विस्र. रहित ८ कर्मों के समूहरूप समयप्रबद्ध / ध्रुवहार	0 0 0 0	0 0 0 0	0 0 0 0
मध्यम	0 0 0	0 0 0	0 0 0	0 0 0
उत्कृष्ट	विपुल. का द्वितीय भेद / (ध्रुवहार)$^{\text{असं. कल्पकाल के समय}}$	मनुष्य लोक → ४५ लाख योजन का समान चौकोर घनरूप प्रतर क्षेत्र	पल्य / असं.	असं. लोक

विपुलमति मनःपर्यय ज्ञान का उत्कृष्ट क्षेत्र

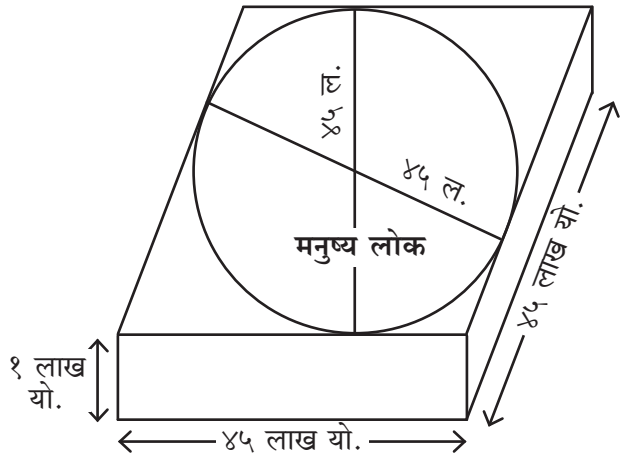

संपुण्णं तु समग्गं, केवलमसवत्त सव्वभावगयं।
लोयालोयवितिमिरं, केवलणाणं मुणेदव्वं।।४६०।।

अर्थ – यह केवलज्ञान सम्पूर्ण, समग्र, केवल, प्रतिपक्षरहित, सर्वपदार्थगत और लोकालोक में अन्धकार रहित होता है।।४६०।।

केवलज्ञान

सम्पूर्ण	जीव द्रव्य के शक्तिरूप सर्व ज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों की व्यक्तता
समग्र	ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के सर्वथा नाश से अप्रतिहतशक्ति एवं निश्चल
केवल	इन्द्रियों की सहायता से रहित
असपत्न (प्रतिपक्ष रहित)	प्रतिपक्षी ४ घातिकर्म के नाश से अनुक्रमरहित
सर्वपदार्थगत	सकल पदार्थों को प्राप्त
लोकालोक में अंधकार रहित	लोकालोक में अज्ञान–अंधकाररहित प्रकाशमान

ज्ञान मार्गणा - संख्या

चदुगदिमदिसुदबोहा, पल्लासंखेज्जया हु मणपज्जा।
संखेज्जा केवलिणो, सिद्धादो होंति अतिरित्ता।।४६१।।
ओहिरहिदा तिरिक्खा, मदिणाणिअसंखभागगा मणुगा।
संखेज्जा हु तदूणा, मदिणाणी ओहिपरिमाणं।।४६२।।

अर्थ – चारों गति संबंधी मतिज्ञानियों का अथवा श्रुतज्ञानियों का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग

प्रमाण है, मन:पर्ययज्ञान वाले कुल संख्यात हैं तथा केवलियों का प्रमाण सिद्धराशि से कुछ अधिक है ।।४६१।।

अर्थ – अवधिज्ञान रहित तिर्यञ्च मतिज्ञानियों की संख्या के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं और अवधिज्ञान रहित मनुष्य संख्यात हैं तथा इन दोनों ही राशियों को मतिज्ञानियों के प्रमाण में से घटाने पर जो शेष रहे उतना ही अवधिज्ञानियों का प्रमाण है ।।४६२।।

५ सम्यग्ज्ञानी जीवों की संख्या

मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय	केवल
पल्य/असं.		मतिज्ञानी – अवधिज्ञान से रहित तिर्यंच एवं मनुष्य	संख्यात मनुष्य	अनंत
		= मतिज्ञानी – (मतिज्ञानी+संख्यात/असं.)		= सिद्ध+अरहंत(१३ व १४ गुणस्थानवर्ती)
				= सिद्धों से कुछ अधिक

पल्लासंखघणंगुलहदसेणितिरिक्खगदिविभंगजुदा।
णरसहिदा किंचूणा, चदुगदिवेभंगपरिमाणं।।४६३।।
सण्णाणरासिपंचयपरिहीणो सव्वजीवरासी हु।
मदिसुद–अण्णाणीणं, पत्तेयं होदि परिमाणं।।४६४।।

अर्थ – पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित घनांगुल का और जगच्छ्रेणी का गुणा करने से जो राशि उत्पन्न हो उतने तिर्यञ्च और संख्यात मनुष्य, घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण सम्यक्त्व रहित नारकी तथा सम्यग्दृष्टियों के प्रमाण से रहित सामान्य देवराशि, इन चारों राशियों के जोड़ने से जो प्रमाण हो उतने विभंगज्ञानी हैं ।।४६३।।

अर्थ – पाँच सम्यग्ज्ञानी जीवों के प्रमाण को (केवलियों के प्रमाण से कुछ अधिक) सम्पूर्ण जीवराशि के प्रमाण में से घटाने पर जो शेष रहे उतने कुमतिज्ञानी तथा उतने ही कुश्रुतज्ञानी जीव हैं ।।४६४।।

३ मिथ्याज्ञानी जीवों की संख्या

कुमति	कुश्रुत	विभंग
अनंत		चारों गतियों के विभंगज्ञानियों का जोड़ –
= कुल जीवराशि – ५ सम्यग्ज्ञानी जीव		= देव ⟶ कुल देव–सम्यग्दृष्टि देव + नारकी ⟶ कुल नारकी–सम्यग्दृष्टि नारकी + मनुष्य ⟶ संख्यात + तिर्यंच ⟶ (पल्य/असं. × घनांगुल) × जगतश्रेणी
= संसारी जीवराशि से कुछ कम		= विभंगज्ञानी देवों से कुछ अधिक

अधिकार १३ - संयममार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
संयम - लक्षण, उत्पत्तिकारण, भेद एवं स्वामी	४६५-४६९	५	२१०
सामायिकादि ५ प्रकार का संयम	४७०-४७५	६	२११
देशविरत	४७६-४७७	२	२१४
असंयत	४७८-४७९	२	२१५
संख्या	४८०-४८१	२	२१६
कुल गाथाएँ		**१७**	

वदसमिदिकसायाणं, दंडाण तहिंदियाण पंचण्हं।
धारणपालणणिग्गहचागजओ संजमो भणिओ।।४६५।।

अर्थ - अहिंसा, अचौर्य, सत्य, शील (ब्रह्मचर्य), अपरिग्रह इन पाँच महाव्रतों का धारण करना; ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, उत्सर्ग इन पाँच समितियों का पालना; क्रोधादि चार प्रकार की कषायों का निग्रह करना; मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग; तथा पाँच इन्द्रियों का जय - इसको संयम कहते हैं। अतएव संयम के पाँच भेद हैं ।।४६५।।

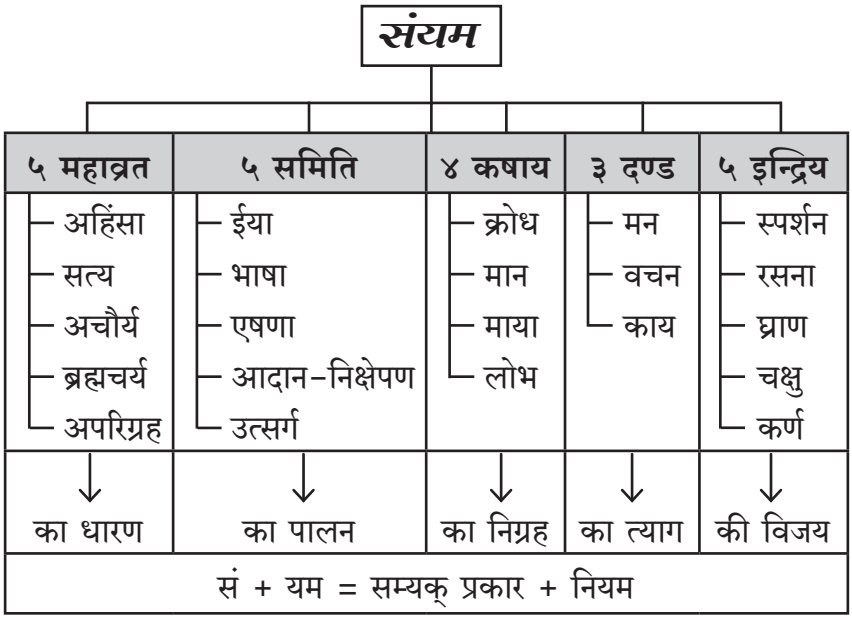

बादरसंजलणुदये, सुहुमुदये समखये य मोहस्स।
संजमभावो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।४६६।।
बादरसंजलणुदये, बादरसंजमतियं खु परिहारो।
पमदिदरे सुहुमुदये, सुहुमो संजमगुणो होदि।।४६७।।
जहखादसंजमो पुण, उवसमदो होदि मोहणीयस्स।
खयदो वि य सो णियमा, होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।४६८।।
तदियकसायुदयेण य, विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं।
विदियकसायुदयेण य, असंजमो होदि णियमेण।।४६९।।
संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं।
जीवो समुव्वहंतो, सामाइयसंजमो होदि।।४७०।।
छेत्तूण य परियायं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं।
पंचजमे धम्मे सो, छेदोवट्ठावगो जीवो।।४७१।।
पंचसमिदो तिगुत्तो, परिहरइ सदा वि जो हु सावज्ज।
पंचेक्कजमो पुरिसो, परिहारयसंजदो सो हु।।४७२।।
तीसं वासो जम्मे, वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले।
पच्चक्खाणं पढिदो, संझूणदुगाउयविहारो।।४७३।।
अणुलोहं वेदंतो, जीवो उवसामगो व खवगो वा।
सो सुहुमसांपराओ, जहखादेणूणओ किंचि।।४७४।।
उवसंते खीणे वा, असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि।
छदुमट्ठो व जिणो वा, जहखादो संजदो सो दु।।४७५।।

अर्थ – बादर संज्वलन के उदय से अथवा सूक्ष्मलोभ के उदय से और मोहनीय कर्म के उपशम से अथवा क्षय से नियम से संयमरूप भाव उत्पन्न होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।४६६।।

अर्थ – जो संयम के विरोधी नहीं है ऐसे बादर संज्वलन कषाय के देशघाति स्पर्धको के उदय से सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ये तीन संयम-चारित्र होते हैं। इनमें से परिहारविशुद्धि संयम तो प्रमत्त और अप्रमत्त में ही होता है, किन्तु सामायिक और छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरणपर्यन्त होते हैं। सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त संज्वलन लोभ के उदय से सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती संयम होता है ।।४६७।।

अर्थ – यथाख्यात संयम नियम से मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से होता है ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।४६८।।

अर्थ – तीसरी प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से विरताविरत=देशविरत=मिश्रविरत= संयमासंयम नामका पाँचवाँ गुणस्थान होता है और दूसरी अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से असंयम (संयम का अभाव) होता है ।।४६९।।

अर्थ – उक्त व्रतधारण आदिक पाँच प्रकार के संयम में संग्रह नय की अपेक्षा से एकयम-भेदरहित होकर अर्थात् अभेद रूप से ''मैं सर्व सावद्य का त्यागी हूँ'' इस तरह से जो सम्पूर्ण सावद्य का त्याग करना इसको सामायिक संयम कहते हैं। यह संयम अनुपम है तथा दुर्लभ है और दुर्धर्ष है। इसके पालन करनेवाले को सामायिक संयमी कहते हैं ।।४७०।।

अर्थ – प्रमाद के निमित्त से सामायिकादि से च्युत होकर जो सावद्य क्रिया के करनेरूप सावद्य पर्याय होती है उसका प्रायश्चित्त विधि के अनुसार छेदन करके जो जीव अपनी आत्मा को व्रत धारणादिक पाँच प्रकार के संयमरूप धर्म में स्थापन करता है उसको छेदोपस्थापनसंयमी कहते हैं ।।४७१।।

अर्थ – जो पाँच समिति और तीन गुप्तियों से युक्त होकर सदा ही हिंसा रूप सावद्य का परिहार करता है, वह सामायिक आदि पाँच संयमों में से परिहारविशुद्धि नामक संयम को धारण करने से परिहारविशुद्धि संयमी होता है ।।४७२।।

अर्थ – जन्म से लेकर तीस वर्ष तक सदा सुखी रहकर पुन: दीक्षा ग्रहण करके श्री तीर्थंकर भगवान के पादमूल में आठ वर्ष तक प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व का अध्ययन करने वाले जीव के यह संयम होता है। इस संयमवाला जीव तीन संध्याकालों को छोड़कर प्रतिदिन दो कोस पर्यन्त गमन करता है, रात्रि को गमन नहीं करता और इसके वर्षाकाल में गमन करने का या न करने का कोई नियम नहीं है ।।४७३।।

अर्थ – जिस उपशमश्रेणी वाले अथवा क्षपकश्रेणी वाले जीव के अणुमात्र लोभ-सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त लोभकषाय के उदय का अनुभव होता है उसको सूक्ष्मसांपरायसंयमी कहते हैं। इसके परिणाम यथाख्यात चारित्रवाले जीव के परिणामों से कुछ ही कम होते हैं ।।४७४।।

अर्थ – अशुभ मोहनीय कर्म के उपशान्त या क्षय हो जाने पर उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ अथवा सयोगी और अयोगी जिन यथाख्यात संयमी होते हैं। समस्त मोहनीय कर्म के उपशम अथवा क्षय से यथावस्थित आत्मस्वभाव की अवस्थारूप लक्षणवाला यथाख्यात चारित्र कहलाता है ।।४७५।।

गाथा ४६६-४७६, ४७८ और ४८०-४८१ का चार्ट-

संयम मार्गणा के भेद

संयम

	सामायिक	छेदोपस्थापना	परिहार-विशुद्धि	सूक्ष्म-साम्पराय	यथाख्यात	देशसंयम	असंयम
स्वरूप	समस्त सावद्य (हिंसा सहित) योग के त्यागरूप अभेद संयम	प्रमाद के कारण पहले हुए सावद्य का प्रायश्चित्त विधि से छेदन करके, अपनी आत्मा को व्रतों में स्थापित करना	सदाकाल हिंसारूप सावद्य के परिहार (त्याग) से प्राप्त विशिष्ट शुद्धता	सूक्ष्म लोभ कषाय का वेदन करनेवाला उपशमक अथवा क्षपक जीव	मोहनीय के संपूर्ण क्षय अथवा उपशम से आत्मा का जैसा स्वभाव है वैसा होना	* सम्यग्दर्शन के साथ १२ व्रतों से युक्तपना * अन्य नाम - विरताविरत, देशविरत, संयमासंयम	प्राणीसंयम और इन्द्रियसंयम से रहितपना
गुणस्थान	६-९		६-७	१०	* उपशम यथाख्यात-११ * क्षायिक यथाख्यात -१२ से १४	५	१-४
कौन-सी कषाय का उदय	बादर संज्वलन			सूक्ष्म संज्वलन लोभ	किसी का नहीं (सर्व मोहनीय का उपशम/क्षय)	प्रत्याख्यानावरण	अप्रत्याख्यानावरण (अनंतानुबंधी का भी संभव हैं)
जीवों की संख्या	६+७+८+९ गुणस्थानवर्ती =५९३९८२०६+२९६९९१०३ +८९७+८९७ = ८९०९९१०३		६९९७	उपशमक +क्षपक =२९९+५९८ = ८९७	११+१२+१३+१४ गुणस्थानवर्ती = २९९+५९८ +८९८५०२+५९८ = ८९९९९७	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$	संसारी-पूर्व में कहे छह संयम के धारक जीव = कुछ कम संसारी जीव = अनंत

गाथा ४७३ का चार्ट–

परिहारविशुद्धि चारित्र

निम्न सभी विशेषताओं से युक्त जीव के ही परिहारविशुद्धि चारित्र हो सकता है –	
✲ जन्म से ३० वर्ष तक खान–पानादि से सुखी रहने के बाद	
✲ दीक्षा अंगीकार कर	
✲ पृथक्त्व (८) वर्ष तीर्थंकर के पादमूल में रहकर	
✲ नवमें प्रत्याख्यान नामक पूर्व का अध्ययन करने वाला जीव।	
इस चारित्र के धारक जीव –	
नियम से	**काल**
✲ २ कोस प्रतिदिन विहार करते है।	✲ जघन्य – अन्तर्मुहूर्त
परन्तु	✲ उत्कृष्ट – ३८ वर्ष कम एक कोटि पूर्व
✲ ३ संध्याकाल एवं रात्रि में विहार नहीं करते है	
✲ वर्षाकाल में विहार का निषेध नहीं है।	

पंचतिहिचहुविहेहिं य, अणुगुणसिक्खावयेहिं संजुत्ता।
उच्चंति देसविरया, सम्माइट्ठी झलियकम्मा।।४७६।।
दंसणवयसामाइय, पोसहसच्चित्तरायभत्ते य।
बम्हारंभपरिग्गह, अणुमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे।।४७७।।

अर्थ – पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत – ऐसे बारह व्रतों से संयुक्त जो सम्यग्दृष्टि, कर्मनिर्जरा के धारक, वे देशविरती संयमासंयम के धारक हैं ऐसा परमागम में कहा है ।।४७६।।

अर्थ – दार्शनिक, व्रतिक, सामायिकी, प्रोषधोपवासी, सचित्तविरत, रात्रिभुक्तिविरत, ब्रह्मचारी, आरंभविरत, परिग्रहविरत, अनुमतिविरत, उद्दिष्टविरत ये देशविरत (पाँचवें गुणस्थान) के ग्यारह भेद हैं ।।४७७।।

देशविरत १२ व्रत

- **५ अणुव्रत**
  - अहिंसा
  - सत्य
  - अचौर्य
  - ब्रह्मचर्य
  - परिग्रह परिमाण
- **३ गुणव्रत**
  - दिग्विरति
  - देशविरति
  - अनर्थदण्ड विरति
- **४ शिक्षाव्रत**
  - सामायिक
  - प्रोषधोपवास
  - उपभोगपरिभोग परिमाण
  - अतिथि संविभाग

देश विरति के ११ भेद (११ प्रतिमा)

१	**दार्शनिक**	५ उदम्बर फल और सप्त व्यसन का त्याग एवं शुद्ध सम्यक्त्वी
२	**व्रतिक**	५ अणुव्रतों का निरतिचार पालन
३	**सामायिक**	नियम से ३ बार सामायिक करना
४	**प्रोषधोपवास**	पर्व के दिनों में अवश्य उपवास करना
५	**सचित्तविरत**	जीव सहित वस्तु के सेवन का त्याग
६	**रात्रिभुक्तिविरत**	रात्रि भोजन का नौ कोटि पूर्वक त्याग
७	**ब्रह्मचर्य**	सर्व प्रकार की स्त्रियों का त्याग (सदा काल शील पालन)
८	**आरंभविरत**	पाप आरंभ का त्याग
९	**परिग्रहविरत**	वस्त्र और पात्र को छोड़कर शेष दस प्रकार के बाह्य परिग्रह का त्याग
१०	**अनुमतिविरत**	पाप की अनुमोदना का त्याग
११	**उद्दिष्टविरत**	अपने निमित्त से बने हुए आहारादि का त्याग

जीवा चोद्दसभेया, इंदियविसया तहट्ठवीसं तु।
जे तेसु णेव विरया, असंजदा ते मुणेदव्वा।।४७८।।
पंचरसपंचवण्णा, दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा।।४७९।।

अर्थ – चौदह प्रकार के जीवसमास और अट्ठाईस प्रकार के इन्द्रियों के विषय इनसे जो विरक्त नहीं है, उनको असंयत कहते हैं ।।४७८।।

अर्थ – पाँच रस, पाँच वर्ण, दो गंध, आठ स्पर्श, सात स्वर और एक मन इस तरह ये इन्द्रियों के अट्ठाईस विषय हैं ।।४७९।।

असंयम के भेद

प्राणी असंयम

↓

१४ जीवसमास भेदरूप जीवों की हिंसा से विरति नहीं (१४ जीवसमास के चार्ट के लिए देखें पृष्ठ ३९ गाथा ७२)

इन्द्रिय असंयम

↓

२८ प्रकार के इन्द्रिय विषयों से विरति नहीं

↓

स्पर्श	८	कोमल, कठोर, भारी, हल्का, ठंडा, गर्म, रूखा, चिकना
रस	५	तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा
गंध	२	सुगंध, दुर्गंध
वर्ण	५	सफेद, पीला, नीला, लाल, काला
शब्द	७	स्वर-षड्ज, ऋृषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद
मन	१	
कुल	२८	

पमदादिचउण्हजुदी, सामयियदुगं कमेण सेसतियं।
सत्तसहस्सा णवसय, णवलक्खा तीहिं परिहीणा।।४८०।।
पल्लासंखेज्जदिमं, विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं।
पुव्वुत्तरासिहीणा, संसारी अविरदाण पमा।।४८१।।

अर्थ – प्रमत्तादि चार गुणस्थानवर्ती जीवों का जितना प्रमाण (८९०९९१०३), है उतने सामायिक संयमी और उतने ही छेदोपस्थापना संयमी होते हैं। परिहारविशुद्धि संयमवाले तीन कम सात हजार (६९९७), सूक्ष्मसांपराय संयम वाले तीन कम नौ सौ (८९७), यथाख्यात संयम वाले तीन कम नौ लाख (८९९९९७) होते हैं।।४८०।।

अर्थ – पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण देशसंयम जीव हैं। इसप्रकार उक्त संयमियों और देशसंयमियों को मिलाकर छह राशियों को संसारी जीवराशि में से घटाने पर जो शेष रहे उतना असंयमियों का प्रमाण हैं ।।४८१।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २१३ गाथा नं. ४६६ का चार्ट देखें

अधिकार १४ - दर्शनमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
दर्शन का स्वरूप	४८२-४८३	२	२१७
चक्षु-अचक्षु, अवधि, केवलदर्शन का स्वरूप	४८४-४८६	३	२१७
संख्या	४८७-४८८	२	२१७
कुल गाथाएँ		७	

जं सामण्णं गहणं, भावाणं णेव कट्टुमायारं।
अविसेसदूण अट्ठे, दंसणमिदि भण्णदे समये।।४८२।।
भावाणं सामण्ण-विसेसयाणं सरूवमेत्तं जं।
वण्णणहीणग्गहणं, जीवेण य दंसणं होदि।।४८३।।

अर्थ – भाव अर्थात् सामान्य-विशेषात्मक पदार्थों के आकार अर्थात् भेदग्रहण न करके जो सामान्य ग्रहण अर्थात् स्वरूपमात्र का अवभासन है, उसे परमागम में दर्शन कहते हैं। वस्तुस्वरूप मात्र का ग्रहण कैसे करता है ? अर्थात् पदार्थों के जाति, क्रिया, गुण आदि विकारों का विकल्प न करते हुए अपना और अन्य का केवल सत्तामात्र का अवभासन दर्शन है ।।४८२।।

अर्थ – सामान्य-विशेषात्मक पदार्थों का विकल्परहित स्वरूपमात्र जैसा है, वैसा जीव के साथ स्वपरसत्ता का अवभासन दर्शन है। जो देखता है, जिसके द्वारा देखा जाता है या देखनामात्र दर्शन है ।।४८३।।

दर्शन	❊ सामान्य विशेषात्मक पदार्थ का सामान्य ग्रहण
	❊ स्व व पर की सत्ता मात्र का ग्रहण
	❊ जाति, क्रिया, गुण, प्रकार आदि की विशेषता बिना
	❊ निर्विकल्प रूप (भेद रहित)

चक्खूण जं पयासइ, दिस्सइ तं चक्खुदंसणं वेंति।
सेसिंदियप्पयासो, णायव्वो सो अचक्खू त्ति।।४८४।।
परमाणुआदियाइं, अन्तिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं।
तं ओहिदंसणं पुण, जं पस्सइ ताइं पच्चक्खं।।४८५।।
बहुविहबहुप्पयारा, उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि।
लोगालोगवितिमिरो, जो केवलदंसणुज्जोओ।।४८६।।
जोगे चउरक्खाणं, पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं, ताण णाणं च।।४८७।।
एइंदियपहुदीणं, खीणकसायंतणंतरासीणं।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणं होदि परिमाणं।।४८८।।

अर्थ – नेत्रों संबंधी जो सामान्यग्रहण सो जिसके द्वारा देखता है, प्रकाशता है अथवा उस नेत्र

के विषय का प्रकाशन उसे गणधरादिक चक्षुदर्शन कहते हैं। पुनश्च, नेत्र बिना चार इन्द्रिय और मन के विषय का जो प्रकाशन, वह अचक्षुदर्शन है ऐसा जानना ।।४८४।।

अर्थ – परमाणु से लेकर महास्कंध तक जो मूर्तिक द्रव्य उनको जो प्रत्यक्ष देखता है, वह अवधिदर्शन है। इस अवधिदर्शनपूर्वक ही अवधिज्ञान होता है ।।४८५।।

अर्थ – चन्द्रमा, सूर्य, रत्नादिक संबंधी बहुत भेदों से युक्त बहुत प्रकार के उद्योत जगत् में हैं। वे परिमित यानी मर्यादासहित क्षेत्र में ही अपना प्रकाश करने को समर्थ हैं। इसलिये उन प्रकाशों की उपमा देने योग्य नहीं ऐसा समस्त लोक और अलोक में अन्धकाररहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामक उद्योत जानना ।।४८६।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानपर्यन्त जितने पंचेन्द्रिय हैं उनका तथा चतुरिन्द्रिय जीवों की संख्या का परस्पर जोड़ देने से जो राशि उत्पन्न हो उतने ही चक्षुदर्शनी जीव हैं और अवधिज्ञानी तथा केवलज्ञानी जीवों का जितना प्रमाण है उतना ही क्रम से अवधिदर्शनी तथा केवलदर्शनवालों का प्रमाण हैं ।।४८७।।

अर्थ – एकेन्द्रिय जीवों से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त अनंतराशि के जोड़ को अचक्षुदर्शन वाले जीवों का प्रमाण समझना चाहिये ।।४८८।।

दर्शन के भेद

	चक्षु	अचक्षु	अवधि	केवल
स्वरूप	नेत्र के विषय का प्रकाशन अथवा नेत्र संबंधी सामान्य ग्रहण उसे जो देखता	नेत्र के सिवाय शेष ४ इन्द्रियों व मन के विषय का प्रकाशन	परमाणु आदि महास्कंध पर्यन्त मूर्तिक द्रव्यों को प्रत्यक्ष देखना	लोकालोक का प्रकाशन अर्थात् देखना
गुणस्थान	१–१२		४–१२	१३,१४, सिद्ध
जीवों की संख्या	१.**शक्तिरूप** = अपर्याप्त चौइन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय = कुल(चौ.+पंचे.)–पर्याप्त = जगतप्रतर / प्रतरांगुल/असं. – पर्याप्त	एकेन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त	अवधिज्ञानी के समान	केवलज्ञानी के समान
	२.**व्यक्तिरूप** = पर्याप्त चौइन्द्रिय एवं पंचेन्द्रिय = जगतप्रतर / प्रतरांगुल/सं.	= अनंत	= पल्य/असं.	= अनंत
	कुल = १+२ = जगतप्रतर / प्रतरांगुल/असं. = असं. जगतश्रेणी	*नोट – चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय जीवों की संख्या के लिये गाथा १७८–१८० पृष्ठ ९०–९१ देखें।*		

अधिकार १५ - लेश्या मार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
स्वरूप	४८९-४९०	२	२१९
१६ अधिकारों के नाम	४९१-४९२	२	२२०
निर्देश	४९३	१	२२१
वर्ण	४९४-४९८	५	२२१
परिणाम	४९९-५०३	५	२२४
संक्रमण	५०४-५०६	३	२२६
कर्म	५०७-५०८	२	२२७
लक्षण	५०९-५१७	९	२२९
गति	५१८-५२८	११	२३०
स्वामी	५२९-५३५	७	२३९
साधन	५३६	१	२४२
संख्या	५३७-५४२	६	२४३
क्षेत्र	५४३-५४५ १/२	२ १/२	२४६
स्पर्शन	५४५ १/२-५५०	५ १/२	२५५
काल	५५१-५५२	२	२५८
अंतर	५५३-५५४	२	२५९
भाव एवं अल्पबहुत्व	५५५	१	२६२
लेश्यारहित जीव	५५६	१	२६२
कुल गाथाएँ		६८	

लिंपइ अप्पीकीरइ, एदीए णियअपुण्णपुण्णं च।
जीवो त्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा।।४८९।।
जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होई।
तत्तो दोण्णं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं।।४९०।।

अर्थ – जीव नामक पदार्थ जिसके द्वारा अपने को पाप और पुण्य से लिप्त करता है, अपना करता है, निज संबंधी करता है वह लेश्या है, ऐसा लेश्या के लक्षण को जाननेवाले गणधरादिकों ने कहा है ।।४८९।।

अर्थ – मन, वचन, कायरूप योगों की प्रवृत्ति वह लेश्या है। योगों की प्रवृत्ति कषायों के उदय से अनुरंजित होती है। इसलिये योग और कषाय इन दोनों का कार्य चार प्रकार का बंध कहा है। योगों से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध कहा है। कषायों से स्थितिबंध और अनुभागबंध कहा है ।।४९०।।

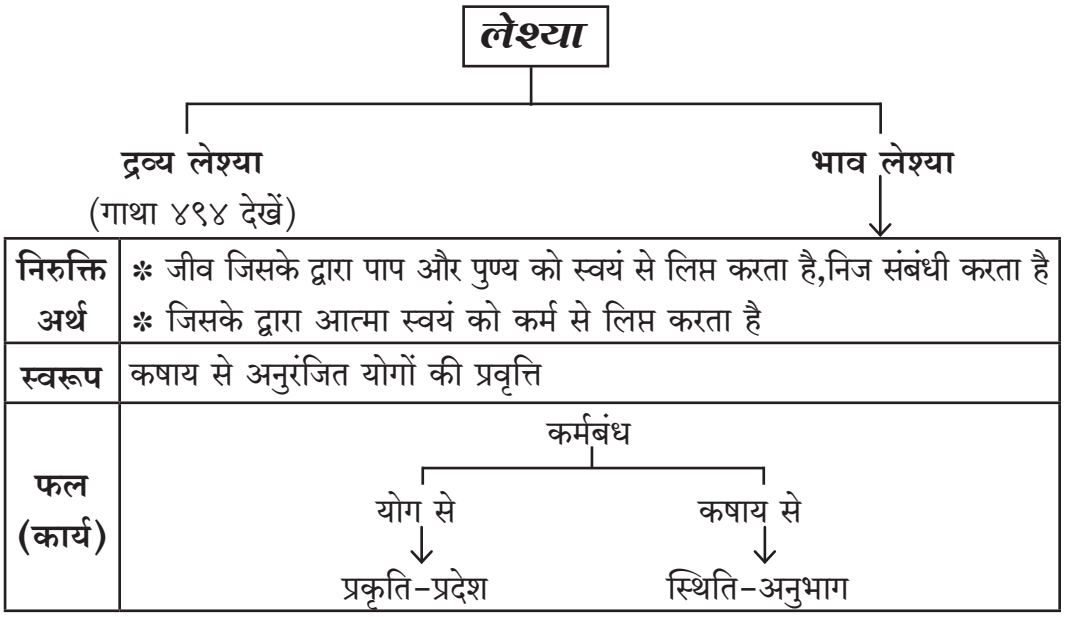

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो।।४९१।।
अन्तरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंति त्ति।
लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि।।४९२।।

अर्थ – निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म, लक्षण, गति, स्वामी, साधन, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व ये लेश्याओं की सिद्धि के लिये सोलह अधिकार परमागम में कहे गये हैं। इनके ही द्वारा आगे क्रम से लेश्याओं का निरूपण करेंगे ।।४९१-४९२।।

आगे लेश्या के वर्णन के १६ अधिकार

१. निर्देश	५. कर्म	९. साधन	१३. काल
२. वर्ण	६. लक्षण	१०. संख्या	१४. अन्तर
३. परिणाम	७. गति	११. क्षेत्र	१५. भाव
४. संक्रम	८. स्वामी	१२. स्पर्शन	१६. अल्पबहुत्व

१. निर्देश

किण्हा णीला काऊ, तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य।
लेस्साणं णिद्देसा, छच्चेव हवंति णियमेण।।४९३।।

अर्थ – लेश्याओं के नियम से ये छह ही निर्देश – संज्ञाएँ हैं :– कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या (पीतलेश्या), पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ।।४९३।।

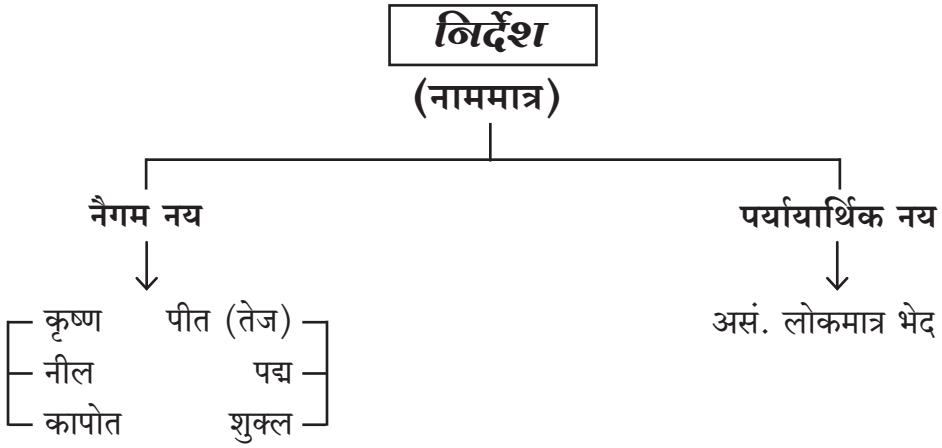

२. वर्ण (द्रव्य लेश्या)

वण्णोदयेण जणिदो, सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
सा सोढा किण्हादी, अणेयभेया सभेयेण।।४९४।।
छप्पयणीलकवोदसुहेमंवुजसंखसण्णिहा वण्णे।
संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं।।४९५।।

अर्थ – वर्ण नामकर्म के उदय से जो शरीर का वर्ण होता है उसको द्रव्यलेश्या कहते हैं। इसके कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल ये छह भेद हैं तथा प्रत्येक के उत्तर भेद अनेक हैं ।।४९४।।

अर्थ – वर्ण की अपेक्षा से कृष्ण आदि लेश्या क्रम से भ्रमर, नीलम (नीलमणि), कबूतर, सुवर्ण, कमल और शंख के समान होती है। इनमें से प्रत्येक के इन्द्रियों से प्रकट होने की अपेक्षा संख्यात भेद हैं, तथा स्कन्धों के भेदों की अपेक्षा असंख्यात और परमाणुभेद की अपेक्षा अनंत तथा अनंतानंत भेद होते हैं ।।४९५।।

द्रव्यलेश्या

शरीर का वर्ण (रंग)

किस कर्म का उदय	वर्ण नामक नामकर्म	
भेद :– **मुख्य भेद**	कृष्णादि ६	
उत्तर भेद	* प्रत्येक के अनेक	
	* नेत्र इन्द्रिय द्वारा दिखने की अपेक्षा	संख्यात
	* स्कंध की अपेक्षा	असंख्यात
	* परमाणुओं की अपेक्षा	अनंत

किस द्रव्य लेश्या में शरीर का वर्ण किसके समान होता हैं?	कृष्ण	भ्रमर के समान काला
	नील	नीलमणि
	कापोत	कापोत (कबूतर)
	पीत	स्वर्ण
	पद्म	कमल
	शुक्ल	शंख

णिरया किण्हा कप्पा, भावाणुगया हु तिसुरणरतिरिये।
उत्तरदेहे छक्कं, भोगे रविचंदहरिदंगा।।४९६।।
बादरआऊतेऊ, सुक्का तेऊय वाउकायाणं।
गोमुत्तमुग्गवण्णा, कमसो अव्वत्तवण्णो य।।४९७।।
सव्वेसिं सुहुमाणं, कावोदा सव्वविग्गहे सुक्का।
सव्वो मिस्सो देहो, कवोदवण्णो हवे णियमा।।४९८।।

अर्थ – सभी नारकी कृष्णवर्ण ही हैं। कल्पवासी देवों की जैसी भावलेश्या है, वैसे ही वर्ण के वे धारक हैं। पुनश्च; भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव, मनुष्य, तिर्यंच तथा देवों का विक्रिया से बना शरीर, वे छहों वर्ण के धारक हैं। पुनश्च; उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि संबंधी मनुष्य और तिर्यंच अनुक्रम से सूर्यसमान, चन्द्रसमान और हरित वर्ण के धारक हैं ।।४९६।।

अर्थ – बादर अप्कायिक शुक्लवर्ण है। बादर अग्निकायिक पीतवर्ण है। बादर वायुकायिकों में घनोदधिवात तो गोमूत्र के समान वर्ण का धारक है, घनवात मूंगे के समान वर्ण का धारक है, तनुवात का वर्ण प्रकट नहीं है, अव्यक्त है ।।४९७।।

अर्थ – सर्व ही सूक्ष्म जीवों का शरीर कपोतवर्ण है। सभी जीव विग्रहगति में शुक्लवर्ण ही हैं। पुनश्च, सभी जीव अपनी पर्याप्ति के प्रारंभ के प्रथम समय से लेकर शरीरपर्याप्ति की पूर्णता तक की जो अपर्याप्त अवस्था (निर्वृत्तिअपर्याप्त) है वहाँ कपोतवर्ण ही है, "ऐसा नियम हैं" ।।४९८।।

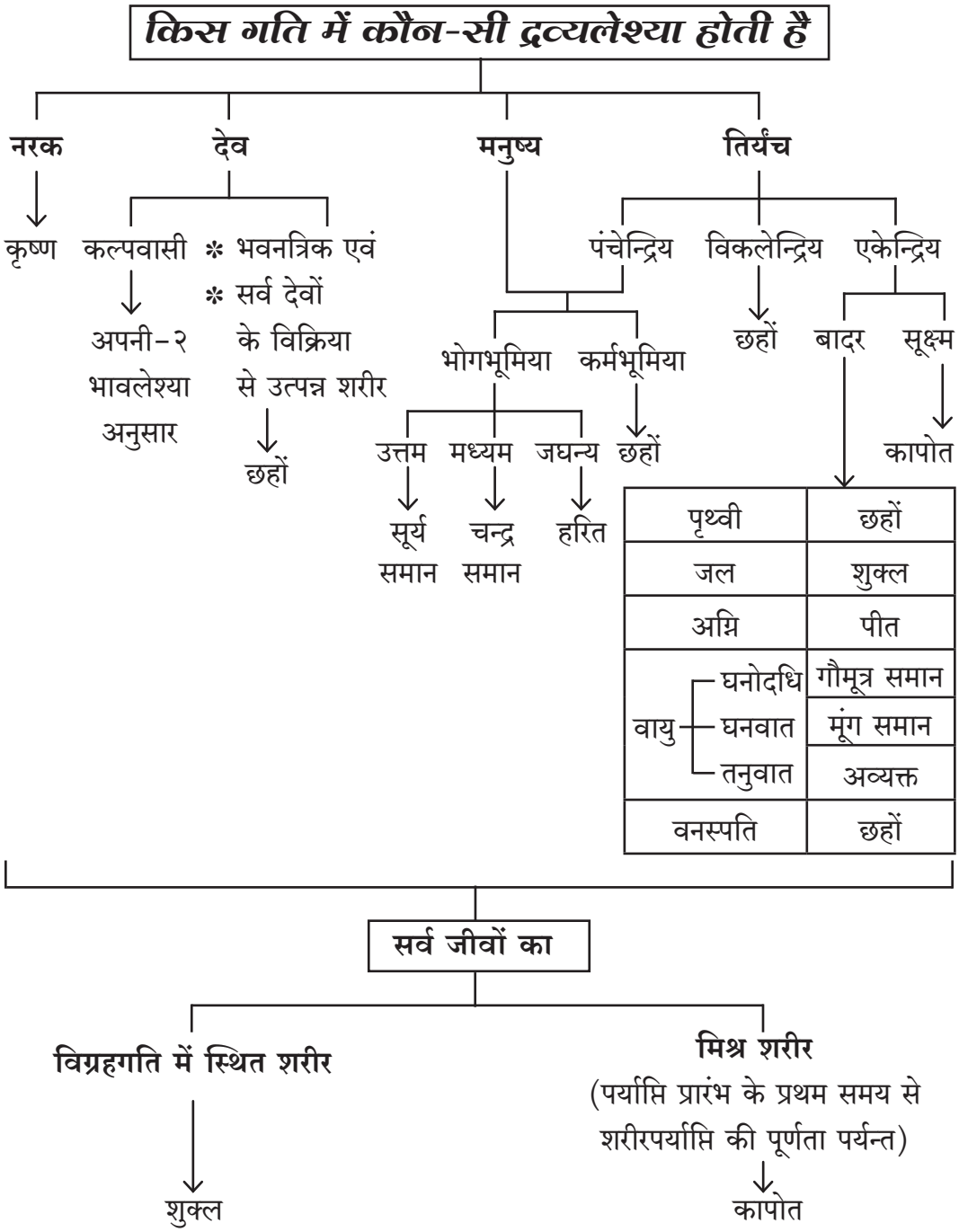

३. परिणाम

लोगाणमसंखेज्जा, उदयट्ठाणा कसायगा होंति।
तत्थ किलिट्ठा असुहा, सुहा विसुद्धा तदालावा।।४९९।।
तिव्वतमा तिव्वतरा, तिव्वा असुहा सुहा तहा मंदा।
मंदतरा मंदतमा, छट्ठाणगया हु पत्तेयं।।५००।।
असुहाणं वरमज्झिमअवरंसे किण्हणीलकाउतिए।
परिणमदि कमेणप्पा, परिहाणीदो किलेसस्स।।५०१।।
काऊ णीलं किण्हं, परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा।
एवं किलेसहाणीवड्ढीदो, होदि असुहतियं।।५०२।।
तेऊ पउमे सुक्के, सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो, हाणीदो अण्णहा होदि।।५०३।।

अर्थ – कषायसंबंधी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं। उनको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग दीजिये। वहाँ एक भाग बिना अवशेष बहुभागमात्र तो संक्लेशस्थान हैं । वे भी असंख्यात लोकप्रमाण हैं। पुनश्च एक भागमात्र विशुद्धिस्थान हैं। वे भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं क्योंकि असंख्यात के भेद बहुत हैं। वहाँ संक्लेशस्थान तो अशुभ लेश्या संबंधी जानने और विशुद्धिस्थान शुभलेश्या संबंधी जानने ।।४९९।।

अर्थ – अशुभ लेश्यासंबंधी तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र ये तीन स्थान, और शुभलेश्यासंबंधी मंद, मंदतर, मंदतम ये तीन स्थान होते हैं। इन कृष्ण लेश्यादिक छहों लेश्याओं में से जो शुभ स्थान हैं उनमें तो जघन्य से उत्कृष्ट पर्यन्त और जो अशुभ स्थान हैं उनमें उत्कृष्ट से जघन्य पर्यन्त प्रत्येक भेद में असंख्यात लोकप्रमाण षट्स्थानपतित हानि-वृद्धि होती है ।।५००।।

अर्थ – कृष्ण, नील, कापोत इन तीन अशुभ लेश्याओं के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंशरूप में यह आत्मा क्रम से संक्लेश की हानिरूप से परिणमन करता है ।।५०१।।

अर्थ – उत्तरोत्तर संक्लेशपरिणामों की वृद्धि होने से यह आत्मा कापोत से नील और नील से कृष्णलेश्या रूप परिणमन करता है। इस तरह यह जीव संक्लेश की हानि और वृद्धि की अपेक्षा से तीन अशुभ लेश्यारूप परिणमन करता है ।।५०२।।

अर्थ – उत्तरोत्तर विशुद्धि की वृद्धि होने से यह आत्मा पीत, पद्म, शुक्ल इन तीन शुभ लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अंशरूप में परिणमन करता है तथा विशुद्धि की हानि होने से उत्कृष्ट से जघन्यपर्यन्त शुक्ल, पद्म, पीत लेश्यारूप परिणमन करता है। इस तरह विशुद्धि की हानि-वृद्धि होने से शुभ लेश्याओं का परिणमन होता है ।।५०३।।

परिणाम

कषाय संबंधी कुल अनुभागरूप उदयस्थान
= असं. लोकप्रमाण = A

माना → यथायोग्य असं. लोक = ९
असं. लोक का बहुभाग = $\frac{८}{९}$
असं. लोक का एकभाग = $\frac{१}{९}$

	अशुभ लेश्या						**शुभ लेश्या**					
स्थान	संक्लेशस्थान						विशुद्धिस्थान					
	= कुल उदयस्थान–विशुद्धिस्थान						= कुल उदय स्थान/असं. लोक					
	कुल उदयस्थान का असं. बहुभाग						कुल उदयस्थान का असंख्यातवाँ भाग					
	$A \times \frac{८}{९}$						$A \times \frac{१}{९}$					
	= असं. लोक						= असं. लोक					
अविभाग प्रतिच्छेद	अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद						अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद					
	कृष्ण			**नील**			**कापोत**			**पीत**			**पद्म**			**शुक्ल**		
कषाय	तीव्रतम			तीव्रतर			तीव्र			मंद			मंदतर			मंदतम		
संक्लेश/ विशुद्ध	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य	उत्कृष्ट	मध्यम	जघन्य
परिणामों की हानि का अनुक्रम	असं. लोकमात्र षट्स्थानपतित → संक्लेशता की हानि									← असं. लोकमात्र षट्स्थानपतित विशुद्धता की हानि								
वृद्धि का अनुक्रम	← असं. लोकमात्र षट्स्थानपतित संक्लेशता की वृद्धि									असं. लोकमात्र षट्स्थानपतित → विशुद्धता की वृद्धि								
स्थान	उ. .....ज. $A \times \frac{८}{९} \times \frac{८}{९}$			उ. .....ज. $A \times \frac{८}{९} \times \frac{८}{९\times९}$			उ. .....ज. $A \times \frac{८}{९} \times \frac{१}{९\times९}$			उ. .....ज. $A \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९}$			उ. .....ज. $A \times \frac{१}{९} \times \frac{८}{९\times९}$			उ. .....ज. $A \times \frac{१}{९} \times \frac{१}{९\times९}$		

४. संक्रमण

संकमणं सट्ठाण-परट्ठाणं होदि किण्ह-सुक्काणं।
वड्ढीसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेस उभये वि।।५०४।।

अर्थ – कृष्ण और शुक्ल लेश्या में वृद्धि की अपेक्षा स्वस्थान-संक्रमण ही होता है और हानि की अपेक्षा स्वस्थान, परस्थान दोनों ही संक्रमण होते हैं। तथा शेष चार लेश्याओं में हानि तथा वृद्धि दोनों अपेक्षाओं में स्वस्थान, परस्थान दोनों ही संक्रमणों के होने की संभावना है ।।५०४।।

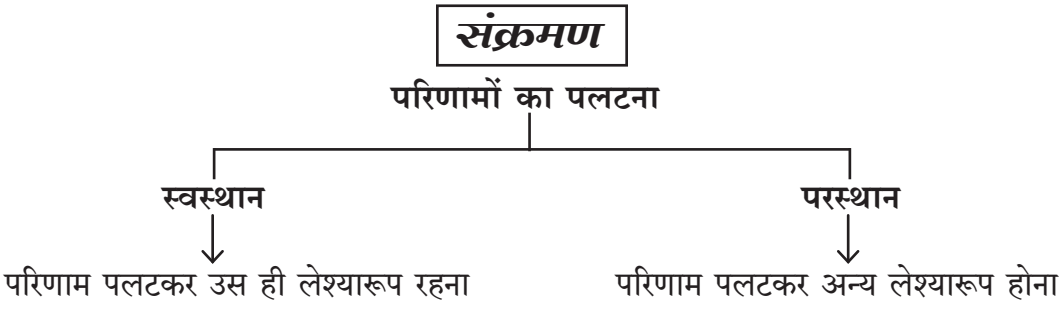

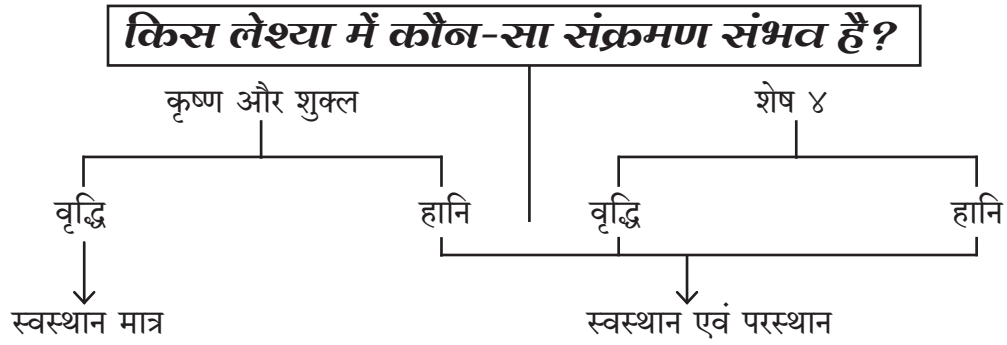

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी।
सट्ठाणे अवरादो, हाणी णियमा परट्ठाणे।।५०५।।
संकमणे छट्ठाणा, हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा।
परिमाणं च य पुव्वं, उत्तकमं होदि सुदणाणे।।५०६।।

अर्थ – स्वस्थान की अपेक्षा लेश्याओं के उत्कृष्ट स्थान के समीपवर्ती स्थान का परिणाम उत्कृष्ट स्थान के परिणाम से अनंत भागहानिरूप है, तथा स्वस्थान की अपेक्षा से ही जघन्य स्थान के समीपवर्ती स्थान का परिणाम जघन्य स्थान से अनंत भागवृद्धिरूप है। संपूर्ण लेश्याओं के जघन्य स्थान से यदि हानि हो तो नियम से अनंत गुणहानिरूप परस्थान संक्रमण ही होता है ।।५०५।।

अर्थ – संक्रमणाधिकार में हानि और वृद्धि दोनों अवस्थाओं में षट्स्थान होते हैं। इन षट्स्थानों के नाम तथा परिमाण पहले श्रुतज्ञानमार्गणा में जो कहे हैं वे ही यहाँ पर भी समझना ।।५०६।।

संक्लेश परिणामों की हानि रूप चार्ट

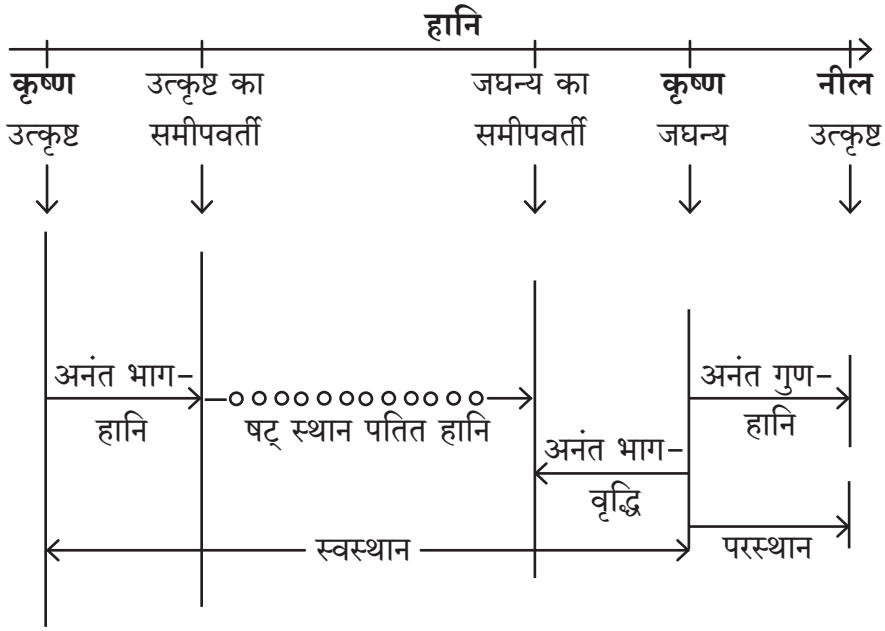

इसी प्रकार शुक्ल लेश्या के उत्कृष्ट से प्रारंभ कर विशुद्धता की षट्स्थानपतितरूप हानि का क्रम जानना।

५. कर्म

मनपूर्वक वचनादि की प्रवृत्ति

पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचितंति।।५०७।।
णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तु चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाई इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं।।५०८।।

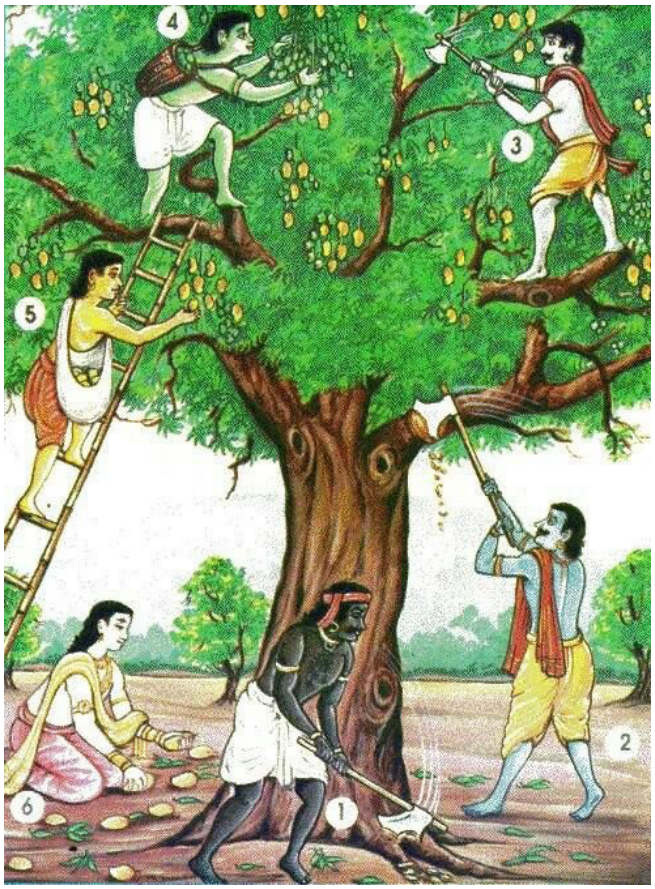

अर्थ –कृष्ण आदि छह लेश्या वाले कोई छह पथिक वन के मध्य में मार्ग से भ्रष्ट होकर फलों से पूर्ण किसी वृक्ष को देखकर अपने-अपने मन में इस प्रकार विचार करते हैं और उसके अनुसार वचन कहते हैं –

	लेश्या	विचार एवं वचन
१	**कृष्ण**	वृक्ष को मूल से उखाड़कर फल खाऊँगा
२	**नील**	वृक्ष को स्कंध से काटकर फल खाऊँगा
३	**कापोत**	वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटकर फल खाऊँगा
४	**पीत**	वृक्ष की छोटी-छोटी शाखाओं को काटकर फल खाऊँगा
५	**पद्म**	वृक्ष के फलों को तोड़कर खाऊँगा
६	**शुक्ल**	वृक्ष से स्वयं टूटे फलों को खाऊँगा
नोट – वृक्ष का दृष्टांत मात्र दिया गया है, इसलिये इस ही तरह अन्यत्र भी समझना चाहिए।		

६. लक्षण

चंडो ण मुचइ वेरं, भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ।
दुट्ठो ण य एदि वसं, लक्खणमेयं तु किण्हस्स।।५०९।।
मंदो बुद्धिविहीणो, णिव्विणाणी य विसयलोलो य।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य।।५१०।।
णिद्दावंचणबहुलो, धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य।
लक्खणमेयं भणियं, समासदो णीललेस्सस्स।।५११।।
रूसइ णिंदइ अण्णे, दूसइ बहुसो य सोयभयबहुलो।
असुयइ परिभवइ परं, पसंसये अप्पयं बहुसो।।५१२।।
ण य पत्तियइ परं सो, अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो।
थूसइ अभित्थुवंतो, ण य जाणइ हाणि-वड्ढिं वा।।५१३।।
मरणं पत्थेइ रणे, देइ सुबहुगं वि थुव्वमाणो दु।
ण गणइ कज्जाकज्जं, लक्खणमेयं तु काउस्स।।५१४।।
जाणइ कज्जाकज्जं, सेयमसेयं च सव्वसमपासी।
दयदाणरदो य मिदू, लक्खणमेयं तु तेउस्स।।५१५।।
चागी भद्दो चोक्खो, उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि।
साहुगुरुपूजणरदो, लक्खणमेयं तु पम्मस्स।।५१६।।
ण य कुणइ पक्खवायं, ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं।
णत्थि य रायद्दोसा, णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स।।५१७।।

लक्षण

चिह्न

लेश्या	लक्षण
कृष्ण	प्रचंड तीव्र क्रोधी, बैर न छोड़े, युद्ध करने का स्वभाव हो, धर्म और दया से रहित, दुष्ट, गुरुजनादिक किसी के वश न हो।
नील	काम करने में मंद, बुद्धिविहीन, कला-चातुर्य से रहित, विषयलोलुपी, मानी, मायावी, आलसी, जिसके अभिप्राय को अन्य कोई न जाने, अति निद्रालु, जो दूसरों को बहुत ठगे, धन-धान्य आदिक में अतितीव्र लालसा हो।

कापोत	दूसरों पर क्रोध करे, परनिंदक, अनेक प्रकार से दूसरों को दु:ख दे, शोकाकुलित, भयग्रस्त, दूसरों के ऐश्वर्यादिक को सहन नहीं कर सके, दूसरों का अपमान करे, अपनी बहुत प्रकार से प्रशंसा करे, अपने समान पापी कपटी औरों को भी मानकर उनका विश्वास नहीं करे, स्तुति करने वालों पर सन्तुष्ट होकर उन्हें खूब दान दे, अपनी-पराई हानि-वृद्धि न जाने, युद्ध में मरना चाहे, कार्य-अकार्य को नहीं गिने।
पीत	कार्य-अकार्य, सेव्य-असेव्य को जाने, सब में समदर्शी हो, दान देने में प्रीतिवंत, मन वचन काय से कोमल हो।
पद्म	त्यागी, भद्रपरिणामी, सुकार्यरूप स्वभावी, शुभभाव में उद्यमरूप कर्म करे, कष्ट एवं अनिष्ट उपद्रव को सहने वाला, मुनिजन एवं गुरुजन की पूजा में प्रीतिवंत।
शुक्ल	पक्षपात न करे, निदान न करे, सर्वजीवों में समताभाव हो, इष्टानिष्ट में राग-द्वेष रहित हो, पुत्र, स्त्री आदिक में स्नेहरहित हो।

७. गति

लेस्साणं खलु अंसा, छब्बीसा होंति तत्थ मज्झिमया।
आउगबंधणजोगा, अट्ठट्ठवगरिसकालभवा।।५१८।।

अर्थ – लेश्याओं के कुल छब्बीस अंश हैं, इनमें से मध्यम के आठ अंश जो कि आठ अपकर्ष काल में होते हैं वे ही आयुकर्म के बंध के योग्य होते हैं ।।५१८।।

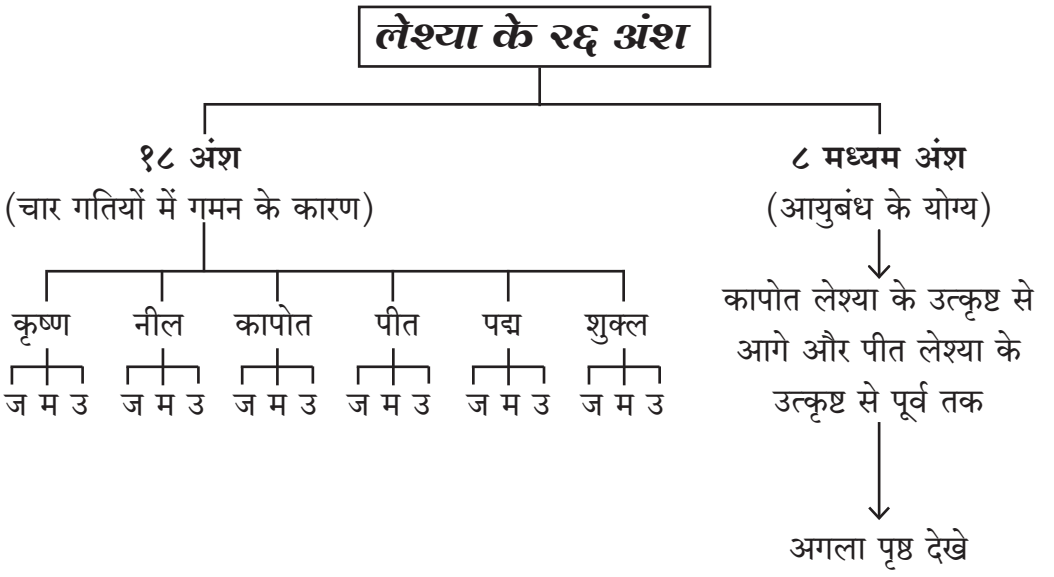

कषायशक्ति		लेश्यास्थान १४		आयुबंधाबंधस्थान			
जल	उ. ..... ज.	शु. २	मध्यम शुक्ल तथा उत्कृष्ट शुक्ल	०	अबंध		
धूल	उ. ..... ज.	२	मध्यम शुक्ल लेश्या	०	अबंध	८	आठ मध्यमांश
		३	उत्कृष्ट पद्म तथा मध्यम शुक्ल	०	अबंध	७	
		४	उत्कृष्ट पीत तथा मध्यम पद्म-शुक्ल	२	देवायु , अबंध ०	६	
		५	जघन्य कापोत तथा मध्यम तीन शुभ	२	देवायु ०	५	
		६	ज.नील तथा कृष्णरहित शेष ४ मध्यम	२	देवायु ०	४	
		७	ज.कृष्ण तथा शेष ५ लेश्या मध्यम	४	चारों आयु, न.बिना ३ आयु, म.दे.आयु ०	३	
पृथ्वी	उ. ..... ज.	८	कृष्णादि ५ मध्यम तथा जघन्य शुक्ल	४	चारों आयु ०	२	
		९	कृ.नी.का.पी.मध्यम तथा जघन्य पद्म	४	चारों आयु ०	१	
		१०	कृ.नी.का.मध्यम तथा जघन्य पीत	४	चारों आयु ०		
		११	कृष्ण, नील मध्यम तथा उत्कृष्ट कापोत	२	नरकायु,२ न.ति.आ, ३ न.ति.म.आयु ०		
		१२	मध्यम कृष्ण तथा उत्कृष्ट नील	२	नरकायु *		
		१३	मध्यम कृष्ण	२	नरकायु *		
शिला	उ. ..... ज.	कृष्ण १	मध्यम कृष्ण	२	नरकायु *		
			..... उत्कृष्ट कृष्ण	०	अबंध		

नोट – उपरोक्त ८ मध्यमांश का चार्ट गोम्मटसार जीवकाण्ड हिन्दी टीकाकार ब्र. पं. रतनचन्दजी मुख्तार पृष्ठ ५९१ से लिया गया है। पण्डितजी ने अपने चिंतन द्वारा ८ मध्यम अंशों को उक्त प्रकार से वर्णित किया है। चार्ट में शेष बचे तीन आयुबंधस्थान (* चिह्न से अंकित) के लिए पं. जवाहरलालजी जैन द्वारा उसी पुस्तक के पृष्ठ ५९२ में निम्न स्पष्टीकरण दिया है –

"तीन (नक्शे में * से चिह्नित) आयुबंधस्थान फिर भी ८ मध्यम अंशों में छूट जाते हैं। सो "*" संबंधी तीनों नरकायु के ही बंध स्थान हैं जो कि मध्यम कृष्ण लेश्या से बँधते हैं तथा इस मध्यम कृष्ण लेश्यारूप अंशत्रय का "८ मध्यम लेश्यांश में परिवर्तित मध्यम कृष्ण लेश्या शब्द" द्वारा उपलक्षण से ग्रहण हो जाता है। ऐसा हमारी बुद्धि में आता है।"

आयु बंध का काल

८ अपकर्ष काल ↓

अपकर्ष = भुज्यमान आयु के तीन भागों में से दो भाग बीतने पर अवशिष्ट एक भाग के प्रथम अंतर्मुहूर्त प्रमाण काल को अपकर्ष कहते हैं। ऐसे अंतर्मुहूर्त–२ प्रमाण ८ अपकर्ष काल होते हैं।

असंक्षेपाद्धा से अन्तर्मुहूर्त पूर्व का काल ↓

भुज्यमान आयु में आवली के असं. भागप्रमाण काल अवशेष रहने के पूर्व का अंतर्मुहूर्त मात्र काल (अगर आठों अपकर्ष काल में आयु न बँधे तो यहाँ बँधती है)

उदाहरण

(**माना** ⟶ किसी कर्मभूमिया मनुष्य/तिर्यंच की आयु ६५६१ वर्ष है)

अपकर्ष काल	प्रथम	द्वितीय	तृतीय	चतुर्थ	पंचम	षष्ठम	सप्तम	अष्टम
कितनी आयु बीतने पर आता है	६५६१ × २/३ =४३७४	२१८७ × २/३ = १४५८ ४३७४ + १४५८ = ५८३२	७२९ × २/३ = ४८६ ५८३२+ ४८६ = ६३१८	२४३ × २/३ = १६२ ६३१८+ १६२ = ६४८०	८१ × २/३ = ५४ ६४८०+ ५४ = ६५३४	२७ × २/३ = १८ ६५३४+ १८ = ६५५२	९ × २/३ = ६ ६५५२+ ६ = ६५५८	३ × २/३ = २ ६५५८+ २ = ६५६०
अवशेष आयु	६५६१ × १/३ = २१८७	२१८७ × १/३ = ७२९	७२९ × १/३ = २४३	२४३ × १/३ = ८१	८१ × १/३ = २७	२७ × १/३ = ९	९ × १/३ = ३	३ × १/३ = १

आयु बंध - जीवों की अपेक्षा विशेषता

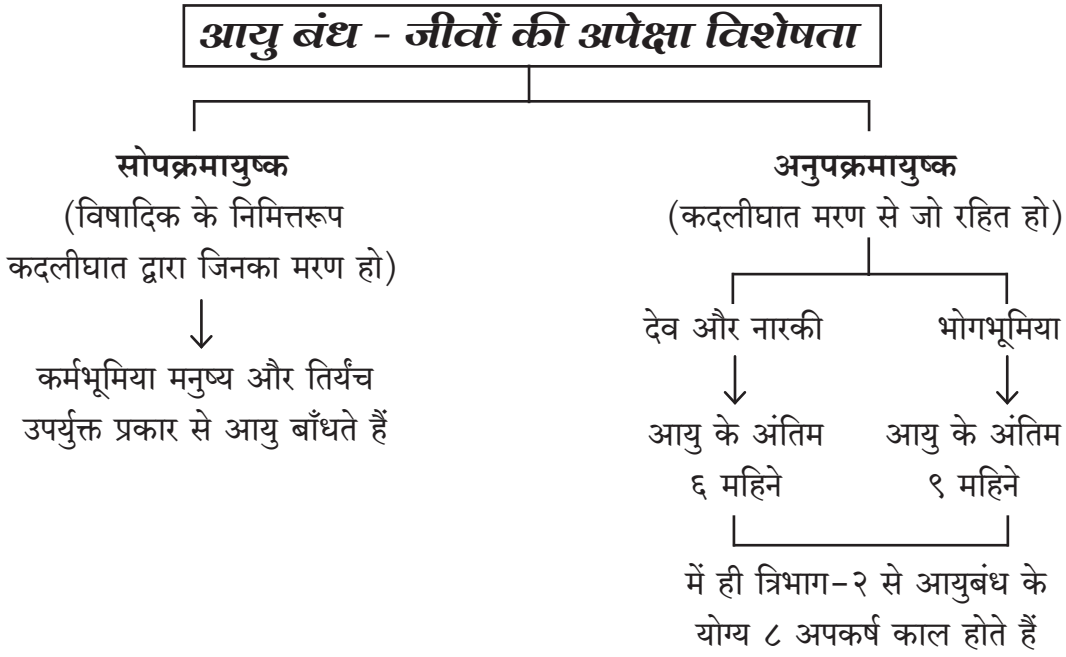

आयु बंध - कुछ नियम

१	उपरोक्त ८ अपकर्ष काल में कितने ही जीव ८ बार, कितने ७ बार, कितने ६,५,४,३,२,१ बार आयु बाँधते हैं।
२	प्रत्येक अपकर्ष में आयु बँधने का नियम नहीं है।
३	सभी अपकर्षों में **एक समान गति** संबंधी आयुबँध होता है।
४	प्रतिसमय बँधने वाले कर्मों का ७ कर्मों में विभाजन होता है। आयु बँधते समय अंतर्मुहूर्त काल के लिए ८ कर्मों में विभाजन होता है।

अपकर्ष काल के बहत्तर भेदों की रचना

आठ अपकर्षों से आयु बँधने की रचना																										
०	जघन्य	उत्कृष्ट	सात अपकर्षों से आयु बँधने की रचना																							
८	८	८	०	जघन्य	उत्कृष्ट	छह अपकर्षों से आयु बँधने की रचना																				
८	७	७	७	७	७	०	जघन्य	उत्कृष्ट	पाँच अपकर्षों से आयु बँधने की रचना																
८	६	६	७	६	६	६	६	६	०	जघन्य	उत्कृष्ट	चार अपकर्षों से आयु बँधने की रचना													
८	५	५	७	५	५	६	५	५	५	५	५	०	जघन्य	उत्कृष्ट	तीन अपकर्षों से आयु बँधने की रचना										
८	४	४	७	४	४	६	४	४	५	४	४	४	४	४	०	जघन्य	उत्कृष्ट	दो अपकर्षों से आयु बँधने की रचना							
८	३	३	७	३	३	६	३	३	५	३	३	४	३	३	३	३	३	०	जघन्य	उत्कृष्ट	एक अपकर्ष से आयु बँधने की रचना					
८	२	२	७	२	२	६	२	२	५	२	२	४	२	२	३	२	२	२	२	२	०	जघन्य	उत्कृष्ट			
८	१	१	७	१	१	६	१	१	५	१	१	४	१	१	३	१	१	२	१	१	१	१	१			

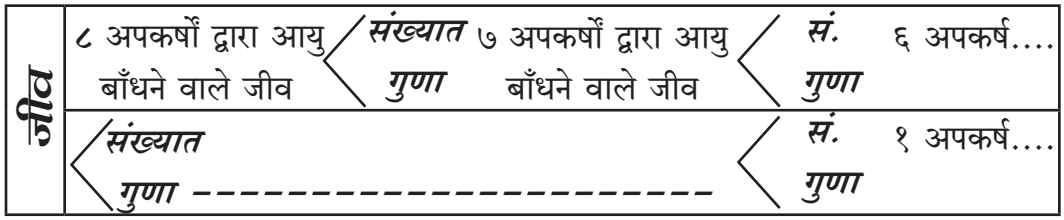

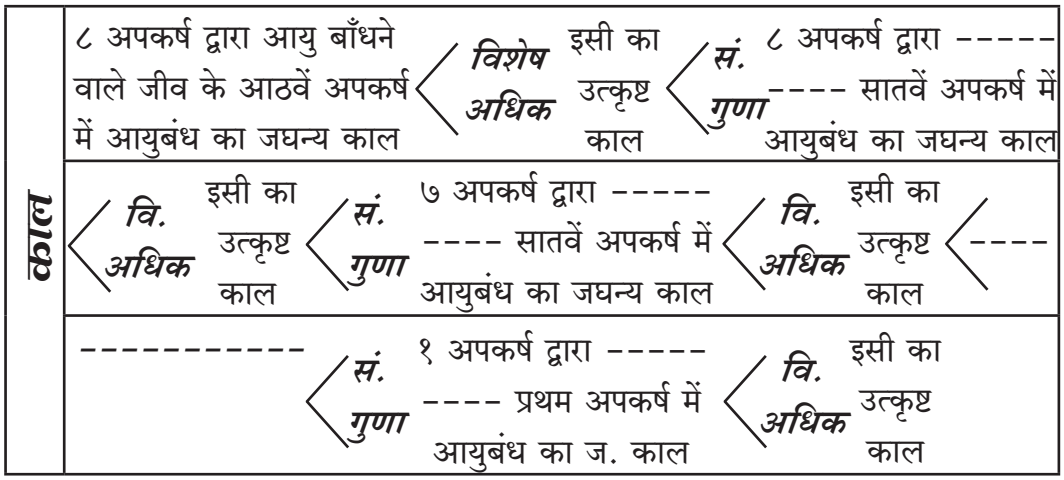

सेसट्ठारस अंसा, चउगइगमणस्स कारणा होंति।
सुक्कुक्कस्संसमुदा, सव्वट्ठं जांति खलु जीवा।।५१९।।
अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा।
आणदकप्पादुवरिं, सवट्ठाइल्लगे होंति।।५२०।।
पम्मुक्कस्संसमुदा, जीवा उवजांति खलु सहस्सारं।
अवरंसमुदा जीवा, सणक्कुमारं च माहिंदं।।५२१।।
मज्झिमअंशेण मुदा, तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि।।५२२।।
अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि।
मज्झिमअंसेण मुदा, विमलविमाणादिबलभद्दे।।५२३।।
किण्हवरंसेण मुदा, अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा।
पंचमचरिमतिमिस्से, मज्झे मज्झेण जायंते।।५२४।।
नीलुक्कस्संसमुदा, पंचम अधिंदयम्मि अवरमुदा।
बालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते।।५२५।।
वरकाओदंसमुदा, संजलिदं जांति तदियणिरयस्स।
सीमंतं अवरमुदा, मज्झे मज्झेण जायंते।।५२६।।

अर्थ – अपकर्षकाल में होने वाले लेश्याओं के आठ मध्यमांशों को छोड़कर बाकी के अठारह अंश चारों गतियों के गमन के कारण होते हैं, यह सामान्य नियम है परन्तु विशेष यह है कि शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश से संयुक्त जीव मरकर नियम से सर्वार्थसिद्धि को जाते हैं ।।५१९।।

अर्थ – शुक्ललेश्या के जघन्य अंशों से संयुक्त जीव मरकर शतार, सहस्रार स्वर्ग में उत्पन्न होते हैं और मध्यमांशों करके सहित मरा हुआ जीव सर्वार्थसिद्धि से पूर्व के तथा आनत स्वर्ग से लेकर ऊपर के समस्त विमानों में से यथासंभव किसी भी विमान में उत्पन्न होता है और आनत स्वर्ग में भी उत्पन्न होता है ।।५२०।।

अर्थ – पद्मलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव नियम से सहस्रार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं और पद्मलेश्या के जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।।५२१।।

अर्थ – पद्मलेश्या के मध्यम अंशों के साथ मरे हुए जीव सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के ऊपर और सहस्रार स्वर्ग के नीचे-नीचे तक विमानों में उत्पन्न होते हैं। पीत लेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के अन्तिम पटल में जो चक्रनाम का इन्द्रकसंबंधी श्रेणीबद्ध विमान है उसमें उत्पन्न होते हैं ।।५२२।।

अर्थ – पीतलेश्या के जघन्य अंशों के साथ मरा हुआ जीव सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के ऋतु (ऋजु) नामक इन्द्रक विमान में अथवा श्रेणीबद्ध विमान में उत्पन्न होता है। पीत लेश्या के मध्यम अंशों के साथ मरा हुआ जीव सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के दूसरे पटल के विमल नामक इन्द्रक विमान से लेकर सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के द्विचरम पटल के (अंतिम पटल से पूर्व पटल के) बलभद्र नामक इन्द्रक विमान पर्यन्त उत्पन्न होता है ।।५२३।।

अर्थ – कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव सातवीं पृथ्वी के अवधिस्थान नामक इन्द्रक बिल में उत्पन्न होते हैं। जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव पाँचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल के तिमिश्र नामक इन्द्रक बिल में उत्पन्न होते हैं। कृष्णलेश्या के मध्यम अंश सहित मरने वाले जीव अवधिस्थान इन्द्रक के चार श्रेणीबद्ध बिलों में या छठी पृथ्वी के तीनों पटलों में या पाँचवीं पृथ्वी के चरम यानी अंतिम पटल में यथायोग्य उपजते हैं ।।५२४।।

अर्थ – नीललेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव पाँचवीं पृथ्वी के द्विचरम पटलसंबंधी अंध्रनामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई पाँचवें पटल में भी उत्पन्न होते हैं। इतना विशेष और भी है कि कृष्णलेश्या के जघन्य अंशवाले जीव भी मरकर पाँचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल में उत्पन्न होते हैं। नीललेश्या के जघन्य अंशवाले जीव मरकर तीसरी पृथ्वी के अंतिम पटल संबंधी संप्रज्वलित नामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। नीललेश्याके मध्यम अंशोंवाले जीव मरकर तीसरी पृथ्वी के संप्रज्वलित नामक इन्द्रकबिल के आगे और पाँचवीं पृथ्वी के अंध्रनामक इन्द्रकबिल के पहले-पहले जितने पटल और इन्द्रक है उनमें यथायोग्य उत्पन्न होते हैं ।।५२५।।

अर्थ – कापोतलेश्या के उत्कृष्ट अंशों के साथ मरे हुए जीव तीसरी पृथ्वी के नौ पटलों में से द्विचरम – आठवें पटलसंबंधी संज्वलित नामक इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं। कोई-कोई अंतिम

पटलसंबंधी संप्रज्वलित नामक इन्द्रकबिल में भी उत्पन्न होते हैं। कापोतलेश्या के जघन्य अंशों के साथ मरे हुए जीव प्रथम पृथ्वी के सीमन्त नामक प्रथम इन्द्रकबिल में उत्पन्न होते हैं और मध्यम अंशों के साथ मरे हुए जीव प्रथम पृथ्वी के सीमान्त नामक प्रथम इन्द्रक बिल से आगे और तीसरी पृथ्वी के द्विचरम पटलसंबंधी संज्वलित नामक इन्द्रकबिल के पहले तीसरी पृथ्वी के सात पटल, दूसरी पृथ्वी के ग्यारह पटल और प्रथम पृथ्वी के बारह पटलों में या घम्मा भूमि के तेरह पटलों में से पहले सीमान्तक बिल के आगे सभी बिलों में यथायोग्य उत्पन्न होते हैं ।।५२६।।

किस-किस लेश्या के किस-किस अंश से मरकर जीव कहाँ-कहाँ उत्पन्न होता है ?

लेश्या	अंश	उत्पत्ति स्थान
शुक्ल	उत्कृष्ट	सर्वार्थसिद्धि (अंतिम अनुत्तर विमान)
	मध्यम	आनत स्वर्ग (१३ स्वर्ग) से लेकर सर्वार्थसिद्धि को छोड़कर ४ अनुत्तर विमान पर्यंत
	जघन्य	शतार-सहस्रार स्वर्ग (११-१२ स्वर्ग)
पद्म	उत्कृष्ट	सहस्रार स्वर्ग (१२ स्वर्ग)
	मध्यम	ब्रह्म स्वर्ग से लेकर शतार स्वर्ग तक (५-११ स्वर्ग)
	जघन्य	सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग (३-४ स्वर्ग)
पीत (तेजो)	उत्कृष्ट	सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग (३-४ स्वर्ग) का अंतिम पटल
	मध्यम	सौधर्म-ऐशान (१-२ स्वर्ग) के द्वितीय पटल से लेकर सानत्कुमार-माहेन्द्र (३-४ स्वर्ग) के द्विचरम पटल पर्यंत
	जघन्य	सौधर्म-ऐशान (१-२ स्वर्ग) का प्रथम पटल
कृष्ण	उत्कृष्ट	सातवीं पृथ्वी का इन्द्रक बिल
	मध्यम	सातवीं पृथ्वी के श्रेणीबद्ध बिलों में, छठी पृथ्वी के तीनों पटलों में, पाँचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल में
	जघन्य	पाँचवीं पृथ्वी का अंतिम पटल
नील	उत्कृष्ट	पाँचवीं पृथ्वी का अंतिम एवं द्विचरम पटल
	मध्यम	पाँचवीं पृथ्वी के प्रथम तीन पटल एवं चतुर्थ पृथ्वी के सातों पटल
	जघन्य	तीसरी पृथ्वी का अंतिम पटल
कापोत	उत्कृष्ट	तीसरी पृथ्वी का अंतिम एवं द्विचरम पटल
	मध्यम	पहली पृथ्वी के दूसरे पटल से लेकर तीसरी पृथ्वी के सातवें पटल पर्यंत
	जघन्य	पहली पृथ्वी का पहला पटल

किण्हचउक्काणं पुण, मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये।
पुढवीआउवणप्फदिजीवेसु, हवंति खलु जीवा।।५२७।।
किण्हतियाणं मज्झिमअंसमुदा तेउआउ वियलेसु।
सुरणिरया सगलेस्सहिं, णरतिरियं जांति सगजोग्गं।।५२८।।

अर्थ – पुन: अर्थात् यह विशेष है कि कृष्ण, नील, कापोत इन तीन लेश्याओं के मध्यम अंश सहित मरनेवाले कर्मभूमिया मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य तथा पीतलेश्या के मध्यम अंश सहित मरने वाले भोगभूमिया मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य वे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में उपजते हैं। पुनश्च कृष्ण, नील, कापोत, पीत इन चार लेश्याओं के मध्यम अंश सहित मरने वाले ऐसे तिर्यंच और मनुष्य तथा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म-ऐशान के वासी देव, मिथ्यादृष्टि, वे बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक में उपजते हैं। भवनत्रयादिक की अपेक्षा यहाँ पीतलेश्या जाननी। तिर्यंच, मनुष्य की अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी ।।५२७।।

अर्थ – कृष्ण, नील, कपोत के मध्यम अंश सहित मरनेवाले तिर्यंच और मनुष्य वे अग्निकायिक, वायुकायिक, विकलत्रय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, साधारण वनस्पति इनमें उपजते हैं। पुनश्च भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि तक के देव और धम्मादि सात पृथ्वियों के नारकी अपनी-अपनी लेश्या के अनुसार यथायोग्य मनुष्यगति या तिर्यंचगति को प्राप्त होते हैं। यहाँ इतना जानना कि जिस गति संबंधी पहले आयु बाँधी हो जैसे मनुष्य के पहले देवायु का बंध हुआ और यदि मरण के समय कृष्णादि अशुभलेश्या हो तो भवनत्रिक में ही उपजता है, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।।५२८।।

निम्न स्थानों में किस लेश्या के मध्यम अंश से मरकर कौन जीव उत्पन्न होते हैं ?

उत्पत्ति स्थान	लेश्या	कौन जीव मरकर उत्पन्न होते हैं?
भवनत्रिक	तीन अशुभ	कर्मभूमिया मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यंच
	पीत	भोगभूमिया 〃 〃 〃
बादर पर्याप्त – पृथ्वीकायिक	तीन अशुभ	तिर्यंच और मनुष्य
– जलकायिक	पीत	भवनत्रिक और सौधर्म-ऐशान
– प्रत्येक वनस्पतिकायिक		
समस्त एकेन्द्रिय , विकलेन्द्रिय , असंज्ञी पंचेन्द्रिय , संज्ञी पंचेन्द्रिय, लब्ध्यपर्याप्त	तीन अशुभ	तिर्यंच और मनुष्य
नोट – समस्त देव एवं नारकी मरकर अपनी-अपनी लेश्या के अनुसार यथायोग्य मनुष्य और तिर्यंच गति में उत्पन्न होते हैं।		

८. स्वामी

काऊ काऊ काऊ, णीला णीला य णीलकिण्हा य।
किण्हा य परमकिण्हा, लेस्सा पढमादिपुढवीणं।।५२९।।
णरतिरियाणं ओघो, इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स।
सण्णिअपुण्णगमिच्छे, सासणसम्मेवि असुहतियं।।५३०।।
भोगापुण्णगसम्मे, काउस्स जहण्णियं हवे णियमा।
सम्मे वा मिच्छे वा, पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा।।५३१।।

अर्थ – पहली रत्नप्रभा पृथ्वी में कापोतलेश्या का जघन्य अंश है। दूसरी शर्कराप्रभा पृथ्वी में कापोत लेश्या का मध्यम अंश है। तीसरी बालुकाप्रभा पृथ्वी में कापोत लेश्या का उत्कृष्ट अंश और नील लेश्या का जघन्य अंश है। चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में नील लेश्या का मध्यम अंश है। पाँचवीं धूमप्रभा में नील लेश्या का उत्कृष्ट अंश और कृष्ण लेश्या का जघन्य अंश है। छठी तमप्रभा पृथिवी में कृष्ण लेश्या का मध्यम अंश है। सातवीं महातमप्रभा पृथिवी में कृष्ण लेश्या का उत्कृष्ट अंश है ।।५२९।।

अर्थ – मनुष्य और तिर्यंचों के ओघ अर्थात् सामान्यपने ऊपर बतायी हुई छहों लेश्या पायी जाती हैं। एकेन्द्रिय और विकलत्रय के कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के कृष्णादि चार लेश्या पायी जाती हैं क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय कपोतलेश्या सहित मरे तो पहले नरक में उपजता है, पीतलेश्या सहित मरे तो भवनवासी और व्यंतर देवों में उपजता है तथा कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या सहित मरे तो यथायोग्य मनुष्य, तिर्यंच में उपजता है। इसलिये उसके चार लेश्या हैं। पुनश्च संज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि, तथा अपि शब्द से असंज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच, मिथ्यादृष्टि तथा सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्ति अपर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और भवनत्रिक देव इनमें कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं। तिर्यंच और मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टि है उसके अति संक्लेश परिणाम हो तो भी देशसंयमी के समान उसके कृष्णादि तीन लेश्या नहीं होती। तथापि जो उपशम सम्यक्त्व की विराधना करके सासादन होता है उसके अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती है ।।५३०।।

अर्थ – भोगभूमिया निर्वृत्त्यपर्याप्तक सम्यग्दृष्टि जीवों में कापोतलेश्या का जघन्य अंश होता है। तथा भोगभूमिया सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीवों के पर्याप्त अवस्था में पीत आदि तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं ।।५३१।।

गाथा ५२९–५३१ और ५३४–५३५ का चार्ट–

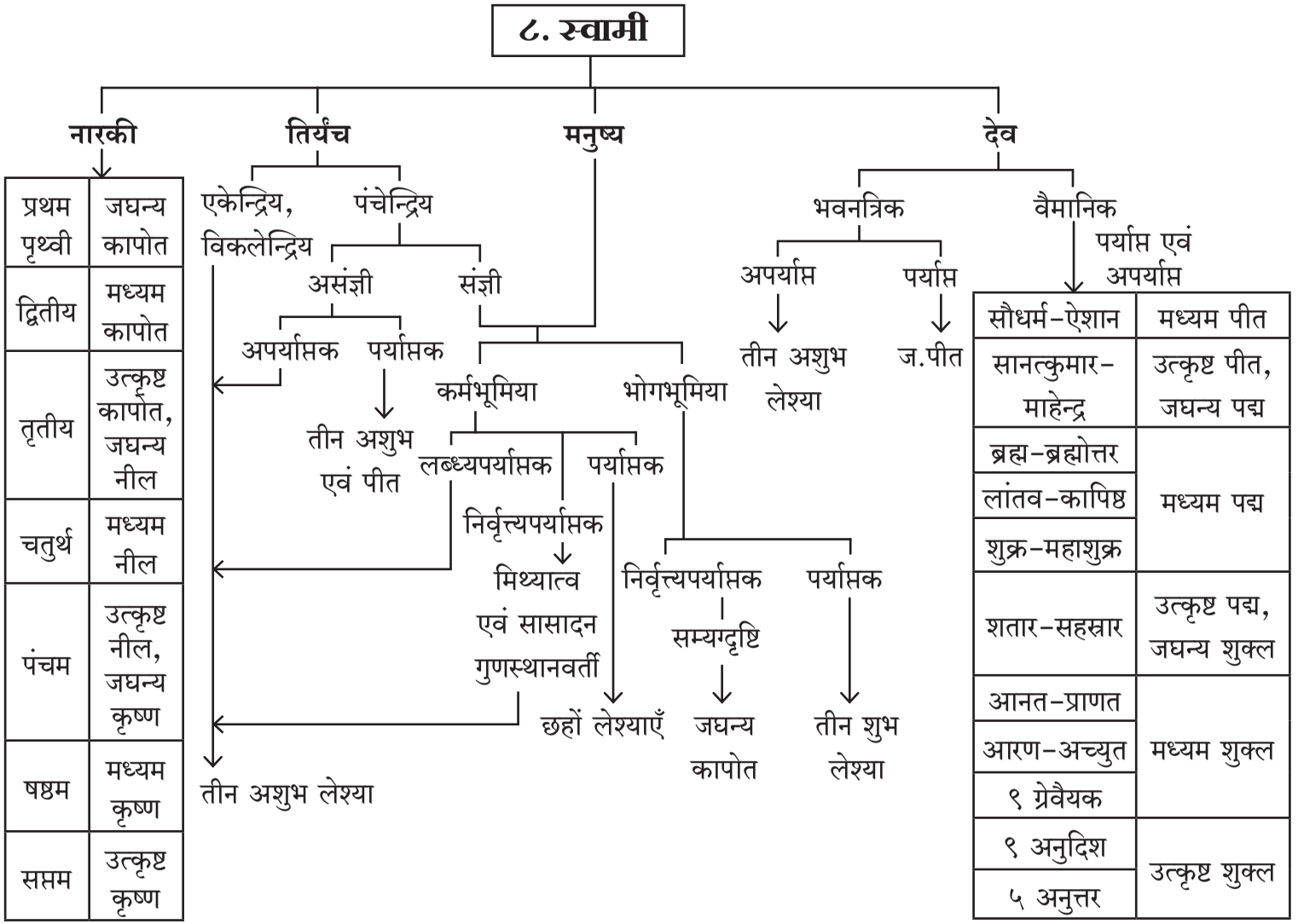
८. स्वामी
नारकी
तिर्यंच
मनुष्य
देव
प्रथम पृथ्वी
जघन्य कापोत
द्वितीय
मध्यम कापोत
तृतीय
उत्कृष्ट कापोत, जघन्य नील
चतुर्थ
मध्यम नील
पंचम
उत्कृष्ट नील, जघन्य कृष्ण
षष्ठम
मध्यम कृष्ण
सप्तम
उत्कृष्ट कृष्ण
एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय
पंचेन्द्रिय
असंज्ञी
संज्ञी
अपर्याप्तक
पर्याप्तक
तीन अशुभ एवं पीत
कर्मभूमिया
भोगभूमिया
लब्ध्यपर्याप्तक
पर्याप्तक
निर्वृत्त्यपर्याप्तक
मिथ्यात्व एवं सासादन गुणस्थानवर्ती
छहों लेश्याएँ
तीन अशुभ लेश्या
निर्वृत्त्यपर्याप्तक
सम्यग्दृष्टि
जघन्य कापोत
पर्याप्तक
तीन शुभ लेश्या
भवनत्रिक
वैमानिक
अपर्याप्त
पर्याप्त
तीन अशुभ लेश्या
ज.पीत
पर्याप्त एवं अपर्याप्त
सौधर्म-ऐशान
मध्यम पीत
सानत्कुमार-माहेन्द्र
उत्कृष्ट पीत, जघन्य पद्म
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर
लांतव-कापिष्ठ
शुक्र-महाशुक्र
मध्यम पद्म
शतार-सहस्रार
उत्कृष्ट पद्म, जघन्य शुक्ल
आनत-प्राणत
आरण-अच्युत
९ ग्रेवैयक
मध्यम शुक्ल
९ अनुदिश
५ अनुत्तर
उत्कृष्ट शुक्ल

अयदो त्ति छ लेस्साओ, सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु।।५३२।।

अर्थ – चतुर्थ गुणस्थानपर्यन्त छहों लेश्याएँ होती है तथा देशविरत,प्रमत्तविरत और अप्रमत्त-विरत इन तीन गुणस्थानों में तीन शुभलेश्याएँ ही होती है। किन्तु इसके आगे अपूर्वकरण से लेकर सयोगकेवलीपर्यन्त एक शुक्ललेश्या ही होती है और अयोगकेवली गुणस्थान लेश्यारहित है ।।५३२।।

गुणस्थान अपेक्षा लेश्या के स्वामी

गुणस्थान	लेश्या
१ – ४	छहों लेश्या
५ – ७	३ शुभ लेश्या
८ – १३	शुक्ल लेश्या
१४	लेश्या रहित

कौन–सी लेश्या	कहाँ से कहाँ तक
कृष्ण, नील, कापोत	१ – ४
पीत, पद्म	१ – ७
शुक्ल	१ – १३
लेश्या रहित	१४

णट्ठकसाये लेस्सा, उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा।।५३३।।

अर्थ – अकषाय जीवों के जो लेश्या बताई है वह भूतपूर्वप्रज्ञापन नय की अपेक्षा से बताई है। अथवा योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं, इस अपेक्षा से वहाँ पर मुख्यरूप से भी लेश्या है, क्योंकि वहाँ पर योग का सद्भाव है ।।५३३।।

कषायरहित गुणस्थानों में लेश्या कैसे सम्भव ?

तिण्हं दोण्हं दोण्हं, छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च।
एत्तो य चोद्दसण्हं, लेस्सा भवणादिदेवाणं।।५३४।।
तेऊ तेऊ तेऊ, पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य।
सुक्का य परमसुक्का भवणतियापुण्णगे असुहा।।५३५।।

अर्थ – भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी इन तीन देवों के पीतलेश्या का जघन्य अंश है। सौधर्म-ऐशान स्वर्गवाले देवों के पीतलेश्या का मध्यम अंश है। सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गवालों के पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्या का जघन्य अंश है। ब्रह्मादि छह स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का मध्यम अंश है। शतार-सहस्रार स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अंश और शुक्ललेश्या का जघन्य अंश है। आनत-प्राणत, आरण-अच्युत तथा नव ग्रैवेयक इन तेरह वैमानिक देवों के शुक्ललेश्या का मध्यम अंश है। इसके ऊपर नव अनुदिश तथा पाँच अनुत्तर इन चौदह विमानवाले देवों के शुक्ल लेश्या का उत्कृष्ट अंश होता है। भवनत्रिक के अपर्याप्त अवस्था में कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याएँ ही होती हैं ।।५३४-५३५।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २४० गाथा नं. ५२९ का चार्ट देखें

९. साधन

वण्णोदयसंपादितसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा।
मोहुदयखओवसमोवसमखयजजीवफंदणं भावो।।५३६।।

अर्थ – वर्णनामकर्म के उदय से जो शरीर का वर्ण (रंग) होता है उसको द्रव्यलेश्या कहते हैं। मोहनीय कर्म के उदय, क्षयोपशम, उपशम या क्षय से जो जीव के प्रदेशों की चंचलता होती है उसको भावलेश्या कहते हैं ।।५३६।।

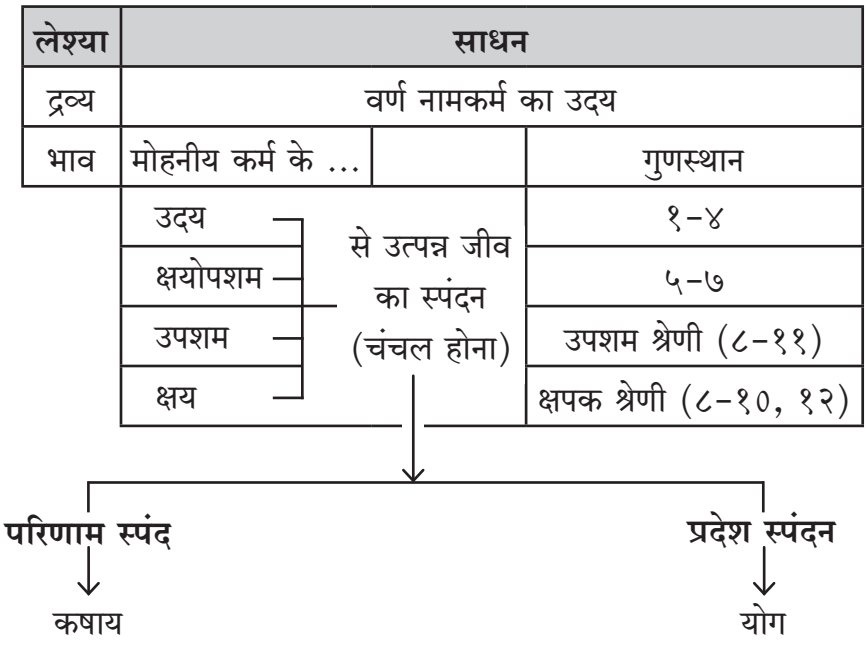

१० संख्या

किण्हादिरासिमावलि-असंखभागेण भजिय पविभत्ते।
हीणकमा कालं वा, अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा।।५३७।।

अर्थ – संसारी जीवराशि में से तीन शुभ लेश्यावाले जीवों का प्रमाण घटाने से जो शेष रहे उतना कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यावाले जीवों का प्रमाण है। यह प्रमाण संसारी जीवराशि से कुछ कम होता है। इस राशि में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग को अलग रखकर शेष बहुभाग के तीन समान भाग करना, तथा शेष अलग रखे हुये एक भाग में आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभाग को तीन समान भागों में से एक भाग में मिलाने से कृष्णलेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है। और शेष एक भाग में फिर आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से लब्ध बहुभाग को तीन समान भागों में से दूसरे भाग में मिलाने से नील लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है और अवशिष्ट एक भाग को तीसरे भाग में मिलाने से कापोतलेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है। इस प्रकार अशुभ लेश्यावालों का द्रव्य की अपेक्षा से प्रमाण कहा। इसी प्रकार काल का प्रमाण भी उत्तरोत्तर अल्प अल्प समझना चाहिये ।।५३७।।

तीन अशुभ लेश्या - संख्या

= संसारी राशि – ३ शुभ लेश्या वाले जीव
= कुछ कम संसारी

बहुभाग → (कुछ कम संसारी) का बहुभाग
= कुछ कम संसारी × $\frac{(\text{आवली / असं.}) - १}{\text{आवली / असं.}}$

एकभाग → $\frac{\text{कुछ कम संसारी}}{\text{आवली / असं.}}$

कृष्ण	उपर्युक्त बहुभाग/३	+	उपर्युक्त एकभाग का बहुभाग
नील	〃	+	उपर्युक्त एकभाग के एकभाग का बहुभाग
कापोत	〃	+	उपर्युक्त एकभाग के एकभाग का एकभाग

उदाहरण

माना –	कुल अशुभ लेश्या वाले जीव	= २१८७
	उपर्युक्त का बहुभाग	= २१८७ × $\frac{८}{९}$ = १९४४
	उपर्युक्त का एकभाग	= २१८७ × $\frac{१}{९}$ = २४३

लेश्या	बहुभाग +	एकभाग	= कुल जीव
कृष्ण	$\frac{१९४४}{३}$ = ६४८ +	२४३ × $\frac{८}{९}$ = २१६	८६४
नील	६४८ +	२४३ × $\frac{१}{९}$ × $\frac{८}{९}$ = २४	६७२
कापोत	६४८ +	२४३ × $\frac{१}{९}$ × $\frac{१}{९}$ = ३	६५१

जीवों की संख्या का निष्कर्ष
कृष्ण $\overset{\text{कुछ}}{>}$ *नील* $\overset{\text{कुछ}}{>}$ *कापोत*
** इसी प्रकार कृष्णादि ३ अशुभ लेश्याओं का काल भी निकाल लेना चाहिए*

काल से जीवों की संख्या निकालने का सूत्र -	
लेश्या	जीवों की संख्या
कृष्ण	$\frac{\text{कुल ३ अशुभ लेश्या वाले जीव}}{\text{तीनों का कुल काल}}$ × कृष्ण लेश्या का काल
नील	〃 × नील लेश्या का काल
कापोत	〃 × कापोत लेश्या का काल

खेत्तादो असुहतिया, अणंतलोगा कमेण परिहीणा।
कालादोतीदादो, अणंतगुणिदा कमा हीणा।।५३८।।
केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा।
तेउतियासंखेज्ञा, संखासंखेज्ञभागकमा।।५३९।।
जोइसियादो अहिया, तिरिक्खसण्णिस्स संखभागो दु।
सूइस्स अंगुलस्स य, असंखभागं तु तेउतियं।।५४०।।
वेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं।
तस्स य संखेज्ञदिमं, तिरिक्खसण्णीण परिमाणं।।५४१।।
तेउदु असंखकप्पा, पल्लासंखेज्ञभागया सुक्का।
ओहिअसंखेज्ञदिमा, तेउतिया भावदो होंति।।५४२।।

अर्थ – क्षेत्रप्रमाण की अपेक्षा तीन अशुभ लेश्यावाले जीव लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे हैं, परन्तु उत्तरोत्तर क्रम से हीन-हीन हैं। तथा काल की अपेक्षा अशुभ लेश्यावालों का प्रमाण, भूतकाल के जितने समय हैं उससे अनंतगुणा है। यह प्रमाण भी उत्तरोत्तर हीनक्रम समझना चाहिये ।।५३८।।

अर्थ – भाव की अपेक्षा तीन अशुभ लेश्यावाले जीव, केवलज्ञान के जितने अविभागप्रतिच्छेद हैं उसके अनंतवें भागप्रमाण हैं। यहाँ पर भी पूर्ववत् उत्तरोत्तर हीनक्रम समझना चाहिये। पीत आदि तीन शुभ लेश्यावालों का द्रव्य की अपेक्षा प्रमाण सामान्य से असंख्यात है। तथापि पीतलेश्यावालों से संख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले हैं और पद्मलेश्यावालों से असंख्यातवें भाग शुक्ललेश्यावाले जीव हैं ।।५३९।।

अर्थ – ज्योतिषी देवों के प्रमाण से कुछ अधिक तेजोलेश्यावाले जीव हैं और समस्त तेजोलेश्यावाले जीवों से ही संख्यातगुणे कम नहीं अपितु तेजोलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंच जीवों के प्रमाण से भी संख्यातगुणे कम पद्मलेश्यावाले जीव हैं और सूच्यङ्गुल के असंख्यातवें भागप्रमाण मात्र शुक्ललेश्यावाले जीव हैं ।।५४०।।

अर्थ – दो सौ छप्पन अंगुल के वर्ग अर्थात् पण्णट्ठीप्रमाण (६५५३६) प्रतरांगुल का भाग जगतप्रतर में देने से जो प्रमाण हो उतने ज्योतिषी देव हैं और इसके संख्यातवें भागप्रमाण संज्ञी तिर्यंच जीव हैं ।।५४१।।

अर्थ – पीतलेश्या वाले, पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्पकाल के समय प्रमाण हैं। तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। कल्पकाल का प्रमाण बीस कोड़ाकोड़ी सागर के जितने समय हो, उतना जानना। शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। ऐसे कालप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।

अवधिज्ञान के जितने भेद हैं उनके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं। तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं। पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भागमात्र शुक्ललेश्यावाले हैं। ऐसे भावप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।।५४२।।

द्रव्यादि चतुष्टय अपेक्षा ६ लेश्या वाले जीवों की संख्या

लेश्या	कृष्ण	नील	कापोत	पीत	पद्म	शुक्ल
द्रव्य	अनंत	कृष्ण से कुछ कम	नील से कुछ कम	असंख्यात	पीत लेश्या वाले जीव/ संख्यात	पद्म लेश्या वाले जीव/ असंख्यात
	अनंत			असंख्यात		
क्षेत्र	लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे = अनंत लोक			कुछ अधिक ज्योतिषी = कुछ अधिक $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^2}$	पीत लेश्या वाले $\frac{\text{संज्ञी तिर्यंच}}{\text{संख्यात}}$ = $\frac{\text{पीत/संख्यात}}{\text{संख्यात}}$	$\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असं.}}$
काल	अतीत काल के समय × अनंत			असंख्यात कल्पकाल के समय		$\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
भाव	$\frac{\text{केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद}}{\text{अनंत}}$			$\frac{\text{अवधिज्ञान के कुल भेद}}{\text{असंख्यात}}$		

११. क्षेत्र

सट्ठाणसमुग्घादे, उववादे सव्वलोयमसुहाणं।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये।।५४३।।
मरदि असंखेज्जदिमं, तस्सासंखा य विग्गहे होंति।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं।।५४४।।
सुक्कस्स समुग्घादे, असंखलोगा य सव्वलोगो य।
फासं सव्वं लोयं, तिट्ठाणे असुहलेस्साणं।।५४५।।

अर्थ – विवक्षित लेश्यावाले जीव विवक्षित पद में रहते हुए वर्तमान में जितने आकाश में पाए जाते है, उसको क्षेत्र कहते हैं। यह क्षेत्र तीन अशुभ लेश्याओं का सामान्य से स्वस्थान, समुद्घात और उपपाद की अपेक्षा सर्वलोकप्रमाण है और तीन शुभलेश्याओं का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागमात्र है ।।५४३।।

अर्थ – पीत-पद्म लेश्यावाले कुल देवों का असं. भाग प्रतिसमय मरता है। मरने वाले देवों में असं. का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवाले जीवों का प्रमाण होता है। उसमें असंख्यात

का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घात करने वाले जीवों का प्रमाण होता है। उसके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण दूर मारणांतिक करने वाले जीव होते हैं। इसके भी असंख्यातवें भाग प्रमाण उपपाद जीव हैं ।।५४४।।

अर्थ – शुक्ल लेश्या का क्षेत्र लोक के असंख्यात भागों में से एकभाग को छोड़कर शेष बहुभागप्रमाण बताया है, सो केवली समुद्घात की अपेक्षा है। कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्यावाले जीवों का स्पर्श स्वस्थान, समुद्घात, उपपाद इन तीन स्थानों में सामान्य से सर्वलोक है ।।५४५।।

क्षेत्र

जीव वर्तमान काल में जितने आकाश में पाये जाएँ

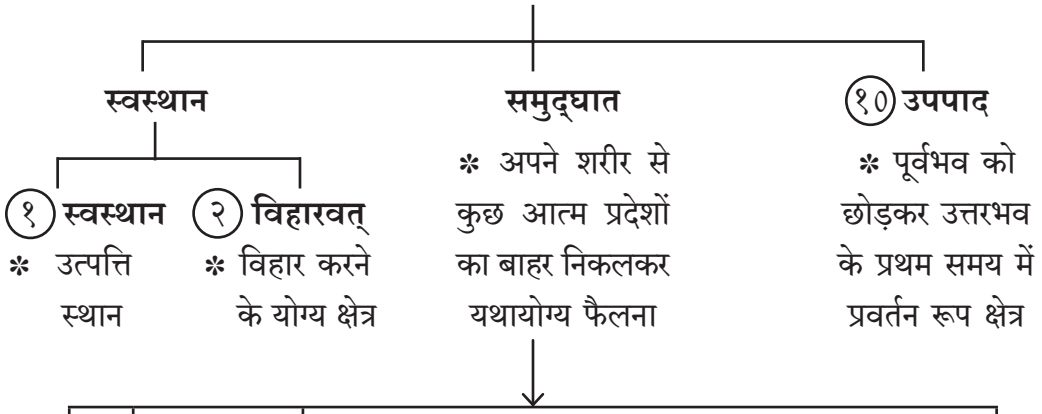

३	**वेदना**	बहुत पीड़ा के निमित्त
४	**कषाय**	क्रोधादि कषाय के निमित्त
५	**वैक्रियिक**	विक्रिया के निमित्त
६	**मारणांतिक**	मरण होने के पहले नवीन पर्याय धारने के क्षेत्र पर्यंत
७	**तैजस**	नगरादिक को जलाने वाले अशुभरूप अथवा भला करने वाले शुभरूप तैजस शरीर के साथ
८	**आहारक**	प्रमत्त गुणस्थान वाले के आहारक शरीर के साथ
९	**केवली**	आयु कर्म की स्थिति के बराबर शेष ३ अघाति कर्मों की स्थिति करने के लिए केवली के दंड-कपाटादि क्रियापूर्वक

अशुभ लेश्याओं के क्षेत्रगत १० स्थानों में जीवों का विभाजन

स्थान	जीवों की संख्या
स्वस्थान	विवक्षित लेश्या वाले जीवों का संख्यात बहुभाग
वेदना	स्वस्थान से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग
कषाय	वेदना से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग
उपपाद	कषाय से शेष रहा एकभाग/श्वास का अठारहवाँ भाग प्रमाण निगोदिया जीव की आयु
मारणांतिक	उपपाद राशि × अंतर्मुहूर्त प्रमाण मारणांतिक समुद्घात का काल = मूलराशि का संख्यातवाँ भाग
विहारवत्	* विवक्षित अशुभ लेश्या वाले पर्याप्त त्रस का संख्यात बहुभाग= स्वस्थान * स्वस्थान से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग = विहारवत्
वैक्रियिक	* वैक्रियिक शक्ति से युक्त जीवों का संख्यात बहुभाग = स्वस्थान * स्वस्थान से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग = विहारवत् * विहारवत् से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग = वेदना * वेदना से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग = कषाय * कषाय से शेष रहा एकभाग = वैक्रियिक
तैजस, आहारक, केवली	अशुभ लेश्या में नहीं होते हैं

शुभ लेश्याओं के क्षेत्रगत १० स्थानों में जीवों का विभाजन

लेश्या / स्थान	पीत	पद्म	शुक्ल
स्वस्थान	विवक्षित लेश्या वाले कुल जीवों का संख्यात बहुभाग		
विहारवत्	स्वस्थान से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग		
वेदना	विहारवत् से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग		
कषाय	वेदना से शेष रहे एकभाग का संख्यात बहुभाग		

<table>
<tr><td>वैक्रियिक</td><td>पूर्वोक्त कषाय से शेष रहा एकभाग</td><td>यहाँ सानत्कुमार-माहेन्द्र देवों की प्रधानता है। अत: सानत्कुमार-माहेन्द्र देवों के कषाय समुद्घात से शेष रहा एकभाग यहाँ लेना</td><td>पूर्वोक्त कषाय से शेष रहा एकभाग</td></tr>
<tr><td rowspan="6">मारणांतिक</td><td>यहाँ व्यंतरों की मुख्यता है क्योंकि प्रत्येक अन्तर्मुहूर्त में वे सबसे अधिक मरते हैं - $\frac{\text{कुल व्यंतर देव}}{\text{संख्यात वर्ष के समय}}$</td><td>यहाँ सानत्कुमार-माहेन्द्र देवों की मुख्यता है - $\frac{\text{कुल सानत्कुमार-माहेन्द्र देव}}{\text{असंख्यात वर्ष के समय}}$</td><td rowspan="5">आनतादि से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीव = संख्यात</td></tr>
<tr><td colspan="2">= एक समय में मरने वाले जीव</td></tr>
<tr><td colspan="2">* १ समय में मरने वाले विवक्षित लेश्या वाले जीवों का संख्यात बहुभाग = विग्रहगति वाले जीव</td></tr>
<tr><td colspan="2">* विग्रहगति वाले जीवों का संख्यात बहुभाग = मारणांतिक वाले जीव</td></tr>
<tr><td colspan="2">* मारणांतिक वालों का असंख्यात बहुभाग = दूरक्षेत्रवर्ती मारणांतिक वाले जीव</td></tr>
<tr><td colspan="2">* दूरक्षेत्रवर्ती मारणांतिक जीव × अन्तर्मुहूर्त = विवक्षित मारणांतिक वाले जीव</td><td></td></tr>
<tr><td>तैजस</td><td colspan="3">संख्यात</td></tr>
<tr><td>आहारक</td><td colspan="3">संख्यात</td></tr>
<tr><td>केवली</td><td colspan="2">पीत एवं पद्म लेश्या में नहीं होता</td><td>आगे चार्ट देखें</td></tr>
<tr><td>उपपाद</td><td>यहाँ सौधर्म-ऐशान देवों की मुख्यता है - मारणांतिक समुद्घात में प्रयुक्त विधि से निकाले गये सौधर्म-ऐशान देवों में दूर मारणांतिक वाले जीवों का असंख्यातवाँ भाग</td><td>दूर मारणांतिक करने वाले सानत्कुमार-माहेन्द्र जीवों का असंख्यातवाँ भाग</td><td>अच्युत से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले जीव = संख्यात</td></tr>
</table>

५ प्रकार के लोक

नाम	सामान्य	अधो	ऊर्ध्व	तिर्यक्	मनुष्यलोक
प्रमाण	सम्पूर्ण लोक	लोक का ४/७ भाग	लोक का ३/७ भाग	१ राजू लम्बा-चौड़ा एवं लाख योजन ऊँचा	४५ लाख यो.लम्बा-चौड़ा एवं लाख यो. ऊँचा

५ प्रकार के लोक अपेक्षा १० स्थानों में क्षेत्र

लेश्या	स्वस्थान	विहारवत्	वेदना	कषाय	वैक्रियिक	मारणांतिक	तैजस	आहारक	केवली	उपपाद
कृष्ण, नील, कापोत	सर्व लोक	* तीन लोकों (सामान्य,अधो,ऊर्ध्व) का असं. भाग * तिर्यक् लोक का सं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा	सर्व लोक		* चार लोकों (सामान्य, अधो, ऊर्ध्व, तिर्यक्) का असं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा	सर्व लोक	×	×	×	सर्व लोक
पीत	* तीन लोकों का असं. भाग * तिर्यक् लोक का सं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा					* तीन लोकों का असं. भाग * तिर्यक् व मनुष्य लोक से असं. गुणा	* चार लोकों का असं. भाग * मनुष्य लोक का सं. भाग		×	मारणांतिक के समान
पद्म	* तीन लोकों का असं. भाग * तिर्यक् लोक का सं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा				* चार लोकों का असं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा		〃		×	मारणांतिक के समान
शुक्ल	* चार लोकों का असं. भाग * मनुष्य लोक से असं. गुणा						〃		आगे देखें	मारणांतिक के समान

१० स्थानों में एक जीव का क्षेत्र निकालने के सूत्र

स्थान	सूत्र
स्वस्थान	एक जीव की अवगाहना
विहारवत्	विहारयोग्य क्षेत्र (लम्बाई) × जीव की चौड़ाई × जीव की मोटाई
वेदना, कषाय	$\frac{\text{समुद्घातगत जघन्य क्षेत्र + समुद्घातगत उत्कृष्ट क्षेत्र}}{२}$ $= \frac{१ \text{ प्रदेश} + (\text{जीव के शरीर की ऊँचाई} \times \text{तीन गुणा चौड़ाई} \times \text{तीन गुणा मोटाई})}{२}$ $= \frac{१ \text{ प्रदेश} + (\text{जीव की अवगाहना} \times ९)}{२} = \text{जीव की अवगाहना} \times ४.५$
वैक्रियिक	विक्रिया योग्य कुल क्षेत्र (लम्बाई × चौड़ाई × मोटाई)
मारणांतिक	परभव में जन्मस्थान तक का क्षेत्र (लम्बाई) × जीव की मोटाई × जीव की चौड़ाई
तैजस	१२ योजन लम्बा × ९ योजन चौड़ा × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ ऊँचा = संख्यात घनांगुल
आहारक	संख्यात योजन लम्बा × १ हाथ ऊँचा × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ चौड़ा = संख्यात घनांगुल
केवली	आगे केवली समुद्घात के चार्ट में देखें
उपपाद	विवक्षित भव में उत्पन्न होने के प्रथम समय में जीव के उत्पत्ति स्थान तक का क्षेत्र (लम्बाई) × जीव की मोटाई × जीव की चौड़ाई

अशुभ लेश्यावाले जीवों का विहारवत् और वैक्रियिक में क्षेत्र

	विहारवत्	वैक्रियिक
कुल जीवों की संख्या ×	$\left(\frac{\text{जगतप्रतर}}{\frac{\text{प्रतरांगुल/सं.}}{\text{संख्यात}}}\right)^{३}$ का बहुभाग	असंख्यात घनांगुल × $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{संख्यात}}$
एक जीव का क्षेत्र (अवगाहना)	संख्यात घनांगुल	
= कुल क्षेत्र	जगतप्रतर × संख्यात सूच्यंगुल	असं. जगतश्रेणी × $(\text{घनांगुल})^{२}$
नोट – अशुभ लेश्या वाले जीवों का क्षेत्र शेष स्थानों में सर्वलोक है।		

शुभ लेश्या वाले जीवों का १० स्थानों में क्षेत्र

	पीत	पद्म	शुक्ल	पीत	पद्म	शुक्ल
	स्वस्थान			**विहारवत्**		
कुल जीवों की संख्या × **एक जीव का क्षेत्र** = **कुल क्षेत्र**	कुछ अधिक ज्योतिषी का संख्यात बहुभाग × घनांगुल/संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{घनांगुल}}{(\text{२५६ अंगुल})^2 \quad \text{सं.}}$ = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$	संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच संख्यात का सं. बहुभाग × संख्यात घनांगुल = $\frac{\text{ज.प्रतर} \times \text{सं. घनांगुल}}{\text{प्रतरांगुल/सं.} \quad \text{सं.}}$ = जगतप्रतर × सं.सूच्यंगुल (या) ज.प्रतर × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$	पल्य/असं. × घनांगुल/संख्यात = $\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}} \times \frac{\text{घनांगुल}}{\text{सं.}}$ =असं.घनांगुल	ज्योतिषी देव संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^2 \times \text{सं}}$ × संख्यात घनांगुल = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{१}}{(\text{२५६ अंगुल})^2 \quad \text{सं.}} \times \text{सं.घनांगुल}$ = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ (या) ज.प्रतर× सं. सूच्यंगुल	संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच/सं. संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/सं.} \quad \text{सं.}^2} \times \frac{\text{१}}{\text{सं.}^2}$ × संख्यात घनांगुल = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{१} \times \text{सं.घनांगुल}}{\text{प्रतरांगुल/सं.} \quad \text{सं.}^2}$ = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ (या) ज.प्रतर × सं.सूच्यंगुल	पल्य/असं. × असं. घनांगुल
	वेदना, कषाय समुद्घातगत			**वैक्रियिक समुद्घातगत**		
कुल जीवों की संख्या × **एक जीव का क्षेत्र** = **कुल क्षेत्र**	ज्योतिषी देव संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^2 \times \text{सं.}}$ × (घनांगुल/सं.)×४.५ = $\frac{\text{ज.प्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$	संज्ञी पर्याप्त तिर्यंच/सं. संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{\text{प्रतरांगुल/सं.} \quad \text{सं.}} \times \frac{\text{१}}{\text{सं.}}$ × सं. घनांगुल × ४.५ = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ (या) ज.प्रतर×सं.सूच्यंगुल	पल्य/असं. × $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{सं.}}$ ×४.५ =असं.घनांगुल	ज्योतिषी देव संख्यात = $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^2 \times \text{सं.}}$ × संख्यात घनांगुल = $\frac{\text{जगतप्रतर} \times \text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ (या) ज.प्रतर × सं. सूच्यंगुल	सानत्कुमार-माहेन्द्र देवों का संख्यातवाँ भाग = $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\sqrt[2^{\text{रा}}]{\text{जगतश्रेणी}}} \times \frac{\text{१}}{\text{सं.}}$ × संख्यात घनांगुल = $\frac{\text{ज.श्रेणी} \times \text{१}}{\sqrt[2^{\text{रा}}]{\text{ज.श्रेणी}} \quad \text{सं.}} \times \text{सं. घनांगुल}$ = असं.घनांगुल	पल्य/असं. × असं. घनांगुल

शुभ लेश्या वाले जीवों का १० स्थानों में क्षेत्र

	पीत	पद्म	शुक्ल	पीत	पद्म	शुक्ल
	मारणांतिक समुद्घातगत			**तैजस, आहारक समुद्घातगत**		
कुल जीवों की संख्या × **एक जीव का क्षेत्र** = **कुल क्षेत्र**	$\frac{\text{व्यंतर देव}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{जगतप्रतर}}{(३०० \text{ योजन})^२} \Big/ \text{असं.}$	$\frac{\text{सानत्कुमार-माहेन्द्र}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\sqrt[११]{\text{जगतश्रेणी}}} \Big/ \text{असं.}$	संख्यात	संख्यात		
	१राजू × सूच्यंगुल/असं. × सूच्यंगुल/सं.	३ राजू × प्रतरांगुल/सं.	६राजू × प्रतरांगुल/सं.	संख्यात घनांगुल		
	जगतप्रतर × ज.श्रेणी/असं. = जगतप्रतर × असं. सूच्यंगुल	जगतश्रेणी/असं. × जगतश्रेणी × प्रतरांगुल = असं. × ज.श्रेणी × प्रतरांगुल	जगतश्रेणी × सं.प्रतरांगुल (या) जगतश्रेणी × प्रतरांगुल/सं.	= संख्यात × संख्यात घनांगुल = संख्यात घनांगुल		
	केवली समुद्घातगत			**उपपाद**		
कुल जीवों की संख्या × **एक जीव का क्षेत्र** = **कुल क्षेत्र**	यहाँ नहीं होता है		आगे केवली समुद्घात के चार्ट में देखें	$\frac{\text{सौधर्म-ऐशान}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{जगतश्रेणी} \times \sqrt[३]{\text{घनांगुल}}}{\text{असं.}}$	$\frac{\text{सानत्कुमार-माहेन्द्र}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{जगतश्रेणी}}{\sqrt[११]{\text{जगतश्रेणी} \times \text{असं.}}}$	संख्यात
				१$\frac{१}{२}$ राजू × सं. प्रतरांगुल	३ राजू × सं. प्रतरांगुल	६ राजू × सं. प्रतरांगुल
				जगतप्रतर × असं प्रतरांगुल	असं. ज.श्रेणी × प्रतरांगुल	जगतश्रेणी × सं. प्रतरांगुल

केवली समुद्घात

	दंड		कपाट				प्रतर	लोकपूरण
स्वरूप	दण्ड के आकार रूप से आत्म प्रदेश सिर्फ ऊँचे फैलते हैं		कपाट (दरवाजा) रूप से आत्मप्रदेश ऊँचे एवं चौड़े फैलते है				ऊँचाई, चौड़ाई एवं मोटाई रूप तीन वातवलय को छोड़कर सम्पूर्ण लोक में आत्मप्रदेश फैलते हैं	सम्पूर्ण लोक में आत्मप्रदेश फैलते हैं
भेद	स्थिति दण्ड (खड्गासन)	उपविष्ट दण्ड (पद्मासन)	पूर्वाभिमुख स्थिति	पूर्वाभिमुख उपविष्ट	उत्तराभिमुख स्थिति	उत्तराभिमुख उपविष्ट		
एक जीव का क्षेत्र लम्बाई	वातवलय बिना १४ राजू लोक की ऊँचाई						तीन वातवलय बिना सर्वलोक	सर्वलोक
चौड़ाई	१२ अंगुल गोल	१२ अंगुल गोल × ३ =३६ अंगुल	कुछ कम ७ राजू (उत्तर दक्षिण दिशा)		कुछ कम ३.५ राजू (पूर्व पश्चिम औसत चौड़ाई)			
मोटाई			१२ अंगुल	१२ अंगुल ×३ =३६ अंगुल	१२ अंगुल	१२ अंगुल ×३ =३६ अंगुल		
क्षेत्रफल (लम्बाई ×चौड़ाई ×मोटाई)	१४ राजू × ३/४ × (१२अंगुल)^2 = जगतश्रेणी× २१६ प्रतरांगुल	१४राजू×३/४× (३६अंगुल)^2 =जगतश्रेणी × १९४४ प्रतरांगुल	१४ राजू× ७ राजू × १२ अंगुल = जगतप्रतर × २४ अंगुल	१४ राजू × ७ राजू × ३६ अंगुल = जगतप्रतर × ७२ अंगुल	१४ राजू × ३.५ राजू × १२ अंगुल = जगतप्रतर × १२ अंगुल	१४ राजू × ३.५ राजू × ३६ अंगुल = जगतप्रतर × ३६ अंगुल		
जीवों की संख्या	४०						एकक्षेत्र अवगाह रूप में सर्व (४०) जीव पाये जाते हैं	
कुल क्षेत्र	जगतश्रेणी × ८६४० प्रतरांगुल	जगतश्रेणी × ७७७६० प्रतरांगुल	जगतप्रतर × ९६० सूच्यंगुल	जगतप्रतर × २८८० सूच्यंगुल	जगतप्रतर × ४८० सूच्यंगुल	जगतप्रतर × १४४० सूच्यंगुल	लोक का असंख्यात बहुभाग	सर्वलोक

१२. स्पर्शन

तीनों काल में स्पर्शित क्षेत्र

तेउस्स य सट्ठाणे, लोगस्स असंखभागमेत्तं तु।
अडचोद्दसभागा वा, देसूणा होंति णियमेण।।५४६।।
एवं तु समुग्घादे, णव चोद्दसभागयं च किंचूणं।
उववादे पढमपदं, दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं।।५४७।।
पम्मस्स य सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं।
अड चोद्दस भागा वा, देसूणा होंति णियमेण।।५४८।।
उववादे पढमपदं पणचोदसभागयं च देसूणं।
सुक्कस्स य तिट्ठाणे, पढमो छच्चोदसा हीणा।।५४९।।
णवरि समुग्घादम्मि य, संखातीदा हवंति भागा वा।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदित्ति णिद्दिट्ठो।।५५०।।

अर्थ – पीतलेश्या का स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श है और विहारवत्स्वस्थान की अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्श है ।।५४६।।

अर्थ – विहारवत्स्वस्थान की तरह समुद्घात में भी त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्श है तथा मारणांतिक समुद्घात की अपेक्षा चौदह भागों में से कुछ कम नव भागप्रमाण स्पर्श है। और उपपाद स्थान में चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ भागप्रमाण स्पर्श है। इसप्रकार यह पीतलेश्या का स्पर्श सामान्य से तीन स्थानों में बताया है ।।५४७।।

अर्थ – पद्मलेश्या का विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय तथा वैक्रियिक समुद्घात में चौदह भागों में से कुछ कम आठ भागप्रमाण स्पर्श है। मारणांतिक समुद्घात में चौदह भागों में से कुछ कम आठ भागप्रमाण ही स्पर्श है, क्योंकि पद्मलेश्यावाले देव पृथ्वी, जल और वनस्पति में उत्पन्न नहीं होते हैं। तैजस तथा आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श है। यहाँ पर ''च'' शब्द का ग्रहण किया है, इसलिये स्वस्थानस्वस्थान में लोक के असंख्यात भागों में से एक भागप्रमाण स्पर्श है ।।५४८।।

अर्थ – पद्मलेश्या शतार-सहस्रार स्वर्गपर्यन्त संभव है और शतार-सहस्रार स्वर्ग मध्यलोक से पाँच राजू ऊपर है, इसलिये उपपाद की अपेक्षा से पद्मलेश्या का स्पर्श त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम पाँच भागप्रमाण है। शुक्ललेश्यावाले जीवों का स्वस्थानस्वस्थान में तेजोलेश्या की तरह लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्श है और विहारवत्स्वस्थान तथा वेदना कषाय, वैक्रियिक मारणांतिक समुद्घात और उपपाद इन तीन स्थानों में चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग प्रमाण स्पर्श है। तैजस तथा आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुलप्रमाण स्पर्श है ।।५४९।।

अर्थ – केवली समुद्घात में विशेषता यह है कि दण्ड समुद्घात में स्पर्श क्षेत्र की तरह संख्यात प्रतरांगुल से गुणित जगच्छ्रेणी प्रमाण है। स्थित वा उपविष्ट कपाट समुद्घात में संख्यात सूच्यंगुल मात्र जगतप्रतर प्रमाण है। प्रतर समुद्घात में लोक के असंख्यात भागों में से एक भाग को छोड़कर शेष बहुभागप्रमाण स्पर्श है तथा लोकपूरण समुद्घात में सर्वलोकप्रमाण स्पर्श है ।।५५०।।

१० स्थानों में स्पर्शन

तीनों काल में स्पर्शित क्षेत्र

स्थान / लेश्या	स्वस्थान	विहारवत्	वेदना	कषाय	वैक्रियिक	मारणांतिक	तैजस	आहारक	केवली	उपपाद
कृष्ण, नील, कापोत	सर्वलोक	तिर्यक् लोक	सर्वलोक		$\frac{५}{१४} = \frac{\text{लोक}}{\text{सं.}}$	सर्व	—	—	—	सर्व
पीत	$\frac{\text{लोक}}{\text{असं.}}$	$\frac{८}{१४}$ घनराजू (त्रसनाड़ी के १४ भागों में से ८ भाग)				$\frac{९}{१४}$	संख्यात घनांगुल		—	$\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$ या $\frac{३}{१४}$
पद्म	〃	← $\frac{८}{१४}$ →					〃		—	$\frac{५}{१४}$
शुक्ल	〃	← $\frac{६}{१४}$ →					〃		आगे देखें	$\frac{६}{१४}$

त्रसनाड़ी	
ऊँचाई	१४ राजू
मोटाई	१ राजू
चौड़ाई	१ राजू
घनफल (ऊँचाई × मोटाई × चौड़ाई)	१४ राजू × १ राजू × १ राजू = **१४ घनराजू**

केवली समुद्घात स्पर्शन

	दंड	कपाट	प्रतर	लोकपूरण
स्पर्शन	जगतश्रेणी × संख्यात प्रतरांगुल = लोक/ असंख्यात	जगतप्रतर × संख्यात सूच्यंगुल	लोक का असंख्यात बहुभाग	सर्व लोक

स्पर्शन - विशेष स्पष्टीकरण

लेश्या	स्थान	स्वामी	स्पर्शन	
कृष्ण, नील, कापोत	विहारवत्	गमनक्रिया युक्त त्रस तिर्यंच	तिर्यक् लोक	लोक/असं.
	वैक्रियिक	विक्रिया युक्त बादर पर्याप्त वायुकायिक	मेरु की जड़ से १२वें स्वर्ग तक	$\frac{५}{१४}$
पीत	विहारवत्, वेदना, कषाय, वैक्रियिक	भवनत्रिक और सौधर्म-ऐशान के देव	मध्य लोक से: नीचे- तीसरी पृथ्वी = **२ राजू** + ऊपर-१६वें स्वर्ग तक = **६ राजू**	= कुछ कम $\frac{८}{१४}$
	मारणांतिक	गमन करते हुए देवों का एकेन्द्रिय में जन्म	तीसरी पृथ्वी से लेकर ऊपर आठवीं पृथ्वी तक	= कुछ कम $\frac{९}{१४}$
	उपपाद	मध्य लोक से मरकर देवों में उत्पन्न होने वाले	मध्यलोक से सौधर्म-ऐशान के अंतिम पटल तक	= कुछ कम $\frac{१\frac{१}{२}}{१४}$
			(या) सानत्कुमार-माहेन्द्र तक	= कुछ कम $\frac{३}{१४}$
पद्म	विहारवत्, वेदना, कषाय, वैक्रियिक	देव	तीसरी पृथ्वी से १६वें स्वर्ग तक	= कुछ कम $\frac{८}{१४}$
	मारणांतिक	गमन करते हुए देवों का पंचेन्द्रिय में जन्म		
	उपपाद	मध्य लोक से मरकर सहस्रार देवों में उत्पन्न होने वाले	मध्यलोक से १२वें स्वर्ग तक	= कुछ कम $\frac{५}{१४}$
शुक्ल	विहारवत्, वेदना, कषाय, वैक्रियिक मारणांतिक	अच्युत स्वर्ग के देव	मध्यलोक से १६वें स्वर्ग तक	= कुछ कम $\frac{६}{१४}$
	उपपाद	मध्य लोक के मनुष्य एवं तिर्यंच		

नोट – कुछ कम =	$\frac{८}{१४}$ $\frac{१}{१४}$ *में*	*तीसरे नरक की नीचे की १००० योजन मोटी पृथ्वी*
	$१\frac{१}{२}$ $\frac{३}{१४}$ $\frac{५}{१४}$ $\frac{६}{१४}$ *में*	*१००० योजन मोटी चित्रा पृथ्वी*

१३. काल

कालो छल्लेस्साणं, णाणाजीवं पडुच्चसव्वद्धा।
अंतोमुहुत्तमवरं, एगं जीवं पडुच्च हवे।।५५१।।
उवहीणं तेत्तीसं, सत्तर सत्तेव होंति दो चेव।
अट्ठारस तेत्तीसा, उक्कस्सा होंति अदिरेया।।५५२।।

अर्थ – कृष्ण आदि छहों लेश्याओं का काल नाना जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा अर्थात् सर्वकाल है तथा एक जीव की अपेक्षा छहों लेश्याओं का जघन्य काल अंतर्मुहूर्त मात्र हैं ।।५५१।।

अर्थ – उत्कृष्ट काल कृष्णलेश्या का तैतीस सागर, नीललेश्या का सत्रह सागर, कापोतलेश्या का सात सागर, पीतलेश्या का दो सागर, पद्मलेश्याका अठारह सागर, शुक्ललेश्या का तैतीस सागर है। छहों लेश्याओं में यह काल कुछ अधिक-अधिक होता हैं, जैसे - कृष्णलेश्या का तैतीस सागर से कुछ अधिक, नीललेश्या का सत्रह सागर से कुछ अधिक, इत्यादि ।।५५२।।

नाना जीव अपेक्षा ६ लेश्याओं का काल

↓

सर्वकाल

एक जीव अपेक्षा काल

↓

	कृष्ण	नील	कापोत	पीत	पद्म	शुक्ल
जघन्य	← सभी का अन्तर्मुहूर्त →					
उत्कृष्ट (सागर में)	← २ अन्तर्मुहूर्त अधिक →					
	३३ (सातवाँ नरक)	१७ (पाँचवाँ नरक)	७ (तीसरा नरक)	२ + कुछ कम $\frac{१}{२}$ (सौधर्म-ऐशान स्वर्ग)	१८+ कुछ कम $\frac{१}{२}$ (शतार-सहस्रार स्वर्ग)	३३ (सर्वार्थसिद्धि)

❊ २ अंतर्मुहूर्त अधिक का खुलासा –		
विवक्षित नारक/देव पर्याय के *(१) पूर्व पर्याय का अन्तिम अंतर्मुहूर्त (२) आगे की पर्याय का आदि अंतर्मुहूर्त*		
उदाहरण मनुष्य पर्याय का अन्तिम अंतर्मुहूर्त कृष्ण लेश्या	+ ३३ सागर सातवाँ नरक कृष्ण लेश्या	+ मरकर तिर्यंच गति का आदि अंतर्मुहूर्त
❊ पीत, पद्म लेश्या में कुछ कम आधा सागर अधिक –		
सम्यग्दृष्टि घातायुष्क की अपेक्षा है ।		

१४. अंतर

विरह काल

अंतरमवरुक्कस्सं, किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु।
उवहीणं तेत्तीसं, अहियं होदि त्ति णिद्दिट्ठं।।५५३।।
तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु।
पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण।।५५४।।

अर्थ – कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं का जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त मात्र है और उत्कृष्ट अंतर कुछ अधिक तैतीस सागर होता है। पीत आदि तीन शुभ लेश्याओं का अन्तर भी इस ही प्रकार है, परन्तु कुछ विशेषता है। शुभ लेश्याओं का उत्कृष्ट अन्तर नियम से असंख्यात पुद्गल परिवर्तन है ।।५५३-५५४।।

अंतर — विरह काल

	कृष्ण		नील	कापोत	पीत	
जघन्य	← अंतर्मुहूर्त →					
उत्कृष्ट	* कोटि पूर्व की आयु वाला मनुष्य ८ वर्ष में अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर **कृष्ण लेश्या को प्राप्त हुआ**		* कृष्ण के समान * परन्तु शुरू और अंत का एक-२ अंतर्मुहूर्त कम जानना	* कृष्ण के समान * परन्तु शुरू और अंत के दो-दो अंतर्मुहूर्त कम जानना	* कोई मनुष्य या तिर्यंच आयु के ४ अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर **पीत लेश्या को प्राप्त हुआ**	
	* क्रम-२ से एक-२ अंतर्मुहूर्त नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल लेश्या को प्राप्त हुआ	५ अंतर्मुहूर्त			* क्रम से कापोतादि ३ को प्राप्त कर	३ अंतर्मुहूर्त
	* दीक्षा धारण कर जीवनपर्यन्त शुभ लेश्या में रहकर	८ वर्ष कम कोटि पूर्व			* मरकर एकेन्द्रिय में जन्म ले वहाँ परिभ्रमण कर	असं. पुद्गल परावर्तन
	* मरकर सर्वार्थसिद्धि में जन्म ले वहाँ रहा	३३ सागर			* विकलेन्द्रिय में परिभ्रमण कर	संख्यात हजार वर्ष
	* मरकर मनुष्य हो एक-२ अंतर्मुहूर्त अनुक्रम से शुक्लादि ५ लेश्या को प्राप्त कर	५ अंतर्मुहूर्त			* पंचेन्द्रिय हो कृष्णादि ३ में क्रम से रहकर	३ अंतर्मुहूर्त
	* **कृष्ण लेश्या को प्राप्त हुआ**				* **पीत लेश्या को प्राप्त हुआ**	
कुल अन्तर		१० अंतर्मुहूर्त + (कोटि पूर्व - ८ वर्ष) + ३३ सागर	८ अंतर्मुहूर्त + (कोटि पूर्व - ८ वर्ष) + ३३ सागर	६ अंतर्मुहूर्त + (कोटि पूर्व - ८ वर्ष) + ३३ सागर		आवली/असं. पुद्गल परावर्तन + संख्यात हजार वर्ष + ६ अंतर्मुहूर्त

अंतर

विरह काल

	पद्म		शुक्ल	
जघन्य	← अंतर्मुहूर्त →			
उत्कृष्ट	* कोई जीव आयु के २ अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर **पद्म लेश्या को प्राप्त हुआ**	१ अंतर्मुहूर्त	* कोई जीव आयु के ३ अंतर्मुहूर्त शेष रहने पर **शुक्ल लेश्या को प्राप्त हुआ**	२ अंतर्मुहूर्त
	* पश्चात अंतर्मुहूर्त पीत लेश्या में रहकर		* क्रम से पद्म, पीत में एक-एक अंतर्मुहूर्त रहकर	
	* मरकर सौधर्म-ऐशान में जन्म ले वहाँ रहकर	२ सागर + पल्य/असं.	ये कथन पद्म के समान जानना	
	* एकेन्द्रिय में जन्म ले वहाँ परिभ्रमण कर	असं. पुद्गल परावर्तन		
	* विकलेन्द्रिय में परिभ्रमण कर	संख्यात हजार वर्ष		
	* पंचेन्द्रिय हो कृष्णादि ४ में क्रम से रहकर	४ अंतर्मुहूर्त	* पंचेन्द्रिय हो कृष्णादि ५ में क्रम से रहकर	५ अंतर्मुहूर्त
	* **पद्म लेश्या को प्राप्त हुआ**		* **शुक्ल लेश्या को प्राप्त हुआ**	
कुल अन्तर		आवली/असं. पुद्गल परावर्तन + संख्यात हजार वर्ष + (२ सागर + पल्य/असं.)+ ५ अंतर्मुहूर्त		असं. पुद्गल परावर्तन + संख्यात हजार वर्ष + (२ सागर + पल्य/असं.)+७अंतर्मुहूर्त

१५. भाव

भावादो छल्लेस्सा, ओदइया होंति अप्पबहुगं तु।
दव्वपमाणे सिद्धं, इदि लेस्सा वण्णिदा होंति।।५५५।।

अर्थ – भाव की अपेक्षा छहों लेश्याएँ औदयिक हैं, क्योंकि कषाय से अनुरंजित योगपरिणाम को ही लेश्या कहते हैं और ये दोनों अपने-अपने योग्य कर्म के उदय से होते हैं। तथा लेश्याओं का अल्पबहुत्व, पहले लेश्याओं का जो संख्या अधिकार में द्रव्यप्रमाण बताया है उसी से सिद्ध है ।।५५५।।

छहों लेश्याओं में भाव

↓

औदयिक

↓

कर्म के उदयरूप भाव

कषाय प्रवृत्ति	**योग प्रवृत्ति**
↓	↓
मोहनीय कर्म के उदयरूप	शरीर नामकर्म के उदयरूप

१६. अल्पबहुत्व

कम-ज्यादा

संख्या अधिकार में द्रव्यप्रमाण से कही संख्या अनुसार –

शुक्ल	<	पद्म	<	पीत	<	कापोत	<	नील	<	कृष्ण
(असंख्यात)		*असं. गुणा*		*सं. गुणा*		*अनंत गुणा*		*कुछ अधिक*		*कुछ अधिक* (अनंतानंत)

किण्हादिलेस्सरहिया, संसारविणिग्गया अणंतसुहा।
सिद्धिपुरं संपत्ता, अलेस्सिया ते मुणेयव्वा।।५५६।।

अर्थ – जो कृष्ण आदि छहों लेश्याओं से रहित हैं, अतएव जो पंच परिवर्तनरूप संसारसमुद्र के पार को प्राप्त हो गये हैं तथा जो अतीन्द्रिय अनंत सुख से तृप्त हैं, आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरी को सम्यक्पने से प्राप्त हो गये हैं, वे अयोगकेवली और सिद्ध भगवान लेश्यारहित अलेश्य जानने।।५५६।।

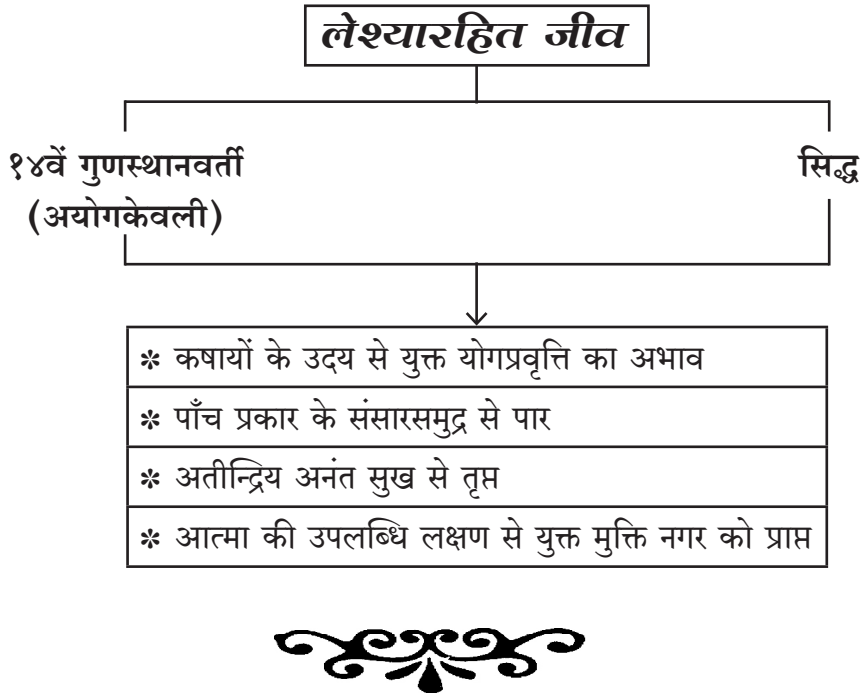
लेश्यारहित जीव
१४वें गुणस्थानवर्ती
(अयोगकेवली)
सिद्ध
* कषायों के उदय से युक्त योगप्रवृत्ति का अभाव
* पाँच प्रकार के संसारसमुद्र से पार
* अतीन्द्रिय अनंत सुख से तृप्त
* आत्मा की उपलब्धि लक्षण से युक्त मुक्ति नगर को प्राप्त

अधिकार १६ - भव्यमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
भव्य-अभव्य का स्वरूप, भव्य के भेद	५५७-५५८	२	२६४
भव्य-अभव्य से रहित जीव	५५९	१	२६४
संख्या	५६०	१	२६४
कुल गाथाएँ		४	

भविया सिद्धी जेसिं, जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा।
तव्विवरीयाऽभव्वा, संसारादो ण सिज्झंति।।५५७।।
भव्वत्तणस्स जोग्गा, जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा।
ण हु मलविगमे णियमा, ताणं कणओवलाणमिव।।५५८।।
ण य जे भव्वाभव्वा, मुत्तिसुहातीदणंतसंसारा।
ते जीवा णायव्वा, णेव य भव्वा अभव्वा य।।५५९।।
अवरो जुत्ताणंतो, अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं।
तेण विहीणो सव्वो, संसारी भव्वरासिस्स।।५६०।।

अर्थ – जिन जीवों की अनंत चतुष्टयरूप सिद्धि होनेवाली हो अथवा जो उसकी प्राप्ति के योग्य हों उनको भव्यसिद्ध कहते हैं। जिनमें इन दोनों में से कोई भी लक्षण घटित न हो उन जीवों को अभव्यसिद्ध कहते हैं ।।५५७।।

अर्थ – जो जीव भव्यत्व, अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक सामग्री को पाकर अनंतचतुष्टयरूप होना, उसके केवल योग्य ही हैं, तद्रूप नहीं होते हैं, वे भव्यसिद्धिक सदाकाल संसार को प्राप्त रहते हैं। किस कारण? - जैसे कई सुवर्ण सहित पाषाण ऐसे होते हैं उनके कभी भी मैल के नाश करने की सामग्री नहीं मिलती, वैसे कई भव्य ऐसे हैं जिनके कभी भी कर्ममल नाश करने की सामग्री नियम से नहीं होती हैं ।।५५८।।

अर्थ – जो जीव कुछ नवीन ज्ञानादिक अवस्था को प्राप्त होनेवाले नहीं इसलिये भव्य भी नहीं हैं और अनंतचतुष्टयरूप हुये है इसलिये अभव्य भी नहीं हैं, ऐसे मुक्ति सुख के भोक्ता अनंत संसार से रहित हुये वे जीव भव्य भी नहीं, अभव्य भी नहीं हैं, जीवत्व पारिणामिक के धारक हैं, ऐसे जानने ।।५५९।।

अर्थ – जघन्य युक्तानन्तप्रमाण अभव्य राशि है और संपूर्ण संसारी जीवराशि में से अभव्यराशि का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना ही भव्यराशि का प्रमाण है ।।५६०।।

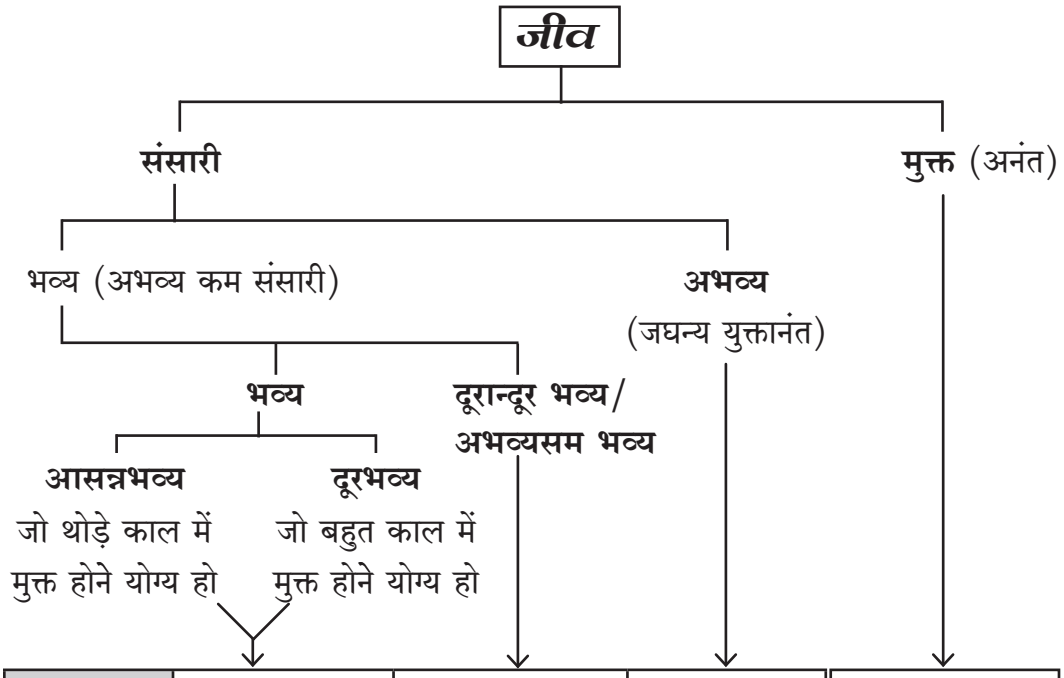

मुक्ति की–				
* योग्यता	है	है	नहीं है	* न भव्य न अभव्य * मुक्तिसुख के भोक्ता * अनंत संसार से रहित
* प्राप्ति	काल पाकर होगी	कभी नहीं होगी	कभी नहीं होगी	
* उदाहरण	* बंध्यापने के दोष से रहित स्त्री * योग्य सामग्री होने पर पुत्र उत्पन्न होगा	(१) *विधवा सती स्त्री * पुत्र उत्पत्ति की योग्यता होने पर भी कभी पुत्र उत्पन्न नहीं होगा (२) * कुछ कनकोपल (स्वर्ण–पाषाण) * कभी भी मैल नाश करने की सामग्री नहीं मिलती है	* बंध्या स्त्री * कभी पुत्र उत्पन्न नहीं हो सकता	

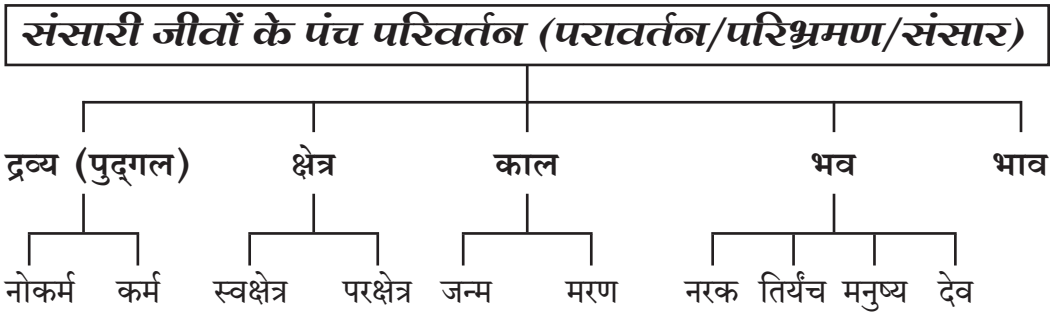

परिवर्तन	स्वरूप
नोकर्म	इसके प्रथम समय में जिन नोकर्म पुद्गलों को जिस रूप में ग्रहण किया, अमुक क्रम बाद पुन: उन्हीं पुद्गलों को उसी रूप में ग्रहण करने में लगने वाला सम्पूर्ण काल
कर्म	* नोकर्म पुद्गल परिवर्तन की तरह * परन्तु यहाँ नोकर्म पुद्गलों की जगह कर्म पुद्गलों को ग्रहण करना
स्वक्षेत्र	सूक्ष्म निगोदिया की जघन्य अवगाहना से महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना तक क्रम-२ से एक-२ प्रदेश बढ़ाकर प्राप्त करने का सम्पूर्ण काल
परक्षेत्र	लोकाकाश के समस्त प्रदेशों पर क्रम-२ से उत्पन्न होने का एवं मरण करने का सम्पूर्ण काल
काल	उत्सर्पिणी व अवसर्पिणी के समस्त समयों में क्रम-२ से जन्म लेने एवं मरने का सम्पूर्ण काल
भव	नरकादि चार गतियों की जघन्य से उत्कृष्ट आयु को क्रम-२ से एक-२ समय बढ़ाकर प्राप्तकर भोगने का सम्पूर्ण काल
भाव	ज्ञानावरणादि कर्मों की मिथ्यादृष्टि की जघन्य से लेकर उत्कृष्ट स्थिति व अनुभाग को बाँधने योग्य सर्व परिणामों को और सर्व योगस्थानों को क्रम-२ से प्राप्त करने का सम्पूर्ण काल
	नियम - * विवक्षित परिवर्तन में जिस क्रम का उल्लेख हो वही गिनती में लिया जायेगा * अक्रम से परिवर्तन होता है परन्तु वह नहीं गिना जाता है * काल तो क्रम-अक्रम दोनों का गिना जाता है

परिवर्तन का काल

द्रव्य	अनंत गुणा <	**क्षेत्र**	अनंत गुणा <	**काल**	अनंत गुणा <	**भव**	अनंत गुणा <	**भाव**
↓								↓
अनंत काल								अनंत काल
↓								↓
सबसे छोटा								सबसे बड़ा

एक भाव परिवर्तन में –	अनंत भव परिवर्तन,
	भव परिवर्तन से अनंत गुणे काल परिवर्तन,
	काल 〃 〃 क्षेत्र परिवर्तन,
	क्षेत्र 〃 〃 द्रव्य परिवर्तन होते हैं।

विशेष विवरण

नोकर्म परिवर्तन का क्रम

✻ किसी जीव ने एक समय में जिस प्रकार के स्पर्शादि से युक्त नोकर्म परमाणुओं के समयप्रबद्ध का ग्रहण किया
✻ तत्पश्चात् द्रव्य परिवर्तन यंत्र में बताये गये अमुक क्रम से गृहीत, अगृहीत व मिश्र परमाणुओं के समयप्रबद्ध को ग्रहण कर
✻ पुन: पहले समय में ग्रहण किये वही परमाणु, वैसी ही स्पर्शादि शक्ति से युक्त नोकर्म परमाणुओं के समयप्रबद्ध का ग्रहण किया
✻ इन सबका समुदायरूप काल = नोकर्म परिवर्तन

गृहीत, अगृहीत व मिश्र ?

गृहीत	अगृहीत	मिश्र
पूर्व में ग्रहण किये हुए	पूर्व में न ग्रहण किये हुए	दोनों प्रकार के
←	परमाणुओं का समयप्रबद्धरूप स्कंध	→
	✻ अनंतानंत परमाणु आज तक किसी जीव ने भी कभी ग्रहण नहीं किये ✻ एक जीव का नवीन परिवर्तन प्रारंभ होने पर सब अगृहीत ही होते हैं	

द्रव्य परिवर्तन यंत्र					
00X	00X	001	00X	00X	001
XX0	XX0	XX1	XX0	XX0	XX1
XX1	XX1	XX0	XX1	XX1	XX0
11X	11X	110	11X	11X	110

यंत्र में प्रयुक्त चिह्न ⟶	0 (शून्य)	= अगृहीत
	1	= गृहीत
	X	= मिश्र
कोई भी चिह्न दोबार लिखने पर अनंतबार जानना		

उदाहरण	✲ प्रथम कोठा 00X = अनंतबार अगृहीत ग्रहण के पश्चात् एकबार मिश्र का ग्रहण
	✲ 00X 00X = इसी क्रम से मिश्र का भी अनंत बार ग्रहण

"कर्म परिवर्तन में भी यही अनुक्रम जानना"

नोकर्म परिवर्तन + कर्म परिवर्तन = १ पुद्गल परिवर्तन

काल परिवर्तन

कल्पकाल

	उत्सर्पिणी	**अवसर्पिणी**
स्वरूप	जीवों के शरीर की ऊँचाई, आयु, बल आदि की क्रमश: वृद्धि	हानि
काल	१० कोड़ाकोड़ी सागर	१० कोड़ाकोड़ी सागर
काल परिवर्तन	✲ कोई जीव उत्सर्पिणी काल के प्रथम समय में जन्म धारण कर आयु पूर्ण करे। ✲ पश्चात् किसी दूसरी अन्य उत्सर्पिणी के द्वितीय समय में जन्म धारण करे। ✲ पुन: किसी अन्य उत्सर्पिणी के तृतीय समय में जन्म धारण करे। ✲ इस ही क्रम से उत्सर्पिणी तथा अवसर्पिणी के समस्त समयों में क्रम-२ से जन्म धारण करे और इसी क्रम से मरण करे। ✲ इन सबमें लगने वाले काल समुदाय को एक काल परिवर्तन कहते हैं।	

भव परिवर्तन

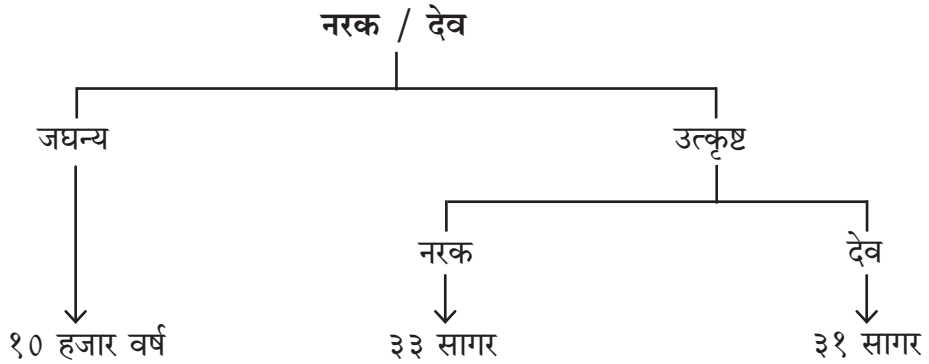

(क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव नौवें ग्रैवेयक तक ही उपजता हैं। एवं भव परिवर्तन मिथ्यादृष्टि के ही होते हैं।)

१० हजार वर्ष के जितने समय हैं, उतनी बार नरक/देव की जघन्य आयु धारण करे। पश्चात् अनुक्रम से १-१ समय बढ़ती हुई आयु धारण कर उत्कृष्ट आयु प्राप्त करे। इन सबके समुदायरूप काल का नाम नरक/देव का भव परिवर्तन है।

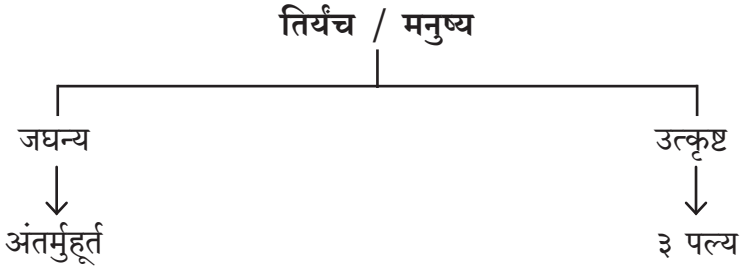

अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं, उतनी बार मनुष्य/तिर्यंच की जघन्य आयु धारण करे। पश्चात् अनुक्रम से १-१ समय बढ़ती हुई आयु धारण कर उत्कृष्ट ३ पल्य की आयु धारण करे। इन सबके समुदायरूप काल को तिर्यंच/मनुष्य का भव परिवर्तन कहते हैं।

उपरोक्त चारों गतियों के परिवर्तन का काल मिलकर एक भव परिवर्तन है।

भाव परिवर्तन

	स्थिति स्थान	कषाय अध्यवसाय स्थान / स्थितिबंध अध्यवसाय स्थान	अनुभाग बंध अध्यवसाय स्थान	योग स्थान
स्वरूप	ज्ञानावरणादि कर्मों की जघन्य से उत्कृष्ट स्थिति तक के भेद	जीव के जिन परिणामों से कर्मों की जघन्य ← से उत्कृष्ट → स्थिति पड़ती है उनके भेद	अनुभाग पड़ता है उनके भेद	आत्मप्रदेशों के परिस्पंदनरूप जघन्य से उत्कृष्ट भेद (इनसे कर्मों का प्रकृति-प्रदेश बंध होता है)
भेदों की संख्या	उत्कृष्ट स्थिति - जघन्य स्थिति+१ (उदाहरण- ज्ञानावरण की ३० कोड़ाकोड़ी सागर- अंत:कोड़ाकोड़ी सागर+१)	१ समय की स्थिति के कारणभूत यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण भेद	१ कषाय अध्यवसाय स्थान में यथायोग्य असंख्यात लोक प्रमाण भेद	$\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$
कुल भेद	संख्यात कोड़ाकोड़ी सागर	१ स्थितिस्थान के कारणभूत परिणाम × कुल स्थितिस्थान = असं. लोक	१ कषाय अध्यवसाय स्थान के कारणभूत परिणाम × कुल कषाय अध्यवसाय स्थान=असं. लोक	

भाव परिवर्तन का क्रम

शुरूआत - किसी संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव ने ज्ञानावरण कर्म की
* अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जघन्य स्थिति स्थान
* जघन्य ही कषाय अध्यवसाय स्थान
* जघन्य ही अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान और
* यथायोग्य जघन्य योग स्थान प्राप्त किया।

स्थिति स्थान	कषाय अध्यवसाय स्थान	अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान	योग स्थान
जघन्य– अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण स्थिति	I (जघन्य)	I (जघन्य)	I (जघन्य)
	 II III असं. लोकप्रमाण	 II III असं. लोकप्रमाणवाँ भेद असं. लोकप्रमाण	II III IV जगतश्रेणी/असं. I (यथायोग्य जघन्य) II III जगतश्रेणी/असं. असं.लोक प्रमाण बार $\frac{\text{जगतश्रेणी}}{\text{असं.}}$ भेद होने पर

स्थिति स्थान	कषाय अध्यवसाय स्थान	अनुभागबंध अध्यवसाय स्थान	योग स्थान
जघन्य स्थिति +१ समय ० ० ० ० ० ३० कोड़ाकोड़ी सागर उत्कृष्ट	० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०	० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०	० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०
❊ जिस प्रकार संज्ञी पंचेन्द्रिय के मूल ज्ञानावरण कर्म के स्थिति स्थान और उसके योग्य कषायाध्यवसाय स्थान, अनुभागबंधाध्यवसाय स्थान, योगस्थान के बँधने का क्रम बताया है,			
❊ उसी प्रकार इसके पश्चात् क्रम से शेष ७ मूल प्रकृतियाँ एवं उत्तर प्रकृतियों का क्रम जानना।			

⋮	= स्थान में कोई परिवर्तन नहीं होगा
० ० ० ०	= आगे का स्थान होता जायेगा

अधिकार १७ - सम्यक्त्वमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
सम्यक्त्व का स्वरूप एवं उत्पत्तिकारण	५६१	१	२७३
६ द्रव्यों के निरूपण रूप सात अधिकारों के नाम	५६२	१	२७५
नाम अधिकार	५६३-५६४	२	२७५
लक्षण अधिकार	५६५-५८०	१६	२७५
स्थिति अधिकार	५८१-५८२	२	२८२
क्षेत्र अधिकार	५८३-५८७	५	२८२
संख्या अधिकार	५८८-५९१	४	२८३
स्थानस्वरूप अधिकार	५९२-६०४	१३	२८५
फल अधिकार	६०५-६१९	१५	२९३
पंचास्तिकाय	६२०	१	२९७
नौ पदार्थ	६२१-६२२	२	२९७
१४ गुणस्थानों में जीवों की संख्या	६२३-६३३	११	२९८
४ गतियों संबंधी विभिन्न-२ गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या के साधक पल्य का भागहार	६३४-६४१	८	३०२
सासादन से देशसंयत पर्यन्त मनुष्यों की संख्या	६४२	१	३०८
नौ पदार्थों का प्रमाण	६४३-६४५	३	३०८
३ प्रकार के सम्यक्त्व का स्वरूप	६४६-६५२	७	३१०
आयुबंध के साथ सम्यक्त्व/संयम का नियम	६५३	१	३१३
सासादन	६५४	१	३१३
मिश्र	६५५	१	३१३
मिथ्यात्व	६५६	१	३१३
संख्या	६५७-६५९	३	३१४
कुल गाथाएँ		९९	

छप्पंचणवविहाणं, अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं।
आणाए अहिगमेण य, सद्दहणं होइ सम्मत्तं।।५६१।।

अर्थ – जिनेन्द्र देव द्वारा कहे छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, नव पदार्थ – इनका श्रद्धान-रुचि- यथावत् प्रतीति करना, उसको सम्यक्त्व कहते हैं। यह दो प्रकार से होता है – आज्ञा से एवं अधिगम से ।।५६१।।

सम्यक्त्व का विषय एवं उत्पत्ति प्रकार

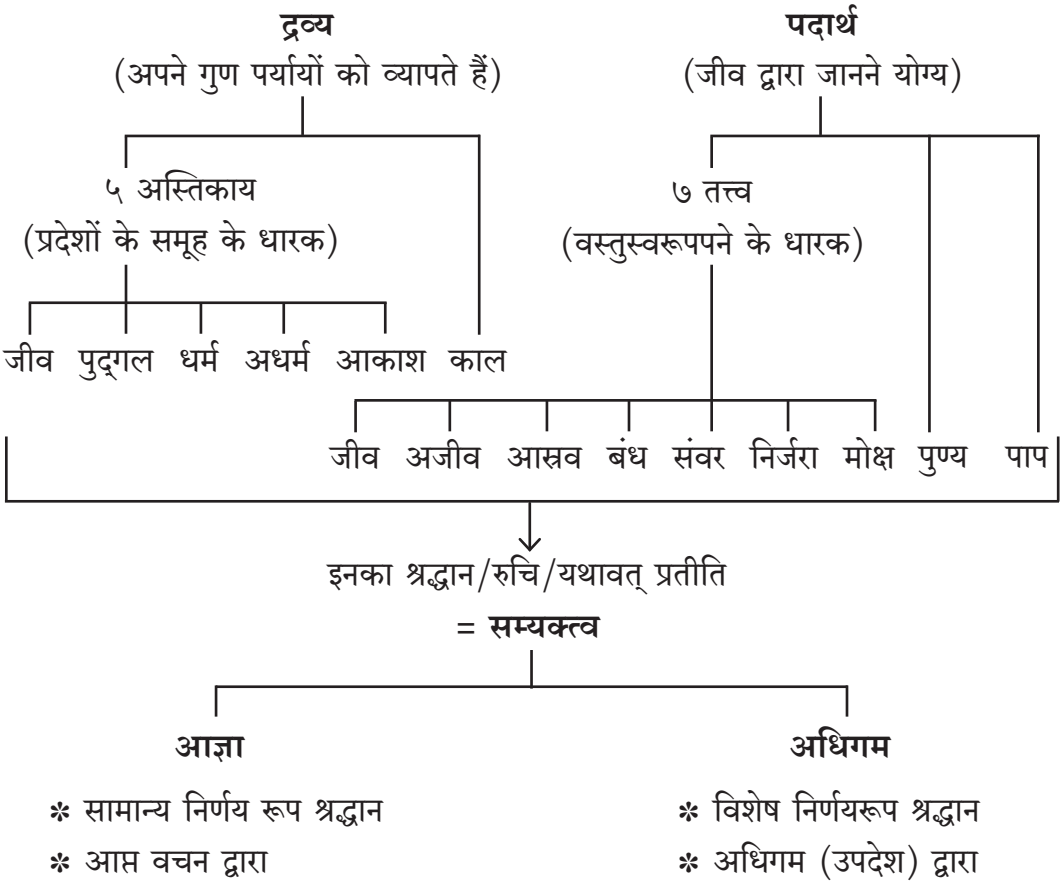

छद्दव्वेसु य णामं, उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो।
अत्थणखेत्तं संखा, ठाणसरूवं फलं च हवे।।५६२।।
जीवाजीवं दव्वं, रूवारूवि त्ति होदि पत्तेयं।
संसारत्था रूवा, कम्मविमुक्का अरूवगया।।५६३।।
अज्जीवेसु य रूवी, पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि।
आगासं कालो वि य, चत्तारि अरूविणो होंति।।५६४।।
उवजोगो वण्णचऊ, लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ।।५६५।।

अर्थ – छः द्रव्यों के निरूपण करने में ये सात अधिकार हैं – नाम, उपलक्षणानुवाद, स्थिति, क्षेत्र, संख्या, स्थानस्वरूप, फल ।।५६२।।

अर्थ – द्रव्य के सामान्यतया दो भेद हैं – एक जीवद्रव्य, दूसरा अजीव द्रव्य। फिर इनमें भी प्रत्येक के दो-दो भेद हैं – एक रूपी, दूसरा अरूपी। जितने संसारी जीव हैं वे सब रूपी हैं, क्योंकि उनका कर्म पुद्गल के साथ एकक्षेत्रावगाह संबंध है। जो जीव कर्म से रहित होकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुके हैं वे सब अरूपी हैं, क्योंकि उनसे कर्मपुद्गल का संबंध सर्वथा छूट गया है ।।५६३।।

अर्थ – अजीव द्रव्य के पाँच भेद हैं, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल। इनमें एक पुद्गल द्रव्य रूपी है और शेष धर्म, अधर्म, आकाश, काल ये चार द्रव्य अरूपी हैं ।।५६४।।

अर्थ – ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग जीवद्रव्य का लक्षण है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श यह पुद्गल द्रव्य का लक्षण है। जो गमन करते हुए जीव और पुद्गलद्रव्य को गमन करने में सहकारी हो उसको धर्मद्रव्य कहते हैं। जो ठहरे हुए जीव तथा पुद्गलद्रव्य को ठहरने में सहकारी हो उसको अधर्मद्रव्य कहते हैं। जो संपूर्ण द्रव्यों को स्थान देने में सहायक हो उसको आकाश कहते हैं। जो समस्त द्रव्यों के अपने-अपने स्वभाव में वर्तने का सहकारी है उसको कालद्रव्य कहते हैं ।।५६५।।

गाथा ५६३-५६५ और ५८१-५८७ का चार्ट-

१. नाम, २. लक्षण, ३. स्थिति, ४. क्षेत्र

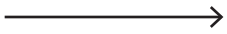

<table>
<tr><td>१.
नाम</td><td colspan="5">द्रव्य
संग्रह नय से → एक प्रकार का = द्रव्य
भेद विवक्षा से
जीव → रूपी → मूर्तिक; स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणों से युक्त; पुद्गल = पुद् + गल = पूरन + गलन = जुड़ना + बिछुड़ना
रूपी → संसारी: मूर्तिक पुद्गल का संबंध होने से
अरूपी → सिद्ध: पौद्गलिक कर्मों से मुक्त होने से
अजीव → अरूपी → अमूर्तिक; स्पर्शादि गुणों से रहित
धर्म — गतिहेतुत्व
अधर्म — स्थितिहेतुत्व
आकाश — अवगाहहेतुत्व
काल — वर्तनाहेतुत्व
अवस्थित: स्थानांतर में नहीं जाते हैं
अचलित: प्रदेशों का चंचलपना नहीं
नित्य: त्रिकाल में विनाश नहीं</td></tr>
<tr><td>२.
लक्षण</td><td colspan="5">उपयोग ⟶ ज्ञान दर्शन
वर्ण चतुष्क ⟶ वर्ण, गंध, रस, स्पर्श</td></tr>
<tr><td>३.
स्थिति</td><td colspan="5">⟵ अनादि अनंत ⟶
प्रत्येक द्रव्य की षट्गुणी हानिवृद्धिरूप त्रिकाल संबंधी अर्थ पर्याय + आकारादि परिणमनरूप त्रिकाल संबंधी व्यंजन पर्याय = सर्व पर्यायों का समूह = द्रव्य</td></tr>
<tr><td>४.
क्षेत्र</td><td>* जघन्य से = सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना = घनांगुल/असं. = असंख्यात प्रदेश
* उत्कृष्ट से = केवली के लोकपूरण समुद्घात के समय = सर्व लोक
* संकोच-विस्तार की शक्ति के कारण</td><td>* अणु = १ प्रदेश
* स्कंध = संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं के समूह
स्कंध का क्षेत्र = यथायोग्य १ प्रदेश से सम्पूर्ण लोकाकाश तक</td><td>* तिल में तेल की भाँति
* सर्व लोक में व्याप्त</td><td>लोकाकाश+ अलोकाकाश (अलोक में सिर्फ आकाश द्रव्य ही है)</td><td>रत्नराशि की तरह लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक - एक कालाणु</td></tr>
</table>

परमाणु का आकार

द्रव्यार्थिक नय	पर्यायार्थिक नय
↓	↓
निरंशपना (उससे अन्य कोई छोटा पदार्थ नहीं है)	छह अंश (कोणों) का समुदाय = षट्कोण

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे।
धम्मतिये ण हि किरिया, मुक्खा पुण पुण साधका होंति।।५६६।।

अर्थ – गमन करने की या ठहरने की तथा रहने की क्रिया जीवद्रव्य तथा पुद्गलद्रव्य की ही होती है। धर्म, अधर्म, आकाश में ये क्रिया नहीं होती, क्योंकि न तो ये एक स्थान से चलायमान होते हैं, और न इनके प्रदेश ही चलायमान होते हैं। किन्तु ये तीनों ही द्रव्य जीव और पुद्गल की उक्त तीनों क्रियाओं के मुख्य साधक हैं ।।५६६।।

क्रिया

गति	स्थिति	अवगाह
प्रदेश से प्रदेशान्तर को प्राप्त होना	गमन करके वहीं रुकना	गति-स्थिति सहित कहीं वास करना (ठहरना-रहना)

जीव-पुद्गल में पाई जाती

↓

* क्रियावती शक्ति होने से
* धर्मादि द्रव्य निमित्त मात्र होते हैं

धर्म-अधर्म आकाश में क्रिया नहीं होती

↓ क्योंकि निम्न का अभाव है

स्थान चलन	प्रदेश चलन
अपने स्थान को छोड़ अन्य स्थान को प्राप्त होना।	प्रदेशों का चंचल होना
जैसे - लोहे के गोले का पहाड़ के शिखर से नीचे गिरना	जैसे - बाल्टी में ही ठहरकर पानी का चंचल होना

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि।।५६७।।

अर्थ – गमन करने वाले को मार्ग की तरह धर्म द्रव्य जीव पुद्गल की गति में सहकारी होता है। ठहरनेवाले को आसन की तरह अधर्म द्रव्य जीव पुद्गल की स्थिति में सहकारी होता है। निवास करनेवाले को मकान की तरह आकाश द्रव्य जीव पुद्गल आदि को अवगाह देने में सहकारी होता है ।।५६७।।

धर्मादि द्रव्य साधक (निमित्त कारण)

जैसे –	**वैसे –**
गमन करने, ठहरने, निवास करने वालों को — मार्ग, आसन, मकान — कारण है	जीव पुद्गल, ″, छह द्रव्यों, ″ को — गति में, स्थिति में, अवगाह में, वर्तन में — धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाशद्रव्य, काल द्रव्य — कारण है
❊ स्वयं गमनादि करते द्रव्यों को कारण है ❊ प्रेरक हो गमनादि नहीं कराते ❊ जहाँ धर्मादि होते हैं, वहीं जीव-पुद्गल गमनादि करते हैं, यही निमित्तरूप कारणपना है ।	

वत्तणहेदू कालो, वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु।
कालाधारेणेव य, वट्टंति हु सव्वदव्वाणि।।५६८।।
धम्माधम्मादीणं, अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं।
हाणीहिं वि वड्ढंतो, हायंतो वट्टदे जम्हा।।५६९।।
ण य परिणमदि सयं सो, ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं।
विविहपरिणामियाणं, हवदि हु कालो सयं हेदू।।५७०।।

अर्थ – जो वर्तता है या वर्तनमात्र होते हैं, उसको वर्तना कहते हैं। सो धर्मादिक द्रव्य अपनी-अपनी पर्यायों की निष्पत्ति में स्वयमेव वर्तमान हैं। उनके किसी बाह्य कारणभूत उपकार बिना वह प्रवृत्ति होती नहीं, इसलिये उनके उस प्रवृत्ति कराने को कारण कालद्रव्य है। इसप्रकार वर्तना कालद्रव्य का उपकार जानना। जो द्रव्य की पर्यायें वर्तती हैं उनके वर्तानेवाला काल है ।।५६८।।

अर्थ – क्रिया का परत्व-अपरत्व तो जीव-पुद्गल में है, धर्मादि अमूर्त द्रव्यों में कैसे संभव है? वह कहते हैं - क्योंकि धर्म अधर्मादि द्रव्यों के अपने द्रव्यत्व के कारणभूत शक्ति के विशेषरूप अगुरुलघु नामक गुण के अविभागप्रतिच्छेद हैं, वे अनंतभागवृद्धि आदि षट्स्थानपतितवृद्धि द्वारा तो बढ़ते हैं और अनंतभागहानि आदि षट्स्थानपतितहानि द्वारा घटते हैं, इसलिये वहाँ ऐसे परिणमन में भी मुख्यकाल ही को कारण जानना ।।५६९।।

अर्थ – परिणामी होने से कालद्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणत हो जाय यह बात नहीं है, वह न तो स्वयं दूसरे द्रव्यरूप परिणत होता है और न दूसरे द्रव्यों को अपने स्वरूप अथवा भिन्न द्रव्यस्वरूप

परिणमाता है, किन्तु अपने-अपने स्वभाव से ही अपने-अपने योग्य पर्यायों से परिणत होने वाले द्रव्यों के परिणमन में कालद्रव्य उदासीनता से स्वयं बाह्य सहकारी हो जाता है ।।५७०।।

छहों द्रव्यों का परिणमन

निमित्त → काल द्रव्य
- ✻ बाह्य सहकारी कारण
- ✻ उदासीन कारण
- ✻ प्रेरक नहीं - जबरदस्ती परिणमाता नहीं

उपादान → प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपनी-२ योग्यता से अपने-२ रूप परिणमते हैं

कालं अस्सिय दव्वं, सगसगपज्जायपरिणदं होदि।
पज्जायावट्ठाणं, सुद्धणये होदि खणमेत्तं।।५७१।।
ववहारो य वियप्पो, भेदो तह पज्जओ त्ति एयट्ठो।
ववहार अवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु।।५७२।।
अवरा पज्जायठिदी, खणमेत्तं होदि तं च समओ त्ति।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु।।५७३।।

अर्थ - काल का निमित्तरूप आश्रय पाकर जीवादिक सर्व द्रव्य स्वकीय-स्वकीय पर्यायरूप परिणमते हैं। उस पर्याय का जो अवस्थान अर्थात् रहने का जो काल, वह शुद्धनय (ऋजुसूत्रनय) से अर्थपर्याय अपेक्षा एक समयमात्र जानना ।।५७१।।

अर्थ - व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय ये सब एकार्थवाची हैं। वहाँ व्यंजनपर्याय का अवस्थान अर्थात् वर्तमानपना उसके द्वारा स्थिति अर्थात् काल का प्रमाण, वही व्यवहार काल है ।।५७२।।

अर्थ - द्रव्यों के जघन्य पर्याय की स्थिति क्षणमात्र है। क्षण नाम समय का है। समीप तिष्ठनेवाले दो परमाणु मंद गमनरूप से परिणत होकर जितने काल में परस्पर उल्लंघन करते हैं, उस काल प्रमाण का नाम समय है ।।५७३।।

प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय के रहने का काल

- ✻ सूक्ष्म ऋजुसूत्र नय से
- ✻ अर्थपर्याय अपेक्षा

→ १ समय मात्र

- ✻ व्यवहार काल अपेक्षा
- ✻ व्यंजन पर्याय का अवस्थान

→ वर्तमान रूप में ठहरने का काल

जघन्य (सबसे छोटी) इकाईयाँ

द्रव्य ↓ परमाणु	क्षेत्र ↓ प्रदेश	काल ↓ समय	भाव ↓ अविभाग प्रतिच्छेद
पुद्गल का सबसे छोटा हिस्सा	आकाश के जितने हिस्से को एक पुद्गल परमाणु रोके	समीप रहने वाले दो परमाणुओं का परस्पर उल्लंघन करने में लगने वाला काल	शक्ति का अविभागी अंश

आवलिअसंखसमया, संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो।
सत्तुस्सासा थोवो, सत्तत्थोवा लवो भणियो।।५७४।।
अट्ठत्तीसद्धलवा, णाली वेणालिया मुहुत्तं तु।
एगसमयेण हीणं, भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं।।५७५।।
ससमयमावलि अवरं, समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं।
मज्झासंखवियप्पं, वियाण अंतोमुहुत्तमिणं ।।क्षेपक गाथा।।
दिवसो पक्खो मासो, उडु अयणं वस्समेवमादी हु।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो।।५७६।।

अर्थ – जघन्य युक्तासंख्यात समय की एक आवली होती है। संख्यात आवली का एक उच्छ्वास होता है। सात उच्छ्वास का एक स्तोक होता है। सात स्तोक का एक लव होता है ।।५७४।।

अर्थ – साढ़े अड़तीस लव की एक नाली (घड़ी) होती है। दो घड़ी का एक मुहूर्त होता है। इसमें एक समय कम करने से भिन्नमुहूर्त अथवा उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त होता है। **तथा इसके आगे दो, तीन, चार आदि समय कम करने से अन्तर्मुहूर्त के भेद होते हैं** ।।५७५।।

***अर्थ** – एक समय अधिक आवली जघन्य अन्तर्मुहूर्त है। एक समय कम मुहूर्त उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है। दोनों के मध्य में असंख्यात भेद हैं, वे सब अन्तर्मुहूर्त जानना ।। क्षेपक गाथा ।।*

अर्थ – तीन मुहूर्त का एक दिवस(अहोरात्र), पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष, दो पक्ष का एक मास, दो मास की एक ऋतु, तीन ऋतु का एक अयन, दो अयन का एक वर्ष इत्यादि व्यवहार काल के आवली से लेकर संख्यात असंख्यात अनंत भेद होते हैं ।।५७६।।

व्यवहार काल

असंख्यात समय	= १ आवली (१ समय अधिक आवली = जघन्य अन्तर्मुहूर्त)
संख्यात आवली	= १ उच्छ्वास (आलस्य, रोगरहित, स्वाधीन सुखी मनुष्य का प्राण)
७ उच्छ्वास	= १ स्तोक
७ स्तोक	= १ लव
३८$\frac{१}{२}$ लव	= १ नाली (घड़ी) = २४ मिनिट
२ घड़ी	= १ मुहूर्त = ४८ मिनिट (मुहूर्त में १ समय कम = भिन्न मुहूर्त /उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त)
३० मुहूर्त	= १ दिवस (दिन-रात्री)
१५ दिवस	= १ पक्ष
२ पक्ष	= १ मास
२ मास	= १ ऋतु
३ ऋतु	= १ अयन
२ अयन	= १ वर्ष

ववहारो पुण कालो, माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु।
जोइसियाणं चारे, ववहारो खलु समाणो त्ति।।५७७।।

अर्थ – व्यवहारकाल मनुष्यलोक में ही जाना जाता है क्योंकि ज्योतिषी देवों के चलने से ही व्यवहारकाल निष्पन्न होता है। अत: ज्योतिषी देवों के चलने का काल और व्यवहार काल दोनों समान हैं ।।५७७।।

ववहारो पुण तिविहो, तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणं तु।।५७८।।
समओ हु वट्टमाणो, जीवादो सव्वपुग्गलादो वि।
भावी अणंतगुणिदो, इदि ववहारो हवे कालो।।५७९।।

अर्थ – व्यवहार काल के तीन भेद हैं – भूत, वर्तमान, भविष्यत्। इनमें से सिद्धराशि का संख्यात आवली के प्रमाण से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना ही अतीत अर्थात् भूत काल का प्रमाण है ।।५७८।।

अर्थ – वर्तमान काल का प्रमाण एक समय है। संपूर्ण जीवराशि तथा समस्त पुद्गलद्रव्यराशि से भी अनंतगुणा भविष्यत् काल का प्रमाण है। इसप्रकार व्यवहार काल के तीन भेद होते हैं ।।५७९।।

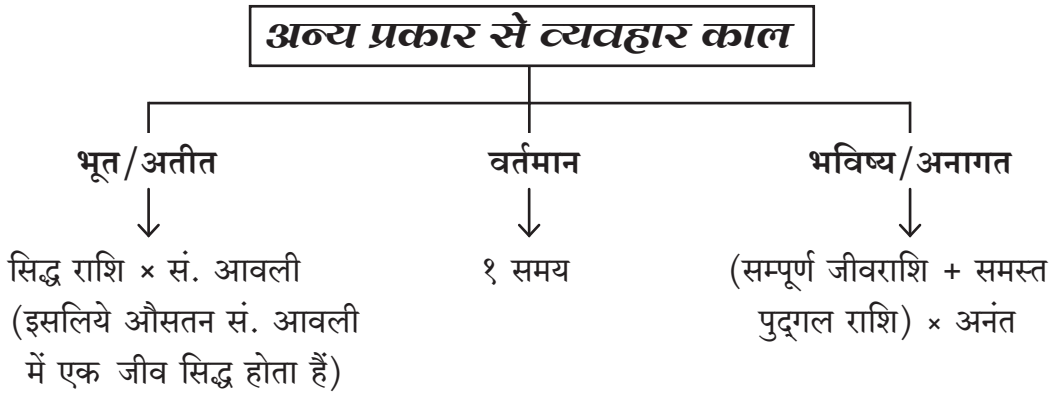

कालो वि य ववएसो, सब्भावपरूवओ हवदि णिच्चो।
उप्पण्णप्पद्धंसी, अवरो दीहंतरट्ठाई।।५८०।।

अर्थ – काल यह व्यपदेश (संज्ञा) मुख्यकाल का बोधक है, निश्चयकाल द्रव्य के अस्तित्व को सूचित करता है क्योंकि बिना मुख्य के गौण अथवा व्यवहार की प्रवृत्ति नहीं हो सकती। यह मुख्य काल द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा नित्य है तथा पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा उत्पन्नध्वंसी है तथा व्यवहारकाल वर्तमान की अपेक्षा उत्पन्नध्वंसी है और भूत-भविष्यत् की अपेक्षा दीर्घान्तरस्थायी है ।।५८०।।

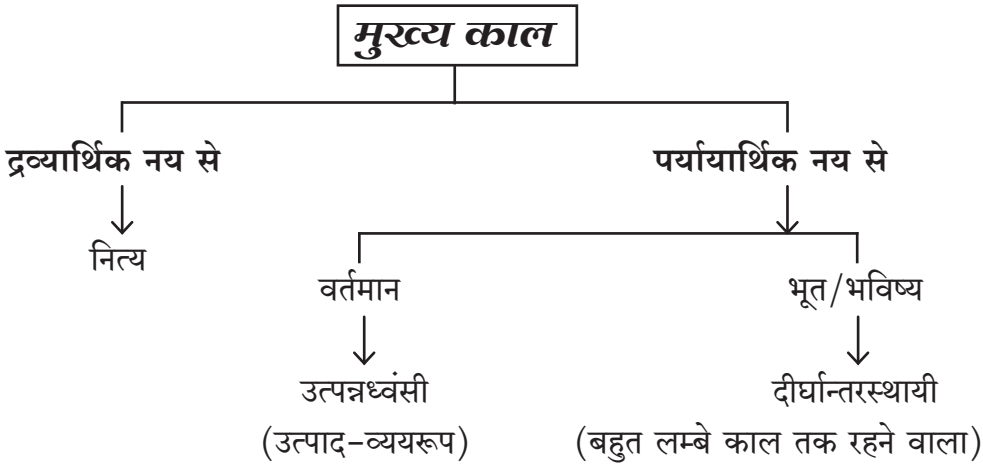

छद्दव्वावट्ठाणं, सरिसं तियकालअत्थपज्जाये।
वेंजणपज्जाये वा, मिलिदे ताणं ठिदित्तादो।।५८१।।
एयदवियम्मि जे, अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि।
तीदाणागदभूदा, तावदियं तं हवदि दव्वं।।५८२।।
आगासं वज्जित्ता, सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि वहिं।
वावी धम्माधम्मा अवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा।।५८३।।
लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो।।५८४।।

पोग्गलदव्वाणं पुण, एयपदेसादि होंति भजणिज्जा।
एक्केक्को दु पदेसो, कालाणूणं धुवो होदि।।५८५।।
संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा।
लोगागासेव ठिदी, एगपदेसो अणुस्स हवे।।५८६।।
लोगागासपदेसा, छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति।
सव्वमलोगागासं, अण्णेहिं विवज्जियं होदि।।५८७।।

अर्थ – अवस्थान=स्थिति छहों द्रव्यों की समान है। क्योंकि त्रिकालसंबंधी अर्थपर्याय वा व्यंजनपर्याय के मिलने से ही उनकी स्थिति होती हैं ।।५८१।।

अर्थ – एक द्रव्य में जितनी त्रिकालसंबंधी अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय हैं उतना ही द्रव्य है ।।५८२।।

अर्थ – आकाश को छोड़कर शेष समस्त द्रव्य लोक में ही हैं – बाहर नहीं हैं। तथा धर्म और अधर्मद्रव्य व्यापक हैं, अवस्थित हैं, अचलित हैं और नित्य हैं ।।५८३।।

अर्थ – एक जीव अपने प्रदेशों के संकोच-विस्तार की अपेक्षा लोक के असंख्यातवें भाग से लेकर संपूर्ण लोक तक में व्याप्त होकर रहता है ।।५८४।।

अर्थ – पुद्गल द्रव्यों का क्षेत्र एक प्रदेश से लेकर यथायोग्य भजनीय होता है। यथा – द्वयणुक एक प्रदेश अथवा दो प्रदेश में रहता है। त्र्यणुक एक प्रदेश, दो प्रदेश अथवा तीन प्रदेश में रहता है। और कालाणु लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक करके ध्रुवरूप से रहते हैं ।।५८५।।

अर्थ – दो अणुओं के स्कंध से लेकर पुद्गल स्कंध संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुरूप हैं। तथापि वे सब लोकाकाश में ही रहते हैं। जैसे जल से सम्पूर्ण भरे हुये पात्र में क्रम से डाले हुये लवण, भस्म (राख), सूई आदि एकक्षेत्रावगाहरूप रहते हैं, वैसे जानना। अविभागी परमाणु का क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र होता है ।।५८६।।

अर्थ – लोकाकाश के समस्त प्रदेशों में छहों द्रव्य व्याप्त हैं और अलोकाकाश आकाश को छोड़कर शेष द्रव्यों से सर्वथा रहित हैं ।।५८७।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २७६ गाथा नं. ५६३ का चार्ट देखें।

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु।
धम्मतियं एक्केक्कं, लोगपदेसप्पमा कालो।।५८८।।
लोगागासपदेसे, एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का।
रयणाणं रासी इव, ते कालाणू मुणेयव्वा।।५८९।।
ववहारो पुण कालो, पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा।।५९०।।
लोगागासपदेसा, धम्माधम्मेगजीवगपदेसा।
सरिसा हु पदेसो पुण, परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं।।५९१।।

अर्थ – जीव द्रव्य अनंत हैं। उनसे अनंतगुणे पुद्गलद्रव्य हैं। धर्म, अधर्म, आकाश ये एक-एक द्रव्य हैं, क्योंकि ये प्रत्येक अखण्ड एक-एक हैं तथा लोकाकाश के जितने प्रदेश हैं उतने ही कालद्रव्य हैं ।।५८८।।

अर्थ – लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक स्थित हैं तथा रत्नों की राशि में रत्न भिन्न- भिन्न रहते हैं उसके समान भिन्न-भिन्न रहते हैं, वे कालाणु जानने ।।५८९।।

अर्थ – पुद्गलद्रव्य के प्रमाण से अनंतगुणा व्यवहारकाल का प्रमाण है। तथा व्यवहारकाल के प्रमाण से अनंतगुणी आकाश के प्रदेशों की संख्या है ।।५९०।।

अर्थ – लोकाकाश, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य और एक जीवद्रव्य के प्रदेश सभी संख्या में समान हैं क्योंकि ये सर्व जगत्श्रेणी के घनप्रमाण हैं। **पुद्गल परमाणु जितना क्षेत्र रोकता है, वह प्रदेश का प्रमाण है। इसलिये जघन्य क्षेत्र और जघन्य द्रव्य अविभागी है** ।।५९१।।

५. संख्या

द्रव्यादि चतुष्य अपेक्षा जीवों की संख्या

द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
अनंत	लोकाकाश के प्रदेश × अनंत	अतीतकाल के समय × अनंत	केवलज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेद / अनंत
	= अनंत लोक	= अतीतकाल से अनंत गुणा	= केवलज्ञान के अनंतवें भाग

द्रव्यों की संख्या

जीव	पुद्गल	धर्म, अधर्म, आकाश	काल
अनंत	जीव से अनंत गुणे = अनंतानंत	एक-एक	लोकाकाश के प्रदेश प्रमाण = असंख्यात

द्रव्यों के प्रदेशों की संख्या

कालाणु	= एक प्रदेश		
धर्म, अधर्म, लोकाकाश एवं एक जीव के प्रदेशों की संख्या			
द्रव्य से	**क्षेत्र से**	**काल से**	**भाव से**
असंख्यात	लोकमात्र प्रदेश	असंख्यात कल्प के समयप्रमाण	अवधिज्ञान के भेद /असं.

द्रव्यों की संख्या का अल्पबहुत्व

जीव $\overset{\text{अनंत गुणा}}{<}$ पुद्गल $\overset{\text{अनंत गुणा}}{<}$ तीन काल के समय $\overset{\text{अनंत गुणा}}{<}$ आकाश के प्रदेश

६. स्थानस्वरूप

सव्वमरूवी दव्वं, अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि।
रूवी जीवा चलिया, तिवियप्पा होंति हु पदेसा।।५९२।।
पोग्गलदव्वम्हि अणू, संखेज्जादी हवंति चलिदा हु।
चरिममहक्खंधम्मि य, चलाचला होंति हु पदेसा।।५९३।।

अर्थ – सर्व अरूपी द्रव्य अर्थात् मुक्त जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अवस्थित हैं, अपने स्थान से चलते नहीं हैं। पुनश्च इनके प्रदेश भी अचलित ही हैं, एक स्थान में भी चलित नहीं हैं। पुनश्च रूपी जीव अर्थात् संसारी जीव चलित हैं, स्थान से स्थानांतर में गमनादि करते हैं। पुनश्च संसारी जीवों के प्रदेश तीन प्रकार के हैं – विग्रहगति में सर्व चलित ही हैं, अयोगकेवली गुणस्थान में अचलित ही हैं, अवशेष जीव रहे उनके आठ मध्यप्रदेश तो अचलित हैं और शेष प्रदेश चलित हैं। योगरूप परिणमन से इस आत्मा के अन्य प्रदेश तो चलित होते हैं और आठ प्रदेश तो अकंप ही रहते हैं ।।५९२।।

अर्थ – पुद्गल द्रव्य में परमाणु और द्वयणुक आदि संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं के स्कंध चलित हैं। अंतिम महास्कंध के कितने ही परमाणु अचलित हैं, अपने स्थान से त्रिकाल में स्थानांतर को प्राप्त नहीं होते। तथा कितने ही परमाणु चलित हैं, वे यथायोग्य चंचल होते हैं ।।५९३।।

अवस्थित एवं अचलित, चलित द्रव्य

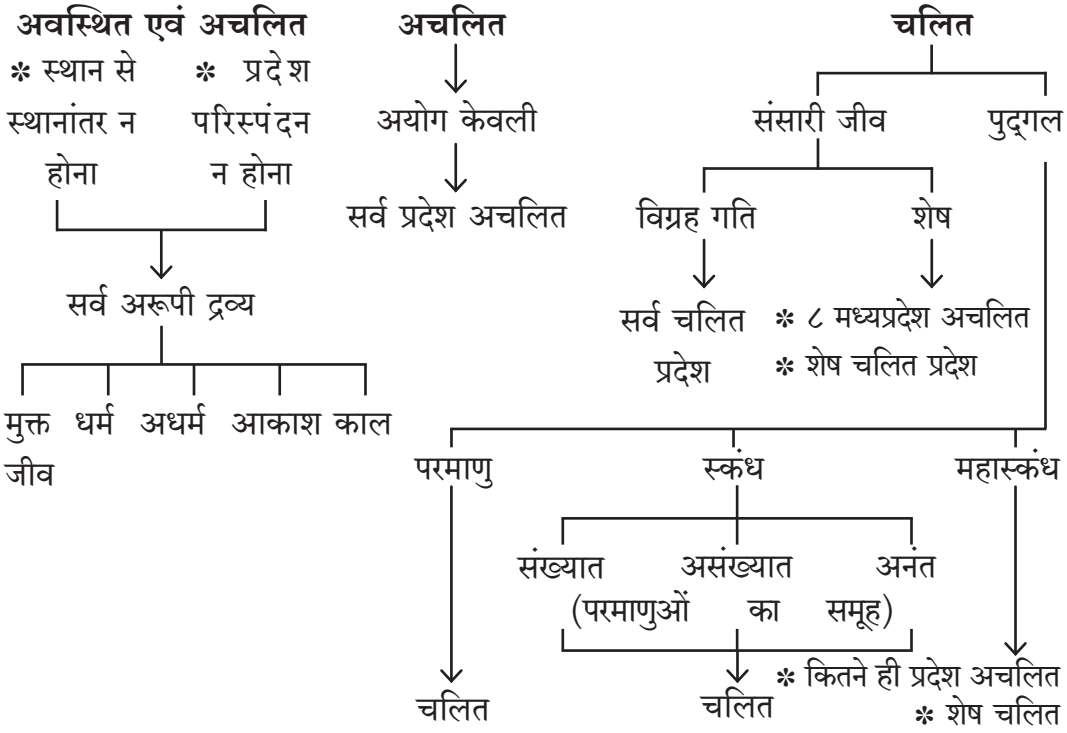

अणुसंखासंखेज्ञाणंता य अगेज्ञगेहि अंतरिया।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा।।५९४।।
सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा।
बादरणिगोदसुण्णा, सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा।।५९५।।
परमाणुवग्गणम्मि ण, अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं।।५९६।।
सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं।
पल्ला संखेज्ञदिमं, अन्तिमखंधस्स जेट्ठट्ठं।।५९७।।
संखेज्ञासंखेज्ञे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते।
चत्तारि अगेज्ञेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो।।५९८।।
जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो।।५९९।।
सेढी सूई पल्ला, जगपदरासंखभागगुणगारा।
अप्पप्पणअवरादो, उक्कस्से होंति णियमेण।।६००।।
हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु।
इदि तेवीसवियप्पा, पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा।।६०१।।

अर्थ – पुद्गलवर्गणाओं के तेईस भेद हैं – अणुवर्गणा, संख्यातागुवर्गणा, असंख्यातागुवर्गणा, अनंतागुवर्गणा, आहारवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, तैजसवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, भाषावर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, मनोवर्गणा, अग्राह्यवर्गणा, कार्मणवर्गणा, ध्रुववर्गणा, सांतरनिरंतरवर्गणा, शून्यवर्गणा, प्रत्येकशरीरवर्गणा, ध्रुवशून्यवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा, महास्कन्धवर्गणा ।।५९४-५९५।।

अर्थ – तेईस प्रकार की वर्गणाओं में से अणुवर्गणा में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है। शेष बाईस जाति की वर्गणाओं में जघन्य उत्कृष्ट भेद हैं तथा इन बाईस जाति की वर्गणाओं में भी आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, कार्मणवर्गणा ये पाँच ग्राह्यवर्गणा, और एक महास्कन्ध वर्गणा इन छह वर्गणाओं के जघन्य से उत्कृष्ट भेद प्रतिभाग की अपेक्षा से हैं। किन्तु शेष सोलह जाति की वर्गणाओं के जघन्य उत्कृष्ट भेद गुणकार की अपेक्षा से हैं ।।५९६।।

अर्थ – पाँच ग्राह्य वर्गणाओं का उत्कृष्ट भेद निकालने के लिये प्रतिभाग का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवें भाग है और अंतिम महास्कन्ध का उत्कृष्ट भेद निकालने के लिये प्रतिभाग का प्रमाण पल्य के असंख्यातवें भाग है ।।५९७।।

अर्थ – संख्यातागुवर्गणा और असंख्यातागुवर्गणा में गुणकार का प्रमाण अपने-अपने उत्कृष्ट में अपने-अपने जघन्य का भाग देने से जो लब्ध आवे उतना है। इस गुणकार के साथ अपने-अपने जघन्य का गुणा करने से अपना-अपना उत्कृष्ट भेद निकलता है और अनंतागुवर्गणा

तथा चार अग्राह्यवर्गणाओं के गुणकार का प्रमाण सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र है। इस गुणकार के साथ अपने-अपने जघन्य का गुणा करने से अपना-अपना उत्कृष्ट भेद निकलता है ।५९८।।

अर्थ – ध्रुववर्गणा, सांतरनिरंतरवर्गणा, शून्यवर्गणा इन तीन वर्गणाओं का उत्कृष्ट भेद निकालने के लिये गुणकार का प्रमाण जीवराशि से अनंतगुणा है, प्रत्येकशरीरवर्गणा का गुणकार पल्य के असंख्यातवें भाग है और ध्रुवशून्यवर्गणा का गुणकार मिथ्यादृष्टि जीवराशि में असंख्यात लोक का भाग देने से जो लब्ध आवे, उतना है ।।५९९।।

अर्थ – बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, नभोवर्गणा इन चार वर्गणाओं के उत्कृष्ट भेद का प्रमाण निकालने के लिये गुणकार का प्रमाण क्रम से जगच्छ्रेणी का असंख्यातवाँ भाग, सूच्यंगुल का असंख्यातवाँ भाग, पल्य का असंख्यातवाँ भाग, जगतप्रतर का असंख्यातवाँ भाग है ।।६००।।

अर्थ – तेईस वर्गणाओं में से अणुवर्गणा को छोड़कर शेष वर्गणाओं के नीचे का जो उत्कृष्ट भेद है उसमें एक अधिक होने पर उसके ऊपर की वर्गणा का जघन्य भेद होता है। ऐसे तेईस वर्गणाभेद से युक्त पुद्गल द्रव्य जिनदेव ने कहे हैं ।।६०१।।

गाथा ५९४-६०१ और ६०७-६०८ का चार्ट-

२३ वर्गणा

वर्गणा = अकर्मजाति, कर्मजाति, नोकर्मजाति का पुद्गल स्कंध

	वर्गणा का नाम	कितने परमाणु पाये जाते हैं –			स्वरूप
		जघन्य भेद	× गुणकार,या + अधिककार	उत्कृष्ट भेद	
१	**अणु**	एक परमाणुरूप होने से भेद नहीं			
२	**संख्याताणु**	दो अणुओं का स्कंध		उत्कृष्ट संख्यात अणुओं का स्कंध	
३	**असंख्याताणु**	जघन्य परीता-संख्यात अणुओं का स्कंध		उत्कृष्ट असंख्याता-संख्यात अणुओं का स्कंध	
४	**अनंताणु**	जघन्य परीतानंत अणुओं का स्कंध	× सिद्ध राशि / अनंत	= उत्कृष्ट अनंताणु	

५	**आहार**	↑ पूर्व-२ वर्गणा का उत्कृष्ट + १ अणु	+ जघन्य आहार / सिद्ध/अनंत	ज.आहार वर्गणा + ज.आहार / सिद्ध/अनंत = कुछ अधिक जघन्य	इससे आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास पर्याप्तियाँ होती हैं
६	**अग्राह्य**		× सिद्ध राशि / अनंत	= जघन्य अग्राह्य से अनंतगुणा	जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं
७	**तैजस**		+ जघन्य तैजस / सिद्ध/अनंत	= कुछ अधिक जघन्य तैजस	इससे तैजस शरीर होता है
८	**अग्राह्य**		× सिद्ध/अनंत	= जघन्य अग्राह्य से अनंतगुणा	जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं
९	**भाषा**		+ जघन्य भाषा / सिद्ध/अनंत	= कुछ अधिक जघन्य भाषा	इससे वचन होते हैं
१०	**अग्राह्य**		× सिद्ध/अनंत	= जघन्य अग्राह्य से अनंतगुणा	जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं
११	**मनो**		+ जघन्य मनो / सिद्ध/अनंत	= कुछ अधिक जघन्य मनो	इससे द्रव्य मन बनता है
१२	**अग्राह्य**		× सिद्ध/अनंत	= जघन्य अग्राह्य से अनंतगुणा	जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं
१३	**कार्मण**		+ जघन्य कार्मण / सिद्ध/अनंत	= कुछ अधिक जघन्य कार्मण	इससे ज्ञानावरणादि ८ कर्म होते हैं
१४	**ध्रुव**		× जीव राशि मात्र अनंत	= जघन्य ध्रुव से अनंतगुणा	यहाँ तक एक-२ परमाणु बढ़ती हुई सत्रूप रहती है
१५	**सांतर निरंतर**	↓	〃	= जघन्य सांतर-निरंतर से अनंतगुणा	* एक-२ परमाणु बढ़ने का अटूट क्रम नहीं रहता * कुछ-२ अन्तराल से प्राप्त होती है

१६	**शून्य**	↑ पूर्व-२ वर्गणा का उत्कृष्ट + १ अणु ↓	〃	= जघन्य शून्य से अनंत गुणा	सत्रूप नहीं
१७	**प्रत्येकशरीर**		× पल्य/असं.	= ज. प्रत्येक शरीर से असंख्यातगुणा	प्रत्येकशरीर जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म और नोकर्म का एक स्कंध
१८	**ध्रुवशून्य**		× सर्व मिथ्यादृष्टि राशि / असं. लोक	= जघन्य ध्रुवशून्य से अनंतगुणा	कभी सत्रूप नहीं
१९	**बादरनिगोद**		× जगतश्रेणी / असं.	= ज. बादरनिगोद से असंख्यातगुणा	बादरनिगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म और नोकर्म का एक स्कंध
२०	**शून्य**		× सूच्यंगुल/असं.	= ज. शून्य से असंख्यातगुणा	सत्रूप नहीं
२१	**सूक्ष्मनिगोद**		× पल्य/असं.	= ज. सूक्ष्मनिगोद से असंख्यातगुणा	सूक्ष्मनिगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म और नोकर्म का एक स्कंध
२२	**नभो**		× जगतप्रतर/असं.	= ज. नभो से असंख्यातगुणा	सत्रूप नहीं
२३	**महास्कंध**		ज. महास्कंध / पल्य/असं.	= कुछ अधिक जघन्य महास्कंध	* भवनवासियों के भवन,देवों के विमान, आठ पृथ्वियाँ, मेरुगिरि, कुलाचल आदि का एक स्कंध उपरोक्त रचनाओं के बीच के परमाणुओं का परिणमन सूक्ष्म रूप है
सर्वत्र मध्यम भेद = (जघन्य +१) से प्रारंभ कर (उत्कृष्ट -१) तक					

२३ वर्गणाओं में जघन्य से उत्कृष्ट भेद कितना अधिक

वर्गणा	अधिक का प्रमाण
अणु वर्गणा	जघन्य-उत्कृष्ट भेद नहीं
* पाँच ग्राह्य वर्गणा (१) आहार (२) तैजस (३) भाषा (४) मन (५) कार्मण	कुछ अधिक
* महास्कंध	
शेष १६ वर्गणा	गुणकाररूप अधिक

तीन सचित्त (जीव सहित) वर्गणा के स्वामी

वर्गणा	जघन्य	उत्कृष्ट
प्रत्येक शरीर वर्गणा	किसी क्षपित कर्मांशिक जीव के अयोगकेवली (१४वें) गुणस्थान के अंतिम समय में	* नंदीश्वर द्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय के धूप के घड़े और * स्वयंभूरमणद्वीप में उत्पन्न दावानल में - जो गुणितकर्मांशिक (जिनके कर्मों का संचय बहुत है) बादर पर्याप्त अग्निकाय जीव हैं - उनके औदारिक, तैजस, कार्मण तीनों शरीरों का एक स्कंध
बादर निगोद वर्गणा	क्षीणकषाय (१२वें) गुणस्थान के अंतिम समय में स्थित जीव के शरीर में एक बंधन रूप आवली/असं. प्रमाण पुलवी का जो एक स्कंध है, उसमें - - अनंतानंत गुणितकर्मांशिक जीव है - उनके तीनों शरीरों का एक स्कंध	स्वयंभूरमणद्वीप में मूला आदि सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति में, जगतश्रेणी/असं. प्रमाण पुलवी में- - अनंतानंत गुणितकर्मांशिक जीव हैं - उनके तीनों शरीरों का एक स्कंध
सूक्ष्म निगोद वर्गणा	- जल में, स्थल में, आकाश में जहाँ-तहाँ एक बंधन में बँधी - आवली/असं. प्रमाण पुलवी में - अनंतानंत क्षपितकर्मांशिक जीव हैं - उनके तीन शरीरों का एक स्कंध	- महामत्स्य के शरीर में - आवली/असं. प्रमाण पुलवी में - गुणितकर्मांशिक अनंतानंत जीव हैं - उनके तीन शरीरों का एक स्कंध

नाना पंक्ति अपेक्षा २३ वर्गणा

वर्तमान किसी एक काल में लोक में कितनी-२ वर्गणाएँ पाई जाती हैं

<table>
<tr><th>क्र.</th><th>वर्गणा</th><th colspan="2">लोक में कितनी पाई जाती है</th></tr>
<tr><td>१-१५</td><td>अणु वर्गणा से सांतर-निरंतर</td><td colspan="2">* सामान्य से ⟶ $\sqrt{\text{पुद्गल द्रव्य}} \times$ अनंत (प्रत्येक)
* विशेष से ⟶ ऊपर-२ कुछ हीन-हीन
- कितना हीन = $\frac{\text{पूर्व वर्गणा का प्रमाण}}{\text{अनंत}}$
- उदाहरण ⟶ दो अणु की वर्गणा का प्रमाण = एक अणु की वर्गणा का प्रमाण - एक अणु वर्गणा का प्रमाण $\frac{\text{प्रमाण}}{\text{सिद्ध/अनंत}}$
- यही क्रम सांतर-निरंतर तक जानना</td></tr>
<tr><td rowspan="2">१७
१९</td><td rowspan="2">प्रत्येक शरीर वर्गणा
बादर निगोद वर्गणा</td><td>जघन्य वर्गणा</td><td>उत्कृष्ट वर्गणा</td></tr>
<tr><td colspan="2">* होती भी है या नहीं भी होती
* यदि होती है तो -
१ या २ या ३ या उत्कृष्ट ४ होती है | १ या २ या ३ या..... उत्कृष्ट $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$ होती है</td></tr>
<tr><td>२१</td><td>सूक्ष्म निगोद वर्गणा</td><td colspan="2">जघन्य वर्गणा एवं उत्कृष्ट वर्गणा
* होती भी है या नहीं भी होती
* यदि होती है तो -
१ या २ या ३ या..... उत्कृष्ट $\frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$ होती है</td></tr>
<tr><td>२३</td><td>महास्कंध</td><td colspan="2">एक</td></tr>
<tr><td colspan="4">* शेष ४ शून्य वर्गणाओं (१६, १८, २०, २२) का अस्तित्व नहीं पाया जाता है।</td></tr>
</table>

पुढवी जलं च छाया, चउरिंदियविसयकम्मपरमाणु।
छव्विहभेयं भणियं, पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं।।६०२।।
बादरबादर बादर, बादरसुहमं च सुहमथूलं च।
सुहमं च सुहमसुहमं धरादियं होदि छब्भेयं।।६०३।।

अर्थ – पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रों को छोड़कर अन्य चार इन्द्रियों का विषय, कार्मण स्कंध और परमाणु ऐसे छह प्रकार के पुद्गलद्रव्य जिनेश्वर देवों ने कहे हैं ।।६०२।।

अर्थ – बादरबादर, बादर, बादरसूक्ष्म, सूक्ष्मबादर, सूक्ष्म, सूक्ष्मसूक्ष्म इस तरह पुद्गलद्रव्य के छह भेद हैं, जैसे उक्त पृथ्वी आदि ।।६०३।।

पुद्गल के छह भेद दृष्टांत सहित

	बादरबादर	बादर	बादर सूक्ष्म	सूक्ष्म बादर	सूक्ष्म	सूक्ष्म सूक्ष्म
स्वरूप	ठोस पदार्थ	द्रव पदार्थ	नेत्र से दिखे पर पकड़ में न आये	नेत्र के बिना शेष ४ इन्द्रियों के विषय	इन्द्रियों से ग्रहण न हो	स्कंध अवस्था से रहित
	छेदन, भेदन एवं अन्य जगह ले जाने के योग्य हो	* छेदन, भेदन के योग्य न हो * अन्यत्र ले जाने योग्य हो			परमावधि, देशावधि गोचर हो	सर्वावधि गोचर हो
दृष्टांत	लकड़ी, पत्थर,पृथ्वी	जल, तेल	छाया, प्रकाश	वायु, ध्वनि	कार्मण वर्गणा	परमाणु

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति।
अद्धद्धं च पदेसो, अविभागी चेव परमाणू।।६०४।।

अर्थ – जो सर्वांश में पूर्ण है उसको स्कन्ध कहते हैं। उसके आधे को देश और आधे के आधे को प्रदेश कहते हैं। जो अविभागी है उसको परमाणु कहते हैं ।।६०४।।

पुद्गल के भेद (जाति अपेक्षा)

परमाणु (अणु)
* पुद्गल का सबसे छोटा हिस्सा जिसका दूसरा भाग न हो
* आदि, मध्य, अंत से रहित

स्कंध
(दो या दो से अधिक परमाणुओं का समूह)

	स्कंध	देश	प्रदेश
	सर्वांश में पूर्ण	स्कंध का आधा	देश का आधा
	लम्बाई, चौड़ाई मोटाई तीनों हो	लम्बाई, चौड़ाई हो	सिर्फ लम्बाई हो
कम से कम	८ परमाणु	४ परमाणु	२ परमाणु

७. फल

गदिठाणोग्गहकिरियासाधणभूदं खु होदि धम्मतियं।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु।।६०५।।

अर्थ – गति, स्थिति, अवगाह इन क्रियाओं के साधन क्रम से धर्म, अधर्म, आकाश द्रव्य है। और वर्तना क्रिया का साधनभूत नियम से काल द्रव्य है ।।६०५।।

धर्मादि द्रव्य - साधन

जिसप्रकार –				
मछलियों के	– गमन	में साधनभूत	जल	है
पथिकजनों के	– स्थान		छाया	
निवास करने वालों के	– अवगाह		वसतिका	
उसी प्रकार –				
गतिक्रियावान जीव पुद्गल की	– गति	क्रिया का साधनभूत	धर्म द्रव्य	है
स्थानक्रियावान "	– स्थिति		अधर्म द्रव्य	
अवगाहक्रियावान सभी द्रव्यों की	– अवगाह		आकाश द्रव्य	
वर्तनक्रियावान "	– वर्तना		काल द्रव्य	

अण्णोण्णुवयारेण य, जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण।।६०६।।

अर्थ – जीव परस्पर में उपकार करते हैं – जैसे सेवक स्वामी की हितसिद्धि में प्रवृत्त होता है और स्वामी सेवक को धनादि देकर संतुष्ट करता है। तथा पुद्गल शरीरादि उत्पन्न करने में कारण है ।।६०६।।

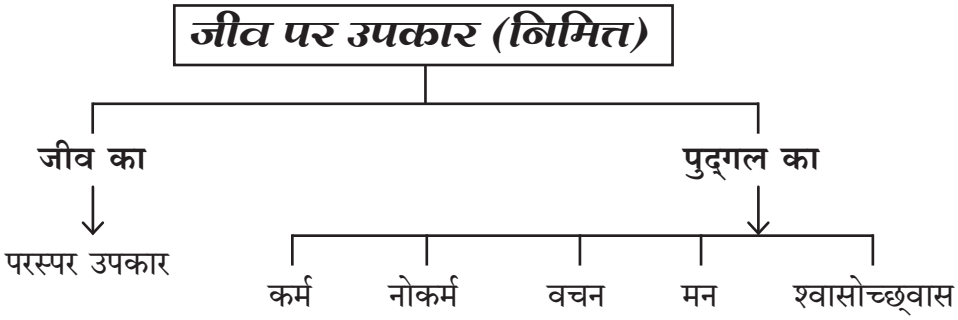

आहारवग्गणादो तिण्णि, सरीराणि होंति उस्सासो।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजगं।।६०७।।
भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।६०८।।

अर्थ – तेईस जाति की वर्गणाओं में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियिक, आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तेजोवर्गणारूप स्कन्ध के द्वारा तैजस शरीर बनता है ।।६०७।।

अर्थ – भाषा वर्गणा के स्कंधों से चार प्रकार की भाषा होती है। मनोवर्गणा के स्कंधों से द्रव्यमन होता है। कार्मणवर्गणा के स्कंधों से आठ प्रकार का कर्म होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।।६०८।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २८८ गाथा नं. ५९४ का चार्ट देखें।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धणुक्खगुणा।।६०९।।
एगगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं विगुणतिगुणसंखेज्जाऽ–।
संखेज्जाणंतगुणं, होदि तहा रुक्खभावं च।।६१०।।
एवं गुणसंजुत्ता, परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया।
जोग्गदुगाणं बंधे, दोण्हं बंधो हवे णियमा।।६११।।
णिद्धणिद्धा ण बज्झंति, रुक्खरुक्खा य पोग्गला।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति, रूवारूवी य पोग्गला।।६१२।।
णिद्धिदरोलीमज्झे, विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं।
रूवि त्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवि त्ति।।६१३।।

दोगुणणिद्धाणुस्स य, दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी।
इगितिगुणादि अरूवी, रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे।।६१४।।
णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण, लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो, जहण्णवज्जे विसमे समे वा।।६१५।।
णिद्धिदरे समविसमा, दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति।
उभयेवि य समविसमा, सरिसिदरा होंति पत्तेयं।।६१६।।
दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसुणंतरदुगाण बंधो दु।
णिद्धे लुक्खे वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ।।६१७।।
णिद्धिदरवरगुणाणू, सपरट्ठाणं वि णेदि बंधट्ठं।
बहिरंतरंगहेदुहि, गुणंतरं संगदे एदि।।६१८।।
णिद्धिदरगुणा अहिया, हीणं परिणामयंति बंधम्मि।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं।।६१९।।

अर्थ – बंध का कारण स्निग्धत्व और रूक्षत्व है। इस स्निग्धत्व या रूक्षत्व गुण के एक से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनंत भेद हैं ।।६०९।।

अर्थ – स्निग्धगुण जो एक गुण है, वह जघन्य है, जिसका एक अंश हो उसको एक गुण कहते हैं। उससे लेकर द्विगुण, त्रिगुण, संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनंतगुणरूप स्निग्धगुण जानना। वैसे ही रूक्षगुण भी जानना। केवलज्ञानगम्य सबसे थोड़ा तो स्निग्धत्व-रूक्षत्व उसको एक अंश मानकर उस अपेक्षा स्निग्ध रूक्ष गुणों के अंशों का यहाँ प्रमाण जानना ।।६१०।।

अर्थ – इसप्रकार के स्निग्ध और रूक्षगुणों से संयुक्त परमाणु अणुवर्गणा में विद्यमान हैं। उनमें से योग्य दो परमाणुओं के बंधस्थान को प्राप्त होने पर उन्हीं दो का बंध होता है ।।६११।।

अर्थ – स्निग्धगुणयुक्त पुद्गलों से स्निग्धगुणयुक्त पुद्गल बँधते नहीं हैं और रूक्षगुणयुक्त पुद्गलों से रूक्षगुणयुक्त पुद्गल बँधते नहीं हैं – यह कथन समान्य है, बंध भी होता है, उसका विशेष आगे कहेंगे। पुनश्च स्निग्धगुणयुक्त पुद्गलों से रूक्षगुण युक्त पुद्गल बँधते है । उन पुद्गलों की दो संज्ञा हैं – एक रूपी, एक अरूपी ।।६१२।।

अर्थ – स्निग्ध-रूक्ष गुणों की पंक्ति विसदृश जाति है अर्थात् स्निग्ध की और रूक्ष की परस्पर विसदृश जाति है, उनमें जो कोई एक समान गुण हो उसको रूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं और समान गुण बिना अवशेष रहे उनको अरूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं ।।६१३।।

अर्थ – दूसरा है गुण जिसके या दो हैं गुण जिसके ऐसा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणु उसके लिये द्विगुण रूक्ष परमाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन, चार इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं। ऐसे ही द्विगुण रूक्षाणु के लिये द्विगुण स्निग्धाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं ।।६१४।।

अर्थ – एक स्निग्ध परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है।

एक रूक्ष परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक रूक्ष परमाणु के साथ बंध होता है। एक स्निग्ध परमाणु का दूसरे दो गुण अधिक रूक्ष परमाणु के साथ भी बंध होता है। सम विषम दोनों का बंध होता है, किन्तु जघन्य गुणवाले का बंध नहीं होता ।।६१५।।

अर्थ – स्निग्ध या रूक्ष दोनों में ही दो गुण के ऊपर जहाँ दो-दो की वृद्धि हो वहाँ समधारा होती है और जहाँ तीन गुण के ऊपर दो-दो की वृद्धि हो उसको विषमधारा कहते हैं। सो स्निग्ध और रूक्ष दोनों में ही दोनों ही धारा होती है तथा प्रत्येक धारा में रूपी और अरूपी होते हैं ।।६१६।।

अर्थ – स्निग्ध और रूक्ष में सम पंक्ति में दो से लेकर दो-दो बढ़ते अंश तथा विषम पंक्ति में तीन से लेकर दो-दो बढ़ते अंश क्रम से पाये जाते हैं। वहाँ अनंतरद्विक का बंध होता है। कैसे? स्निग्ध के दो अंश या रूक्ष के दो अंशवाले पुद्गल का चार अंशवाले रूक्ष पुद्गल के साथ बंध होता है। स्निग्ध के या रूक्ष के तीन अंशवाले पुद्गल का पाँच अंशवाले स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है। ऐसे दो अधिक होने पर बंध जानना। परन्तु एक अंशरूप जघन्य गुणवाले में बंध नहीं होता, अन्यत्र स्निग्ध, रूक्ष में सर्वत्र बंध जानना ।।६१७।।

अर्थ – जघन्य एक गुणयुक्त स्निग्ध या रूक्ष परमाणु स्वस्थान या परस्थान में बंध के लिये योग्य नहीं है। परन्तु वही परमाणु यदि बाह्य अभ्यंतर कारण से दो आदि अन्य अंशों को प्राप्त हो जाये तो बंध योग्य होता है ।।६१८।।

अर्थ – संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेशों के स्कंधों में स्निग्धगुणस्कंध या रूक्षगुणस्कंध के, जिसके भी दो गुण अधिक होते हैं, वे बंध के होते हुये हीन गुणवाले स्कंध को परिणमाते हैं। जैसे दो स्कंध हैं, एक स्कंध में स्निग्ध या रूक्ष के पचास अंश हैं और एक में बावन अंश हैं और उन दोनों स्कंधों का एक स्कंध हुआ तो वहाँ पचास अंश वाले को बावन अंशरूप वाला परिणमाता है। ऐसे सर्वत्र जानना ।।६१९।।

परमाणुओं का बंध

किनका नहीं होता है ?	कब होता है ?	किनका होता है ?
✲ जघन्य गुण (अविभाग प्रतिच्छेद) वाले पुद्गलों का ✲ साम्य (समान) गुणवालों का	✲ स्निग्धता व रूक्षता के कारण ✲ दो अधिक गुण होने पर ही	✲ १. स्निग्ध का स्निग्ध से २. रूक्ष का रूक्ष से ३. स्निग्ध का रूक्ष से

बंध होने पर

कम गुण वाले परमाणु ——————→ अधिक गुणरूप परिणत हो जाते हैं।

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिदं होदि।
काले पदेसपचयो, जम्हा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं।।६२०।।

अर्थ – काल में प्रदेशप्रचय नहीं है, इसलिये काल को छोड़कर शेष द्रव्यों को ही पञ्चास्तिकाय कहते हैं ।।६२०।।

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो य होंति त्ति।।६२१।।
जीवदुगं उत्तट्ठं, जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा।
वदसहिदा वि य पावा, तव्विवरीया हवंति त्ति।।६२२।।

अर्थ – जीव, अजीव, उनके पुण्य और पाप दो तथा आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये नौ पदार्थ होते हैं ।।६२१।।

अर्थ – जीवपदार्थ और अजीवपदार्थ तो पहले जीवसमास अधिकार में और यहाँ षट्द्रव्य अधिकार में कहे हैं। जो सम्यक्त्व गुणयुक्त हो और व्रतयुक्त हो, वे पुण्य जीव है तथा इनसे विपरीत सम्यक्त्व, व्रत रहित जो जीव, वे पाप जीव है ।।६२२।।

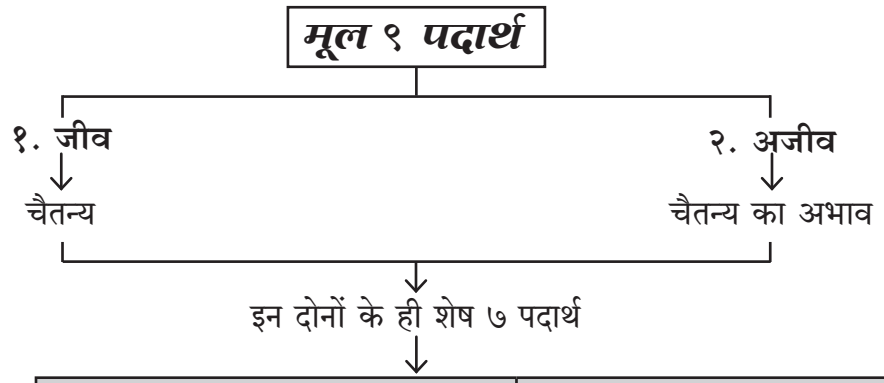

		जीवरूप	अजीव (पुद्गल) रूप
३.	**पुण्य**	शुभ — आत्मा का परिणाम	शुभ प्रकृतिरूप — कर्म परमाणु
४.	**पाप**	अशुभ — आत्मा का परिणाम	अशुभ प्रकृतिरूप — कर्म परमाणु
५.	**आस्रव**	जीव के मोह,राग, द्वेष रूप अशुद्ध परिणाम जिनके निमित्त से कर्म → आते हैं, का आत्मा के साथ संबंध होता है	कर्मों का → आना
६.	**बंध**		कर्मों का → आत्मा से संबंध होना
७.	**संवर**	जीव के शुद्ध परिणाम जिनके निमित्त से कर्म → आना रूकते हैं	कर्मों का → आना रुकना
८.	**निर्जरा**	जीव के शुद्ध परिणाम जिनके निमित्त से कर्म → एकदेश खिरते हैं	कर्मों का → एकदेश खिरना
९.	**मोक्ष**	जीव के शुद्ध परिणाम जिनके निमित्त से कर्म → सम्पूर्ण नष्ट होते हैं	कर्मों का → सम्पूर्ण नष्ट होना

मिच्छाइट्ठी पावा, णंताणंता य सासणगुणा वि।
पल्लासंखेज्जदिमा, अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा।।६२३।।
मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ।।६२४।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि पाप जीव हैं। वे अनंतानंत हैं, क्योंकि द्वितीयादि तेरह गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण घटाने से अवशिष्ट समस्त संसारी जीवराशि मिथ्यादृष्टि ही है। तथा सासादन गुणस्थानवाले जीव पल्य के असंख्यातवें भाग हैं और ये भी पाप जीव ही हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी चौकड़ी में से किसी एक प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व सदृश गुण को प्राप्त होते हैं ।।६२३।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि अनंतानन्त हैं। श्रावक देशविरत गुणस्थानवर्ती पल्य के असंख्यातवें भाग हैं। सासादन गुणस्थानवाले श्रावकों से असंख्यातगुणे हैं। मिश्र सासादनवालों से संख्यातगुणे हैं। अव्रतसम्यग्दृष्टि मिश्रजीवों से असंख्यातगुणे हैं ।।६२४।।

गाथा ६२३–६२४ और ६४२ का चार्ट–

मिथ्यात्वादि ५ गुणस्थानवर्ती जीवों की संख्या

	गुणस्थान	मनुष्य	४ गतियों के कुल जीव	
१	**मिथ्यात्व**	कुछ कम समस्त मनुष्य	संसारी राशि–अन्य १३ गुणस्थानवाले = कुछ कम संसारी = अनंतानंत	
२	**सासादन**	५२ करोड़	$\frac{\text{पल्य}}{(\text{असं.})^2 \times \text{संख्यात}}$	सामान्यपने दूसरे से पाँचवें तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीव $\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$ हैं
३	**मिश्र**	१०४ करोड़	$\frac{\text{पल्य}}{(\text{असं.})^2}$	
४	**अविरत सम्यक्त्व**	७०० करोड़	$\frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$	
५	**देशसंयत**	१३ करोड़	$\frac{\text{पल्य}}{(\text{असं.})^3 \times \text{संख्यात}}$	

देशविरत $\overset{\text{असं.}}{<}$ **सासादन** $\overset{\text{सं.}}{<}$ **मिश्र** $\overset{\text{असं.}}{<}$ **अविरत सम्यग्दृष्टि** $\overset{\text{अनंत}}{<}$ **मिथ्यादृष्टि**

तिरधियसयणवणउदी, छण्णउदी अप्पमत्त वे कोडी।
पंचेव य तेणउदी, णवट्ठविसयच्छउत्तरं पमदे।।६२५।।

अर्थ – प्रमत्त गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण पाँच करोड़ तिरानवे लाख अठानवे हजार दो सौ छह (५,९३,९८,२०६) हैं। अप्रमत्त गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन (२,९६,९९,१०३) है ।।६२५।।

गाथा ६२५, ६२९ और ६३३ का चार्ट–

सर्व संयमी जीवों की संख्या

	गुणस्थान			संख्या
६	प्रमत्तसंयत			५,९३,९८,२०६
७	अप्रमत्तसंयत			२,९६,९९,१०३
		उपशामक	क्षपक	
८	अपूर्वकरण	२९९ +	५९८	= ८९७
९	अनिवृत्तिकरण	२९९ +	५९८	= ८९७
१०	सूक्ष्म सांपराय	२९९ +	५९८	= ८९७
११	उपशांत मोह	२९९		= २९९
१२	क्षीण मोह		५९८	= ५९८
	कुल	११९६	२३९२	
१३	सयोगकेवली			८,९८,५०२
१४	अयोगकेवली			५९८
	समस्त संयमी – कुल			८,९९,९९,९९७
				(३ कम नौ करोड़)

तिसयं भणंति केई, चउरुत्तरमत्थपंचयं केई।
उवसामगपरिमाणं, खवगाणं जाण तद्दुगुणं।।६२६।।

अर्थ – उपशमश्रेणीवाले आठवें, नौवें, दशवें, ग्यारहवें गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण कोई आचार्य तीन सौ कहते हैं, कोई तीन सौ चार कहते हैं, कोई दो सौ निन्यानवे कहते हैं। क्षपकश्रेणीवाले आठवें, नौवें, दशवें, बारहवें गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण उपशम श्रेणीवालों से दूना है ।।६२६।।

श्रेणी मांडने वाले जीवों की संख्या के बारे में विभिन्न मत

		प्रथम मत	द्वितीय मत	तृतीय मत
उपशामक	८वें, ९वें, १०वें, ११वें गुणस्थानवर्ती	३००	३०४	२९९
क्षपक	८वें, ९वें, १०वें, १२वें गुणस्थानवर्ती	६००	६०८	५९८

सोलसयं चउवीसं, तीसं छत्तीस तह य बादालं।
अडदालं चउवण्णं, चउवण्णं होंति उवसमगे।।६२७।।
बत्तीसं अडदालं, सट्ठी वावत्तरी य चुलसीदी।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु।।६२८।।

अर्थ – उपशम श्रेणी पर निरंतर आठ समयों में चढ़नेवाले जीवों की संख्या क्रम से सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, बयालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन होती है ।।६२७।।

अर्थ – क्षपक श्रेणी की संख्या उपशमवालों से दुगुनी होती है। इसलिये निरन्तर आठ समयों में क्षपकश्रेणी चढ़नेवालों की संख्या क्रम से बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छियानवे, एक सौ आठ, एक सौ आठ होती है ।।६२८।।

निरंतर ८ समयों में श्रेणी मांडनेवाले जीवों की उत्कृष्ट संख्या

समय	जीवों की संख्या	
	उपशामक	**क्षपक**
I	१६	३२
II	२४	४८
III	३०	६०
IV	३६	७२
V	४२	८४
VI	४८	९६
VII	५४	१०८
VIII	५४	१०८
कुल	**३०४**	**६०८**

अट्ठेव सयसहस्सा, अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं।
संखा जोगिजिणाणं, पंचसयविउत्तरं वंदे।।६२९।।

अर्थ – सयोगकेवली जिनों की संख्या आठ लाख अठानवे हजार पाँच सौ दो (८,९८,५०२) है। इनकी मैं सदाकाल वंदना करता हूँ।।६२९।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २९९ गाथा नं. ६२५ का चार्ट देखें।

होंति खवा इगिसमये, बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा।।६३०।।
पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो।।६३१।।
जेट्ठावरबहुमज्झिम, ओगाहणगा दु चारि अट्ठेव।
जुगवं हवंति खवगा, उवसमगा अद्धमेदेसिं।।६३२।।

अर्थ – युगपत्–एक समय में क्षपक श्रेणीवाले जीव उत्कृष्टता से निम्नप्रकार से पाये जाते हैं:– बोधितबुद्ध एक सौ आठ, पुरुषवेदी एक सौ आठ, स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य होकर क्षपकश्रेणी माँडनेवाले एक सौ आठ, प्रत्येकबुद्धि ऋद्धि के धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दश, मन:पर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाईस, मुक्त होने के योग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दो, जघन्य अवगाहना के धारक चार, समस्त अवगाहनाओं की मध्यवर्ती अवगाहना के धारक आठ। ये सब मिलकर चार सौ बत्तीस होते हैं। उपशम श्रेणीवाले इसके आधे (२१६) होते हैं।।६३०–६३२।।

श्रेणी में विभिन्न जीवों की एक समय में संभावित उत्कृष्ट संख्या

जीव	क्षपकों की संख्या	उपशामकों की संख्या
बोधितबुद्ध	१०८	५४
पुरुषवेदी	१०८	५४
स्वर्ग से चयकर मनुष्य हो श्रेणी माँडी	१०८	५४
प्रत्येकबुद्धि ऋद्धि के धारक	१०	५
तीर्थंकर	६	३
स्त्रीवेदी	२०	१०
नपुंसकवेदी	१०	५
मन:पर्ययज्ञानी	२०	१०
अवधिज्ञानी	२८	१४
उत्कृष्ट अवगाहना के धारक	२	१
जघन्य " " "	४	२
सर्व अवगाहना के मध्यवर्ती अवगाहना के धारक	८	४

सत्तादी अट्ठंता, छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे।
अंजलिमोलियहत्थो, तियरणसुद्धे णमंसामि।।६३३।।

अर्थ – सात का अंक आदि में और अन्त में आठ का अंक लिखकर दोनों के मध्य में छह नौ के अंक लिखने पर ८९९९९९९७ तीन कम नौ करोड़ संख्या प्रमाण सब संयमियों को मैं हाथों की अंजलि मस्तक से लगाकर मन, वचन, काय की शुद्धि से नमस्कार करता हूँ।।६३३।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २९९ गाथा नं. ६२५ का चार्ट देखें।

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते।।६३४।।
देवाणं अवहारा, होंति असंखेण ताणि अवहरिय।
तत्थेव य पक्खित्ते, सोहम्मीसाण अवहारा।।६३५।। जुम्मं
सोहम्मसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा।।६३६।।
सोहम्मादासारं, जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु।
अविरदमिस्सेऽसंखं, संखासंखगुणं सासणे देसे।।६३७।।
चरमधरासाणहरा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं।
अंतिमगेवेज्जंतं, सम्माणमसंखसंखगुणहारा।।६३८।।
तत्तो ताणुत्ताणं, वामाणमणुद्दिसाण विजयादि।
सम्माणं संखगुणो, आणदमिस्से असंखगुणो।।६३९।।
तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो।
उत्तट्ठाणे कमसो, पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी।।६४०।।
सगसगअवहारेहिं, पल्ले भजिदे हवंति सगरासी।
सगसगगुणपणिवण्णे, सगसगरासीसु अवणिदे वामा।।६४१।।

अर्थ – गुणस्थानसंख्या में असंयत, मिश्र, सासादन के भागहारों का जो प्रमाण बताया है उसमें एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको भागहार के प्रमाण में मिलाने से देवगति संबंधी भागहार का प्रमाण होता है तथा देवगति संबंधी भागहार के प्रमाण में एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देने से जो लब्ध आवे उसको देवगति संबंधी भागहार के प्रमाण में मिलाने से सौधर्म-ऐशान स्वर्ग संबंधी भागहार का प्रमाण होता है ।।६३४-६३५।।

अर्थ – सौधर्म-ऐशान स्वर्ग के सासादन गुणस्थान में जो भागहार का प्रमाण है उससे असंख्यातगुणा सानत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के असंयतगुणस्थान के भागहार का प्रमाण है। इससे असंख्यातगुणा मिश्र गुणस्थान के भागहार का प्रमाण है। तथा मिश्र के भागहार से संख्यातगुणा

सासादन गुणस्थान के भागहार का प्रमाण है ।।६३६।।

अर्थ – सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त पाँच युगल, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, तिर्यंच तथा सातों नरकपृथ्वी, इस तरह ये कुल १६ स्थान हैं। इनके अविरत और मिश्र गुणस्थान में असंख्यात का गुणक्रम है और सासादन गुणस्थान में संख्यात का तथा तिर्यग्गतिसंबंधी देशसंयम गुणस्थान में असंख्यात का गुणक्रम समझना चाहिये ।।६३७।।

अर्थ – सप्तम पृथ्वी के सासादन संबंधी भागहार से आनत-प्राणत के असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है। तथा इसके आगे आरण-अच्युत से लेकर नौवें ग्रैवेयक पर्यन्त दश स्थानों में असंयत का भागहार क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है ।।६३८।।

अर्थ – इसके अनन्तर आनत-प्राणत से लेकर नवम ग्रैवेयक पर्यंत के मिथ्यादृष्टि जीवों का भागहार क्रम से अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयत के भागहार से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है। इस अंतिम ग्रैवेयक संबंधी मिथ्यादृष्टि के भागहार से क्रमपूर्वक संख्यातगुणा-संख्यातगुणा नव अनुदिश और विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित के असंयतों का भागहार है। विजयादिकसंबंधी असंयत के भागहार से आनत-प्राणत संबंधी मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है ।।६३९।।

अर्थ – आनत-प्राणत संबंधी मिश्र के भागहार से आरण अच्युत से लेकर नवम ग्रैवेयक पर्यंत दश स्थानों में मिश्रसंबंधी भागहार का प्रमाण क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है। यहाँ पर संख्यात की सहनानी आठ का अंक है। अंतिम ग्रैवेयक संबंधी मिश्र के भागहार से आनत-प्राणत से लेकर नवम ग्रैवेयक पर्यन्त ग्यारह स्थानों में सासादनसम्यग्दृष्टि के भागहार का प्रमाण क्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा है। यहाँ पर संख्यात की सहनानी चार का अंक है। इन पूर्वोक्त पाँच स्थानों में संख्यात की सहनानी क्रम से पाँच, छह, सात, आठ और चार के अंक हैं ।।६४०।।

अर्थ – अपने-अपने भागहार का पल्य में भाग देने से अपनी-अपनी राशि के जीवों का प्रमाण निकलता है। तथा अपनी-अपनी सामान्य राशि में से असंयत, मिश्र, सासादन तथा देशव्रत का प्रमाण घटाने से अवशिष्ट मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण रहता है ।।६४१।।

सामान्य भागहार

* असंयत गुणस्थानवर्ती कुल जीव = $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$
* यहाँ पल्य को असंख्यात का भाग दिया गया है। अतएव भागहार असंख्यात कहलायेगा।
* इसी प्रकार मिश्र गुणस्थानवर्ती कुल जीवों का भागहार $(\text{असं.})^2$ एवं सासादन गुणस्थानवर्ती कुल जीवों का भागहार $(\text{असं.})^2 \times$ संख्यात है।

२ से ४ गुणस्थानवर्ती सामान्य देव एवं सौधर्मद्विक के भागहार

जीव	भागहार निकालने का सूत्र	असंयत	मिश्र	सासादन
सामान्य देव	कुल जीवों का भागहार+$\frac{\text{कुल जीवों का भागहार}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} - १}$	असंख्यात + $\frac{\text{असंख्यात}}{\frac{\text{आवली*}-१}{\text{असंख्यात}}}$	$(\text{असं.})^२ + \frac{(\text{असं.})^२}{\frac{\text{आवली*}-१}{\text{असं.}}}$	$(\text{असं.})^२ \times \text{सं.} + \frac{(\text{असं.})^२ \times \text{सं.}}{\frac{\text{आवली*}-१}{\text{असं.}}}$
		$= \frac{\text{असंख्यात} \times \text{असंख्यात}}{\text{असंख्यात} - १}$	$= \frac{(\text{असं.})^२ \times \text{असं.}}{\text{असंख्यात} - १}$	$= \frac{(\text{असं.})^२ \times \text{सं.} \times \text{असं.}}{\text{असंख्यात} - १}$
सौधर्म–ऐशान	कुल देवों का भागहार+$\frac{\text{कुल देवों का भागहार}}{\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} - १}$	$\frac{(\text{असं.})^२}{\text{असं.}-१} + \frac{(\text{असं.})^२/\text{असं.}-१}{\text{असं.}-१}$	$\frac{(\text{असं.})^३}{\text{असं.}-१} + \frac{(\text{असं.})^३/\text{असं.}-१}{\text{असं.}-१}$	$\frac{(\text{असं.})^३ \times \text{सं.}}{\text{असं.}-१} + \frac{(\text{असं.})^३ \times \text{सं.}/\text{असं.}-१}{\text{असं.}-१}$
		$= \frac{(\text{असं.})^३}{(\text{असं.}-१)^२}$	$= \frac{(\text{असं.})^४}{(\text{असं.}-१)^२}$	$= \frac{(\text{असं.})^४ \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^२}$
		** आवली/असंख्यात = असंख्यात*		

सानत्कुमार-माहेन्द्र से लेकर शतार-सहस्रार पर्यन्त ५ युगल, भवनत्रिक, तिर्यंच एवं सात नरक इन १६ स्थानों के भागहार

गुणस्थान / जीव	असंयत	मिश्र	सासादन
सूत्र	पूर्व राशि के सासादन का भागहार × असंख्यात	असंयत का भागहार × असंख्यात	मिश्र का भागहार × संख्यात
सानत्कुमार–माहेन्द्र	सौधर्म–ऐशान सासादन जीवों का भागहार × असंख्यात	सानत्कुमार–माहेन्द्र असंयत जीवों का भागहार × असंख्यात	सानत्कुमार–माहेन्द्र मिश्र जीवों का भागहार × संख्यात
	$= \frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times \text{असं}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$= \frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times \text{असं.} \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$= \frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times [\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.}]$
ब्रह्म–ब्रह्मोत्तर	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times [\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.}] \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times [\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.}] \times (\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{२}$
लांतव–कापिष्ठ	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{२} \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{२} \times (\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{३}$
शुक्र–महाशुक्र	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{३} \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{३} \times (\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{४}$
शतार–सहस्रार	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{४} \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{४} \times (\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{५}$
ज्योतिषी	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{५} \times \text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{५} \times (\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{६}$

सानत्कुमार-माहेन्द्र से लेकर शतार-सहस्रार पर्यन्त ५ युगल, भवनत्रिक, तिर्यंच एवं सात नरक इन १६ स्थानों के भागहार

गुणस्थान / जीव	असंयत गुणस्थान	मिश्र गुणस्थान	सासादन गुणस्थान
व्यंतर	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{६}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{६}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{७}$
भवनवासी	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{७}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{७}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{८}$
तिर्यंच	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{८}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{८}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{९}$
प्रथम पृथ्वी के नारकी	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{९}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{९}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१०}$
द्वितीय पृथ्वी के नारकी	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१०}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१०}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{११}$
⋮	⋮	⋮	⋮
सप्तम पृथ्वी के नारकी	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१५}\times\text{असं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१५}\times(\text{असं.})^{२}}{(\text{असं.}-१)^{२}}$	$\frac{(\text{असं.})^{४}\times\text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}}\times(\text{असं.}\times\text{असं.}\times\text{सं.})^{१६}$

तिर्यंचों के देशसंयत का भागहार =	प्रथम पृथ्वी के असंयत का भागहार

आनतद्विक से लेकर विजयादिक ५ अनुत्तर विमान पर्यंत जीवों के भागहार

माना कि ⟶ सप्तम पृथ्वी के सासादन जीवों का भागहार A है :- $A = \frac{(\text{असं.})^{४} \times \text{सं.}}{(\text{असं.}-१)^{२}} \times (\text{असं.} \times \text{असं.} \times \text{सं.})^{१६}$

नाम	असंयत के भागहार	मिथ्यादृष्टि	मिश्र	सासादन
आनत–प्राणत	A×असं.	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{१}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×४
आरण–अच्युत	A×असं.× ५	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{२}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{२}$
प्रथम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{२}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{३}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{२}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{३}$
द्वितीय ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{३}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{४}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{३}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{४}$
तृतीय ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{४}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{५}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{४}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{५}$
चतुर्थ ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{५}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{६}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{५}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{६}$
पंचम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{६}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{७}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{६}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{७}$
षष्ठम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{७}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{८}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{७}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{८}$
सप्तम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{८}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{९}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{८}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{९}$
अष्टम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{९}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{१०}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{९}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{१०}$
नवम ग्रैवेयक	A×असं.× $(५)^{१०}$	A×असं. × $(५)^{१०}$ × $(६)^{११}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.× $८^{१०}$	A×असं.×$(५)^{१०}$×$(६)^{११}$×$(७)^{२}$×असं.×$८^{१०}$×$४^{११}$
नव अनुदिश	A×असं × $(५)^{१०}$ × $(६)^{११}$ × ७			
विजययादिक ४ अनुत्तर	A×असं.× $(५)^{१०}$ × $(६)^{११}$ × $(७)^{२}$			

* यहाँ संख्यात के सूचक चिह्नों के रूप में ५, ६, ७, ८ एवं ४ का प्रयोग किया है।

* उपर्युक्त कहे हुए भागहार का भाग पल्य को देने पर अपनी–२ राशि का प्रमाण आता है।

मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण

देव/नारकी	कुल जीव – (सासादन + मिश्र + असंयत)
तिर्यंच	कुल जीव – (सासादन + मिश्र + असंयत + देशसंयत)
सौधर्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग पर्यन्त	कुछ कम अपनी–अपनी राशि

सर्वार्थसिद्धि के देवों का प्रमाण

सर्व असंयत ही हैं = मनुष्यनी से ३ या ७ गुणा

सौधर्मादिक जीवों का प्रमाण जानने के लिये गति मार्गणा में संख्या देखें। पृष्ठ सं. ८१, गाथा १५३ से १६३ का चार्ट

तेरसकोडी देसे, बावण्णं सासणे मुणेदव्वा।
मिस्सा वि य तद्दुगुणा, असंजदा सत्तकोडिसयं।।६४२।।

अर्थ – देशसंयम गुणस्थान में तेरह करोड़, सासादन में बावन करोड़, मिश्र में एक सौ चार करोड़, असंयत में सात सौ करोड़ मनुष्य हैं। प्रमत्तादि गुणस्थानवाले जीवों का प्रमाण पूर्व में ही बता चुके हैं। इसप्रकार यह गुणस्थानों में मनुष्य जीवों का प्रमाण है ।।६४२।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या २९८ गाथा ६२३ का चार्ट देखें।

जीविदरे कम्मचये, पुण्णं पावोत्ति होदि पुण्णं तु।
सुहपयडीणं दव्वं, पावं असुहाण दव्वं तु।६४३।।

अर्थ – जीव पदार्थ में सामान्य से मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवाले जीव पाप हैं और मिश्र गुणस्थानवाले पुण्य और पाप के मिश्ररूप हैं। तथा असंयत से लेकर सब ही पुण्य जीव हैं। इसके अनन्तर अजीव पदार्थ का वर्णन करते हैं। अजीव पदार्थ में कार्मण स्कंध के दो भेद हैं – एक पुण्य दूसरा पाप। शुभ प्रकृतियों के द्रव्य को पुण्य और अशुभ प्रकृतियों के द्रव्य को पाप कहते हैं।।६४३।।

जीव पदार्थ - पुण्य, पापरूप विभाजन

	गुणस्थान	जीव	कारण
१	**मिथ्यात्व**	पाप	मिथ्यात्व भाव होने से
२	**सासादन**		अनंतानुबंधी कषाय के उदय से मिथ्यात्व सदृश गुण को प्राप्त होने से
३	**मिश्र**	मिश्र (पुण्य-पापरूप)	युगपत् सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप भाव
४	**असंयत सम्यक्त्व**	पुण्य	सम्यक्त्व संयुक्त
५	**देशसंयत**		सम्यक्त्व व देशव्रत से संयुक्त
६-१४	**प्रमत्तादिक**		सम्यक्त्व व सकलव्रत से संयुक्त

अजीव पदार्थ - पुण्य, पापरूप विभाजन

कार्मण स्कंध

कर्म		द्रव्य पाप (अशुभ प्रकृति)	द्रव्य पुण्य (शुभ प्रकृति)
घातिया	**-ज्ञानावरणादि ४**	सर्व प्रकृतियाँ	
अघातिया	**- वेदनीय**	असाता	साता
	- आयु	नरकायु	तिर्यंचायु, मनुष्यायु, देवायु
	- नाम	अशुभ प्रकृतियाँ	शुभ प्रकृतियाँ
	- गोत्र	नीच	ऊँच
कुल द्रव्य (परमाणुओं की संख्या)		(कुछ कम $१\frac{१}{२}$ गुणहानि × समयप्रबद्ध) - द्रव्य पुण्य = कुछ कम $१\frac{१}{२}$ गुणहानि समयप्रबद्ध का संख्यात बहुभाग	$\frac{\text{(कुछ कम } १\frac{१}{२} \text{ गुणहानि समयप्रबद्ध)}}{\text{संख्यात}}$

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं।
तत्तो असंखगुणिदं, उक्कस्सं होदि णियमेण।।६४४।।
बंधो समयपबद्धो, किञ्चूण दिवड्ढमेत्तगुणहाणी।
मोक्खो य होदि एवं, सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा।।६४५।।

अर्थ – आस्रव और संवर का द्रव्यप्रमाण समयप्रबद्धप्रमाण है और उत्कृष्ट निर्जराद्रव्य समयप्रबद्ध से नियम से असंख्यातगुणा है ।।६४४।।

अर्थ – बंध द्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण ही है। और मोक्षद्रव्य किंचित् हीन डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण होता है। इसप्रकार तत्त्वार्थों का श्रद्धान करना चाहिये ।।६४५।।

आस्रवादि का परिमाण

तत्त्व	परिमाण
आस्रव	समयप्रबद्ध
बंध	〃
संवर	〃
निर्जरा	असंख्यात × 〃 = उत्कृष्ट गुणश्रेणीरूप निर्जरा
मोक्ष	कुछ कम $१\frac{१}{२}$ गुणहानि × 〃

खीणे दंसणमोहे, जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई।
तं खाइयसम्मत्तं, णिच्चं कम्मक्खवणहेदू।।६४६।।
वयणेहिं वि हेदूहिं वि, इंदियभयआणएहिं रूवेहिं।
वीभच्छजुगुच्छाहिं य, तेलोक्केण वि ण चालेज्जो।।६४७।।
दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ।।६४८।।

अर्थ – दर्शनमोहनीय कर्म के क्षीण हो जाने पर जो निर्मल श्रद्धान होता है उसको क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यक्त्व नित्य है और कर्मों के क्षय होने का कारण है ।।६४६।।

अर्थ – कुत्सित वचनों से, मिथ्याहेतु और दृष्टांतों से, इन्द्रियों को भय उत्पन्न करने वाले भयंकर रूपों से, घिनावनी वस्तुओं से उत्पन्न हुई ग्लानि से, बहुत कहने से क्या, तीनों लोकों के द्वारा भी क्षायिक सम्यक्त्व को चलायमान नहीं किया जा सकता।।६४७।।

अर्थ – दर्शनमोह की क्षपणा का प्रारंभ कर्मभूमि में उत्पन्न हुआ मनुष्य ही केवली के पादमूल में ही करता है। किन्तु निष्ठापक चारों गतियों में होता है ।।६४८।।

क्षायिक सम्यक्त्व

परिणाम	श्रद्धा पूर्ण निर्मल
विशेषता	भ्रष्ट नहीं होता है कुत्सित वचनों से / कुत्सित हेतुओं से / भयकारी भेषों से / ग्लानिकारी वस्तुओं से / तीन लोक द्वारा
निमित्त	अनंतानुबंधी ४ + दर्शनमोहनीय ३ का क्षय
कौन करता है ?	❊ प्रारम्भक – कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य – केवली के पादमूल में ❊ निष्ठापक (पूर्णता) – चारों गतियों में
काल	नित्य (सादि अनंत)
कारण	❊ प्रति समय गुणश्रेणी निर्जरा अर्थात् कर्मक्षय का कारण
मोक्ष जाने का नियम	उसी भव में अथवा तीसरे या चौथे भव से

दंसणमोहुदयादो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
चलमलिणमगाढं तं, वेदयसम्मत्तमिदि जाणे।।६४९।।

अर्थ – दर्शनमोहनीय की सम्यक्त्व प्रकृति का उदय होने पर जो तत्त्वार्थ श्रद्धान चल, मलिन वा अगाढ़ होता है, उसे वेदकसम्यक्त्व जानो ।।६४९।।

वेदक सम्यक्त्व

सम्यक्त्व मोहनीय का उदय — चल, मल, अगाढ़ दोष सहित सम्यक् श्रद्धान

दंसणमोहुवसमदो, उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं।
उवसमसम्मत्तमिणं, पसण्णमलपंकतोयसमं।।६५०।।
खयउवसमियविसोही, देसणपाउग्गकरणलद्धी य।
चत्तारि वि सामण्णा, करणं पुण होदि सम्मत्ते।।६५१।।
चदुगदिभव्वो सण्णी, पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो।
जागारो सल्लेसो, सलद्धिगो सम्ममुवगमई।।६५२।।

अर्थ – अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ और दर्शनमोह की मिथ्यात्व, सम्यक् मिथ्यात्व और सम्यक्त्व प्रकृति इन तीन के उदय का अभाव लक्षणरूप प्रशस्त उपशम से मलपंक नीचे बैठ जाने से निर्मल हुए जल की तरह जो पदार्थ का श्रद्धान उत्पन्न होता है उसका नाम उपशम सम्यक्त्व है ।।६५०।।

अर्थ – क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, करण ये पाँच लब्धि हैं। इनमें पहली चार तो सामान्य हैं, भव्य अभव्य दोनों के ही संभव हैं। किन्तु करण-लब्धि विशेष है। यह भव्य के ही हुआ करती है और इसके होने पर सम्यक्त्व या चारित्र नियम से होता है ।।६५१।।

अर्थ – जो जीव चार गतियों में से किसी एक गति का धारक तथा भव्य, संज्ञी, पर्याप्त विशुद्धि – मंदकषाय रूप परिणति से युक्त, जागृत – स्त्यानगृद्धि आदि तीन निद्राओं से रहित, साकार उपयोगयुक्त और शुभ लेश्या का धारक होकर करणलब्धिरूप परिणामों का धारक होता है, वह जीव सम्यक्त्व को प्राप्त करता है ।।६५२।।

उपशम सम्यक्त्व

<table>
<tr><td>परिणाम</td><td colspan="3">पूर्ण निर्मल श्रद्धा</td></tr>
<tr><td>निमित्त</td><td colspan="3">दर्शन मोहनीय ३
अनंतानुबंधी ४] का उपशम</td></tr>
<tr><td>उदाहरण</td><td colspan="3">कतक फलादि से मल के नीचे बैठने से प्राप्त हुआ स्वच्छ जल</td></tr>
<tr><td>प्राप्ति के योग्य जीव</td><td colspan="3">* चारों गतियों में किसी भी गति का हो
* संज्ञी * पर्याप्त * विशुद्ध – मंद कषायरूप परिणमता
* जागृत * साकार उपयोग सहित * शुभ लेश्याधारक
* करणलब्धिरूप परिणमा हो</td></tr>
<tr><td rowspan="7">सामग्री</td><td colspan="3">पाँच लब्धि ⟶</td></tr>
<tr><td>१</td><td>क्षयोपशम</td><td>ज्ञानावरणादि कर्मों का क्षयोपशम जिससे तत्त्व विचार हो सके</td></tr>
<tr><td>२</td><td>विशुद्धि</td><td>मोह का मंद उदय होने से मन्दकषायरूप भाव हो, जहाँ तत्त्व विचार हो सके</td></tr>
<tr><td>३</td><td>देशना</td><td>जिनदेव के उपदिष्ट तत्त्व का धारण, विचार</td></tr>
<tr><td>४</td><td>प्रायोग्य</td><td>कर्मों की पूर्व सत्ता एवं नवीन बंध अंत:कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण रह जाना इत्यादि योग्य अवस्थाओं का होना</td></tr>
<tr><td>५</td><td>करण</td><td>पूर्व कथित (गाथा ४८) तीन करणरूप परिणामों का होना</td></tr>
<tr><td colspan="3">* चार लब्धि भव्य-अभव्य दोनों के होती है
* करणलब्धि भव्य के ही होती है और इसकी प्राप्ति होने पर नियम से सम्यक्त्व होता है</td></tr>
<tr><td colspan="4">तीन सम्यक्त्व के बारे में विशेष जानने के लिये पृष्ठ १३ गाथा २५ से २९ का चार्ट देखें।</td></tr>
</table>

चत्तारि वि खेत्ताइं, आउगबंधेण होदि सम्मत्तं।
अणुवदमहव्वदाइं, ण लहइ देवाउगं मोत्तुं।।६५३।।

अर्थ – चारों गतिसंबंधी आयुकर्म का बंध हो जाने पर भी सम्यक्त्व हो सकता है, किन्तु देवायु को छोड़कर शेष आयु का बंध होने पर अणुव्रत और महाव्रत नहीं होते ।।६५३।।

परभव आयुबंध के साथ सम्यक्त्वादि ग्रहण का नियम

मिथ्यात्वी के कौन–सी आयु बंधने पर	ग्रहण हो सकते हैं	
	सम्यक्त्व	अणुव्रत–महाव्रत
नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु	हो सकता	नहीं हो सकते है
देवायु	हो सकता	हो सकते है

ण य मिच्छत्तं पत्तो, सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो।
सो सासणो त्ति णेयो, पंचमभावेण संजुत्तो।।६५४।।
सद्दहणासद्दहणं, जस्स य जीवस्स होई तच्चेसु।
विरयाविरयेण समो, सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो।।६५५।।
मिच्छादिट्ठी जीवो, उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं।।६५६।।

अर्थ – जो जीव सम्यक्त्व से तो च्युत हो गया है किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ है उसको सासन कहते हैं। यह जीव दर्शन मोहनीय की अपेक्षा पाँचवें पारिणामिक भाव से युक्त होता है ।।६५४।।

अर्थ – विरताविरत की तरह जिस जीव के तत्त्व के विषय में श्रद्धान और अश्रद्धान दोनों हों उसको सम्यग्मिथ्यादृष्टि समझना चाहिये ।६५५।।

अर्थ – जो जीव जिनेन्द्रदेव के कहे हुए आप्त, आगम, पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता, किन्तु कुगुरुओं के कहे हुए या बिना कहे हुए भी मिथ्या आप्त, आगम, पदार्थ का श्रद्धान करता है उसको मिथ्यादृष्टि कहते हैं ।।६५६।।

सम्यक्त्व मार्गणा के शेष ३ भेद

	मिथ्यात्व	सम्यग्मिथ्यात्व	सासादन
श्रद्धान	अतत्त्व श्रद्धान	एक काल में तत्त्वों का श्रद्धान व अश्रद्धान	अव्यक्त अतत्त्वश्रद्धान * सम्यक्त्व से च्युत * मिथ्यात्व के सम्मुख * मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं
निमित्त	मिथ्यात्व का उदय	सम्यग्मिथ्यात्व का उदय	अनंतानुबंधी चौकड़ी में से १ का उदय
	विशेष जानने के लिये पृष्ठ सं. ८ से ११ गाथा १५ से २४ के चार्ट देखें		

वासपुधत्ते खइया, संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे।
तो संखपल्लठिदिये, केवडिया एवमणुपादे।।६५७।।
संखावलिहिदपल्ला, खइया तत्तो य वेदमुवसमगा।
आवलिअसंखगुणिदा, असंखगुणहीणया कमसो।।६५८।।
पल्लासंखेज्जदिमा, सासणमिच्छा य संखगुणिदा हु।
मिस्सा तेहिं विहीणो, संसारी वामपरिमाणं।।६५९।।

अर्थ – क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में पृथक्त्व वर्ष में संख्यात उत्पन्न होते हैं तो संख्यात पल्य की स्थिति में कितने जीव उत्पन्न होंगे ? इसका त्रैराशिक करने से क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण निकलता है, क्योंकि बहुधा क्षायिकसम्यग्दृष्टि कल्पवासी देव होते हैं और कल्पवासी देव बहुत करके सौधर्म-ऐशान स्वर्ग में ही हैं ।।६५७।।

अर्थ – संख्यात आवली से भक्त पल्यप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टि हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के प्रमाण का आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करने पर जो प्रमाण हो उतना ही वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण है। तथा क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवों के प्रमाण से असंख्यातगुणा हीन उपशम सम्यग्दृष्टि जीवों का प्रमाण है ।।६५८।।

अर्थ – पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण सासादनमिथ्यादृष्टि जीव हैं और इनसे संख्यातगुणे मिश्र जीव हैं तथा संसारी जीवराशि में से क्षायिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक, सासादन, मिश्र इन पाँच प्रकार के जीवों का प्रमाण घटाने से जो शेष रहे उतना ही मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण है ।।६५९।।

सम्यक्त्व मार्गणा - जीवों की संख्या

मार्गणा	संख्या	
क्षायिक सम्यक्त्वी	❊ कुछ अधिक सौधर्म-ऐशान के सम्यग्दृष्टि ❊ वहाँ पृथक्त्व वर्ष में संख्यात उत्पन्न होते हैं ❊ संख्यात पल्य में कितने होंगे :- $= \frac{\text{संख्यात}}{\text{पृथक्त्व वर्ष}} \times$ संख्यात पल्य $= \frac{\text{संख्यात}}{\text{सं. आवली}} \times$ संख्यात पल्य $= \frac{\text{पल्य}}{\text{सं. आवली}}$	$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
क्षयोपशम सम्यक्त्वी	क्षायिक $\times \frac{\text{आवली}}{\text{असं.}}$	$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
उपशम सम्यक्त्वी	$\frac{\text{क्षायिक}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{पल्य}}{\text{सं. आवली} \times \text{असंख्यात}}$ $= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं. आवली}}$	$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
सासादन सम्यक्त्वी	पल्य / असं.	$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
सम्यग्मिथ्यात्वी	सासादन $\times$ संख्यात $= \frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}} \times$ सं.	$= \frac{\text{पल्य}}{\text{असं.}}$
मिथ्यात्वी	संसारी - ५ पूर्वोक्त राशियाँ	= अनंतानंत
	उपशम सम्यक्त्वी $\overset{\textit{असं.}}{<}$ *गुणा* **क्षायिक सम्यक्त्वी** $\overset{\textit{असं.}}{<}$ *गुणा* **क्षयोपशम सम्यक्त्वी**	

अधिकार १८ - संज्ञीमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
संज्ञी-असंज्ञी का स्वरूप	६६०-६६२	३	३१६
संख्या	६६३	१	३१६
कुल गाथाएँ		४	

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा।
सा जस्स सो दु सण्णी, इदरो सेसिंदिअवबोहो।।६६०।।
सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण।
जो जीवो सो सण्णी, तव्विवरीओ असण्णी दु।।६६१।।
मीमंसदि जो पुव्वं, कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च।
सिक्खदि णामेणेदि य, समणो अमणो य विवरीदो।।६६२।।
देवेहिं सादिरेगो, रासी सण्णीण होदि परिमाणं।
तेणूणो संसारी, सव्वेसिमसण्णिजीवाणं।।६६३।।

अर्थ – नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम को या तज्जन्य ज्ञान को संज्ञा कहते हैं। यह संज्ञा जिसके हो उसको संज्ञी कहते हैं और जिनके यह संज्ञा न हो, किन्तु केवल यथासंभव इन्द्रियजन्य ज्ञान हो उनको असंज्ञी कहते हैं।।६६०।।

अर्थ – हित का ग्रहण और अहित का त्याग जिसके द्वारा किया जा सके उसको शिक्षा कहते हैं। इच्छापूर्वक हाथ पैर के चलाने को क्रिया कहते हैं। वचन अथवा चाबुक आदि के द्वारा बताये हुए कर्तव्य को उपदेश कहते हैं और श्लोक आदि के पाठ को आलाप कहते हैं। जो जीव इन शिक्षादिक को मन के अवलम्बन से ग्रहण - धारण करता है उसको संज्ञी कहते हैं और जिन जीवों में यह लक्षण घटित न हो उनको असंज्ञी समझना चाहिये ।।६६१।।

अर्थ – जो पहले कार्य-अकार्य का विचार करे, तत्त्व-अतत्त्व को सीखे, नाम से बुलाने पर आये, वह जीव मनसहित समनस्क, संज्ञी जानना। इस लक्षण से उल्टे लक्षण का जो धारक हो, वह जीव मनरहित अमनस्क असंज्ञी जानना ।।६६२।।

अर्थ – देवों के प्रमाण से कुछ अधिक संज्ञी जीवों का प्रमाण है। संपूर्ण संसारी जीवराशि में से संज्ञी जीवों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना ही समस्त असंज्ञी जीवों का प्रमाण है ।।६६३।।

संज्ञी मार्गणा

<table>
<tr><th></th><th colspan="3">संज्ञी</th><th>असंज्ञी</th></tr>
<tr><td></td><td colspan="3">मनसहित</td><td>मनरहित</td></tr>
<tr><td>अन्य नाम</td><td colspan="3">समनस्क</td><td>अमनस्क</td></tr>
<tr><td>स्वरूप</td><td colspan="3">* नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से उत्पन्न ज्ञान = संज्ञा
* संज्ञा जिसके हो वो संज्ञी</td><td>मनज्ञान से रहित एवं अवशेष यथासंभव इन्द्रियों के ज्ञान से युक्त जीव</td></tr>
<tr><td rowspan="6">विशेषता</td><td>कार्य</td><td>लक्षण</td><td>उदाहरण</td><td rowspan="5">शिक्षादि के ग्रहण से रहित जीव
उदाहरण –
* समस्त चार इन्द्रिय तक के जीव
* कोई-२ पंचेन्द्रिय तिर्यंच</td></tr>
<tr><td>शिक्षा</td><td>हित-अहित के करने-त्यागरूप</td><td>मनुष्य</td></tr>
<tr><td>क्रिया</td><td>इच्छा से हाथ-पैर चलाने रूप</td><td>बैल</td></tr>
<tr><td>उपदेश</td><td>बेंत आदि से उपदेशित वध विधानादिक</td><td>हाथी</td></tr>
<tr><td>आलाप</td><td>श्लोकादिक का पाठ</td><td>तोता</td></tr>
<tr><td colspan="3">जो⟶* इन शिक्षादिक कार्यों को मन के अवलंबन से ग्रहण करे
* कार्य-अकार्य का विचार करे
* तत्त्व-अतत्त्व को सीखे
* नाम से बुलाने पर आए</td><td>विचारादि से रहित जीव</td></tr>
<tr><td>जीवों की संख्या</td><td colspan="3">कुछ अधिक देव
= समस्त (देव + नारकी + मनुष्य)
+ संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच
= कुछ अधिक $\frac{\text{जगतप्रतर}}{(\text{२५६ अंगुल})^2}$</td><td>कुल संसारी – संज्ञी</td></tr>
<tr><td colspan="3">= असंख्यातासंख्यात</td><td>= अनंतानंत</td></tr>
</table>

अधिकार १९ - आहारमार्गणा

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
आहारक-अनाहारक का स्वरूप एवं स्वामी	६६४-६६६	३	३१८
समुद्घात वर्णन	६६७-६६९	३	३१९
आहार-अनाहार का काल	६७०	१	३२०
संख्या	६७१	१	३२०
कुल गाथाएँ		८	

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं णाम।।६६४।।
आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदरवग्गणाओ य।
भासमणाणं णियदं तम्हा आहारयो भणियो।।६६५।।
विग्गहगदिमावण्णा केवलिणा, समुग्घदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा।।६६६।।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीर नामक नामकर्म में से किसी के भी उदय से जो उस शरीररूप, वचनरूप और द्रव्यमनरूप होने योग्य नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करना, उसका आहार ऐसा नाम हैं ।।६६४।।

अर्थ – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों में से किसी भी एक शरीर के योग्य वर्गणाओं को तथा वचन और मन के योग्य वर्गणाओं को यथायोग्य जीवसमास तथा काल में जीव आहरण अर्थात् ग्रहण करता है इसलिये इसको आहारक कहते हैं ।।६६५।।

अर्थ – विग्रहगति को प्राप्त होने वाले चारों गतिसंबंधी जीव, प्रतर और लोकपूर्ण समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली, अयोगकेवली, समस्त सिद्ध इतने जीव तो अनाहारक होते हैं और इनको छोड़कर शेष सभी जीव आहारक होते हैं।।६६६।।

गाथा ६६४-६६६ और ६७०-६७१ का चार्ट-

आहार मार्गणा

		आहारक	अनाहारक	
स्वरूप		जो औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीररूप, वचनरूप, मनरूप होने योग्य नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण करें	जो नोकर्म वर्गणाओं को ग्रहण न करे	
निरुक्ति अर्थ		आहरति = ग्रहण करे (आहार, भाषा, मनोवर्गणाओं को)	अनाहारति = न ग्रहण करे	
स्वामी		सर्व जीव - अनाहारक जीव	* विग्रहगति को प्राप्त चारों गति वाले * प्रतर और लोकपूरण केवली समुद्घात को प्राप्त * अयोगकेवली जिन * सिद्ध	
काल (एक जीव अपेक्षा)	**जघन्य**	क्षुद्रभव में विग्रहगति के ३ समय कम = (श्वासोच्छ्वास/१८) - ३ समय (१ श्वासोच्छ्वास=लगभग पौन सेकण्ड)	विग्रहगति में	एक समय
	उत्कृष्ट	सूच्यंगुल / असं. = असं. कल्पकाल	* विग्रहगति एवं केवली समुद्घात में	तीन समय
			* अयोगकेवली गुणस्थान में	अंतर्मुहूर्त
संख्या		कुल संसारी - अनाहारक राशि = अनाहारक से असं. गुणा	योग मार्गणा में कहे कार्मण काय-योगी (देखें पृष्ठ १२८ गाथा २६४)	
		= अनंतानंत	= अनंतानंत	

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो।
तेजाहारो छट्ठो, सत्तमओ केवलीणं तु।।६६७।।
मूलसरीरमछंडिय, उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स।
णिग्गमणं देहादो, होदि समुग्घादणामं तु।।६६८।।
आहारमारणंतिय, दुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु।
दसदिसि गदा हु सेसा, पंच समुग्घादया होंति।।६६९।।

अर्थ – समुद्घात के सात भेद हैं – वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तैजस, आहारक, केवल। इनका स्वरूप लेश्यामार्गणा के क्षेत्राधिकार में कहा जा चुका है, इसलिये यहाँ नहीं कहा है।।६६७।।

अर्थ – मूल शरीर को न छोड़कर तैजस-कार्मण रूप उत्तर देह के साथ जीवप्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने को समुद्घात कहते हैं ।।६६८।।

अर्थ – उक्त सात प्रकार के समुद्घातों में आहारक और मारणांतिक ये दो समुद्घात तो एक ही दिशा में गमन करते हैं, किन्तु बाकी के पाँच समुद्घात दशों दिशाओं में गमन करते हैं ।।६६९।।

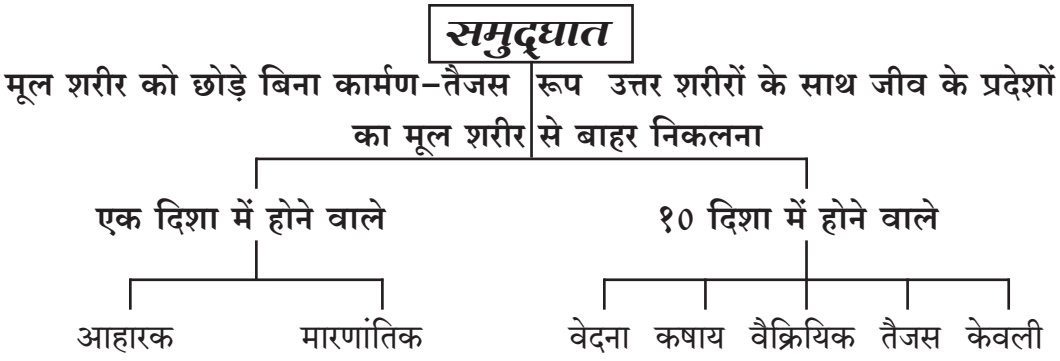

समुद्घात संबंधी विशेष जानने के लिये पृष्ठ सं. २४७ से गाथा ५४३ आदि देखें

अंगुलअसंखभागो, कालो आहारयस्स उक्कस्सो।
कम्मम्मि अणाहारो, उक्कस्सं तिण्ण समया हु।।६७०।।
कम्मइयकायजोगी, होदि अणाहारयाण परिमाणं।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं।।६७१।।

अर्थ – आहारक का उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। कार्मण शरीर में अनाहार का उत्कृष्ट काल तीन समय का है और जघन्य काल एक समय का है। तथा आहारक का जघन्य काल तीन समय कम श्वास के अठारहवें भाग प्रमाण है क्योंकि विग्रहगतिसंबंधी तीन समयों के घटाने पर क्षुद्रभव का काल इतना ही अवशेष रहता है ।।६७०।।

अर्थ – कार्मणकाययोगी जीवों का जितना प्रमाण है उतना ही अनाहारक जीवों का प्रमाण है और संसारी जीवराशि में से कार्मणकाययोगी जीवों का प्रमाण घटाने पर जो शेष रहे उतना ही आहारक जीवों का प्रमाण है ।।६७१।।

उपर्युक्त गाथाओं के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ३१९ गाथा ६६४ का चार्ट देखें

अधिकार २० - उपयोग

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
उपयोग - स्वरूप, भेद एवं काल	६७२-६७५	४	३२१
संख्या	६७६	१	३२१
कुल गाथाएँ		५	

वत्थुणिमित्तं भावो, जादो जीवस्स जो दु उवजोगो।
सो दुविहो णायव्वो, सायारो चेव णायारो।।६७२।।
णाणं पंचविहं पि य, अण्णाणतियं च सागरुवजोगो।
चदुदंसणमणगारो, सव्वे तल्लक्खणा जीवा।।६७३।।
मदिसुदओहिमणेहि य, सगसगविसये विसेसविण्णाणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो दु सायारो।।६७४।।
इंदियमणोहिणा वा, अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं।
अंतोमुहुत्तकालो, उवजोगो सो अणायारो।।६७५।।
णाणुवजोगजुदाणं, परिमाणं णाणमग्गणं व हवे।
दंसणुवजोगियाणं, दंसणमग्गण व उत्तकमो।।६७६।।

अर्थ - जीव का जो भाव वस्तु को (ज्ञेय को) ग्रहण करने के लिये प्रवृत्त होता है उसको उपयोग कहते हैं। इसके दो भेद हैं - एक साकार (सविकल्प), दूसरा निराकार (निर्विकल्प) ।।६७२।।

अर्थ - पाँच प्रकार का सम्यग्ज्ञान - मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय तथा केवल और तीन प्रकार का अज्ञान (मिथ्यात्व) - कुमति, कुश्रुत, विभंग ये आठ साकार उपयोग के भेद हैं। चार प्रकार का दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन अनाकार उपयोग है। यह ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग ही संपूर्ण जीवों का लक्षण है ।।६७३।।

अर्थ - मति, श्रुत, अवधि और मन:पर्यय इनके द्वारा अपने-अपने विषय का अन्तर्मुहूर्त काल पर्यन्त जो विशेष ज्ञान होता है उसको ही साकार उपयोग कहते हैं ।।६७४।।

अर्थ - इन्द्रिय, मन और अवधि के द्वारा अन्तर्मुहूर्त काल तक पदार्थों का जो सामान्यरूप से ग्रहण होता है उसको निराकार उपयोग कहते हैं ।।६७५।।

अर्थ - ज्ञानोपयोग वाले जीवों का प्रमाण ज्ञानमार्गणावाले जीवों की तरह समझना चाहिये और दर्शनोपयोगवालों का प्रमाण दर्शनमार्गणावालों की तरह समझना चाहिये। इनमें कुछ विशेषता नहीं है ।।६७६।।

उपयोग

*** अतिव्याप्ति, अव्याप्ति एवं असंभव दोषों से रहित जीव का लक्षण**

*** ज्ञेयों के ग्रहण के लिये जीव का परिणाम विशेषरूप भाव**

	ज्ञानोपयोग	**दर्शनोपयोग**
	साकार/सविकल्प	अनाकार/निर्विकल्प
	जीवादि पदार्थों का विशेष ग्रहण	जीवादि पदार्थों का सामान्य ग्रहण
भेद	*** ५ सम्यग्ज्ञान** मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, केवल *** ३ मिथ्याज्ञान** कुमति, कुश्रुत, कुअवधि	**दर्शन** चक्षु दर्शन, अचक्षु दर्शन, अवधि दर्शन, केवल दर्शन
काल	वस्तु के ग्रहणरूप चैतन्य का परिणमन = उपयोग, उसका काल अंतर्मुहूर्त मात्र (छद्मस्थ अपेक्षा)	
संख्या	ज्ञान मार्गणा के समान	दर्शन मार्गणा के समान

अधिकार २१ - अंतरभावाधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
किस मार्गणा में कौन-से गुणस्थान व जीवसमास हैं	६७७-७००	२४	३२३
किस गुणस्थान में कौन-२ सी शेष १९ प्ररूपणा हैं	७०१-७०५	५	३३१
कुल गाथाएँ		२९	

गुणजीवा पज्जत्ती, पाणा सण्णा य मग्गणुवजोगो।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु पत्तेयं।।६७७।।
चउ पण चोद्दस चउरो, णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं।।६७८।।
मज्झिमचउमणवयणे, सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणो त्ति।
सेसाणं जोगि त्ति य, अणुभयवयणं तु वियलादो।।६७९।।
ओरालं पज्जत्ते, थावरकायादि जाव जोगो त्ति।
तम्मिस्समपज्जत्ते, चदुगुणठाणेसु णियमेण।।६८०।।
मिच्छे सासणसम्मे, पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि।
णरतिरिये वि य दोण्णि वि, होंति त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।६८१।।
वेगुव्वं पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु।
सुरणिरयचउट्ठाणे, मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु।।६८२।।
आहारो पज्जत्ते, इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु।
अंतोमुहुत्तकाले, छट्ठगुणे होदि आहारो।।६८३।।
ओरालियमिस्सं वा, चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं।
चदुगदिविग्गहकाले, जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे।।६८४।।
थावरकायप्पहुदी, संढो सेसा असण्णिआदी य।
अणियट्टिस्स य पढमो, भागो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं।।६८५।।
थावरकायप्पहुदी, अणियट्टीवितिचउत्थभागो त्ति।
कोहतियं लोहो पुण, सुहमसरागो त्ति विण्णेयो।।६८६।।
थावरकायप्पहुदी, मदिसुदअण्णाणयं विभंगो दु।
सण्णीपुण्णप्पहुदी, सासणसम्मो त्ति णायव्वो।।६८७।।
सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो।
खीणकसायं जाव दु, केवलणाणं जिणे सिद्धे।।६८८।।

अयदो त्ति हु अविरमणं, देसे देसो पमत्त इदरे य।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलो त्ति।।६८९।।
सुहमो सुहमकसाये, संते खीणे जिणे जहक्खादं।
संजममग्गणभेदा, सिद्धे णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं।।६९०।।
चउरक्खथावराविरदसम्माइट्ठी दु खीणमोहो त्ति।
चक्खुअचक्खू ओही, जिणसिद्धे केवलं होदि।।६९१।।
थावरकायप्पहुदी, अविरदसम्मो त्ति असुहतियलेस्सा।
सण्णीदो अपमत्तो, जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ।।६९२।।
णवरि य सुक्का लेस्सा, सजोगिचरिमो त्ति होदि णियमेण।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे, लेस्सा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं।।६९३।।
थावरकायप्पहुदी, अजोगिचरिमो त्ति होंति भवसिद्धा।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे, अभव्वसिद्धा हवंति त्ति।।६९४।।
मिच्छो सासणमिस्सो, सगसगठाणम्मि होदि अयदादो।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तो ति।।६९५।।
विदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति।
खइगं सम्मं च तहा, सिद्धो त्ति जिणेहि णिद्दिट्ठं।।६९६।।
सण्णी सण्णिप्पहुदी, खीणकसाओत्ति होदि णियमेण।
थावरकायप्पहुदी, असण्णित्ति हवे असण्णी हु।।६९७।।
थावर कायप्पहुदी, सजोगिचरिमोत्ति होदि आहारी।
कम्मइय अणाहारी, अजोगिसिद्धे वि णायव्वो।।६९८।।

अर्थ – उक्त बीस प्ररूपणाओं में से गुणस्थान और मार्गणास्थान में यथायोग्य प्रत्येक गुण-स्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, मार्गणा और उपयोग का निरूपण करना चाहिये ।।६७७।।

अर्थ – गतिमार्गणा की अपेक्षा से क्रम से नरकगति में आदि के चार गुणस्थान होते हैं और तिर्यग्गति में पाँच, मनुष्यगति में चौदह तथा देवगति में नरकगति के समान चार गुणस्थान होते हैं। इन्द्रियमार्गणा की अपेक्षा पंचेन्द्रिय जीवों के चौदह गुणस्थान और शेष एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त जीवों के केवल मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है। कायमार्गणा की अपेक्षा त्रसकाय के चौदह और शेष स्थावरकाय के एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है ।।६७८।।

अर्थ – असत्यमन, उभयमन, असत्यवचन, उभयवचन इन चार योगों के स्वामी संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यन्त बारह गुणस्थानवाले जीव हैं और सत्यमन, अनुभयमन तथा सत्यवचन योग इनके स्वामी संज्ञीपर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर आदि के तेरह गुणस्थानवाले जीव हैं। अनुभय वचनयोग, विकल – द्वीन्द्रिय से लेकर सयोगीपर्यन्त होता हैं। अनुभय वचन को छोड़कर शेष तीन प्रकार का वचन और चार प्रकार का मन, इनमें एक संज्ञी पर्याप्त ही जीवसमास है और अनुभय वचन में पर्याप्त

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय ये पाँच जीवसमास होते हैं ।।६७९।।

अर्थ – औदारिककाययोग, स्थावर एकेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी पर्यन्त होता है और औदारिक मिश्रकाययोग नियम से चार अपर्याप्त गुणस्थानों में ही होता है। औदारिककाययोग में पर्याप्त सात जीवसमास होते हैं और मिश्रयोग में अपर्याप्त सात जीवसमास हैं ।।६८०।।

अर्थ – मिथ्यात्व, सासादन, पुरुषवेदी के उदयसंयुक्त असंयत तथा कपाट समुद्घात करनेवाले सयोगकेवली इन चार स्थानों में ही औदारिकमिश्रकाययोग होता है। तथा औदारिक काययोग और औदारिकमिश्रकाययोग ये दोनों ही मनुष्य और तिर्यंचों के ही होते हैं ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।।६८१।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतपर्यन्त चारों ही गुणस्थानवाले देव और नारकियों के पर्याप्त अवस्था में वैक्रियिक काययोग होता है और अपर्याप्त अवस्था में वैक्रियिकमिश्रकाययोग होता है, किन्तु यह मिश्रकाययोग चार गुणस्थानों में से मिश्रगुणस्थान में नहीं हुआ करता, क्योंकि कोई भी मिश्रकाययोग कहीं भी मिश्रगुणस्थान में नहीं पाया जाता। वैक्रियिककाययोग में एक संज्ञीपर्याप्त ही जीवसमास है और मिश्रयोग में एक संज्ञी निर्वृत्त्यपर्याप्त ही जीवसमास है ।।६८२।।

अर्थ – आहारककाययोग पर्याप्त अवस्था में होता है और आहारकमिश्रयोग अपर्याप्त अवस्था में होता है। ये दोनों ही योग छट्ठे गुणस्थानवाले मुनि के ही होते हैं और इनके उत्कृष्ट और जघन्य काल का प्रमाण अन्तर्मुहूर्त ही है ।।६८३।।

अर्थ – औदारिक मिश्रयोग की तरह कार्मण योग भी उक्त प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ ये तीन और सयोगकेवली इस तरह चार गुणस्थानों में और चारों गतिसंबंधी विग्रहगतियों के काल में होता है, विशेषता केवल इतनी है कि औदारिक मिश्रयोग को जो सयोगकेवलि गुणस्थान में बताया है सो कपाट समुद्घात के समय में बताया है और कार्मण योग को प्रतर तथा लोकपूरण समुद्घात के समय में बताया है। यहाँ पर कार्मण काययोग में जीवसमास भी औदारिकमिश्र की तरह आठ होते हैं ।।६८४।।

अर्थ – वेदमार्गणा के तीन भेद हैं – स्त्री, पुरुष, नपुंसक। इनमें नपुंसक वेद स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण के पहले सवेद भाग पर्यन्त रहता है अतएव इसमें गुणस्थान नव और जीवसमास चौदह होते हैं। शेष स्त्री और पुरुषवेद असंज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक होते हैं। यहाँ पर गुणस्थान तो पहले की तरह नव ही हैं, किन्तु जीवसमास असंज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त, अपर्याप्त और संज्ञी के पर्याप्त, अपर्याप्त इस तरह चार ही होते हैं ।।६८५।।

अर्थ – कषायमार्गणा की अपेक्षा क्रोध, मान, माया ये तीन कषाय स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण के दूसरे, तीसरे, चौथे भाग तक क्रम से रहते हैं और लोभकषाय दशवें सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान तक रहता है। अतएव आदि के तीन कषायों में गुणस्थान नव और लोभकषाय में दश होते हैं, किन्तु जीवसमास दोनों जगह चौदह-चौदह ही होते हैं ।।६८६।।

अर्थ – ज्ञानमार्गणा में कुमति और कुश्रुत ज्ञान स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर सासादन गुणस्थान तक होते हैं। विभङ्गज्ञान संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर सासादनपर्यन्त होता है। कुमति, कुश्रुत ज्ञान में गुणस्थान दो और जीवसमास चौदह होते हैं। विभङ्ग में गुणस्थान दो और जीवसमास एक संज्ञीपर्याप्त ही होता है ।।६८७।।

अर्थ – आदि के तीन सम्यग्ज्ञान (मति, श्रुत, अवधि) अव्रतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त होते हैं। मन:पर्ययज्ञान छट्ठे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक होता है और केवलज्ञान तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में तथा सिद्धों के होता है ।।६८८।।

अर्थ – संयममार्गणा में असंयम को भी गिनाया है, इसलिये यह (असंयम) मिथ्यादृष्टि से लेकर अव्रतसम्यग्दृष्टि तक होता है, अत: यहाँ पर गुणस्थान चार और जीवसमास चौदह होते हैं। देशसंयम पाँचवें गुणस्थान में ही होता है, अत: यहाँ पर गुणस्थान एक और जीवसमास भी एक संज्ञी पर्याप्त ही होता है। परिहारविशुद्धि संयम छट्ठे-सातवें गुणस्थान में ही होता है, अतएव यहाँ पर गुणस्थान दो, परन्तु जीवसमास एक संज्ञीपर्याप्त ही होता है, क्योंकि परिहार विशुद्धि वाला आहारक नहीं होता, अतएव आहारक शरीर की अपेक्षा से भी यहाँ अपर्याप्तता नहीं पाई जाती। सामायिक और छेदोपस्थापना संयम छट्ठे से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक होता है, इसलिये यहाँ पर गुणस्थान चार और जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और संज्ञी अपर्याप्त इस तरह दो होते हैं। सूक्ष्मसांपराय संयम दशवें गुणस्थान में ही होता है, अत: यहाँ पर गुणस्थान और जीवसमास एक-एक ही हैं। यथाख्यात संयम उपशांतकषाय, क्षीणकषाय, सयोगकेवली और अयोगकेवलियों के होता है। यहाँ पर गुणस्थान चार और जीवसमास संज्ञी पर्याप्त तथा केवलीसमुद्घात की अपेक्षा अपर्याप्त ये दो होते हैं। संयम मार्गणा के भेद सिद्धों में नहीं होते, ऐसा परमागम में कहा है ।।६८९-६९०।।

अर्थ – दर्शनमार्गणा में चक्षुदर्शन चतुरिन्द्रिय से लेकर क्षीणमोहपर्यन्त होता है और अचक्षुदर्शन स्थावरकाय से लेकर क्षीणमोहपर्यन्त होता है। तथा अवधिदर्शन अव्रतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणमोहपर्यन्त होता है। केवलदर्शन सयोगकेवली और अयोगकेवली इन दो गुणस्थानों में और सिद्धों के होता है ।।६९१।।

अर्थ – आदि की कृष्ण, नील, कापोत ये तीन अशुभ लेश्याएँ स्थावरकाय से लेकर चतुर्थ गुणस्थानपर्यन्त होती है और अंत की पीत, पद्म, शुक्ल ये तीन शुभ लेश्याएँ संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तपर्यन्त होती है ।।६९२।।

अर्थ – शुक्ललेश्या में यह विशेषता है कि वह संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली गुणस्थानपर्यन्त होती है और इसमें जीवसमास दो ही होते हैं। इसके ऊपर अयोगकेवली गुणस्थानवर्ती जीवों के तथा सिद्धों के कोई भी लेश्या नहीं होती, यह परमागम में कहा है ।।६९३।।

अर्थ – भव्यसिद्ध स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगी पर्यन्त होते हैं और अभव्यसिद्ध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही रहते हैं ।।६९४।।

अर्थ – सम्यक्त्वमार्गणा में मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र तो अपने-अपने गुणस्थान में ही होते हैं और प्रथमोपशम तथा वेदक ये दो सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से लेकर सातवें गुणस्थान तक होते हैं ।।६९५।।

अर्थ – द्वितीयोपशम सम्यक्त्व चतुर्थ गुणस्थान से लेकर उपशांतमोहपर्यन्त होता है। क्षायिक सम्यक्त्व चतुर्थगुणस्थान से लेकर अयोगकेवलीगुणस्थान पर्यन्त एवं सिद्धों के भी होता है ।।६९६।।

अर्थ – संज्ञी जीव संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषायपर्यन्त होते हैं। असंज्ञी जीव स्थावरकाय से लेकर असंज्ञीपंचेन्द्रिय पर्यन्त होते हैं। इनमें गुणस्थान एक मिथ्यात्व ही होता हैं ।।६९७।।

अर्थ – स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त आहारी होते हैं और कार्मणकाय योगवाले तथा अयोगकेवली और सिद्ध अनाहारक समझने चाहिये ।।६९८।।

गाथा ६७७-६९८ और ७०० का चार्ट-

किस मार्गणा में कौन से गुणस्थान व जीवसमास हैं

कुछ उपयोगी चिह्न -	
पर्याप्त = प.	अपर्याप्त = अप.
संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त = स.प.प.	संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त = स.प.अप.
" " निवृत्ति अपर्याप्त = स.प.नि.	" " लब्ध्यपर्याप्त = स.प.ल.

मार्गणा		कहाँ से	कहाँ तक	गुण-स्थान	जीवसमास	
गति	नरक			१-४	२	स.प.प., स.प.नि.
	तिर्यंच			१-५	१४	सर्व
	मनुष्य			१-१४	२	स.प.प., स.प.अप.
	देव			१-४	२	स.प.प., स.प.नि.
इन्द्रिय	एकेन्द्रिय			१	४	बादर-सूक्ष्म एकेन्द्रिय प. एवं अप.
	द्वीन्द्रिय				२	द्वीन्द्रिय प. एवं अप.
	त्रीन्द्रिय				२	त्रीन्द्रिय प. एवं अप.
	चतुरिन्द्रिय				२	चतुरिन्द्रिय प. एवं अप.
	पंचेन्द्रिय			१-१४	४	संज्ञी-असंज्ञी पंचेन्द्रिय प. एवं अप.
काय	५ स्थावर			१	४	बादर-सूक्ष्म एकेन्द्रिय प. एवं अप.
	त्रस	द्वीन्द्रिय	सैनी पंचेन्द्रिय	१-१४	१०	स्थावर के ४ को छोड़कर शेष १०
योग	**मनो**-सत्य, अनुभय	संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि	सयोगी	१-१३	१	स.प.प.
	असत्य, उभय	"	क्षीणकषाय	१-१२		

मार्गणा		कहाँ से	कहाँ तक	गुण-स्थान	जीवसमास	
योग	**वचन-** सत्य	संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि	सयोगी	१-१३		स.प.प.
	असत्य, उभय	〃	क्षीणकषाय	१-१२		
	अनुभय	विकलत्रय	सयोगी	१-१३	५	विकलत्रय, असंज्ञी, संज्ञी — पर्याप्त
	काय- औदारिक	स्थावर पर्याप्त	सयोगी	१-१३	७	पर्याप्त सातों — मनुष्य एवं तिर्यंच के
	औ.मिश्र	तीनों वेद सहित		१-२	८	अपर्याप्त सातों + स.प.प. ⟶ सयोगी के
		सिर्फ पुरुष वेद सहित		४		
		कपाट समुद्घात सहित		१३		
	वैक्रियिक			१-४	१	स.प.प. — देव एवं नारकी के
	वै.मिश्र			१,२,४	१	स.प.नि. — देव एवं नारकी के
	आहारक			६	१	स.प.प — मुनिराज के
	आ.मिश्र				१	स.प.नि. — मुनिराज के
	कार्मण	विग्रहगति में		१,२,४	८	अपर्याप्त सातों + स.प.प. ⟶ सयोगी के
		प्रतर व लोकपूरण समुद्घात में		१३		
वेद	नपुंसक	स्थावर	अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक	१-९	१४	सर्व
	स्त्री, पुरुष	असंज्ञी पंचे.			४	असंज्ञी-संज्ञी पंचे. प. एवं अप.
कषाय	क्रोध	स्थावर मिथ्यादृष्टि	अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग	१-९	१४	सर्व
	मान		〃 तीसरे भाग			
	माया		〃 चौथे भाग			
	लोभ		सूक्ष्मसाम्पराय	१-१०		

मार्गणा		कहाँ से	कहाँ तक	गुण-स्थान	जीवसमास	
ज्ञान	कुमति-कुश्रुत	स्थावर	सासादन	१-२	१४	सर्व
	विभंगज्ञान	सैनी			१	स.प.प.
	मति-श्रुत-अवधि			४-१२	२	स.प.प., स.प.नि.
	मन:पर्यय			६-१२	१	स.प.प.
	केवल			१३-१४, सिद्ध	२	स.प.प., स.प.अप.
संयम	असंयम			१-४	१४	सर्व
	देशसंयम			५	१	स.प.प.
	सामायिक-छेदोपस्थापना			६-९	२	स.प.प., स.प.नि.(आ. मिश्र में)
	परिहारविशुद्धि			६-७	१	स.प.प.
	सूक्ष्मसाम्पराय			१०	१	स.प.प.
	यथाख्यात संयम			११-१४	२	स.प.प.,स.प.अप.(केवली समुद्घात में)
	संयम-असंयम से रहित			सिद्ध		
दर्शन	चक्षुदर्शन	चतुरिन्द्रिय	क्षीणकषाय	१-१२	६	चतुरिन्द्रिय,असंज्ञी,संज्ञी प. एवं अप.
	अचक्षुदर्शन	स्थावर	क्षीणकषाय		१४	सर्व
	अवधिदर्शन			४-१२	२	स.प.प., स.प.नि.
	केवलदर्शन			१३-१४, सिद्ध	२	स.प.प., स.प.अप.
लेश्या	कृष्णादि ३ अशुभ	स्थावर	असंयत	१-४	१४	सर्व
	पीत, पद्म	सैनी	अप्रमत्त	१-७	२	स.प.प., स.प.नि.
	शुक्ल	〃	सयोगी	१-१३	२	स.प.प., स.प.नि.
	लेश्या रहित			१४,सिद्ध		

मार्गणा		कहाँ से	कहाँ तक	गुणस्थान	जीवसमास	
भव्य	भव्य	स्थावर	अयोगी	१–१४	१४	सर्व
	अभव्य			१		
	भव्य–अभव्य से रहित			सिद्ध		
सम्यक्त्व	मिथ्यादृष्टि			१	१४	सर्व
	सासादन			२	७	सूक्ष्म एकेन्द्रिय अप. को छोड़कर शेष ६ अपर्याप्त (नि.प.) एवं स.प.प.
	मिश्र			३	१	स.प.प.
	प्रथमोपशम			४–७	१	स.प.प.
	वेदक			४–७	२	स.प.प., स.प.नि.
	द्वितीयोपशम			४–११		स.प.प.,स.प.नि.(देवों में)
	क्षायिक			४–१४, सिद्ध		स.प.प., स.प.नि.
संज्ञी	संज्ञी			१–१२	२	स.प.प., स.प.अप.
	असंज्ञी	स्थावर	असंज्ञी पंचे.	१	१२	संज्ञी के २ को छोड़कर शेष १२
	संज्ञी–असंज्ञी से रहित			१३–१४, सिद्ध		
आहार	आहारक	स्थावर	सयोगी	१–१३	१४	सर्व
	अनाहारक			१,२,४,१३, १४,सिद्ध	८	अपर्याप्त सातों, स.प.प.(अयोगी में)

मिच्छे चोद्दस जीवा, सासण अयदे पमत्तविरदे य।
सण्णिदुगं सेसगुणे, सण्णीपुण्णो दु खीणोत्ति।।६९९।।

अर्थ – मिथ्यात्वगुणस्थान में चौदह जीवसमास हैं। सासादन, असंयत, प्रमत्तविरत और ''च'' शब्द से सयोगकेवली इनमें संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त ये दो जीवसमास होते हैं। शेष क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यन्त आठ गुणस्थानों में तथा ''तु'' शब्द से अयोगकेवली गुणस्थान में संज्ञी पर्याप्त एक ही जीवसमास होता है ।।६९९।। *नोट – गाथा नं. ६९५ की टीका में सासादनमार्गणा में सात भी जीवसमास बताये हैं।*

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ३३३ गाथा ७०१ का चार्ट देखें

तिरियगदीए चोद्दस, हवंति सेसेसु जाण दो दो दु।
मग्गणठाणस्सेवं, णेयाणि समासठाणाणि।।७००।।

अर्थ – मार्गणास्थान के जीवसमासों को संक्षेप से इसप्रकार समझना चाहिये कि तिर्यग्गति मार्गणा में तो चौदह जीवसमास होते हैं और शेष समस्त गतियों में संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त ये दो-दो ही जीवसमास होते हैं। शेष मार्गणास्थानों में यथायोग्य पूर्वोक्त क्रमानुसार जीवसमास घटित कर लेने चाहिये ।।७००।।

उपर्युक्त गाथा के चार्ट हेतु पृष्ठ संख्या ३२७ गाथा ६७७ का चार्ट देखें

पज्जत्ती पाणावि य, सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि।
तहिं वाचुस्सासाउगकायत्तिगदुगमजोगिणो आऊ।।७०१।।
छट्ठोत्ति पढमसण्णा, सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा।
पुव्वो पढमणियट्टी, सुहुमोत्ति कमेण सेसाओ।।७०२।।
मग्गण उवजोगावि य, सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो।
गदिआदिसु मिच्छादी, परूविदे रूविदा होंति।।७०३।।
तिसु तेरं दस मिस्से, सत्तसु णव छट्ठयम्मि एयारा।
जोगिम्मि सत्त जोगा, अजोगिठाणं हवे सुण्णं।।७०४।।
दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा।
सत्तुवजोगा सत्तसु, दो चेव जिणे य सिद्धे य।।७०५।।

अर्थ – पर्याप्ति और प्राण ये सुगम हैं, इसलिए यहाँ पर इनका पृथक् उल्लेख नहीं करते, क्योंकि बारहवें गुणस्थान तक सब ही पर्याप्ति और सब ही प्राण होते हैं। तेरहवें गुणस्थान में भावेन्द्रिय नहीं होती, किन्तु द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा छहों पर्याप्ति होती हैं। परन्तु प्राण यहाँ पर चार ही होते हैं

–वचन, श्वासोच्छ्वास, आयु और कायबल। इसी गुणस्थान में वचनबल का अभाव होने पर तीन और श्वासोच्छ्वास का भी अभाव होने पर दो ही प्राण रहते है। चौदहवें गुणस्थान में काययोग का भी अभाव हो जाने से केवल आयु प्राण ही रहता है ।।७०१।।

अर्थ – मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर प्रमत्तपर्यन्त आहार, भय, मैथुन और परिग्रह ये चारों ही संज्ञाएँ कार्यरूप होती हैं। किन्तु इसके ऊपर अप्रमत्त आदि में जो तीन आदिक संज्ञा होती हैं वे सब कारण की अपेक्षा से ही बताई हैं, कार्यरूप नहीं हुआ करती। संज्ञाओं के कारणभूत कर्मों के अस्तित्व की अपेक्षा से ही वहाँ पर वे संज्ञाएँ मानी गई है। छठे गुणस्थानपर्यन्त आहारसंज्ञा, अपूर्वकरण पर्यन्त भयसंज्ञा, अनिवृत्तिकरण के प्रथम सवेदभागपर्यन्त मैथुन संज्ञा एवं सूक्ष्मसांपराय पर्यन्त परिग्रह संज्ञा होती है।।७०२।।

अर्थ – पहले मार्गणास्थानक में गुणस्थान और जीवसमासादि का निरूपण कर चुके हैं इसलिये यहाँ गुणस्थान के प्रकरण में मार्गणा और उपयोग का निरूपण करना सुगम है ।।७०३।।

अर्थ – मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत इन तीन गुणस्थानों में पन्द्रह योगों में से आहारक, आहारकमिश्र को छोड़कर शेष तेरह योग होते हैं। मिश्रगुणस्थान में उक्त तेरह योगों में से औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण इन तीनों के घट जाने से शेष दश योग होते हैं। इसके ऊपर छट्ठे गुणस्थान को छोड़कर सात गुणस्थानों में नव योग होते हैं, क्योंकि उक्त दश योगों में से एक वैक्रियिक योग ओर भी घट जाता है किन्तु छट्ठे गुणस्थान में ग्यारह योग होते हैं, क्योंकि उक्त नव योगों में आहारक, आहारकमिश्र ये दो योग मिलते हैं। सयोगकेवली में सात योग होते हैं। अयोगकेवली के कोई भी योग नहीं होता ।।७०४।।

अर्थ – दो गुणस्थानों में पाँच, और दो में छह, मिश्र में मिश्ररूप छह, सात गुणस्थानों में सात, सयोगी, अयोगीजिन और सिद्धों के दो उपयोग होते हैं ।।७०५।।

गाथा ६९९ और ७०१–७०५ का चार्ट–

किस गुणस्थान में कौन-कौनसी प्ररूपणा है

गुण-स्थान	जीवसमास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति		इन्द्रिय		काय		योग
					प.	अप.	प.	अप.	प.	अप.	
१	सर्व १४	६ (छहों पर्याप्तियाँ)	१० (दशों प्राण)	४ (चारों संज्ञा)	४ गति	४ गति	५(पाँचों इन्द्रिय)		६(छहों काय)		आहारक, आ.मिश्र छोड़कर शेष १३ योग
२	२ - स.प.प. स.प.नि.					नरक बिना ३ गति	पंचेन्द्रिय	५	संज्ञी त्रस	४[२]	
३	१ - स.प.प.					०		०		०	१०-४ मन,४ वचन,औ.,वै.
४	२ - स.प.प. स.प.नि.					४[१]		पंचेन्द्रिय		संज्ञी त्रस	आहारक दो छोड़कर १३
५	१ - स.प.प.				मनुष्य, तिर्यंच	०		०		०	९-४ मन,४ वचन, औ.
६	२ - स.प.प. स.प.नि. (आ.मिश्र अपेक्षा)				मनुष्य		पंचेन्द्रिय		संज्ञी त्रस		११ - 〃 + आहारक दो
७	१ - स.प.प.			३	मनुष्य	०	पंचेन्द्रिय	०	संज्ञी त्रस	०	९ - ४ मन, ४ वचन, औदारिक
८											
९				२							
१०				१							
११				नहीं							
१२											
१३	२ - स.प.प. स.प.नि. (केवली समु-द्घात अपेक्षा)	६ (द्रव्येन्द्रिय अपेक्षा)	४, ३, २		मनुष्य		पंचेन्द्रिय		त्रस		७ - सत्य-अनुभय मन-वचन, औ., औ.मिश्र, कार्मण
१४	१ - स.प.प.		१		मनुष्य	०	पंचे.	०	त्रस	०	०
सिद्ध											

गुण–स्थान	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहार	उपयोग
१	३ (तीनों वेद) सवेद भागतक	४ चौकड़ी[३]	३ कुज्ञान	असंयम	२ – चक्षु, अचक्षु	६	२ भव्य	मिथ्यात्व	संज्ञी असंज्ञी	२ आहारक अनाहारक	५–३ कुज्ञान, २ दर्शन
२								सासादन			
३		३ चौकड़ी[३]	३ मिश्र ज्ञान					मिश्र	संज्ञी	आहारक	६ – ३ मिश्रज्ञान, ३ दर्शन
४			३ सुज्ञान		३ – चक्षु, अचक्षु, अवधि			तीनों सम्यक्त्व		२	६ – ३ सुज्ञान, ३ दर्शन
५		२ चौकड़ी[३]		देशसंयम		३ शुभ				आहारक	
६		१ चौकड़ी[३]	४ सुज्ञान	३ – सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि							७ –४ सुज्ञान, ३ दर्शन
७											
८				२ – सामायिक, छेदोपस्थापना		शुक्ल		२ – उपशम, क्षायिक			
९		*									
१०	०	सूक्ष्म लोभ		सूक्ष्म साम्पराय							
११		०		यथाख्यात				क्षायिक			
१२											
१३			केवल ज्ञान		केवल दर्शन					२	२– केवलज्ञान, केवलदर्शन
१४						अलेश्या				अनाहारक	
सिद्ध											

नोट – १		प.	अप.
नरक	प्रथम पृथ्वी	✓	✓
	शेष ६ पृथ्वी	✓	
तिर्यंच	कर्मभूमि	✓	
	भोगभूमि	✓	✓
मनुष्य	कर्म एवं भोगभूमि	✓	✓
देव	भवनत्रिक	✓	
	वैमानिक	✓	✓

२ – बादर पृथ्वीकायिक, जलकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रस (द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय)

३ – ४ चौकड़ी = अनंतानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन–क्रोध, मान, माया, लोभ। इसी प्रकार ३, २, १ चौकड़ी भी जानना

*** – नवें गुणस्थान के दूसरे भाग तक संज्वलन क्रोध, तीसरे भाग तक संज्वलन मान, चौथे भाग तक संज्वलन माया, अंत तक बादर लोभ है।**

अधिकार २२ - आलाप अधिकार

विषय	गाथा क्रमांक	कुल गाथाएँ	पृष्ठ संख्या
गुणस्थान एवं मार्गणाओं में आलाप	७०६-७३०	२५	३३५
सिद्धों में २० प्ररूपणाएँ	७३१-७३२	२	३४१
प्ररूपणा को जानने के उपाय	७३३	१	३४२
कुल गाथाएँ		२८	

गोयमथेरं पणमिय, ओघादेसेसु वीसभेदाणं।
जोजणिकाणालावं, वोच्छामि जहाकमं सुणह।।७०६।।

अर्थ – सिद्धों को वा वर्धमान तीर्थंकर को वा गौतमगणधर स्वामी को अथवा साधुसमूह को नमस्कार करके गुणस्थान और मार्गणाओं के जोड़नेरूप बीस भेदों के आलाप को क्रम से कहता हूँ, सो सुनो ।।७०६।।

ओघे चोदसठाणे, सिद्धे वीसदिविहाणमालावा।
वेदकषायविभिण्णे अणियट्टी पंचभागे य।।७०७।।
ओघे मिच्छदुगेवि य, अयदपमत्ते सजोगिठाणम्मि।
तिण्णेव य आलावा, सेसेसिक्को हवे णियमा।।७०८।।
सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलावा।
दुवियप्पमपज्जत्तं, लद्धीणिव्वत्तगं चेदि।।७०९।।
दुविहं पि अपज्जत्तं, ओघे मिच्छेव होदि णियमेण।
सासणअयदपमत्ते, णिव्वत्तिअपुण्णगो होदि।।७१०।।
जोगं पडि जोगिजिणे, होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु।
अवसेसणवट्ठाणे, पज्जत्तालावगो एक्को।।७११।।
सत्तण्हं पुढवीणं ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा।
पढमाविरदे वि तहा, सेसाणं पुण्णगालावो।।७१२।।
तिरियचउक्काणोघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णे व।
णवरि य जोणिणि अयदे, पुण्णो सेसेवि पुण्णो दु।।७१३।।
तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो।
मूलोघं मणुसतिये, मणुसिणिअयदम्हि पज्जत्तो।।७१४।।
मणुसिणि पमत्तविरदे, आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगदवेदे मणुसिणि, सण्णा भूदगदिमासेज्ज।।७१५।।
णरलद्धिअपज्जत्ते, एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो।
लेस्साभेदविभिण्णा, सत्त वियप्पा सुरट्ठाणा।।७१६।।

सव्वसुराणं ओघे, मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो।।७१७।।
मिस्से पुण्णालाओ, अणुद्दिसाणुत्तरा हु ते सम्मा।
अविरद तिण्णालावा, अणुद्दिसाणुत्तरे होंति।।७१८।।
बादरसुहमेइंदियवितिचउरिंदियअसण्णिजीवाणं।
ओघे पुण्णे तिण्णि य, अपुण्णगे पुण अपुण्णो दु।।७१९।।
सण्णी ओघे मिच्छे, गुणपडिवण्णे य मूलआलावा।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ।।७२०।।
भूआउतेउवाऊणि चदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि।
ताणं थूलिदरेसु वि, पत्तेगे तद्दु भेदेवि।।७२१।।
तसजीवाणं ओघे, मिच्छादिगुणे वि ओघ आलाओ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ।।७२२।।
एक्कारसजोगाणं, पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो, सगएक्कअपुण्ण आलाओ।।७२३।।
वेदादाहारोत्ति य, सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ।
णवरि य संढित्थीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं।।७२४।।

अर्थ – परमागम में प्रसिद्ध चौदह गुणस्थान और चौदह मार्गणास्थानों में उक्त बीस प्ररूपणाओं के सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त ये तीन आलाप होते हैं। वेद और कषाय की अपेक्षा से अनिवृत्तिकरण के पाँच भागों में आलाप भिन्न-भिन्न समझने चाहिये ।।७०७।।

अर्थ – गुणस्थानों में मिथ्यात्वद्विक अर्थात् मिथ्यात्व और सासादन तथा असंयत, प्रमत्त और सयोगकेवली इन गुणस्थानों में तीनों आलाप होते हैं। शेष गुणस्थानों में एक पर्याप्त ही आलाप होता है ।।७०८।।

अर्थ – आलाप के तीन भेद हैं - सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त। अपर्याप्त के दो भेद हैं - एक लब्ध्यपर्याप्त दूसरा निर्वृत्त्यपर्याप्त ।।७०९।।

अर्थ – दोनों प्रकार के अपर्याप्त आलाप समस्त गुणस्थानों में से मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होते हैं। सासादन, असंयत, प्रमत्त इनमें निर्वृत्त्यपर्याप्त आलाप होता है ।।७१०।।

अर्थ – सयोगकेवलियों में योग की (समुद्घात की) अपेक्षा से नियम से अपर्याप्तकता होती है, इसलिये उक्त पाँच गुणस्थानों में तीन तीन आलाप और शेष नव गुणस्थानों में एक पर्याप्त ही आलाप होता हैं ।।७११।।

अर्थ – नरकगति में सामान्यपने सातों पृथ्वी संबंधी मिथ्यादृष्टि में तीन आलाप हैं। वैसे ही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयत में तीन आलाप हैं। तथा अवशेष पृथ्वी संबंधी अविरत और सर्व पृथ्वियों के सासादन, मिश्र इनके एक पर्याप्त ही आलाप है ।।७१२।।

अर्थ – तिर्यंच पाँच प्रकार के होते हैं - सामान्य, पंचेन्द्रिय, पर्याप्त, योनिमती, अपर्याप्त। इनमें से अंत के अपर्याप्त को छोड़कर शेष चार प्रकार के तिर्यंचों के आदि के पाँच गुणस्थान होते हैं। जिनमें से मिथ्यात्व, सासादन, असंयत इन गुणस्थानों में तीन-तीन आलाप होते हैं। इसमें भी

इतनी विशेषता और है कि योनिमती तिर्यंच के असंयत गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप ही होता है क्योंकि बद्धायुष्क भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीवेद के साथ तथा प्रथम नरक के सिवाय अन्यत्र नपुंसक वेद के साथ भी जन्म ग्रहण नहीं करता, शेष मिश्र और देशसंयत में पर्याप्त आलाप ही होता है ।।७१३।।

अर्थ – लब्ध्यपर्याप्त तिर्यंचों के एक अपर्याप्त ही आलाप होता है। मनुष्य के चार भेद हैं – सामान्य, पर्याप्त, मनुष्यनी, अपर्याप्त। इनमें से आदि के तीन मनुष्यों के चौदह गुणस्थान होते हैं। उनमें गुणस्थान सामान्य के समान ही आलाप होते हैं। विशेषता इतनी है कि असंयत गुणस्थानवर्ती मानुषी के एक पर्याप्त आलाप ही होता है।।७१४।।

अर्थ – जो द्रव्य से पुरुष है, किन्तु भाव की अपेक्षा स्त्री है ऐसे प्रमत्तविरत जीव के आहारक शरीर और आहारक आंगोपांग नामकर्म का उदय नियम से नहीं होता। भाव मनुष्यनी में चौदह गुण-स्थान है, द्रव्य मनुष्यनी में पाँच ही गुणस्थान हैं। वेदरहित अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवाले मनुष्यनी के जो मैथुनसंज्ञा कही है वह भूतगतिन्याय की अपेक्षा से कही है ।।७१५।।

अर्थ – लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य में एक अपर्याप्त ही आलाप होता है। देवगति में लेश्याभेद की अपेक्षा से सात विकल्प होते हैं ।।७१६।।

अर्थ – समस्त देवों के चार गुणस्थान सम्भव हैं। उनमें से मिथ्यात्व, सासादन, अविरत गुणस्थान में तीन तीन आलाप होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि सभी भवनत्रिक देव-देवी तथा कल्पवासिनी देवी इनके असंयत गुणस्थान में एक पर्याप्त ही आलाप होता है ।।७१७।।

अर्थ – नव ग्रैवेयक पर्यन्त सामान्य से समस्त देवों के मिश्र गुणस्थानों में एक पर्याप्त ही आलाप होता है। इसके ऊपर अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी सब देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अत: इन देवों के अविरत गुणस्थान में तीन आलाप होते हैं ।।७१८।।

अर्थ – जो बादर एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और असंज्ञी पंचेन्द्रिय सामान्य जीव पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त होते हैं, उनके तीन आलाप होते हैं। और जिनके अपर्याप्त नामकर्म का उदय है, उनके एक लब्ध्यपर्याप्त आलाप ही होता है ।।७१९।।

अर्थ – संज्ञी जीव के जितने गुणस्थान होते हैं उनमें से मिथ्यादृष्टि या विशेष गुणस्थान को प्राप्त होने वाले के मूल के समान ही आलाप समझने चाहिये और लब्ध्यपर्याप्तक संज्ञी के एक अपर्याप्त ही आलाप होता है ।।७२०।।

अर्थ – पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनके बादर, सूक्ष्म भेद तथा प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित भेद इन सबमें तीन तीन आलाप हैं। त्रस जीवों के सामान्य से चौदह गुणस्थानों में कहे हुये आलाप हैं, कुछ विशेष नहीं है। पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत लब्धिअपर्याप्तों में एक लब्धिअपर्याप्त ही आलाप है ।।७२१-७२२।।

अर्थ – पर्याप्त अवस्था में होते हैं ऐसे चार मन, चार वचन, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन ग्यारह योगों का अपना-अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसे सत्य मनोयोग का सत्यमन पर्याप्त आलाप है। ऐसे सबका जानना। अवशेष रहे चार मिश्र योगों का अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है। जैसे औदारिक मिश्र के एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है। ऐसे सबका जानना ।।७२३।।

अर्थ – वेदमार्गणा से लेकर आहारमार्गणा पर्यन्त दश मार्गणाओं में अपने-अपने गुणस्थानों का

आलाप-क्रम सामान्य गुणस्थान की तरह होता है। विशेषता इतनी है कि जो भावनपुंसक या भावस्त्रीवेदी हैं एवं द्रव्य पुरुषवेदी हैं, उनके आहारक काययोग और आहारक-मिश्रकाययोग नहीं होता ।।७२४।।

गुणस्थान एवं मार्गणाओं में आलाप

सामान्य = सा. ⟶ पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों का समुदाय	
पर्याप्त = प.	अपर्याप्त = अप. लब्धिअपर्याप्त = ल. निर्वृत्तिअपर्याप्त = नि.

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७-१२	१३	१४
	सा., प. अप.- ल., नि.	सा., प.,नि.	प.	सा., प.,नि.	प.	सा., प., नि.	प.	सा. प., नि. (औ. मिश्र एव कार्मण काययोग की अपेक्षा)	प.
मार्गणा - गति → नरक									
प्रथम पृथ्वी	सा.,प.,नि.	प.	प.	सा.,प.,नि.	×				
शेष ६ पृथ्वी	〃	〃	〃	प.[१]					
→ तिर्यंच									
सामान्य	सा.,प.,अप.	सा., प.,नि.	प.	सा., प.,नि.	प.	×			
पंचेन्द्रिय	〃								
पंचे. पर्याप्त	सा.,प.,नि.								
योनिमति	〃			प.[२]					
लब्धि अपर्याप्त	ल.	×							
→ मनुष्य									
सामान्य	गुणस्थान के समान								
पर्याप्त	सा.,प.,नि.	गुणस्थान के समान							
मनुष्यनी	〃	सा.,प.,नि.	प.	प.[३]	गुणस्थान के समान				

गुणस्थान	१	२	३	४	५	६	७–१२	१३	१४
लब्धि अपर्याप्त	ल.	×							
→ **देव** – सामान्य	सा., प.,नि	सा., प.,नि.	प.	सा.,प.,नि.[४]	×				
भवनत्रिक, कल्पवासिनी स्त्री	〃	〃	〃	प.					
सौधर्म से ग्रैवेयक	〃	〃	〃	सा.,प.,नि.					
अनुत्तर,अनुदिश	×			〃					
→**इन्द्रिय** –एकेन्द्रिय से असैनी पंचे.	सा., प. अप.–ल.,नि.	नि.	×						
सैनी पंचे.	गुणस्थान के समान								
सैनी लब्धि अपर्याप्त	ल.	×							
→ **काय** पृथ्वी,जल,वनस्पति	सा., प. अप.–ल.,नि.	नि.	×						
अग्नि, वायु	〃	×							
त्रस	गुणस्थान के समान								
सर्व लब्धि अपर्याप्त	ल.	×							
→ **योग** – सत्य, अनुभय मन–वचन	पर्याप्त								×
असत्य,उभय मन–वचन	पर्याप्त							×	
औदारिक	पर्याप्त								×
औ.मिश्र, कार्मण	ल., नि.	नि.	×	नि.	×			नि.	×
वैक्रियिक	पर्याप्त				×				
वै. मिश्र	नि.	नि.	×	नि.					
आहारक	×					प.	×		
आ. मिश्र	×					नि.	×		
वेद से **आहार** तक ⟶ सामान्य से गुणस्थान के समान जानना									

	नोट –
१	*सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व नरकायु बाँधने वाला कृतकृत्यवेदक या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम पृथ्वी में ही उत्पन्न होता है, शेष छह पृथ्वियों में नहीं।*
२	*सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व तिर्यंचायु बाँधने वाला जीव स्त्री व नपुंसक वेद में उत्पन्न नहीं होता है।*
३	*भाव मनुष्यनी के प्रथमोपशम, वेदक, क्षायिक तीनों सम्यक्त्व संभव हैं पर पर्याप्त अवस्था में। द्रव्य मनुष्यनी के पाँच ही गुणस्थान होते हैं एवं उसे क्षायिक, वेदक एवं प्रथमोपशम सम्यक्त्व संभव है।*
४	*असंयत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच एवं मनुष्य मरकर भवनत्रिक एवं कल्पवासिनियों में उत्पन्न नहीं होते हैं।*

गुणजीवापज्जत्ती, पाणा सण्णा गइंदिया काया।
जोगा वेदकसाया, णाणजमा दंसणा लेस्सा।।७२५।।
भव्वा सम्मत्तावि य, सण्णी आहारगा य उवजोगा।
जोग्गा परूविदव्वा, ओघादेसेसु समुदायं।।७२६।।
ओघे आदेसे वा, सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ।
तत्थ य उणवीसंता, इगिवितिगुणिदा हवे ठाणा।।७२७।।
वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयडणसमत्थं।
णमिऊणगोयममहं, सिद्धंतालावमणुवोच्छं ।।७२८।।

अर्थ – चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, छह पर्याप्ति, दश प्राण, चार संज्ञा, चार गति, पाँच इन्द्रिय, छह काय, पन्द्रह योग, तीन वेद, चार कषाय, आठ ज्ञान, सात संयम, चार दर्शन, छह लेश्या, भव्यत्व-अभव्यत्व, छह प्रकार के सम्यक्त्व, संज्ञित्व-असंज्ञित्व, आहारक अनाहारक, बारह प्रकार का उपयोग इन सबका यथायोग्य गुणस्थान और मार्गणास्थानों में निरूपण करना चाहिये ।।७२५-७२६।।

अर्थ – सामान्य (गुणस्थान) या विशेषस्थान में (मार्गणास्थान में) संज्ञी पंचेन्द्रियपर्यन्त मूलजीवसमासों का जहाँ निरूपण किया है वहाँ उत्तर जीवसमासस्थान के भेद उन्नीसपर्यन्त होते हैं और इनका भी एक, दो, तीन के साथ गुणा करने से क्रम से उन्नीस, अड़तीस और सत्तावन जीवसमास के भेद होते हैं ।।७२७।।

अर्थ – अंतिम तीर्थंकर श्री वर्धमानस्वामी के मुखकमल से निर्गत समस्त श्रुतसिद्धान्त के ग्रहण करने और प्रकट करने में समर्थ श्री गौतमस्वामी को नमस्कार करके मैं उस सिद्धान्तालाप को कहूँगा जो वीर भगवान के मुखकमल से उपदिष्ट श्रुत में वर्णित समस्त पदार्थों के प्रकट करने में समर्थ है।।७२८।।

मणपज्जवपरिहारो, पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारा।
एदेसु एक्कपगदे, णत्थित्ति असेसयं जाणे।।७२९।।

अर्थ – मन:पर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व और आहारकद्वय इनमें से किसी भी एक के होने पर शेष भेद नहीं होते, ऐसा जानना चाहिये ।।७२९।।

गाथा ७२९ और ७१५ का चार्ट–

किसका किसके साथ विरोध है

	स्त्री–नपुंसक वेद	मन:पर्यय	परिहारविशुद्धि	प्रथमोपशम	द्वितीयोपशम
आहारकद्विक	विरोध	विरोध	विरोध	विरोध	विरोध
मन:पर्ययज्ञान	विरोध	–	विरोध	विरोध	नहीं
परिहार–विशुद्धि	विरोध	विरोध	–	विरोध	विरोध
प्रथमोपशम	नहीं	विरोध	विरोध	–	विरोध
द्वितीयोपशम	नहीं	नहीं	विरोध	विरोध	–

विदियुवसमसम्मत्तं, सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु।
सगसगलेस्सामरिदे, देवअपज्जत्तगेव हवे।।७३०।।

अर्थ – उपशम श्रेणी से संक्लेश परिणामों के वश से नीचे असंयतादि गुणस्थानों में उतरे हुए असंयतादि अपनी–अपनी लेश्या में यदि मरते हैं तो नियम से अपर्याप्त असंयत देव होते हैं। उनमें द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सम्भव है, इसलिये वैमानिक अपर्याप्त देव में उपशमसम्यक्त्व कहा है। चार गति में से एक देव अपर्याप्त को छोड़कर अन्य किसी भी गति की अपर्याप्त अवस्था में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता।।७३०।।

सिद्धाणं सिद्धगई, केवलणाणं च दंसणं खयियं।
सम्मत्तमणाहारं, उवजोगाणक्कमपउत्ती।।७३१।।
गुणजीवठाणरहिया, सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा।
सेसणवमग्गणूणा, सिद्धा सुद्धा सदा होंति।।७३२।।

अर्थ – सिद्ध परमेष्ठी के सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, अनाहार और ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग की अनुक्रमता से रहित प्रवृत्ति ये प्ररूपणा पायी जाती है ।।७३१।।

अर्थ – सिद्ध परमेष्ठी – चौदह गुणस्थान, चौदह जीवसमास, चार संज्ञा, छह पर्याप्ति, दश प्राण इनसे रहित होते हैं। तथा इनके सिद्धगति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व और अनाहार को छोड़कर शेष नव मार्गणा नहीं पाई जातीं और ये सिद्ध सदा शुद्ध ही रहते हैं, क्योंकि मुक्तिप्राप्ति के बाद पुन: कर्म का बंध नहीं होता।।७३२।।

सिद्ध जीव किन प्ररूपणाओं से सहित एवं रहित हैं

सहित						
सिद्धगति	केवलज्ञान	केवलदर्शन	क्षायिक सम्यक्त्व	अनाहारक	ज्ञानोपयोग	दर्शनोपयोग
रहित						
१४ गुणस्थान	१४ जीवसमास	६ पर्याप्ति	१० प्राण	४ संज्ञा	सिद्धगति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व एवं अनाहारक बिना शेष ९ मार्गणाएँ	

णिक्खेवे एयत्थे, णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे।
मग्गइ वीसं भेयं, सो जाणइ अप्पसब्भावं।७३३।।

अर्थ – जो भव्य उक्त गुणस्थानादिक बीस भेदों को निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति, अनुयोग आदि के द्वारा जानता है, वह आत्मा के सद्भाव को जानता है ।।७३३।।

गुणस्थानादि बीस प्ररूपणाओंरूप भेदों को किनके द्वारा जाने

निक्षेप	नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव		
एकार्थ	जैसे – प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व का एक अर्थ है		
नय	द्रव्यार्थिक – पर्यायार्थिक		
प्रमाण	प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रमाण (मतिज्ञानादिक)		
निरुक्ति	जैसे – जी रहा है, जीयेगा, जीया ऐसी जीव शब्द की निरुक्ति		
अनुयोग	१.निर्देश – क्या ? ४.अधिकरण – कहाँ?	२.स्वामित्व – किसके ? ५.स्थिति – कितने काल?	३.साधन – किससे ? ६.विधान – कितने प्रकार के?

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारिअजियसेणगुरु।
भुवणगुरु जस्स गुरु सो राओ गोम्मटो जयउ।।७३४।।

अर्थ – श्री आर्यसेन आचार्य के अनेक गुणगण को धारण करनेवाले और तीनलोक के गुरु श्री अजितसेन आचार्य जिसके गुरु है वह श्री गोम्मट (चामुण्डराय) राजा जयवन्त रहो ।।७३४।।

परिशिष्ट

प्रमाद के ३७५०० भंग का यंत्र

० स्त्री	० अनंतानुबंधी क्रोध	० स्पर्शन	० स्त्यानगृद्धि	१ स्नेह
१५०० अर्थ	६० अनंतानुबंधी मान	१० रसन	२ निद्रानिद्रा	२ मोह
३००० भोजन	१२० अनंतानुबंधी माया	२० घ्राण	४ प्रचलाप्रचला	
४५०० राजा	१८० अनंतानुबंधी लोभ	३० चक्षु	६ निद्रा	
६००० चोर	२४० अप्रत्याख्यान क्रोध	४० श्रोत्र	८ प्रचला	
७५०० वैर	३०० अप्रत्याख्यान मान	५० मन		
९००० परपाखंड	३६० अप्रत्याख्यान माया			
१०५०० देश	४२० अप्रत्याख्यान लोभ			
१२००० भाषा	४८० प्रत्याख्यान क्रोध			
१३५०० गुणबंध	५४० प्रत्याख्यान मान			
१५००० देवी	६०० प्रत्याख्यान माया			
१६५०० निष्ठुर	६६० प्रत्याख्यान लोभ			
१८००० परपैशून्य	७२० संज्वलन क्रोध			
१९५०० कंदर्प	७८० संज्वलन मान			
२१००० देशकालानुचित	८४० संज्वलन माया			
२२५०० भंड	९०० संज्वलन लोभ			
२४००० मूर्ख	९६० हास्य			
२५५०० आत्मप्रशंसा	१०२० रति			
२७००० परपरिवाद	१०८० अरति			
२८५०० परजुगुप्सा	११४० शोक			
३०००० परपीड़ा	१२०० भय			
३१५०० कलह	१२६० जुगुप्सा			
३३००० परिग्रह	१३२० पुरुषवेद			
३४५०० कृष्याद्यारंभ	१३८० स्त्रीवेद			
३६००० संगीतवाद्य	१४४० नपुंसकवेद			

अधःकरण संबंधी अनुकृष्टि रचना का यंत्र

समय न.	परिणामों की संख्या	कहाँ से कहाँ तक	अनुकृष्टि रचना			
१६	२२२	६९१-९१२	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९	५६ ८००-८५५	५७ ८५६-९१२
१५	२१८	६३८-८५५	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९	५६ ८००-८५५
१४	२१४	५८६-७९९	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४	५५ ७४५-७९९
१३	२१०	५३५-७४४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०	५४ ६९१-७४४
१२	२०६	४८५-६९०	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७	५३ ६३८-६९०
११	२०२	४३६-६३७	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५	५२ ५८६-६३७
१०	१९८	३८८-५८५	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४	५१ ५३५-५८५
९	१९४	३४१-५३४	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५	५० ४८५-५३४
८	१९०	२९५-४८५	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५	४९ ४३६-४८५
७	१८६	२५०-४३५	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७	४८ ३८८-४३५
६	१८२	२०६-३८७	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०	४७ ३४१-३८७
५	१७८	१६३-३४०	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४	४६ २९५-३४०
४	१७४	१२१-२९४	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९	४५ २५०-२९४
३	१७०	८०-२४९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५	४४ २०६-२४९
२	१६६	४०-२०५	४० ४०-७९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२	४३ १६३-२०५
१	१६२	१-१६२	३९ १-३९	४० ४०-७९	४१ ८०-१२०	४२ १२१-१६२